

हिन्दी के पौराणिक नाटको के मूल-स्रोत



राजकमल प्रकाशन
दिल्ली ६ पटना ६

हिन्दी के
पौराणिक
नाटकों के
मूल स्रोत

शशिप्रभा शास्त्री

[जोधपुर विश्वविद्यालय की पी एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबंध]

मूल्य ४०००

© शशिप्रभा शास्त्री

प्रथम संस्करण १९७३

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०

८ फज्ज बाजार, दिल्ली ६

मुद्रक जी० आर० कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा

अजय प्रिंटर्स दिल्ली ३२

आवरण हरिपाल त्यागी

जीवन साथी को—

जिसकी प्रेरणा के अभाव में सम्भवत
यह कार्य आरम्भ ही न हो पाता !

भूमिका

भारतीय मनीषा और तत्त्व चिन्ता को आन्धान तथा मियन द्वारा अभिन्यक्त करने का जसा प्रयास पुराणा के माध्यम से हुआ है वसा किसी अन्य ग्रन्थ के द्वारा नहीं हुआ। महाभारत अवश्य एक ऐसा विनाश ग्रन्थ है जो आख्याना की विपुलता में पुराणा का समकक्ष कहा जा सकता है। किन्तु महाभारत में मियन को वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ है जो पुराणा में है। माय ही पुराणा के अधिकांग आख्यान महाभारत में समाविष्ट हैं अतः पुराणा का क्षेत्र विस्तृत और विशाल हो गया है। यह ठीक है कि रामायण तथा महाभारत के विविध प्रसंग और आख्यान पुराणा में अंतर्भूत हैं और उनका मूल स्रोत पुराण-काल से पूर्व रचित ग्रन्थों में भी खोजा जा सकता है किन्तु जिस रूप में वे सदम पुराणा में गहीन हुए हैं वे पौराणिक ही हो गये हैं। पुराण की गली अपना वणिष्ट्य रखती है और वह अनकानक कथा प्रसंगा का विस्मय और बुल्लुहल के साथ गुंथाय से समुक्त कर देती है। देवी-देवताओं की नित्य लीलाओं का वणन यदि छाड़ भी लिया जाए और केवल मानवीय चरित्रों के आधार पर पुराणा का स्वरूप निधारण किया जाये तो भी इनमें इतने अधिक आख्यान सदम हैं कि जिनकी इयता नहीं है। इन आख्यान-कथानों ने सबत्र साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट किया है और प्रारम्भ से ही ससृष्ट, प्राकृत, अपभ्रंश में इन्हीं कथा-सदमों और मियनों का आश्रय लेकर महाकाव्य, खण्डकाव्य और नाटक लिखे जाते रहे हैं।

हिन्दी में नाटक रचना का प्रारम्भ वस्तुतः खड़ी बोली के विकास के साथ ही मानना चाहिए। रीवा के महाराज विश्वनाथ सिंह वृत्त आनन्द रघुनन्दन को कुछ इतिहास-लेखक हिन्दी का प्रथम नाटक मानते हैं किन्तु इस प्रकार के पद्यरत्न नाटक का प्रभाषा में पहले से ही मिनत है। नाट्य गली की पूणता के आधार पर बाबू गापालचन्द्र गिरिधरनाथ वृत्त 'नट्य नाटक' का कुछ विद्वान हिन्दी का पहला नाटक स्थिर करते हैं। यह नाटक पौराणिक आख्यान पर आधारित है। अर्थात् हिन्दी नाटक रचना में पौराणिक आख्यान ही सबसे पहली सीढ़ी है।

भागानु-मुग म ति । म मात्त रथा का घात घात भगवत का घात रथा घोर यह कम घातना की गया रही है कि विभिन्न भगवत म घात मात्त का कि लिए पुराणा म ही गया का प्रयोग किया । यदि पुराणा की कथाओं को रामायण और महाभारत म संयुक्त करके देगा जाए तो स्थापित तात्त्विक । कथानका को पूर्णभूति पर चलाकर फिर लिखे जा है । इस तात्त्विक का विषयगत घटना बहुत घातना था । सबसे प्रथम यह बात था ० दशम मात्त म लिखा था । तात्त्विक म लिखा था । घात साध प्रथम म भी, पौराणिक तात्त्विक का उद्देश्य हुआ है कि तु पौराणिक तात्त्विक का मूल म, क मथा का प्रयोग किसी भी साध प्रथम म लिखा गया है । मत्त का म ० लिखना मात्त की घात इस साध प्रथम द्वारा बड़ी स्पष्ट है । म पुरा लिखा है ।

पौराणिक तात्त्विक का वर्गीकरण को समझना कुछ कठिन है । एक कथाओं की कमी नहीं है जो महाभारत रामायण घोर पुराण म भी । उदाहरण है । एक ही कथानक लिखित पात्र म विभिन्न रथा म लिखित हुआ गया था रहा है तो उस कथा रथा का घोर उगल विवरण क लिए लिखे गए का मूलाधार मात्त काय यह एक लिखित मद्यका है । लिंगना न घात की मुद्रिका म तात्त्विक का वर्गीकरण किया है घोर मुद्रिका चार वर्गों म रचना उनका विभाजन कर लिया है । इस विभाजन म एक ही कथाओं का मत्त था । का पूर्ण पाई जा सकती है कि तु उगल प्रभाव घोर प्रभाव ही वर्गीकरण कथा का मत्त है । कथानक का विवरण म लिंगना न घात या मात्त की कथा कथा मद्यक रथा घोर लिख की मली नाति न्यायता कर दी है । घात म उगल वर्गीकरण म को मजाति लिखित रही पाता । एक कथाओं का पुराणा म पाया जाता है घोर उगल कथा विभाग म भी कुछ कथानक है जिम लिंगना न साध की प्रविधि म स्पष्ट कर दिया है । इस प्रकार एक एक कथाओं का मत्त साजन म उगल कर्त पुराणा का प्रवणता अनुमान करना पडा है ।

प्रस्तुत साध प्रथम म लिंगना न समस्त पौराणिक तात्त्विक का चार प्रमुख धाराओं म विभक्त किया है । इस धाराओं म भा उगल प्रतिनिधि तात्त्विक का ही विवक्ष्य बताया है । एक साध प्रथम म गनाधिक छोट-बूट तात्त्विक का समझना या भी समझ रही था घात प्रतिनिधि रचनाओं का सीमित रहना ही ही है । तात्त्विक की विषय म रामायण का रूपक आत है । लिंगना न समस्त सम्पूर्ण नाटक (पुल्लभ्यत्त) का ही कथा साध प्रथम म स्थान दिया है दश रूपक का भेदा पर प्रणीत तात्त्विक विवक्षा क लिए स्वीकार रहा किया है । भावनाटय गीतिनाटय, एवारी व्यायोग आदि को साथसा छोड़ दिया है । यदि कोई घोर गोधकर्ता इन विधाओं पर काय करना चाहे तो उस भी काय करने के लिए व्यापक क्षेत्र उपलब्ध है ।

डा० दासिप्रभा शास्त्री स्वयं रचनाकार है । राजक साहित्यकार होने का कारण उनकी अभियोजना म लालित्य एवं सौष्ठव्य होना स्वभाविक है । कथा लिंगना न रूप म उगल पर्याप्त रचाति अजित की है । उनकी सहज सुबोध शाली म लिखी कहानियाँ मात्र हिन्दी म चर्चित है । इस साध प्रथम म भी हम उनकी इस प्राजल शाली को साथ देते सन्त हैं । पौराणिक कथानका का विवक्त करते हुए वे अपनी मौलिक प्रतिभा के लिए प्रवणता निरात ही लेती हैं । पुराण की अलकृत आख्यायिका शाली को लेखिका ने हिन्दी के नय मुहावरे के साथ

जिस मुदरता के साथ जाड़ा है वह इस शोध प्रबन्ध की भाषा शैली की एक बड़ी उपलब्धि है।

गोध प्रबन्ध मूलतः एक बर्णनिक प्रविधि पर खड़ा किया जाता है। सन्दर्भ, टिप्पणी, तर्क प्रमाण आदि के घटाटाप से उसमें नीरमता आना स्वाभाविक है। गोध प्रबन्ध से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह उपन्यास या कथा की तरह सुपाठ्य बना रहे और लेखक अबाध मति से उसे पढ़ता चला जाय। किन्तु इस शोध प्रबन्ध में बर्णनिक प्रक्रिया के परिपालन के साथ बर्णनिक आदि के प्रस्तुतीकरण में लेखिका ने भाषा प्रवाह का अविच्छिन्न रखकर अपने साहित्यकार को जीवित रखा है। सजक और ममीक्षक का समबन्त रूप इस प्रबन्ध की विशेषता है।

मुझे विश्वास है कि हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्रोतों के सघन में इस गोध-प्रबन्ध से पाठकों को पूरी सामग्री प्राप्त हो सकेगी और पुराणों के विविध प्रसंग भी उद्घाटित हो सकेंगे। मैं इस शोध प्रबन्ध का परीक्षण किया था और इसमें एक श्रेष्ठ कृति मानकर प्रकाशन का परामर्श दिया था। मुझे हर्ष है कि आज यह प्रकाशित होकर पाठकों के लिए सुलभ हो रहा है। मैं इस सम्पन्न एवं अध्ययन-साधक कार्य के लिए डॉ० दशरथदास शास्त्री को साधुवाद देता हूँ। मुझे प्रसन्नता है कि सजक साहित्यकार होने के साथ उन्होंने अनुसंधान के दायित्व का भी पूरी तरह निर्वहण किया है।

प्रोफेसर एच. अक्षय, हिन्दी विभाग,
दि० वि० वि०, दिल्ली ७

विजयेन्द्र स्नातक

स पुष्ट कई नाटकों को भी, विद्वद्विद्यालय की ओर से पढ़ा की सत्या सीमित कर देने के कारण, छाड़ देना पड़ा है। इन नाटकों के रचयिताओं से मैं क्षमाप्रार्थनी हूँ। ऐसी स्थिति में केवल उही कृतियों को प्रमुखता दी गयी, जो महत्वपूर्ण चरित्रों पर प्रकाश डालती हैं अथवा महत्वपूर्ण लेखकों का प्रतिनिधित्व करती हैं। नाटकों के चयन की समस्या का समाधान कुछ इसी प्रकार सम्भव हुआ है।

नाटक चयन के उपरान्त दूसरी समस्या, विवेच्य नाटकों के प्रस्तुतीकरण व सम्बन्ध में भी पर्याप्त विचारणीय रही। विवेच्य नाटकों का विभाजन कालक्रमानुसार नहीं किया जा सकता था क्योंकि एक ही कथा को लेकर अनेक नाटक विभिन्न कालों में लिखे गये हैं। कालक्रमानुसार नाटकों के वर्गीकरण में उन नाटकों की पुनः पुनः आवृत्ति होने का भय था। अतः नाटकों के विभाजन में एक दूसरी दृष्टि रणी गयी। यहाँ विवेच्य नाटकों का वर्गीकरण काल युग पर आधारित न मानकर विषय अथवा चरित्र पर आधारित माना गया है और इसीलिए समस्त विवेच्य नाटकों के कथानकों को प्रमुख धाराओं में विभक्त किया गया है। उस वर्गीकरण में आवृत्ति की सम्भावना यथासम्भव दूर हो गयी है। एक ही चरित्र से सम्बन्धित दो अथवा कई नाटकों का, चाहे उनमें काल सम्बन्धी कितनी ही दूरी हो, विवेचन की सुविधा एवं पुनर्हित के परिहार के लिए एक ही स्थल पर रख दिया गया है।

जिन प्रमुख धाराओं में सम्पूर्ण विवेच्य नाटकों को विभाजित किया गया है उनके नाम और क्रम इस प्रकार हैं—

१ पुराणधारा इस धारा में मुख्य रूप से पुराणों की कथाओं पर आधारित नाटकों का ही लिया गया है।

२ महाभारतधारा इस धारा में मुख्यतः महाभारत पर आधारित नाटक हैं।

३ रामायणधारा वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस की मुख्य कथा एवं अन्वय चरित्रों से सम्बद्ध विभिन्न नाटकों का समावेश इस धारा में किया गया है।

४ कृष्णधारा इस धारा के अन्तर्गत मुख्य रूप से श्रीकृष्ण के चरित्र से सम्बन्धित नाटकों का ही सम्मिलित किया गया है।

पौराणिक कथानकों पर आधारित नाटक मुख्यतः इन्हीं श्रेणियों में रखे जा सकते हैं। अतः यह विभाजन कथा व चरित्र पर आधारित कालानुक्रम विभाजन की अपेक्षा अधिक सगत एवं समीचीन प्रतीत हुआ। अनूदित एवं एकाकी नाटकों को इन धाराओं में सम्मिलित नहीं किया गया है। समस्त विवेच्य नाटकों का क्रम इन धाराओं में प्रकाशन-काल की दृष्टि से रखा गया है अर्थात् पूर्व प्रकाशित नाटकों को पूर्व और पश्चात् प्रकाशित नाटकों को पश्चात् स्थान दिया गया है।

क्याकि नाटकों का विभाजन मुख्यतः कथा अथवा चरित्र पर आधारित है अतः उन नाटकों को जो किसी विशेष चरित्र से सम्बन्धित हैं भले ही उनके नाम अथवा शीर्षक में ही एक विशिष्ट चरित्र का शीर्षक देकर उसी के अन्तर्गत उस प्रकार के समस्त नाटकों का विवेचन किया गया है। यथा, शिव-पावती चरित्र के अन्तर्गत शिव-पावती से सम्बन्धित कथाओं पर आधारित नाटकों का तो लिया ही गया है अथवा जन्म जस मित्र शीर्षक वाले नाटक का भी शिव-पावती शीर्षक के अन्तर्गत ले लिया गया है क्योंकि नाटक का नाम

'गणेश जन्म होते हुए भी इसकी मुख्य घटनाएँ गिव-भावती से ही सम्बद्ध हैं। कृष्णकुम्भ-महोपाध्याय रचित अजुनपुत्र यध्रुवाहन नाटक (मूलतः जमिनीय अश्वमेधपर्व पर आधारित होने के कारण) पुराणधारा में ही रचा गया है यद्यपि प्रस्तुत नाटक की कथा में भारत के प्रमुख पात्र अजुनपुत्र यध्रुवाहन के गीय से सम्बद्ध हैं। जमिनीय अश्वमेध महाभारत के अनुक्रम में आता है तथापि हरिवंशपुराण (जो महाभारत का ही एक विंगि अंग है) के सदृश इस अंग को भी पुराण परम्परा में ही सम्मिलित कर लिया गया है।

एक विंगिष्ट चरित पर आधारित विभिन्न नाटकों का विवेचन भी क्रम से किया गया है। यह क्रम नाटकों के प्रस्तावित काल पर निर्भर है क्योंकि किसी विंगिष्ट नाटक सृजनकाल का ज्ञात होना सहज नहीं है। यथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गोपालराय द्वारा लिखित नहुष निश्चित ही प्रस्तावित काल से बहुत पूर्व रचा गया था। स्वयं भारतेन्दु के मतानुसार हिन्दी का प्रथम नाटक माने जाने के कारण और या भी प्रसिद्ध नाटक है के कारण यह नाटक कालगत दृष्टि से आलोच्य रहा है अतः इसका सृजनकाल प्रस्तावित काल से दोना विदित है किन्तु सभी नाटकों के साथ ऐसा सम्भव नहीं है।

कुछ इस प्रकार के नाटक भी उपलब्ध हुए जा विषय की दृष्टि से महत्वपूर्ण किन्तु उनका मुलपृष्ठ पर उनका प्रस्तावित समय नहीं दिया हुआ है। कुछ अन्य उपलब्ध नाटकों के मुलपृष्ठ ही लुप्त मिले उन नाटकों का प्रस्तावित द्वितीय बार न किया जाने कारण उनकी अंग प्रति उपलब्ध करना सम्भव न हो सके। इस प्रकार के नाटकों विंगिष्ट चरित सम्बन्धी नाटकों के अन्त में रखकर, वहाँ पाठ टिप्पणी में इस प्रकार का उल्लेख कर दिया गया है।

पाठ टिप्पणी में महाभारत तथा रामायण का प्रकाशन स्थल एवं काल सवत्र न दिया गया है क्योंकि सदाभंग्रय सूची में ही इसका उल्लेख कर दिया गया है।

विवेचन पद्धति

नाटक में विवेचन का क्रम सामान्यतया निम्नलिखित पद्धति से किया गया है—

सबप्रथम एक चरित पर आधारित समस्त उपलब्ध नाटकों की तालिका कालक्रमानुसार प्रस्तुत करके, कथानक गीयक से क्रमपूर्वक नाटक की कथावस्तु को प्रस्तुत किया गया है पश्चात् कथावस्तु के मूलस्रोतों का शीघ्रबद्ध दिग्दर्शन कराया गया है। तत्पश्चात् यदि प्रस्तुत कथावस्तु तथा मूल कथा में कोई अन्तर रहे हैं तो उन्हें भी अन्तर गीयक अन्तगत प्रदर्शित किया गया है। लेखक की दृष्टि से उस अन्तर का यदि कोई प्रयोजन है तो कारण पर भी प्रकाश डालते हुए अन्त में उस विशिष्ट नाटक का विवेचन गीयक से उपसंहार कर दिया गया है। विवेचन गीयक के अन्तगत भाषा तथा शैली का स्पष्ट करत हुए (यद्यपि यह दृष्टि मुख्य नहीं है क्योंकि शोध का विषय मुख्यतः कथादृष्टि से सम्बन्धित है) कथा के सम्बन्ध में लेखनीय तथा निर्णायक मत को भी प्रतिपादित किया गया है।

जिन नाटकों की कथाएँ लगभग समान हैं उन कथाओं की पुनरावृत्ति नहीं की गई है केवल कथा की भिन्नताओं का उल्लेख मात्र ही किया गया है।

समान आधार वाले नाटकों की विवेचन पद्धति का क्रम इस प्रकार रखा गया है—

प्रथम उस विशिष्ट शीपक के अन्तगत लिये गए समस्त नाटकों की कथाएँ एक साथ (भले ही कथायात्रा में कुछ भिन्नता हो), तत्पश्चात् आधार स्थल अन्तर पर दृष्टि तथा अन्त में विवेचन। उदाहरणार्थ वेणु चरित् सम्बन्धी नाटकों को विवेचन पद्धति यही रही है।

महाभारत पर आधारित नाटकों के कथानक और आधार पृथक् पृथक् न दिखाकर, साथ ही प्रस्तुत किये गए हैं, क्योंकि इन नाटकों की कथाएँ मूल कथायात्रा के लगभग समान ही हैं, जहाँ वही अन्तर है, उस अन्तर को और सकेत अवश्य किया गया है।

एक बात और। महाभारत, रामायण एवं श्रीकृष्णधारा सम्बन्धी नाटकों को घटनायात्रा की दृष्टि अथवा तम स भी विनयन किया जा सकता था, किन्तु ऐसा करना भी सम्भव नहीं हुआ है। इसका कारण यही है कि कुछ नाटक बला की दृष्टि से, नाटक साहित्य में अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं यथा 'जनमेजय का नागयज्ञ' प्रसादजी की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण नाटक साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण कृति है अतः जनमेजय का स्थान भले ही महाभारत की घटनायात्रा में सबसे अन्त में आता है, तथापि प्रस्तुत शोध प्रबंध में इस नाटक का महाभारतधारा के नाटकों में, सर्वप्रथम स्थान दिया गया है।

भारतेन्दुजी का सत्य हरिश्चन्द्र नाटक भी इसी कोटि में आता है। सत्य हरिश्चन्द्र नाटक मुख्य रूप से संस्कृत के चण्डकौशिक नाटक (आय क्षेमीश्वर) का रूपांतर है, अतः चण्डकौशिक नाटक की घटनायात्रा से तुलना कर इसे यथोचित विस्तार दिया गया है। इसमें दोना नाटकों के अनेक मूल स्थलों को उद्धृत करके उनकी तुलना प्रस्तुत की गयी है। ऐसा करते समय प्रथम स्थल सत्य हरिश्चन्द्र से लिया गया है और उसके पश्चात् चण्डकौशिक का सम्बद्ध स्थल उद्धृत करके दोनों की तुलना की गयी है।

अब मैं डा० हरवल्लभ शर्मा, प्राप्तेमर तथा अध्यापक हिन्दी विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय का आदरपूर्वक स्मरण करती हूँ जिन्होंने मेरे शोधकार्य की समस्त रूपरेखा को अवधानपूर्वक पढ़ा और अपने महत्त्वपूर्ण सुझाव देकर मेरे कार्य की दुर्लभ समस्यायात्रा को सरल बनाने में योगदान दिया। डा० श्रीविश्वनाथ गौड़, अध्यापक, हिन्दी विभाग, एस० डी० कालेज, कानपुर की सहायता का भी मैं विस्मृत नहीं कर सकती। डा० विजयदत्त स्नातक, प्रोफेसर एवं अध्यापक हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय ने शृणुपूर्वक इस पुस्तक की भूमिका लिखी, यह मेरे प्रति उनके स्नेह का ही सूचक है। इन सब मनीषी महानुभावों के प्रति मेरी विनम्र श्रद्धाजलि सादर समर्पित है।

नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के उस समय के महामंत्री, डा० जगन्नाथ शर्मा, अध्यापक, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं आय मापा पुस्तकालय के अध्यापक तथा वसुधायिका की भी मैं विनम्र श्रद्धाजलि लिखती हूँ जिन्होंने मेरे शोधकार्य के लिए सभा के भवन में निवास एवं पुस्तकालय सम्बन्धी समस्त सुविधाएँ प्रदान की।

डी० ए० वी० कॉलेज देहरादून तथा आयसमाज देहरादून के पुस्तकालय से भी मुझे कई ग्रंथ प्राप्त हुए इनके अधिकारियों की भी मैं आभारी हूँ। उस प्रभु का धन्यवाद मैं कैसे करूँ, जिसकी असीम कृपा मेरे बीहड़ मार्ग को सुगम बनाती रही है।

विषय सूची

भूमिका	पृष्ठ
आमुख	सात
विषयावतरण	दस
	१
	पुराणधारा
प्रथम अध्याय	२१ ६२
नहुष नाटक	२१
हरिश्चन्द्र कथा	३८
(क) सत्य हरिश्चन्द्र (ख) सत्याग्रही	
वेण कथा	८४
(क) वणु सहार (ख) वन चरित (ग) क्रूर वण	
द्वितीय अध्याय	६३ १३१
भ्रजना-कथा	६३
(क) भ्रजना (ख) भ्रजना सुन्दरी (ग) भ्रजना गुदरी उमागकर मृता	
गिय-पावती चरित	१०६
(क) गिव विवाह (ख) मनी दहन (ग) गौरी गकर (घ) गणग जम	
(ङ) मनी पावना	
वरमाला	१२७
राजा गिवि	१३०
तृतीय अध्याय	१३२ १७२
छयन-सुखा-कथा	१३२
(क) मनी सुखा (ख) प्राण कुमारी (ग) सुखा	
सार विजय	१६६
गविन-सुखा	१६८
दरुनि	१६४

महाभारतधारा

चतुर्थ अध्याय	१७३ २२४
१ जनमेजय का नागयज्ञ	१७३
पंचम अध्याय	२२५ ३११
नल दमयंती कथा	२२६
(क) दमयंती स्वयंवर, (ख) नल दमयंती नाटक, (ग) अनघ नल चरित, (घ) द्यूत का भूत अथवा नल चरित, (ङ) दमयंती-स्वयंवर, (च) नल दमयंती, (छ) नल दमयंती	
सावित्री-सत्यवान कथा	२३६
(क) सती प्रताप, (ख) शील सावित्री, (ग) सावित्री (घ) सावित्री सत्यवान, (ङ) सावित्री-सत्यवान, (च) सावित्री-सत्यवान	
देवयानी-गर्मिष्ठा कथा	२५०
(क) देवयानी (ख) देवी देवयानी, (ग) देवयानी, (घ) शोमित्रा	
द्रौपदी स्वयंवर	२५६
(क) द्रौपदी स्वयंवर ज्वालाप्रसाद नागर (ख) द्रौपदी स्वयंवर राधेश्याम कथावाचक	
पाण्डव प्रताप अथवा सम्राट युधिष्ठिर	२६२
वचन का मोल	२६३
कृष्णापमान	२६४
द्रौपदी वस्त्रहरण	२६४
अनातनास	२६५
भीम प्रतिज्ञा	२६६
कीचक-वध—	२६७
(क) कीचक, (ख) भीम विभ्रम राजतिलक अर्थात् किराताजुन युद्ध विद्रोहिणी भ्रम्बा	२७० २७२
भीष्म चरित	२८३
(क) भीष्म (ख) भीष्मव्रत (ग) गगा का वटा सुमद्रा परिणय	२८८ २९३
चक्रव्यूह	२९३
परीक्षित	२९५

मुद्राणां	२१७
साधनाया	२१८
मुद्राणां	२१९
का	२००
धर्मानुवधुभागा	२००
साधना	२०६
साधनाया मुद्रा	२०६

रामायणधारा

षष्ठ अध्याय	३१२ ३११
रामचरित ते सद्य माटक	३१२
(क) साधना रघुनाथ (ग) काव्य (ग) साधना राम (घ) भूमिना (ङ) गवरी-नया (घवरी नयरी साधना गवरी) (घ) श्रवणकुमार (छ) राधा	

राम-कथा के कुछ अन्य माटक	३५०
--------------------------	-----

१ रामराज्य विभाग २ गाथा-व्यथाग ३ जग-व्याग द्वाय
४ धनुषनीना ५ भाष्य ६ श्री रामनीना रामायण, ७ श्री
रामनीना रामायण नाटक ८ रामचरित्वाहीना ९ रामनीना
१० रामामिषक ११ प्रयाग रामायण १२ धनुषना १३ गीता
स्वयंवर १४ गीताहरण १५ रामामिषक १६ रामका माना
१७ रामचरित १८ गीता स्वयंवर, १९ रामलीला विक्रय,
२० पंचवती २१ रामायण नाटक

श्रीकृष्णधारा

सप्तम अध्याय	३६२ ४०२
श्रीकृष्ण चरित	३६३

(क) वस विध्वंस (ग) वसवध (ग) श्रीकृष्ण जन्म (घ) श्रीकृष्णा
वतार (ङ) श्रीकृष्ण (घ) बलवीर कृष्ण

कृष्ण-मुद्राया	३७६
----------------	-----

(क) श्रीमुद्राया-कृष्ण (ख) श्रीकृष्ण-मुद्राया, (ग) द्वापर की राज्यशांति

उषा अनिरुद्ध	३८३
--------------	-----

(क) उषा हरण (ख) उषा नाटक, (ग) उषा अनिरुद्ध
वतव्य (उत्तराद्ध)
मोरध्वज

उपसंहार	४०३
सहायक ग्रंथ सूची	४०८

विषयावतरण

मनुष्य एक चेतनाशील प्राणी है। जिनासा तथा गवेपणा उसकी मूल वृत्तियाँ हैं। नूतन गवपणाया द्वारा ही मनुष्य अपनी जिनासा रूपी पिपासा को शांत करता है। साहित्यिक गवेपणा का आधार प्राचीन साहित्य है। वेदादि मच्छास्त्र तथा ब्रह्मनिर्णय सिद्धियाँ गवेपणा से ही प्रकाशित और व्यवहृत हुई हैं। भारतीय गवपणा के मूल ज्ञानात्तम पुराण ग्रन्थों का भी गणना की जाती है। लौकिक ससृष्ट के विविध साहित्यात्तम पुराण का स्थान सर्वोपरि है। पुराणात्तम सब प्रकार की बौद्धिक—यावहारिक, नैतिक एवं सासृष्टिक गवपणाया का इतिहास और कथानक के रूप में आकषक एवं बुद्धिमत्तम ब्रह्मण्य प्रस्तुत किया गया है।

माधारणतः 'पुराण' शब्द से भ्रान्तिवत्तम उन ग्रन्थों का ग्रहण किया जाता है, जिनका विषय आधुनिक विचारधारा से दूर कपोलकल्पित कथामात्र है। कोपकारात्तम इसका सामान्य अर्थ पुराणात्तम स्वीकार किया है—पुराणे प्रतन प्रतनपुरातन चिरतना^१ तथा 'पुराणम पुरा भवम वत्तम अनुमार पुराण शब्द का अर्थ पुराणात्तम ही सिद्ध होता है। निश्चित ही पुराण साहित्य अति प्राचीन है किन्तु ब्रह्मण्य साहित्य की मूलनिधि वेदा का तो आतिप्रथम की सना दी गई है। अतः निर्माणकाल की दृष्टि से वेदा को ही पुराण' सना से विभूषित किया जाना चाहिए किन्तु ऐसा नहा है। इसके अनिश्चित यहा यह शक्य उत्पन होना भी युक्तियुक्त है कि अपन निर्माणकाल में ता पुराण ग्रन्थ नूतन ही रहे हाग तथापि अपन सृजन काल से ही इह पुराण' सना क्या प्राप्त हुई, पुराण शब्द तो पुराणात्तम अर्थात् जा व्यतीत हा गया का ही वाचक है। वस्तुन पुराण शब्द एव विगिष्ट पारिभाषिक अर्थ का ही वाध कराता है।

अमरकोष^२ में पुराण शब्द के लिए एक स्थान पर पुराभवम यद्वा पुरा अपि नवम् यद्वा पुरा अतीतानागतौ अर्थो अणति कहा गया है अर्थात् 'जा पूर्व में होकर भी नया अथवा भूत

१ अमरकोष भाषानुशासित व्याख्या निणय माणर वसुध १९४४ तृतीय बाण्ड शनाक ७६।

२ पद्यचन्द्र बाण गणकदत्त शास्त्रा पृ ३२० ग १९२४।

३ अमरकोष निणयमाणर वसुध तताथ बाण्ड पच्छ ६१ ससकरण १९४४।

मविष्य व भयों को पढ़ने ही वह दा वाता ।' पद्मपुराण में भी यही स्वीकार किया गया है—
पुरा परम्परा यन्नि पुराण ता य स्मृतम् ।' अगम भी एव विषय प्रकार व साहित्य का ही
बोध होता है जो पुराण का नया करण कहा जाता है ।

प्राचीन ग्रन्थों में कई स्थानों पर पुराण और इतिहास शब्द एक साथ ही आते हैं—

इतिहास पुराण मयम वेदानां वेदम ।

—छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।१

अथ वेदोद्भवो रमयता एवात्योदीच्यो मधुनाऽपोऽयर्वाङ्गिरस एव मपुहृत इति
श्लोक पुराण पुण्य ता स्मृता आथ ॥

ते वा एतेऽयर्वाङ्गिरस एतदितिहास पुराणमभ्यतपस्तस्याभितप्तस्य यगस्तेज इन्द्रिय
वीर्यमन्नाद्य रसोऽजायत ।

—छान्दोग्य उपनिषद् ३।४।१२

विद्या व रूप में अथ वेदा के साथ गतपथ ब्राह्मण में भी इतिहास-पुराण का उल्लेख एक साथ
पर एक साथ हुआ है—

अस्य महतो मृतस्य निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽयर्वाङ्गिरस इतिहास
पुराण विद्या उपनिषद् श्लोका सूत्राण्यनुध्यास्यानानि ध्यास्यानानि ।

—गतपथ ब्राह्मण १४।५।५।१०

बृहदारण्यक उपनिषद् में भी इतिहास और पुराण शब्दों का एक वचन में समवेत प्रयोग अथ
चारा वेदा व साथ मिलता है—

ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदो अयर्वाङ्गिरस इतिहास पुराणम् ।

—बृहदारण्यक ४।४।१०

महाभारत में भी इसी प्रकार का संवेत मिलता है—

इतिहास पुराणाभ्यां वेद समुपव ह्येत ।

—महाभारत आदिपर्व, अध्याय ५

पुराण और इतिहास से यहाँ समान अर्थ का बाध होता है परन्तु पुराण और इतिहास
में विषय वस्तु की दृष्टि से एकरूपता नहीं है यह एक निश्चित सत्य है । इतिहास में जहाँ
कल्पना के लिए रचमात्र भी अवकाश नहीं है वेबल घटित सत्य को, यथाथ रूप में वह
प्रस्तुत करता है वहाँ पुराणों का आधार प्रायः कल्पना तथा अतिशयोक्ति ही प्रचुर रूप में
है ।

कनिष्य मनीषिया के अनुसंधान ने यह सिद्ध कर दिया है कि इतिहास और पुराण
दोनों धाराएँ एकदम भिन्न हैं । काशी के विद्वान् आरायकृष्णदास के मतानुसार इतिहास
और पुराण एक समय समानाधिक्य अवश्य थे, किन्तु आगे चलकर पुराणों में अनतिहासिकता
का समावेश तथा साम्प्रदायिकता का सम्मिश्रण हो जाने से, दोनों में पायबन्ध बनता गया और
अब तो इतिहास और पुराणों के एकीकरण की कल्पना भी नहीं की जा सकती । उनका
वचन है—

'बौद्ध और जैनो के प्रारम्भिक साहित्य मे पुराण तुल्य वाङ्मय नही है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस समय ये मन्त्रप्रणय चले और इनके प्रारम्भिक साहित्य का निर्माण हुआ, उस समय तक पुराण सबत्र ऐतिहासिक वाङ्मय था और किसी मत से सम्बद्ध न था अर्थात् वह ब्राह्मण और श्रमण की समाज सम्पत्ति था। अतएव श्रमणो को इस प्रकार क किसी निजी साहित्य की अपेक्षा बहुत काल तक न हुई।'^१

विण्टरनिन्स^२ न पुराण वाङ्मय का प्रारम्भ तथा विकास बौद्ध काल ही माना है—

It is certain, moreover that as early as the time of Buddha there was in existence an inexhaustible store of prose and verse narratives—Akhyanas Itihasas, Puranas and Gathas—forming as it were literary public property which was drawn upon by the Buddhists and the Jains as well as by the epic poets

M Winternitz, Indian Literature,

Vol I, 1927, P 314

जो कुछ भी हा, यह निर्विवाद सत्य है कि पुराण साहित्य आज इतिहास नही है जिसका आशय इतिवृत्त के वास्तविक रूप का बोध कराने वाले साहित्य से है। अतः पुराण मे जा 'पुराणा नया हाकर आन वाली'^३ बात कही गई है उससे तात्पर्य यही है, कि वैदिक वाङ्मय मे जो कुछ लिखा गया है, पुराणा मे उसके बहुत से अंशों की नई व्याख्या है। पुराण-लेखका ने आध्यात्मिक रहस्यों को समझाने के लिए भौतिक, ऐतिहासिक और काल्पनिक घटनाओं का अथवा दृष्टान्त का प्रयोग किया है।^४

देवर्षि सनाढ्य ने भी 'पुराण शब्द का यही अर्थ स्वीकार किया है—

पुराण वद उपनिषद् के मूलम पान का कथा उपाख्यान दृष्टान्त और उदाहरण देकर समझाने वाला साहित्य है।^५

निरक्त^६ मे भी पुराण शब्द का निवचन पुराणव भवतिके रूप मे आया है और व्युत्पत्ति के अनुसार पुराण शब्द से तात्पर्य उस नवद्युति से^७ जानित नूतन है। कवि पुराणमनुशासितार के अनुसार पुराण मे नियामक का भाव निहित है। भगवान् पुराण होने से सबके अनुशासक हैं। अतः पुराण का तात्पर्य जीणता मे नही है अपितु आदि विकास मे है—'पुराण अर्थे भवति गच्छति इति पुराणम्, क द्वारा पुराण से भागदानक साहित्य का बोध हुआ है। ब्रह्माण्ड पुराण मे पान का प्रकाश करने वाले ग्रन्थों को पुराण कहा गया है—

यस्मात्पुराणान्तोद पुराण तेन तत्कृतम् ।

—ब्रह्माण्ड पुराण

१ रायकृष्णराय पुराण इतिहास बेंकटकर ममाचार कम्बई अंक २२१ १९२४।

२ विण्टरनिन्स ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर प्रथम भाग प्रकाशक कलकत्ता वि वि०।

३ पुरा नव भवति।

४ पुराणो मे प्रतीक रेडियो मसह १९५६ अक्टूबर डिसेम्बर १९५३।

५ हिन्दी के पौराणिक नामक प्रकाशक चौधुम्बा विद्या भवन वाराणसी १९६१ पृष्ठ ७।

६ निरक्त ३१६।२४

यह पुराण काल में मानवीय मूल मानव के चरित्रों पर सम्पूर्ण ध्यान देने के लिये रचित है। यह पुराण का अन्तर्गत विचारधारा का दर्शन है। यह पुराण का अन्तर्गत विचारधारा का दर्शन है।

पुराणा का महत्त्व

पौराणिक दर्शन में पुराण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह पुराण का अन्तर्गत विचारधारा का दर्शन है। यह पुराण का अन्तर्गत विचारधारा का दर्शन है।

यो विद्यायां चतुरो वेदान्तमाहोर्त्तिरसो हि ।

न वेदो पुराणं तद्विधानं मेव स ह्येव विद्यायां ॥

यद्यपि यह सत्य है कि वेदाङ्गीतों में मानवीय जीवन के सर्वप्रथम पुराण का अन्तर्गत विचारधारा का दर्शन है। पुराण का अन्तर्गत विचारधारा का दर्शन है।

पुराण सप्तशास्त्राणां प्रथमं कृतानां स्मृतम् ।

उत्तमं सप्तशतानां सप्तशास्त्राणां च ॥

—ब्रह्मसंहिता पुराण अध्याय १

पुराण काल में मानवीय जीवन के अन्तर्गत विचारधारा का दर्शन है। यह पुराण का अन्तर्गत विचारधारा का दर्शन है।

भारतीय जीवन के प्रेरणा स्रोत हैं। यह भारतीय जीवन के अन्तर्गत विचारधारा का दर्शन है।

पुराण-युग में मानवीय जीवन के अन्तर्गत विचारधारा का दर्शन है।

१. सूर और उत्तरा साहित्य पृष्ठ १६६ ।
 २. ब्रह्मपुराण प्रथम भाग भूमिगत प्रकाश १६५४ पृ १२ ।
 ३. याज्ञवल्क्य स्मृति प्र. म. ब्रह्म ३ ।

पुराणा से प्रेरणा लेकर ही साहित्य-स्रष्टाया ने अगणित विषया व ग्रंथा की रचना का अतः नाना नामा प्रयोगाया म विभाजित होने के कारण पुराणा का विस्तार बहुत अधिक है—

इतिहास पुराण च गायान्चोपनिषत्तया ।

आयवणानि कर्माणि अग्निहोत्रकृतेऽभवन ॥

—पंचपुराण

तथा—

षाण्णोवाक्य पुराण च अरराशस्त्रोदक यायिष्ठा ।

इतिहासास्तथा विद्या षोऽधीते शकिततोऽवहम् ॥^१

इत्यादि प्राप्तवाक्या द्वारा पुराणा का महत्त्व निर्विवाद है। जहाँ 'श्रगुणानि पुराणेषु वदेम्यश्च यथाश्रुतम्'।^२ इत्यादि श्लोका द्वारा पुराणा व पाठ का सबके लिए आत्मा है, वहाँ नास्तिका के लिए पुराणा के पाठ के निषेध की घोषणा भी की गई है—

इद पुराण परम पुण्य वेदञ्च सम्मितम् ।

मानाश्रुति-समायुक्त नास्तिकाय न कौनयेत् ॥^३

इस प्रकार पुराणा का महत्त्व सबविदित है। ज्ञान व अग्न्यास एव ध्यान सभी का सक्षेप म बहुत महत्त्वपूर्ण वषण इनम है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का विविध दृष्टिवाणा से विचार पुराणो मे देखा जा सकता है।

सन् १८८६ म स्टाकहाम म ओरिएण्टलिस्ट काफ्रेम व अक्सर पर मणिलान एन० द्विवेदी न बताया कि पुराणा के मृष्टि सन्ध मी सिद्धान्त डारविन (Darwin), हेकेल (Haeckel) स्पेसर (Spencer) तथा क्वेट्रेफेगस (Quatrefigus) के सिद्धान्त के सदृश ही है। पुराणा मे पाठक का सर्वोच्च सत्य तथा महानतम ज्ञान के दान हो सक्त है यदि वह उससे प्रतीको को बुद्धिपूर्वक समभर चले।^४

पाण्डित्य महोत्थ के मतानुसार पुराण हि दू धम के सभी पणा परपर्याप्त प्रकाश डालत है। इतिहासकार तथा पुरातत्त्ववेत्ताआ व लिए भी पुराण अति उपयोग है।^५

इसके अतिरिक्त, 'इतिहास पुराण पंचम वेदाना वदम (छांदास्य उपनिषद ७।१।१) उक्ति मी पुराणा व महत्त्व का विशिष्ट रूप म बताते व लिए ही कही गई है।

पुराणो की प्राचीनता तथा पुराण साहित्य का स्रोत

पुराण शब्द का प्रयोग सभी बर्दि संहिताआ म प्रचुर परिमाण म मिलता है। ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथा म पुराण शब्द का प्रयोग लगभग अठतीस स्थलो पर हुआ है।

१ मानवस्य स्मृति अध्याय १ श्लोक ४५।

२ मत्स्य पुराण २६३।१४।

३ बही १४७।८५।

४ अष्टम ओरिएण्टल काफ्रेस विवरण त्रि २, स्टाकहाम पृष्ठ १६६।

निश्चित ही वहाँ यह साहित्य के एक विशिष्ट बग की श्रार सक्त करता है। प्राचीन युग म वेदो की सहिताओ के समान, पुराण नाम की भी समवत कोई सहिता रही होगी, जिसम प्राचीन कथाओ का संग्रह रहा होगा। व' की सहिताओ के मत्रा के अथ करने म पुराण सहिता के आस्थाना से सहायता ली जाती रही होगी। समवत इसीलिए पुराणा का पचम वेद की काटि मे स्थान दिया गया है।^१

अथववेद म एक स्थान पर चारा वेदा की रचना क साथ पुराण की रचना का भी उल्लेख मिलता है—

ऋच सामानि छदासि पुराण यजुषा सह ।

उच्छिष्टा जग्निरे सर्वे दिवि देवा दिविस्त ॥^२

इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि अथववेद के सकलन काल म पुराण नाम से प्रख्यात एक आस्थान साहित्य ने निश्चित एव महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था अथवा उसे चारा वेदा के समकक्ष स्थान प्राप्त न हुआ हाता। सम-श्रणी म स्थान दिए जान स यह भी ध्वनित हाता है कि पुराण सहिता का आकार ऋग-यजु-साम एव अथव सहिताओ से कम नहीं रहा होगा। सम्भव है कि पुराण सहिता के आकार की विशालता वेदा से भी अधिक हो जिस प्रकार विषय की विविधता और आकार की विशालता क कारण ही महाभारत पचम वेद क हा जान लगा।

पुराण साहित्य की अवस्थिति सूत्र साहित्य म तो निश्चित रूप से स्वीकार कर ही ली गई थी। इस पुराण साहित्य का विषय आज के युग म उपलब्ध पुराणो स लगभग मिलता जुलता ही था। गौतम धर्मसूत्र म जा धर्मग्रन्थो म प्राचीनतम माना जाता है लिखा है कि, राजा को याय करते समय वेद धर्मशास्त्र वेदांग तथा पुराण सभी का अवलोचन करना उचित है।^३ पुराण से तात्पर्य यहाँ एक विशिष्ट बग के साहित्य से ही है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे पुराणो से दो उद्धरण प्राप्त हैं। यह धर्मसूत्र चौथी या पाँचवी गती का है। निश्चित ही उस समय तक पुराण साहित्य अस्तित्व म आ चुका होगा। महाभारत तथा पुराणा का सम्बन्ध^४ भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुचने के लिए बाध्य करता है कि पुराण साहित्य का निर्माण महाभारत के अपने अंतिम रूप म आ जाने से पूर्व ही हो चुका होगा।

पुराणा की प्राचीनता के सम्बन्ध म एक यह तथ्य भी दृष्टव्य है कि ऋग्वेद एव अथव वेद सहिताओ के सकलन के मध्य पर्याप्त अन्तर है। ऋग्वेद क मत्रा के स्पष्टीकरण के लिए किसी भी पृष्ठभूमि के अभाव म इस प्रकार की लोक प्रचलित कथाओ का सकलन अवश्य हुआ होगा जो उन पर प्रकाश डाल सकने म समर्थ हा। प्री० मकसमूसर के अनुसार, अथववेद

१ 'इतिहास पुराण पचम वेदाना केम । छात्राम्य उपनिषद् ७।१।१।

२ अथववेद सन्धि ११।७।२४।

३ हाट्लमन महाभारत भाग ४ प २६ तथा ई इन्ड्यू हापकिन्स द द्रष्ट एनिकम प्राफ इण्डिया प० ४७।

४ विष्टरनिम इण्डियन लिटरेचर भाग १ १६२७ पृष्ठ २१६ पर उद्धृत।

सहिता के सकलन का समय लगभग ११०० ई० पूव है। इसको निश्चित माा लेने की स्थिति म इसके श्रीर यास्क के मध्य का अन्तर चार या पाँच शताब्दिया स अधिक नहीं रह जाता। यास्क से पूव ही निश्चित रूप स ऐस ब्यक्तिया का एक सम्प्रदाय बन चुना था, जो वद मन्त्रा की व्याख्या पौराणिक आख्याना को आधार बनाकर करने का पक्षपाती था। इम प्रकार के आख्यानविदा को निश्चकार यास्क ने ऐतिहासिका' नाम से सम्बाधित किया है। यह ऐतिहासिक सम्प्रदाय, यास्क स कितन पूव स्थापित हुआ था, इस सम्बध म निश्चित रूप से कुछ कह सकना सम्भव नहीं है क्यकि यास्क स पहले भी कई निश्चकार हा चुके है, जिनका उल्लेख यास्क ने अपन निरक्त म किया है। इनके ग्रंथ अब प्राप्त नहीं हैं।

उल्लिखित विवरण से यह स्पष्ट है, कि पुराण की परम्परा बहुत प्राचीन युग से चली आ रही है। अनेक वदिक आख्याना का, मूल रूप से पुराणा म सुरक्षित रहना भी पुराणा की प्राचीनता पर प्रकाश डालता है। शुन शेष, दवापि तथा राजा सुदास के आख्यान इसी प्रकार के हैं।

शुन शेष का आख्यान वदिक आख्यान है। सहिता, ब्राह्मण, सूत्र, बहद्देवता तथा अनुक्रमणी प्रभृति वदिक ग्रंथो म इसके विवरण मिलत है। अनेक पुराणा म भी यह आख्यान विविध रूपो म उपलब्ध है। समय की धारा के साथ इसम अनेक परिवर्तन भी हुए है, तथापि इसका मूल रूप सुरक्षित है। सहिताओं की मत्र रचना के समय यह आख्यान प्रचलित था। ऋग्वेद सहिता के कुछ मन्त्रा से इस प्रकार का संकेत मिलता है, जिनका ऋषि भी शुन शेष है। ऐतरेय ब्राह्मण से पुराण पद्यत इसके साथ राजा हरिश्चन्द्र का नाम सम्बद्ध मिलता है।^१

राक्षस रूप म परिवर्तित राजा सुदास के अनुयायिया द्वारा वसिष्ठ के १०० पुत्रा का मारा जाना तथा तप से राक्षस को मारने के लिए वसिष्ठ का शक्ति प्राप्त करने का आख्यान ऋग्वेद के युग म प्रचलित था।^२ इम घटना का विशद वणन विभिन्न पुराणा म^३ प्राप्त है। यह आख्यान रामायण^४ म भी आया है किंतु वहा इसका असली रूप नष्ट हो गया है। वहा राजा का नाम सुतास न होकर 'सुदास कल्माषपाद' है। यहाँ वसिष्ठ के क्षाप स राक्षस रूप म परिवर्तित राजा के द्वारा वसिष्ठ के १०० पुत्रा के मारन का उल्लेख नहीं ह। पुराणा के आख्यान म रामायण की अपन्ना इस कथा का मूल रूप अधिक सुन्दर रूप स सुरक्षित है।

देवापिका आख्यान भी ऋग्वेद^५ तथा अनेक पुराणो म^६ मिलता है। यह निरक्त मे भी है।^७ यद्यपि विभिन्न स्थला पर इन आख्याना मे कुछ भिन्नता मिलती है किंतु पुराणा

१ रामायण में हरिश्चन्द्र के स्थान पर अम्बरीष का नाम है।

२ ऋग्वेद सहिता ७ १०४, ११६।

३ विष्णु पुराण ४ ४ २ ३८। भागवत पुराण ६ ६, १८ ३६। वायु पु० १ १७१, १७७ तथा २ १०, ११। ब्रह्माण्ड पु० १ २ १० ११। महाभारत भा० १७६ १७७।

४ रामायण ७ ६५ १ ३७।

५ ऋग्वेद १० ६२ ७।

६ विष्णु पु ४ २० ७ से प्रागे भागवत ६ २२ १४ १७ मत्स्य ५० ३६ ४१। ब्रह्म १३ ११७ महाभारत उद्योग पर्व १४८ ५४ ६६।

७ निरक्त २ १०।

में दूसरा मूल रूप सुरजित नाम का रहा है। यामनवर्षा में मन्वावतार का क इन्द्रा-
जिति का महादेव तथा मन्वा की उपाधि यथापि उस ही तथा श्री प्रकार के सात पाण्डव
पुराणा में उपलब्ध है, त्रिपुरी पूष-गण्डर्ग धर्म का नाम पद्य में पुनः मिलती है।

पुराणा की सातप्रियाता के कारण ही सात नाम पुराणा की रचना का नाम
अविच्छिन्न है किन्तु इन सातपुराण पुराणा में भी प्राचीन पुराण-मन्त्रिणां का नाम ही का
प्रभाव नहीं है।

विष्णुसंहिता में मन्वापुराण^१ पुराण माना जाता है किन्तु यह रूप में यह नाम कर्त्तव्य
राम पञ्चानन के नाम तथा हय के नाम प्रस्ताव राजासात पर त नाम पुराणा में उपाधि
नहीं हात। दूसरा नाम पुराणा का प्रथम नाम का भी निर्धारित किया है कर्त्तव्य प्रथम नाम
के बौद्ध महायान ग्रन्थों में पुराणा का विशेष वर्णन मिलता हुआ है। मन्त्रिणां नाम का
न केवल पुराण की मन्वा ही प्राचीन है यद्यपि मन्वा अधिपति भाग पुराणा के मन्वा है।
सद्धर्म पुण्डरीक तथा महाभारत के कुछ अध्याय अधिपतिनामक तथा मन्त्रिणां नाम की
दृष्टि में ही पुराणा की कृति में मान है।

पारश्वाम्य विद्वान् पुराणा का नाम उत्तरराज्यी मन्वा मान्य के नाम है। ह्यम
मानत है किन्तु उपाधि मन्त्रिणां नाम के नाम। पुण्डरीक नाम का नाम। याम (मन्त्रिणां
नाम) न अधन प्रथम हय-वर्णन में मिलता है किन्तु यामना में मन्त्रिणां नाम पुराणा का
पाठ सुना करता था। अरबी भाषी अरबना (१०५० ई०) ने अष्टादश पुराणा की सूची
दी है। दामनिक कुमारिक (अष्टम नाम) नाम (नवम नाम) तथा मन्वापुर (पारश्वाम्य
नाम) पुराणा का एक नाम प्राचीन तथा पश्चिम प्रथम नाम के एक नाम विद्वाना का
पुक्ति के लिए पुराणा का अधिपति नाम है।

इस प्रकार पुराणा की प्राचीनता का अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। हिन्दू विद्या
सानुसार पौराणिक वाचक मन्त्र सबसे प्रथम ब्रह्मा नाम ही प्रादुर्भूत हुआ है। अन्तर केवल मन्त्रिणां नाम
वर्णिक वाचक मन्त्र की प्रथम उपलब्धि जिम रूप में हुई पञ्चानन भी उमरी रणा उगी रूप में
की जानी रही उसकी पञ्चानन में किसी प्रकार के परिवर्तन को अप्राप्त माना गया यह
जिस रूप में प्रथम बार सुना गया उगी रूप में वाचक भी अन्तर कहा-गुना जाता रहा।
इसीलिए उनका दूसरा नाम अनुाद्य तथा श्रुति नाम पर पौराणिक वाचक मन्त्र की रणा
क्षणा में नहीं अपितु अर्थों में की गयी उनकी भाषा बदलती रही पर अध वही रहा। मन्त्र
प्रकार बंध में जा कुछ उपलब्ध है वह अध अधिपति नाम और रूप नाम में है जयन्ति पुराण
केवल अधने मौलिक अर्थों में ही सुरजित हैं।

उपयुक्त विवेचना से इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँचा जा सकता है कि आर्यायान
साहित्य प्राचीन वर्णिक युग में ही समृद्ध हो चुका था। बर्दिस साहित्य के समान युग का
समादर भी उसे प्राप्त हुआ था। यह विश्वसनीय प्रतीत नहीं होना कि एक और तो वर्णिक
श्रुति वेद सूक्तों का सजन कर रहे हा और दूसरी ओर समाज के विविध क्षणा के व्यक्तित्व
एवं सामाजिक जनता के कवि मौन बंध रहे हा। अवश्य ही जन कविता न जनभाषा में मन्त्र

और पद्य दाना में राष्ट्रीय वीर पुरुषों का चरित्र गाया जागा तथा दृढस्वत निखरी हुई धृष्टनाम्ना का सँजोया होगा। प्राचीनतम युग में जो गायत्री द्वारा गाये गए अथवा वपन किए गए चरिता का कुछ रूप हम वैदिक साहित्य में देखने को मिल जाता है किन्तु इस प्रकार के आख्याना का अधिक निखरा हुआ रूप हम रामायण महाभारत एवं पुराणा में ही उपलब्ध होता है।^१

यहाँ तक पुराणा के स्रोत का प्रश्न है महाभारत तथा पुराण एक समान स्रोत से उद्भूत हुए हैं। यह समान स्रोत मौखिक परम्पराएँ तथा प्राचीन कथा-कहानियाँ थी जो वैदिक काल से जनसमुदाय के मध्य तथा भाटा की कविता के रूप में चली आ रही थी।^२

कुछ पश्चात्प मनीषी पुराणा का मूल स्रोत प्राचीन विश्वासों तथा कथाओं में स्वीकार करते हैं कुछ सूय आदि प्राकृतिक शक्तियों की त्रियाओं में और कुछ आदिम जातियों की मनोभावनाओं पर आधारित काल्पनिक कहानियों में किन्तु ये धारणाएँ निमूल हैं। सम्भवतः अपन यहाँ के मायबालोजिकल साहित्य में उपलब्ध विषय वस्तु के अनुकूल ही इन विद्वानों ने एक कल्पित विचारधारा गढ़ा है। वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति आदि से सम्बद्ध कथाओं तथा मानवीकृत भौतिक तत्त्वों से सम्बद्ध कथाओं को ही जिनका संकलन कथा-कोविद ग्रामवृद्धों के मुख से सुनकर किया गया था पुराण साहित्य के नाम से अभिलिखित किया गया।

पुराणों की संख्या

पुराणों के मुख्यतः दो भेद हैं—महापुराण और क्षुल्लक लघु या उपपुराण—

एवं लक्षण लक्षणाणि पुराणानि पुराविदः ।

मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महाति च ॥^३

महापुराणों की संख्या अठारह है—

१ ब्रह्मपुराण	७ भावण्डेय पुराण	१३ स्कन्द पुराण
२ पद्म पुराण	८ अग्नि पुराण	१४ वामन पुराण
३ वायु पुराण	९ भविष्य पुराण	१५ कूर्म पुराण
४ विष्णु पुराण	१० ब्रह्मवैवर्त पुराण	१६ मत्स्य पुराण
५ भागवत पुराण	११ लिंग पुराण	१७ गरुड पुराण
६ नारदीय पुराण	१२ वराह पुराण	१८ ब्रह्माण्ड पुराण

वामन पुराण के निम्नलिखित श्लोक में इन पुराणों का संकेत आद्य अक्षर द्वारा दिया गया है—

मद्वय भद्वय च च त्रय च चतुष्टयम् ।

अनापलिंग कूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक् ॥

१ विण्टरनिल हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर कलकत्ता वि० वि० १९२७ पृ० २२६ ।

२ कौटिल्य ५२१ ।

३ स्कन्द पुराण अध्याय १२ श्लोक ७ ।

उसी प्रकार पुराण ऋग्वेद का भी एक वचन म प्रयाग हुआ है। एक वचन का प्रयाग पुरातन परम्परा तथा पुराण बाड मय को ही प्रकट करता है।^१

पुराण साहित्य का प्रतिपाद्य

पुराणा वं प्रतिपाद्य विषय दश है—सग, विसग वृत्ति, रक्षा, अंतर, वश वशानुचरित, सस्या, हेतु और अथाश्रय।

सगोऽस्याय विसगश्च वृत्ती रक्षांतराणि च।

वशो वशानुचरित सस्या हेतुरथाश्रय ॥^२

इनका आशय इस प्रकार है—

सग—भौतिक सृष्टि। विसग—चर अचर रूप चेतन सृष्टि। वृत्ति—जीविका। रक्षा—ईश्वर का लोक रक्षाथ अतारचरित। अंतर—मन्वतर। वश—प्रसिद्ध राजपरिवार। वशानुचरित—प्रसिद्ध राजकुलो का इतिहास। सस्या—प्रलय। हेतु—जीव। अथाश्रय—ब्रह्म। ब्रह्मवत्तपुराण के १३१वें अध्याय म इन्ही विषया का कुछ भिन प्रकार से उल्लेख है—

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्चेत स्थितिस्तेषा च पालनम्।

कमणा वासना वार्ता चामूना च अमेण च ॥

वणन प्रलयाना च मोक्षस्य च निरूपणम्।

उत्कीर्तन हरेरेव देवाना च पृथक् पृथक् ॥

इन दश विषया का पाच विषया म समावेश करके वही वही पुराणा वं पाच ही प्रतिपाद्य विषय बताए गए हैं—

सगश्च प्रतिसगश्च वशो मन्वतराणि च ॥

वशानुचरित विप्र, पुराण पच लक्षणम् ॥^३

मथाथ म पुराण का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म है। वेद का प्रतिपाद्य पुराण-मुरूप परमेश्वर, सच्चिदानन्द अखण्ड ब्रह्म है अत पुराण का भी वही है। दस मत म कोई विराधामास नहीं है। बल्लुत परब्रह्म का साप्तात निर्देग विसी ऋग्वेद द्वारा नहीं हा सक्ता, उसका परिचय उसके कार्यों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

यह जगत जा विभिन्न नाम और रूपा द्वारा स्पष्ट रूपा से विभाजित है जा अनेक कर्ता एव भावना जीवा से भरा है जिसम देश, काल निमित्त क्रिया और फल की नियत व्यवस्था है जिसकी रचना के प्रकार का चिन्तन भी कर सकता सम्भव नहीं है उसकी रचना उसका पालन और उसका प्रलय जिस सवशक्तिमान् के कारण से होता है, वही ब्रह्म है। इस प्रकार उसके काय ही उसके परिचय के उपाय हैं अत पुराण भी परब्रह्म परमेश्वर के प्रतिपादन का उपक्रम करता हुआ सृष्टि प्रलय आदि उसके कार्यों का ही विवरण प्रस्तुत

१ विष्णुनित्त हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर पृष्ठ ५२२।

२ सन्द पुराण अध्याय १२ ७।

३ ब्रह्मवत्त पुराण अध्याय १३१।

करता है और इस प्रकार सग प्रतिसग वश मन्वन्तर और वशानुचरिता के वणन द्वारा पुराण इन सब असाधारण कार्यों के गायत्र मूत्रधार पुराण पुरुष परमात्मा का ही प्रतिपादन करता है।

श्रीशंकराचार्य अपने ब्रह्मसूत्र में इसी की पुष्टि करते हुए कहते हैं—

अस्य जगता नाम रूपाभ्या व्याकृतस्य अनेक क्त भोक्त सद्युक्तस्य, प्रतिनियतदेशकाल-निमित्तत्रियाफलाश्रयस्य मनसाप्यचित्परचना रूपस्य, जमस्थिति भग यत् सवचात्सवगत कारणोद भवति तद ब्रह्म।^१

रामायण एवं महाभारत में पुराण तत्त्व

रामायण एवं महाभारत इन दोनों बहूद श्रया की गणना यद्यपि पुराणों में नहीं की जाती है य राष्ट्रीय ऐतिहासिक महाकाव्य है तथापि पुराण-तत्त्व पौराणिक विशेषताएँ इनमें स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं।

महाभारत और रामायण भी पुराणों के सदृश आख्यायिकाओं कथाओं एवं उद्धरणों के अक्षय भण्डार हैं। प्रधान कथा के साथ साथ इनमें विविध आख्यान भी सम्मिलित किए गए हैं। रामायण की अपेक्षा महाभारत में इस प्रकार के आख्यान अधिक हैं।

रामायण तथा महाभारत में पुराणों से मिलते जुलते इस प्रकार के बहुत से आख्यान हैं जो पुराणों के सदृश ही विविध समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं और व्यक्ति का माग दान करते हैं। पुराणों के सदृश रामायण और महाभारत भी धार्मिक ग्रंथ माने जाते हैं और लोग इनका पठन-पाठन तथा श्रवण अत्यंत मनायाग से करते हैं। चतुर्थ एवं पंचम गति के कुछ गिलालेखों में महाभारत को धर्मसाहित्य के रूप में उद्धृत भी किया गया है। महाभारत की विषयबहुलता एवं मत्त्वं ने उस पंचम वंद होने का गौरव प्रदान कर दिया है। महाभारत में भी पुराणों के सत्त्व, सूत लोमहृष का पुत्र उग्रश्रवा ही कथा का वणन करता है। महाभारत मुख्यतः एक आख्यान ग्रंथ होने के कारण पुराणों के समान ही इतिहास, धर्म राजनीति एवं कल्पना का एक सुन्दर सङ्कलन है।

य दोनों महाकाव्य युग तत्र सूता के कण्ठहार रहे हैं अतः पुराणों से इनके आख्यान में किसी स्थला पर रूप भेद होना स्वाभाविक है। तात्त्विक दृष्टि से पुराण साहित्य तथा इन दो राष्ट्रीय महाकाव्यों में कोई विभेद अन्तर नहीं है।

पुराणों की लोकप्रियता

पुराणों की लोकप्रियता पुराणों के महत्त्व से सम्बद्ध है जिस अस्वीकार कर सकता कठिन है। पुराण साहित्य जहाँ जन मन का हार है वहाँ वेद, गाम्ग्र तथा स्मृतियाँ केवल बुद्धिजीवी धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का सम्पत्ति रहती चली आई हैं। अपनी गहनता एवं विनयता के कारण ही ये ग्रंथ साधारण बुद्धिवान व्यक्तियों के लिए दुर्गोच्य ही माने जाते हैं। सरल भाषा में रचित पुराणों में उपलब्ध कथाएँ जहाँ मस्तिष्क को एक मुगम लाभ प्रदान करती

है वहा हृन्या का भी रससिक्त बनानी चलती है। 'स्त्री गूद्री नाधीयाताम्', दम स्मृतिसूत्र के अनुमार वेदा का पठन-पाठन या भी इन दा वर्गों के लिए निषिद्ध है किन्तु पुराणा के द्वार प्रत्येक वर्ग जाति, ग्व स्तर के व्यक्तिया के लिए खुले हैं। यही कारण है कि अग्र धार्मिक साहित्य की अपक्षा पुराण साहित्य अग्रिक लाकप्रिय है। अल्पसिम्भित जनसमुदाय भी दस वाङ् मय की रोचकता से प्रभावित है।

रोचक एव सरस प्रणाली व कारण ही विद्वाना ने पुराणा को वेद शास्त्र के ज्ञान को प्रसारित करे वा माध्यम चुना है। वेदिक साहित्य म जो कथाएँ सूत्र रूप म दी गई हैं, उनका विस्तार आवश्यक था और इसी आवश्यकता की पूर्ति के प्रयत्न म, सम्भवत, पुराणा की रचना हुई।^१ आस्थावान धार्मिक दृष्टिकोण वाद 'यस्मिन् ता पुराणा व अनुगीलन का अपरिहाय ही मानत हैं। इनका पठन-पाठन पापा का परिहार करने वाला भी माना गया है।^२ यह आस्था पुराणा की गरिमा पावनता एव उपादयता पर भनी प्रसार प्रसार डालती है।

। पुराणा का गध्ययन और मनन व्यक्ति को विद्वाना की श्रेणी म लाकर सम्मान का अधिकारी बनाता है। पुराणा की लाकप्रियता म यह तथ्य भी अति सहायक है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान सागोपनिषदो द्विज ।

न चेत पुराण सविद्यानव स स्याद्विचक्षण ॥

—ब्रह्माण्ड पुराण, अ० १

पुराणा की लाकप्रियता केवल धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है, वरन अपन कलेवर म विविध विषयो राजनीति, मनोविज्ञान, दशन, भूगाल, खगाल, इतिहास तथा विज्ञान की विविध शाखा प्रशाखाया वा ज्ञान^३ समाय रखने के कारण ही पुराण सवप्रिय बन गए है।

हिन्दू धम के समस्त सिद्धांतो दया, धम, सत्य उदारता करणा एव तप-त्याग सयम तथा कर्त्तव्य भावना पर अनका सरस कथाया का सग्रह होने, अतएव प्रेरणा का स्रात होने के कारण भी पुराणा ने लाकप्रियता प्राप्त की है।

पुराणा व अनेक उपास्यान, समस्त उत्तरवर्ती सस्कृत के नाट्य एव काव्य साहित्य के लिए उपजीव्य बन गय है। पुराणा की लाकप्रियता के कारण ही इनका आधार खनर बहुत से नाटककार एव कवियो तथा महाकविया ने रूपक, उपरूपक काव्य, महाकाव्य चम्पू कथा तथा आख्यायिकाया की रचना की है।

पुराणा के अधिक लोकप्रिय होने के कारण ही आज तक उनका निर्माण समाप्त नहीं हुआ है। इसलिए पुराणा की सख्या अठारह से अधिन है। न केवल इतना ही पुराणा की

१ सूत्र और उनका साहित्य डा हरबननाल शर्मा प १७४ ७५।

२ यस्मात् पुराणान्कीड पुराण तन तत्समृतम।

निदवनमस्य यो वः भवपाप प्रमुच्यते ॥

सोत्रप्रियता देगार जा आचार्यों तत त जन गिद्धात्तागुमार धनेत्र पुराणा तथा चरित प्रया की रचना की। संहृत साहित्य म मतावि कानिनाम के मपूना की सात्रप्रियता के कारण ही अनेक दूतराव्या की रचना हुई थी। सम्भव है कि प्राचीन यज्ञियुगीन पुराण साहित्य के आधार पर वनमान पुराणा की भी रचना की गई है।^१

संक्षेपत पुराण सात्रप्रिय है। इतने अध्यायन मनन से घामित मनाकृति वाता व्यक्ति ही तोष अनुभव नहीं करता, प्रत्युत मातव मत के औगुण्य का समत करने म भी पुराण सहायन बनत है। ज्ञात विज्ञान के मण्डार धम के घागार प्ररणा के यान आचार ध्यवहार के माग निर्णय होन तथा अपनी गरन एव रोतर धना के कारण ही पुराण साहित्य न विविध क्षेत्रा म पर्याप्त सोत्रप्रियता प्राप्त की है इमम कोई साट्ट नहीं।

हिन्दी के पौराणिक नाटक तथा उनकी रचना के आधार

नाटक की उपादेयता का भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र म इस प्रकार प्रतिपान्ति किया है—

दु खार्तानां धमार्तानां गोवार्तानां तपस्विनाम ।
विश्रान्ति जनन काले नाटयमेतद भविष्यति ॥
धम्य यगस्यमापुष्य हित बुद्धिविवधनम ।
सोकोपदेशजनन नाटयमेतद भविष्यति ॥

—नाट्यशास्त्र अध्याय १ ११४ ११५

वस्तुतः पुराणा की कथाया म भी उपयुक्त सभी गुण विद्यमान हैं। पुराणा की य कथाएँ जब नाटक के माध्यम से सामाजिका प्रेशका के सम्मुख प्रस्तुत की जाती हैं तो निस्सन्देह इनका प्रभाव उपयुक्त नाटयशास्त्र (अ० १ ११४ ११५) के अनुसार ही होता है। दु खित तथा धकित व्यक्ति का श्रम निवारण कर य धम यग और बुद्धि का वधन करने म सक्षम हैं। पुराण-कथाया की इही विशेषताया की दृष्टि म रखन हुए सम्भवतः पौराणिक नाटका का प्रणयन किया गया।

भारत-दु हरिश्चन्द्र अपने पिता बा० गोपालचन्द्र रचित 'नहुष' नाटक को हिन्दी का सवप्रथम नाटक स्वीकार करते हैं।^२ बाबू अजरतनदास भारते-दु युग से पूर्व रचित अनेक नाटकों का उल्लेख करते हुए भारत-दुरचित सत्यहरिश्चन्द्र नाटक को ही आदि नाटक का स्थान देते हैं।^३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, महाराज विद्वनार्थसिंह के आनन्दरघुनन्दन को

१ बिष्टरनिस्त ने उपपुराणों को 'यू वादन इन प्रोल्ड बॉटल्स' कहा है।

—हिन्दी भाषा इण्डियन लिटरेचर भाग १ पृष्ठ ३१८।

२ नाटक 'नेष' प्र स सन् १९४१ प० ५५।

३ हिन्दी नाट्य साहित्य अनुष स० २००६ पृष्ठ ७५।

हिंदी का सबसे प्रथम नाटक मानते हैं^१ डॉ० सोमनाथ गुप्त इस विषय में आचार्य मुकुल के ही समर्थक हैं।^२ डा० श्रीकृष्ण लाल एक मुसलमान लेखक के नाटक 'इन्दरसभा' को हिंदी का प्रथम नाटक घोषित करते हैं।^३ डॉ० दगरय आम्हा की दृष्टि में अपभ्रंश मिश्रित पश्चिमी राजस्थानी में लिखित सन्देश रामक नाटक हिन्दी का सबसे प्रथम नाटक है।^४ यह नाटक एक उदारचेता मुसलमान द्वारा १३वीं शती में लिखा गया था। डा० देवपि सनाढ्य मौनिक नाटकों में भारत-दुर्जी के नाटक सत्य हृदिचन्द्र तथा अनूदित नाटका में लक्ष्मणसिंह कृत अभिज्ञान साकुतलम् नाटक के हिन्दी अनुवादा 'शकुतला' को हिन्दी के आदि नाटका की कोटि में रखते हैं।^५

उपयुक्त सभी महानुभाव हिन्दी के प्रथम नाटक के सम्बन्ध में चाह एक मत भले न हों किन्तु उनके मत इस निष्कर्ष को स्थापित करने में अवश्य सहायक हात हैं कि हिन्दी नाटका का प्रारम्भ केवल सन्देशरासक के अतिरिक्त, जिसका क्यानक पौराणिक नहीं है पौराणिक क्याग्रा से हुआ।

हिन्दी के विकास के प्रारम्भिक काल में मनुष्य आज के सदृश बुद्धिजीवी नहीं था। उसमें अपनी धार्मिक मायताग्रा के प्रति आस्था थी और धार्मिक दबी चरित्रों को वह आस्था मानकर चलता था। अतएव नाटकीय रंगमंच पर भी अपने आदेश पुरपा के चरित्रों को ही देखना उसे अधिक प्रिय था। भारत-दु से पूर्व उस समय के मनुष्य का दैनिक जीवन भी आज के समान समस्याग्रा से घिरा हुआ नहीं था। अपने आसपास की छुटपुट समस्याग्रा को वह अपने पूज्य दबी चरित्रों के अवलोकन द्वारा ही शान्त कर लेना अपना कर्तव्य मानता था। अतः प्रारम्भ से ही पौराणिक नाटका का प्रचलन ही अधिक रहा, वर्तमान युग की भाँति सामाजिक तथा समस्या-नाटका का प्रारम्भ तब नहीं हो पाया था। समय की गति तथा परिस्थितियों के मोड़ न नाटक की विषयवस्तु में आज बहुत परिवर्तन ला दिया है, तथापि पौराणिक नाटका के सज्जन का अन्त आज भी नहीं हुआ है, सम्भवतः हागा भी नहीं। मानक के अन्त-बाह्य द्वन्द्व के घनीभूत हान के साथ-साथ आस्था पुरपा की प्रेरणा की आवश्यकता अधिकाधिक अनुभव की जाती रहेगी।

हिन्दी में पौराणिक नाटका की रचना के आधार मुख्यतः रामायण तथा महाभारत ही रहें हैं। इन दोनों में भी महाभारत का स्थान प्रथम है। महाभारत अपने समय की क्याग्रा का एक बहद सग्रह है जिसमें विशाल क्या-साहित्य एक स्थान पर एकत्रित उपलब्ध होता है। इन्हीं क्याग्रा से मूल लेकर नाटककारों ने अपनी रचना को विस्तार दिया है। इन दोनों के पश्चात् पुराणा की बारी आती है। पुराणा में भी महाभारत के सदृश गतना क्याएँ विखरी पड़ी हैं जिनमें से उपात्त क्याग्रा को आधार बनाकर हिन्दी में अनेक नाटका

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास।

२ हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास तीसरा म० १९४१ ई० पृ० ५।

३ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास १९४२ पृ० १९४।

४ हिन्दी नाटक उद्भव और विकास तृतीय स० म० १९६१ पृ० ६१।

५ हिन्दी के पौराणिक नाटक प्रथम संस्करण पृ० ९८।

की रचना की गई है और इन नाटकों का उद्देश्य सामाजिकों में रसानुभूति को तीव्र कर उन्हें सदुद्देश्यता के प्रति प्रेरित करना रहा है। रचनाकारों ने अपने सजनों की साधकता इसी में मानी कि वे रयानवत् अर्थात् पुराण इतिहास प्रसिद्ध वृत्तांत को कल्पनानुसार परिवर्तित कर उसके मूल स्वरूप को अक्षण्ड रखते हुए प्रक्षेपों को अपने इच्छित लक्ष्य तक पहुँचा दें। यह इच्छित लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति ही मुख्य रूप से रहा। ऐसा ही समझना चाहिए। यूनानी नाटकों की ट्रेजिडी से यह उद्देश्य सबका मित था।

प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र और आवश्यकता

आज के विकासशील बौद्धिक युग में मनुष्य के ज्ञान की परिधि में विस्तार पाया है उसके अध्ययन, मनन, और गवेषणा की सीमाओं में भी प्रगति की है किन्तु यह उन्नति और प्रगति वनानिक अधिक है दार्शनिक कम। यहाँ वैज्ञानिक प्रगति से आशय मनुष्य के मानविक विकास से है। सुविधापूर्ण अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करना मनुष्य के वनानिक मस्तिष्क के लिए आज तक भी कठिन नहीं रहा है, किन्तु उसका मस्तिष्क आवश्यकता और आविष्कार इन दो घटकों में ही घिर कर रह गया है। अतएव हृदय का विकास तथा धार्मिक उन्नति उसके सम्मुख न कोई महत्त्व रखती है न उपादेयता।

यह आश्चर्य का विषय है कि मनुष्य का मस्तिष्क जितना विकास पा रहा है, समस्याएँ उतनी ही जटिल होनी जा रही हैं। समस्याओं के निकल सकार में यदि उसे एक दिन सोस लेना भी कठिन हो जाए तो आश्चर्य नहीं परन्तु दुःख भी अधिक विडम्बना का विषय यह है कि समस्याओं का समाधान निकलने में ही वह इन्हीं दिग्भ्रमों का विषय यह है कि समस्याओं का समाधान निकलने में ही वह इन्हीं दिग्भ्रमों का विषय यह है कि समस्याओं का समाधान निकलने में ही वह इन्हीं दिग्भ्रमों का विषय यह है। धार्मिक समस्याओं के प्रति उसकी अंधाधुंध और उसकी अस्थिर बुद्धि ही इस सबके लिए उत्तरांगी है। वह भूत गया है कि उसके पास उसके पूर्वजों के द्वारा संचित ज्ञान का इतना बड़ा ढाँचा है जिसका मूल्य हीरे की तुलना में बड़ी बरत है। यदि वह चाहता तो ज्ञान के इस भण्डार को खोल कर सरलता से माग पा सकता है। पुराण साहित्य वस्तुतः इसी प्रकार का ज्ञानकोष है। प्रस्तुत गीर्वाण प्रबंध हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्रोतों का स्पष्ट करत हुए उन विविध स्थलों की ओर भी संकेत करता है जो व्यक्ति के लिए मार्गदर्शक एवं प्रेरक का काम कर सकते हैं।

वस्तुतः पुराणों के प्रति पाठकों में जिज्ञासु बन्ति जागृत करना इस निबंध का एक मुख्य लक्ष्य रहा है। पुराणों के पान-वर्णन प्रथम नहीं हैं इनके पृष्ठों में नवजागरण का मार्ग दिखाया गया है अध्ययन द्वारा ही इस लक्ष्य की प्राप्ति की पहचाना जा सकता है। यह सब है कि पुराणों के मनन स्थल आज की तार्किक बुद्धि वाले मानव को सुष्ट करने में अक्षम रहते हैं। अतएव आध्यात्मिक पाठों का चमत्कारपूर्ण और धार्मिक प्रतीक हात है जिन पर विश्वास करना उमंगी बुद्धि का युक्तियुक्त नहीं प्रतीक है। सबका किन्तु अक्षरों का कारण यही है कि एक तो पुराणों के मनन-कारण को परिस्थितियों में नया या दूसरे पुराणों के प्रणेतारों ने क्या-क्या के माध्यम में अपने प्रतीकों को ही प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। यदि हम पृष्ठ भूमि को समझ कर पुराणों का अध्ययन किया जाए तो निश्चित ही अक्षरों का निरास नहीं होना पड़ेगा।

वेण की कथा पुराणा में इसी प्रकार की कथा है। राजा वेण का जन्म तथा मरण दोनों ही बड़ी विचित्र परिस्थितियों में घटते हैं। वेण की मृत्यु के उपरांत उसकी दाइ मुजा को मयकर पुत्र की उत्पत्ति तथा बाद में उसकी पत्नी (अर्चि) की उत्पत्ति की कथा निःसन्देह अविश्वसनीय प्रतीत होती है। कथा की उपादेयता पर भी इसमें कोई प्रकाश नहीं पड़ता किन्तु यदि इन प्रतीकों की गहराई में पढ़ा जाए तो वेण का गव तथा उसका परिणाम मनुष्य के विवेक को जागृत कर उसके अहं को बुझाने का एक उत्तम साधन बन सकता है। इसी प्रकार शिव-यावती की कथा नारी मनाइ द्वय तथा पुरुष के अनुराग की एक सुन्दर कहानी है। अजामिल, मुष-बा तथा भारद्वाज आदि की कथाएँ सत्य त्याग, मध्यम शौच, निःस्वायत्त भाव तथा उत्कट भक्ति की छातक हैं। ये कथाएँ वस्तुतः वे निरुद्ध हैं जिनके तिनारे पर बैठकर आज के मानव का सतप्त मन अमन्या उलझता एक मानसिक द्वन्द्व में मुक्त हो सकता है।

हमारे जातीय साहित्य का एक विशिष्ट अंग पुराण जिसमें महाभारत तथा रामायण भी सम्मिलित हैं आज उपेक्षित पड़ा है। शिथिल समुदाय इस हिन्दुओं के धर्मग्रन्थ में मानता है जिसके पठन पाठन की अनिवार्य आवश्यकता वह इसलिए नहीं समझता क्योंकि उसके वैज्ञानिक मस्तिष्क को यह रचता नहीं है। अशिक्षित एवं अल्पशिक्षित जगत रामायण इत्यादि का पाठ केवल धार्मिक बुद्धि से यह मानकर करता है कि इसका पाठ पापा का परिहार करने में समय है। इसके अतिरिक्त भी इसकी कोई महत्ता अथवा उपयोग हो सकता है दोनों ही श्रेणियों के व्यक्ति इससे अनभिन्न हैं। संक्षेपतः पुराणों के सांस्कृतिक मूल्य अथवा उसकी रक्षा की दृष्टि वही भी देखने में नहीं आती। प्रस्तुत गोध प्रबंध जिज्ञासुओं को इस नई दिशा की ओर मुझे वलिये प्रेरित करने में समय हो, यह दृष्टि भी इस विषय के चयन में रही है।

हिन्दी नाटक क्षेत्र में पचास वर्षों का विकास है, कई विश्वविद्यालयों में अनेक शोध प्रबंध प्रस्तुत किए गए हैं स्वीकृत हुए हैं और प्रकाशित भी हुए हैं। किन्तु इन सभी शोध-ग्रन्थों का लक्ष्य सामान्य रूप से समस्त नाटकक्षेत्र रहा है। केवल अल्पसंख्यक हिन्दी के पौराणिक नाटकों का अपन विविष्ट अध्ययन का विषय बनाया है। हिन्दी के पौराणिक नाटक साहित्य का भी अधिक विस्तार हान के कारण, देवर्षि भी सभी नाटकों का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। शोध प्रबंध की निश्चित सीमा में ऐसा सम्भव भी नहीं था। इन विशाल पौराणिक नाटक साहित्य का सर्वेक्षण करते समय विहंगम दृष्टि ही डाली जा सकती थी तथापि काय की गुरुता और सीमा का ध्यान रखते हुए देवर्षि न जा विवेचन प्रस्तुत किया है उसमें निश्चित ही एक अभाव की पूर्ति हुई है और उसका अपना एक रचना महत्त्व है।

मैंने अपने गोध का विषय हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्रोत इसलिए चुना है कि इस धारा का यह क्षेत्र अब तक अस्पष्ट रहा है। इससे पूर्व किसी विश्वविद्यालय में इस गोध का विषय बनाया गया हो ऐसा मुझे विदित नहीं हुआ है। इस क्षेत्र और विषय की भी अपनी सीमाएँ हैं मैं उनमें भी परिचित हूँ। सभी हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्रोतों का विवेचन, एक गोध प्रबंध में कर देना सम्भव प्रतीत नहीं हुआ, अतः प्रत्येक युग और धारा के कुछ चुने हुए नाटकों को लेकर ही विवेचन किया गया है। मेरा प्रयत्न इस शोध प्रबंध में इस काय को आगे बढ़ाने की ओर रहा है। क्षेत्र विस्तृत है। यदि मेरा यह प्रबंध

बुद्ध और अनुसंधितसुआ का इस आर प्रेरित कर सके ता और अच्छा काय हा सक्ता है ।

पौराणिक नाटको का वर्गीकरण

हिंदी के नाटकक्षेत्र के प्राय सभी आलाचको ने नाटका का वर्गीकरण करत समय पौराणिक नाटको का भी एक बग स्वीकार किया है । डा० नगेन्द्रने 'पौराणिक-नतिक' बग स्वीकार तो किया है किन्तु इसका विशद एव स्पष्ट विवेचन नहीं किया है ।^१ डा० दशरथ श्रोभा न करने वर्गीकरण म एक बग पौराणिक या धार्मिक नाटका का स्वीकार किया है ।^२ इसने उहाने तीन भाग किए हैं—

१—रामचरित्र

२—वृष्णचरित्र

३—सतचरित्र

रामचरित्र म ता रामयथा सम्बन्धी नाटका का समावेश किया है और वृष्णचरित्र म वृष्णयथा सम्बन्धी नाटका का । सतचरित्र म उहाने सूर, तुलसी कवीर विवेकानन्द प्रभति सत्ता का सम्मिलित किया है । राम और वृष्णचरित्र सम्बन्धी नाटका को पौराणिक बग म सम्मिलित करता तो ठीक है किन्तु सतचरित्र सम्बन्धी नाटका को पौराणिक बग म रखना ठीक प्रतीत नहीं होता । सामान्य रूप म पौराणिक कथाया से क्या कथाया का बाध होता है जिनक सम्बन्ध म स्वीकृत प्रमाणपुष्ट इतिहास प्राय मौन रहता है । इन कथाया म वर्णित व्यक्तियों क चरित अथवा घटनाया का ठीक ठीक समय निराकरण करना यदि सबथा सम्भव नहीं ता अति कठिन अवश्य है । यह बात सूर तुलसी कवीर आदि मता के सम्बन्ध म नहीं बही जा सकती । य अभी धनीत क स्तन गम म नहीं चल गण है कि इह पुराण चरित्र कहकर पुरारा जा मा । दूसरी बात पौराणिक के साथ धार्मिक जाडना भी धर्ममोचीन है । पौराणिक ता धार्मिक हाता ही है । पुराण का धर्म के क्षेत्र से पथक किया ही नहीं जा सकता । तीसरी बात यह है आभाजी का यह वर्गीकरण अप्रूप है क्योंकि राम और वृष्ण क चरित म स्तर भी अनेक तम परित है जिनका आशय केवल हिंदी म अनेक नाटका को रचना हुद है । एक प्रकार त सभी चरित्र त्रिमीन हिंदी पुराण म सम्मिल हैं धन य भी पौराणिक ही क ताणग ।

डा० श्रीवृष्णनाथ न जा वर्गीकरण किया है क चरिता की धाराया क आधार पर नत्त अतिना नाटकरारा के बग त आधार पर है ।^३ क एक प्रकार है—

१—बनाम और राधेयाम स्तूत

२—बनगीताय भक्त स्तूत

३—प्रमाण स्तूत

नाटकीय विधान और गीतों की दृष्टि म भवती यह वर्गीकरण हिंदी आलाचका

१ आधुनिक हिंदी नाटक प्र मं १९९९ वि प ६० ।

२ हिंदी नाटक उत्पत्ति और विकास प्र म प ६३३ ।

३ आधुनिक हिंदी नाटकीय का इतिहास १९६० पृ २६ २१ ।

को उचित प्रतीत होता हो कथा क रूप-वैविध्य की दृष्टि से यह सत्रथा अनुपयुक्त है।^१ इसके अतिरिक्त इतिहास प्रसिद्ध सूर तुलसी कबीर आदि सत्ता का यह भी पौराणिक बग म सन्निविष्ट कर लिया गया है यह भी ठीक प्रतीत नहीं होता। यद्यपि उन्होंने स्वयं इसका समाधान करने का प्रयत्न किया अदृश्य है किंतु वह सुस्पष्ट नहीं मन पाया है।^२ ऊपर के तीना विन आरावको की अपथा डा० सामनाथ गुप्त का वर्गीकरण कुछ अधिक युक्ति-युक्त है।^३ इसे इहान तीन धाराया म विभक्त किया है—

१—रामचरित धारा

२—कृष्णचरित धारा

३—अथ पौराणिक आख्याना और पात्रा म सम्प्र ध र्वन वाली धारा।

डा० सोमनाथ का यह वर्गीकरण भी सवथा उपरहित नहीं है। इसम भी एक बडी कठिनाई यह है कि एक ही तथा महाभारत रामायण एव अनक पुराणो म प्राप्त हाती है। उमे किन धारा पर आधारित माना जाय इसका निर्धारण करना कभी कभी बडा कठिन हो जाता है।

नॉ० दक्षिण सनाढ्य न उपर लिए ना० सामनाथ के वर्गीकरण का ही कुछ हेर फेर के साथ स्वानार कर लिया है।^४ इहाने भी त्रम तीत धाराया म विभक्त किया है—

१—रामचरिताथित पौराणिक नाटक

२—कृष्णचरिताथित पौराणिक नाटक

३—अथ चरिताथित पौराणिक नाटक

डा० सामनाथ के वर्गीकरण म जा कठिनाइ उपस्थित हाती है यहा पर भी उसका निराकरण नहा हो सता है।

मैं अपने इस विवेचन म उपरिनिर्दिष्ट किमी भी विद्वान के वर्गीकरण का यथावन रूप म स्वीकार नहीं कर गयी हू। विषय की दृष्टि से भरा विवेचन भिन्न प्रकार का है ता मगी कठिनाय्या भी भिन्न प्रकार की ह। मेरे विवेचन का मुख्य लक्ष्य पौराणिक नाटको के मून सत्ता का विवेचन है। य श्रोत प्रधानरूप से रामायण महाभारत एव विविध पुराण म ही खाज जा सकत है। अतिरिक्त विवेचन प्रबंध का वर्गीकरण मैंने निम्नांकित चार धाराया म किया है—

१—पुगण धारा

२—महाभारत धारा

६—रामायण धारा

४—कृष्ण धारा

पुराणधारा म कवन उन्ही नाटका का गहीत किया है जिनका मुख्य आधार प्रसिद्ध

१ हिन्दी के पौराणिक नाटक दक्षिण सनाढ्य १९६१ प ६६

२ धारायित हिन्दी साहित्य का इतिहास १९४८ प० २४२।

३ सिद्धा नाटक साहित्य का इतिहास तृतीय स १९४१ प ६६।

४ हिन्दी के पौराणिक नाटक प्र न प १२।

पुराण हैं। देवामागवत और हरिवंश को भी पुराणा की शृंखला में स्वीकार कर लिया है, यद्यपि हरिवंश महाभारत का ही विल भाग माना जाता है और देवीभागवत की गणना बहुत से विद्वान अठारह महापुराणा में नहीं करते हैं।^१

महाभारतधारा में नल-समयती कथा, सावित्री सत्यवान कथा और देवयानी शर्मिष्ठा कथा—इन कथाओं पर आधारित नाटकों को छोड़कर केवल वे ही नाटक सन्निविष्ट किए गए हैं जिनका आधार महाभारत की प्रधान कथा कौरव-पाण्डवों की कथा है। मुख्य कथा पर आधारित नाटकों के साथ नल-समयती सावित्री-सत्यवान और देवयानी शर्मिष्ठा के आख्याना पर आधारित नाटक इस धारा में इसलिए सम्मिलित किए गए हैं कि इन तीनों आख्याना का मुख्य आधार महाभारत ही है। यद्यपि और पुराणा में भी उपलब्ध हैं तथापि जिनमें विस्तार से इनका वर्णन महाभारत में ही अन्यत्र नहीं है।

रामायणधारा में राम की मुख्य कथा के अतिरिक्त अर्वाचर कथाओं पर आधारित नाटक भी सम्मिलित कर लिए गए हैं यद्यपि इनकी संख्या अति-यूत है। शबरी की कथा और श्वशुरगुमार की कथा पर आधारित नाटकों को ही इसमें स्थान मिल सका है।

कृष्णधारा में श्रीकृष्ण के चरित में सम्बद्ध नाटक कुछ को छोड़कर जिनका आधार महाभारत (हरिवंश और जमिनीय अश्वमेध पर्व के माथ) है प्रायः पुराणा में वर्णित आख्याना के आधार पर ही हैं तो भी इन सब नाटकों को एक पृथक् धारा में रखना ही उचित प्रतीत हुआ है क्योंकि श्रीकृष्ण चरित में सम्बद्ध नाटकों की संख्या अधिक है और वे अपनी एक पृथक् श्रेणी का निर्माण स्वयं कर चुके हैं। वरन् भी श्रीकृष्णचरित की साहित्य में व्यापकता और महत्त्व सुविज्ञ है।

विवेचन की सुविधा के लिए, प्रथम दो धाराओं को कई अध्यायों में विभक्त किया गया है।

पुराणधारा

प्रथम अध्याय

नहुष-कथा	१	नहुष नाटक,
हरिश्चन्द्र-कथा	१	मत्स्यहरिश्चन्द्र
	२	सत्याग्रही
वेणु कथा	१	वेणुसंहार
	२	वणुचरित
	३	क्रूर वणु

पुराण भारतीय सस्कृति के विश्वकोष है। मानव जीवन और उसके ऐहिक एवं पारमार्थिक अभ्युदय से सम्बद्ध काइ विषय छूटा नहीं है, जिसका समावग पुराणा म न कर लिया गया हो। इनकी वणनात्मक एवं उपदेशात्मक शली म तत्व की व्याख्या को स्पष्ट करने के लिए विविध प्रकार के आख्यानों का उपयोग किया गया है। पुराणो म इस प्रकार के आख्यानों की सख्या अति विपुल है। पुराणा की अय प्रकार की सामग्री को छोडकर यदि बचल आख्याना का ही सग्रह किया जाय ता भी कई हजार पष्ठ बन जाएंगे। देव-मानव जीवन की विविधता के समान इनके भी विविध रूप हैं। इनम से कुछ आख्याना ने तो मानव का अयधिक रूप म आकृष्ट तथा प्रभावित किया है। नहुष, ययाति हरिश्चन्द्र, भजना, सती पावती सुकया, मगर प्रमति आख्याना ता भारतीय जीवन और साहित्य के अग स बन गए हैं। देग के किमी भी माग म चल जाएँ, वहाँ के वच्चे भी इन कथाआ से, इनके प्रधान पात्रा के नामा स अवश्य परिचित मिनेंग। देग की प्रत्यक साहित्यिक भाषा के साहित्य म यत्र-तत्र पौराणिक कथाआ का उल्लख प्राय मिल जाता है।

हिंदी म भी जनप्रसिद्ध पौराणिक आख्याना का आश्रय लेकर काव्य की रचना तो हिन्दी भाषा के विकास क आरम्भिक युग से ही हानी चली आ रही थी, इधर विनय की

बीसवीं शताब्दी में भारत-दुःहरिश्चन्द्र नाम कुछ पूरे समय से शिवाय में नाट्य गताया मा आधारित हुआ। आचार्य रामचन्द्र धुवन न रीया महाकाज विभनाथ मित्र के धान-रूपान्त का हिंदी का प्रथम नाटक स्वीकार किया है। अगर विचारान भारत-दुःया हरिश्चन्द्र न धपन नाटक नाम के निरूपण में धपन पिना यात्रा गापाताम गिरिधरराय ड्याग रचित नहुप नाटक का ही हिन्दी भाषा का प्रथम मौनित नाटक गाता है। एम नाटक का वस्तु का मुख्य आधार पुराण हैं। अतः इमना विवेचन पुराणधारा में किया जायगा। इमा प्रकार पुराण प्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्र, वषण विवेचनानी च्ययन-मुताया मगर स्वहूनि प्रमूनि धनि प्रसिद्ध पौराणिक वधाभा का आधार बनानर शिवाय म नाट्य की रचना हाती रही है। एक ही वथा के आधार पर धनर नाटककारा द्वारा धनर नाट्य की रचना भी री गइ है। इम प्रकार के नाट्य का विवेचन जितरी रचना भिन भिन धान म हुई है वस्तु की एना के कारण एक ही स्यन पर एर साय ही किया जायगा। नीचे पुराणधारा के कुछ नाट्य के मूल-स्रोता पर विचार किया जा रहा है।

नहुप नाटक^१

यह नाटक हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्तक भारत-दुःया हरिश्चन्द्र के पिना महाकवि श्री गिरिधर दास (श्री गोपाचन्द्र) का किया हुआ है। कहा जाता है कि इम नाटक की रचना उस समय हुई थी जब भारत-दुःया के वन सान वष के थ। अपने नाटक नाम के निरूपण में उहाने स्वयं लिखा है

नहुप नाटक बनने का समय मुझको स्मरण है। आज पच्चीस वष हुए हाग जराकि मैं सात वष का था नहुप नाटक बनता था।^२ भारत-दुःया का जम स० १९०७ वि० है अतः इस नाटक की रचना का समय स० १९१४ वि० मानना चाहिये। यह नाटक लगभग सी वष तक अविचल रूप से अग्रगणित रहकर स० २०११ वि० में धपन सम्पूर्ण रूप में प्रकाशित हो पाया है। इमके विलम्बित प्रकाशन के पीछे कुछ अनिवाय कारण रहे हैं।

वात यह हुई कि इम नाटक के लखनवा० गोपाचन्द्र की मृत्यु स० १९१७ वि० में अर्थात् नाटक पूरा करने के कुछ समय पश्चात् हो गयी। उस समय भारत-दुःया की आयु लगभग दस वष रही होगी। उस समय तब नाटक का प्रकाशन नहीं हो सका था। इसकी एक प्रतिलिपि बनाने के लिए कल्याणलाल लखनवा का की गयी। प्रतिलिपि श्रीर मूल प्रति

१ इमका विवेचन रामायणधारा में किया जायगा।

२ भारतेन्दु नाट्यकाली भाग १ प्र स १९९२ प्र० रामनारायण लाल।

३ प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा काशा प्र स २११।

४ भारतेन्दु नाट्यकाली भाग २ रामनारायणलाल इलाहाबाद स १९९३ प्र० संस्करण पृ० ४७६।

दाना ही, लखनऊ व नवलखिंशार प्रस म गुम हा गयी । बहुत समय तन इनका कुठ भी पता नही चला । इसका कुछ अंश, जा भारतन्तुजी को अपने पिता व वागजा म मिल गया था, बाद का उहाने 'कविवचनमुधा म प्रकाशिन कर लिया । परन्तु वे अपने जीवन-काल म पूरी पुस्तक प्राप्त नही कर सत ।

एसा प्रतीत हाता ह कि यह गुम हुई प्रति किमी प्रकार उत्तरप्रदेश के वाकरोती नगर म पहुची और वहाँ के सरम्बती भण्डार म सुरक्षित हातर एव लम्प समय तक पडी रही । प्रकाशन स कुछ ही वष पूव इसकी सूचना वा० ब्रजरत्नरासजी को मिली और उहाने इसका सम्पादन करने नागरी प्रचारिणी मभा म प्रनाशिन कराया । इस नाटक की प्राप्त प्रति पर प्रतिलिपिकार न प्रतिनिधि का समय म० १९२३ वि० दिया ह । इसस स्पष्ट होता है कि वा० गोपालचन्द्रजी की मृत्यु के छ वष बाद इसकी प्रतिलिपि प्रस्तुत हुई और सम्भवत लिपिकार व प्रमाद म ही गुम हो गयी । इसकी मुरशिन उपरति एव प्रकाशन को हिन्दी के नाटक साहित्य का परम सौभाग्य समझा चाहिए कि उनका आद्य नाटक अज्ञात अतीत के गम मे जाकर पुन जीवित एव उपलब्ध हा सका ।^१

नहुप नाटक म परम यगस्वी पुत्रवा उमशा व पीत्र, सम्राट यायु के पुत्र और ययाति व पिता, परम धार्मिक सम्राट नहुप की कथा है । इस कथा पर आधारित ससृत या हिन्दी म अय काई नाटक प्राप्त नही है । सम्भवत लिखा ही नही गया । और यत् किमी लिखा भी गया हागा ता प्रकाश म नही आया न ।

इस कथा म किती भी प्रागमिक कथा का सवथा अभाव है । मुख्य कथा भी बहुत छानी है । एक पूण नाटक के लिए यह कथा सम्भवत अपयाप्त थी अत नाटककार न इसका विस्तार करके कथा को छ अका म पना दिया है । एसा करन म कथा का प्रवाह मन्द पड गया है और कथावस्तु व प्रति आकषण एव रोचकता भी यून हा गयी है ।

कथानक

वृन के वध के उपरान्त ब्रह्महत्या व मय स इद्र का स्वगताक छाडकर मानमरोवर म जाकर छिप रहना रिक्त सिंहासन पर पृथ्वी के राजा नहुप का दवरान बनाया जाना, गव के कारण दवग के आमन मे नहुप का पतन, तथा पूव इद्र का ब्रह्महत्या से मुक्त हाकर पुन इद्रत्व प्राप्त करना—वस इतनी ही कथा है । नाटककार न पूरे छ अका म इसका विस्तार किया है । इस कथा के प्रमुख पात्र नहुप तथा त्वगुण बहस्पति है । नहुप का चरित्र बहुत उच्च स्तर का ह । उसन पतन का कारण उनके चरित्र की काई स्वाभाविक दुबलता नहा है अपितु मुख्य रूप से देवगुण का उमक विरुद्ध किया गया पडयान है । इसम देव तथा ऋषि-मुनि सहायक बन हैं किन्तु प्रमुख मन्त्रातर देवगुण ही हैं । पढ़ने ता वे इद्र से रूठ हाकर प्रतिशाप का अवसर पाकर उमक पद पर नहुप को आसीन कर देत हैं और फिर इद्र के क्षमा माग लेने पर तथा शची की प्रार्थना स द्रवीभूत हातर उपाय स नहुप का पतन करा देत हैं । समस्त नाटक म नहुप के प्रति पाठक की जसी सहानुभूति रहती ह, वैसी दवगुर के

प्रति नहीं। अथ देवतामा का स्वरूप भी देवत्व विशिष्ट चित्रित नहीं हो सका है।

आधार

नहुष की कथा कई पुराणा एव महाभारत में आती है।^१ पद्म पुराण के भूमिखण्ड में यद्यपि पद्मह अध्याया में कथा का विस्तार है किंतु नहुष की कथा के इस भाग का सम्बन्ध प्रस्तुत पाठ की कथावस्तु से नहीं है। हाँ नहुष के चरित्र की पूर्वपीठिका के रूप में उसकी अद्भुत वीरता, उपासना तथा धार्मिकता पर यह कथा प्रकाश अवश्य डालती है। स्कन्द पुराण के माहेश्वरखण्ड की कथा बहुत महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि यहाँ की यह नहुष कथा आलोच्य नाटक की कथा का प्रमुख आधार तो नहीं है तथापि नाटक की कथा के अनेक सदिग्ध स्थलों का सूत्र यहाँ मिल जाता है। उपाहरण के लिए नहुष नाटक के पाठक के मन में यह बात स्पष्ट नहीं होती कि आचार्य बहस्पति इन्द्र के किस अपराध के कारण उससे रष्ट है। ब्रह्म हत्या लगन पर भी उससे अश्वमेध यज्ञ कराके उसी को देवसिंहासन पर क्या ठिठाना नहीं चाहते? इस प्रश्न का उत्तर स्कन्द पुराण के कथानक में मिल जाता है। इस कथानक में कुछ और महत्त्वपूर्ण बातें हैं जिनका स्पष्टीकरण आगे नाटक की कथावस्तु की विवेचना करते समय होगा।

नहुष नाटक की कथावस्तु का मुख्य आधार महाभारत है। महाभारत में नहुष की कथा विविध प्रसंगों में अनेक पवों में आयी है।^२ इनमें उद्याग पर्व की कथा, बड़े विस्तार के साथ, पूरे ऋषि अध्याया में ली गयी है। यहाँ की इसी कथा पर यह नहुष नाटक आधारित है।^३ यहाँ की यह कथा महाराज गान्धारी और युधिष्ठिर के सलाह में कही गयी है। तुलसी युधिष्ठिर को मातृवना दत्त हुए गान्धारी ने कहा—

युधिष्ठिर तुमने अब तक जितना दुःख भागा है उसका परिणाम सुख होगा अब इस विधाना का हा विधान समझकर तुम्हें गेह नष्ट करना चाहिए। बड़े-बड़े महामा और देवतामा को भी दुःख भेजने पड़ते हैं और उन्होंने झुके हैं। सुना जाता है कि सप्तमी के दिन राज इन्द्र ने भी बहुत दुःख भागा था—

- १ पद्म पुराण भूमिखण्ड अ० १४ (मानसखण्ड पुरा) प० २५३ (यहाँ पर कथा अति संक्षेप में है।)
- पद्म पुराण भूमिखण्ड अ० १०३ ११० (यहाँ नहुष के अम दुष्टप्रभु के मृत्यु तथा भक्तों के मुक्ति के साथ उसका विनाश भाँति का विस्तार में वर्णन है)।
- हरिवंश अ० ३० (पपाति का कथा के प्रसंग में नहुष का उल्लेख हुआ है)।
- वायुपुराण उल्लेख अ० ३० ११ १४।
- ब्रह्मसंहिता अध्याय अ० ६८ (नहुष का मंदिर में उल्लेख हुआ है)।
- स्कन्द पुराण माहेश्वरखण्ड अ० १२ १३ (कर्मवर्ध म०) यहाँ यहाँ देवताओं के अस्विकार की कथा भी अनेक ही आख्यायिकाओं में वर्णन मिली हुई है।
- महाभारत उद्योग अ० ६ १८ (यहाँ विस्तार के साथ कथा ली हुई है)।
- महाभारत अज्ञानवर्ष अ० ६६ १०० (यहाँ दो अध्याया में कथा में कथा है)।
- २ महाभारत आश्विनी अ० ७२ अथात् २५३ वनपर्व १०६ अथात् १३२८ आश्विनी अ० ३६२ अथात् ४६३ उद्योग अ० ६ १८ अज्ञानवर्ष अ० ६६ १००।
- ३ अथ नाटक सूचिका पृ० १२।

सद्य बुद्धमिव धीर गुरोदकं भविष्यति ।
 नात्र मयुस्त्वया कार्यो विधिर्हितवत्तर ॥
 बुद्धानि हि महात्मान प्राप्नुवन्ति युधिष्ठिर ।
 देवरपि हि बुद्धानि प्राप्तानि जगतोपते ॥
 इद्रेण ध्रुयते राजन सभार्येण महात्मना ।
 धनुभूत मर्दु बुद्ध देवराजेन भारत ॥

इसके पश्चात् युधिष्ठिर की जिनामा का दान्त करने के लिए दान्य ने जा क्या गुनायी है, वह इस प्रकार है—

देवा म श्रेष्ठ परम तपस्वी प्रजापति त्वष्टा ने त्रिमी प्रकार इन्द्र से द्राह हा जाने से तान गिरवाने पुत्र को उत्पन्न किया। उमका नाम विग्रहरूप था। यह अपने एक मुग से बना का स्वाध्याय करता, दूसरे से गुरा पीता और तीसरे से सारी दिनामा की घार इस प्रकार देवता था, माना उह पा जाएगा। यह बड़े कामन स्वभाव वाला तपस्वी तथा जितद्रिय था। उमकी बढोर तपस्या को देखकर इन्द्र के मन में भय उत्पन्न हुआ कि कभी यह इन्द्र न बन जाय। इन्द्र ने उम तपोध्रु करने के लिए अप्सरामा का भेजा, किन्तु वे उम परम तपस्वी को विचलित न कर सकी। अप्सरामा की असफलता न इन्द्र के मन में और भी तीव्र भय का संचार किया। विचार करके अन्त में इन्द्र ने स्वयं ही वय से ममाधिस्य विश्वरूप का वय कर लिया। पृथ्वी परमूत विश्वरूप के मन्त्र के तज से इन्द्र का अन्न भी भय बना हुआ था। सायाग से उसी समय एक बड़ई वधे पर बुन्हाडी रये उधर आ निरगा। इन्द्र ने उम प्रता मन देकर विश्वरूप के मस्तका के दुकने करवा गल। वरई और इन्द्र दोनों न ही एक वय पयन्त इस घटना को गुप्त रखा। एक वय पश्चात् पगुपति के भूतगणा ने हत्या मचाया कि इन्द्र ब्रह्महत्या है। इन्द्र न ब्रह्महत्या से मुक्ति पान के लिए कठिन तप किया। इसने पश्चात् उमन समुद्र, पृथ्वी, वृष तथा स्त्री समुदाय में अपनी ब्रह्महत्या विमत्त करके उसमें मुक्ति प्राप्त की तथा पुन अपन दवराज के पद पर आसीन हुआ।

उधर प्रजापति त्वष्टा का जन्म अपने निरपराधी एक परम तपस्वी पुत्र की इन्द्र द्वारा हत्या का समाचार मिला तो उह बडा प्राय आया। उहान इन्द्र के विनाग के उद्देश्य समय करके घार रूप वान अति प्रतापी विनाग वृष का उत्पन्न किया और आत्मा लिया कि जाया इन्द्र का मार डालो। पिता का आदेश पाकर वृष देवता न गया। वहाँ वृष और इन्द्र का मयकर मग्राम होन गया। वृष न इन्द्र का अपन मुग में रग किया। किन्तु कुछ ही समय पश्चात् जम्माई लेन से इन्द्र बाहर आ गया। फिर दाना में युद्ध छिड गया। वृष बहुत बलशाली था। अत इन्द्र युद्ध से विमुख हो गया। इसके पश्चात् इन्द्र सहित देवगण युद्ध में विजय प्राप्त करने का उपाय जानने के लिए विष्णुजी के पास गय। उनका परामस से इन्द्र न वृष के साथ संधि कर ली, किन्तु उसने वध के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। एक समय समुद्र के विनागे पर वृष को देखकर इन्द्र ने साचा कि समुद्र से उठे ऊँचे ऊँचे पैन से वय को आवृत करके यदि इस पर छाडा जाय तो यह अवश्य मर सकता है। विष्णु का स्मरण करने उमने बीसा ही किया और वृष का सहार हा गया।

इस विश्वासघात पूण काय से इन्द्र के मन में क्षोभ हुआ। विश्वरूप के मारन से एक

ब्रह्महत्या तो पहले ही लग चुकी थी अब दूसरी ब्रह्महत्या और लग गयी। इंद्र डरकर, मानसरोवर में जाकर एक विमान बमलनाभ में छिप गया। इधर स्वर्ग इंद्रविहान हो गया। सबके अराजकता फल गई। अनावृष्टि से जनता में हाहाकार मच गया। सत्र ऋषियों एवं देवताओं ने मिलकर इंद्र के रिक्त सिंहासन पर राजा नहुष का देवराज बनाया। ऋषिया और देवा ने अपना अपना तप और तज देकर उस एतना तजस्वी बना दिया, कि जा कोई भी उसके सामने आए, उम पर उमकी (नहुष की) दृष्टि पड़त ही वह तजाहीत हो जाए। इस प्रकार वह बहुत समय तक शासन करता रहा। धमात्मा हात हुए भी उसमें कुछ समय बाद कामुरता एवं गव की मात्रा अधिक हो गयी। एक समय वह पूव इंद्र की पत्नी शची का देखकर उम पर आसक्त हो गया। शची अपने सतीत्व की रक्षा के लिए सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से बहस्पति के पास गई और कहा कि— 'आप मुझे आशीर्वाद देते रहे हैं कि तुम मुझे लक्षणा से युक्त देवराज इंद्र की प्राणप्रिया अत्यंत सुखमोगिनी सौभाग्यवती एवं पत्नी तथा पतिव्रता हो। अब आप अपनी वाणी को सत्य कीजिए। बहस्पति ने उम आशवासन दिया—

'मैंने तुमसे जा कुछ कहा है वह अवश्य सत्य है। तुम शीघ्र ही देवराज इंद्र को यहाँ आया हुआ दयागी। तुम्हें नहुष से डरना नहीं चाहिए। मैं सत्य बान बहता हूँ, पांडे ही दिना में मैं तुम्हें इंद्र से मित्र दूंगा।

इसके पश्चात् ऋषिया का आग कर प्रमुख देवगण नहुष के पास गए और परस्त्री गमन के पाप तम से उम निवृत्त करने का उन्होंने प्रयत्न किया, किंतु कामासक्त नहुष ने उनकी बात नहीं मानी। नहुष के डर से देवताओं ने बहस्पति के घर में आश्रय प्राप्त शची से अनुरोध किया कि वह देवराज नहुष का प्रतिरूप में स्वीकार कर लें परंतु शची ने उनके प्रस्ताव का अस्वीकार कर बहस्पति में अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की। शरणागत शची की रक्षा का पूरा आश्वासन देते हुए सागी परिस्थिति के समाधान के लिए आचार्य ने उपाय बताया कि शची नहुष के पास जाकर कुछ समय की अवधि मांग लें। समय अनेक प्रकार के विघ्ना में युक्त होता है। समय गर्भीत नहुष का पाग कर देगा।

प्रस्ताव से अनुमार शची ने नहुष के पास जाकर समय की अनधि मांग ली। इस प्रकार से कुछ निश्चित होकर देवगण ने विष्णुजी के पास जाकर बन्धुस्थिति का स्पष्टीकरण किया। उन्होंने इंद्र का ब्रह्महत्या में मुक्ति के लिए अवसर यत्न करने के लिए कहा। इंद्र का शासन करने का समारम्भ हुआ और इंद्र ने युवा शची पति और मित्रता में ब्रह्महत्या विमर्श करने उपाय मुक्ति प्राप्त ता कर ला किंतु नहुष के अस्मिभावों तज का रूप वह देवराज से भागकर पुन उचित अवसर से प्रतीक्षा करने के लिए अट्टम्य हो गया। इसका बाद अत्यंत दुःखित शची ने उपभुक्ति का महायत्न प्राप्त करके इंद्र का पता लगाया। इस बार इंद्र ने शची से कहा कि—

'नहुष अति तत्रस्थाः । ऋषिया और देवा का तप पाकर वह अत्यंत गया है अतः मैंने समय नाति में काम करना चाहिए। तुम नहुष के पास जाकर शची द्वि— ऋषिया का शासन बनाकर यदि तुम मर मरने में आया तो मैं तुम्हें ही अपना पति बनाऊँगी।' शची के बगल ही रहने पर नहुष देवराज के प्रमुख ऋषिया का सवारा में जाकर शची के पास आने

की तयारी करने लगा। शीघ्र पहुँचने की उत्सुकता व कारण उमन महर्षि अगस्त्य के सिर पर अपने परम आघात किया। उनका गाय स तक्षण उसका दवराज के पद में पतन हुआ और उस गण यानि में जाना पडा। उधर वहस्पति व प्रयत्न में इंद्र का लाया गया और पुन दवराज बनाया गया।

सक्षेप में उद्यान पक्ष में नहुष की कत्तनी ही कथा है। नहुष नाटक की कथावस्तु का मुख्य आधार, यहाँ की कथा का यह रूप ही रहा है परन्तु नाटक में कुछ घटनाएँ ऐसी भी हैं जिनका महा उन्नत नहीं हुआ है। कुछ में परिवर्तन है तथा कुछ घटनाएँ नाटककार छाड़कर चला है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्य आधार महाभारत का ज्ञात हुए मन्दपुत्राण के माहेश्वर गण्ड में वर्णित कथा की कुछ घटनाओं को नाटक की कथावस्तु में मिला लिया है। दम प्रकार प्रस्तुत नाटक व आधार व लिये विभी एन कथा-म्यल का निश्चिन्त नहीं लिया जा सकता। अतः नाटक के अक्षर में प्रमगानुकूल ही यहाँ आधार म्यना पर विचार करना उपयुक्त रहेगा।

प्रस्तावना के पश्चात् प्रथम अक्षर के आरम्भ व प्रथम पद्य में ही इंद्र द्वारा किसी ब्राह्मण का मन्त्र काटने तथा अगन पद्य में ब्रह्महत्या उमका अनुमरण करती हुई बनाई गई है—

देखहु तो विपरातता काल की जो बरतार है अग्यता ठाने ।
 ऊँचो सिंघासन वेइ अघो कह धम घर तोहँ दारिद साने ॥
 माया बली 'गिरिधारन' की जिहि नन सहस्र न सो पहिचाने ।
 काटिक ब्राह्मन-मस्तक को यह आपुने को परमात्मा माने ॥

महाभारत एवं स्कन्दपुराण दाना व कथानर के अनुसार इंद्र ने वायु ब्राह्मणपक्ष किया है। पहली बार ना प्रजापति त्वष्ठा व तीन सिर वायु परम तपस्वी और तजस्वी पुत्र विश्वरूप व मन्त्रक वच्य स काट और दूसरी बार त्वष्ठा के ही दूसरे पुत्र वृन् की हत्या की। प्रथम अक्षर व तत्पश्चात् पद्य में इंद्र ने दाना का स्वीकार किया है—

एक बार भारयो गुराँह तब विधि मेठयो ताप ।
 अब दूजी हत्या लगी, हा ! किमि जहे पाप ॥

यहाँ पहला बार गुरु का मारने की बात कही गई है। बात यह थी कि इंद्र ने ममुद्र मयन के अवसर पर हुए दवामुर मश्राम में अमुरा पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् जय अमरनाथ का नामनभार सेनाता ता अपना गुरु उमन विश्वरूप का बनाया। वह बडा ही मदाचारी विद्वान और तपस्वी था परन्तु उमका व्यवहार अमुरा व प्रति कुछ पक्षपातपूर्ण था। इंद्र का जय यह बात मानूँ हूँ ता उमन अपने वच्य में उमन मस्तक धड स पृथक कर लिए।^१

१

विश्वरूपमुना विद्वा विश्वरूपा महानप ।
 पुराहिनाथ शत्रुभ्य यात्रकरवामवत्तन ॥
 तस्मिन् यत्र ब्रह्मणश्च यजन अमुरान् गुरान् ।
 मनुष्यान्धव विगिरा अपराता शचीपत ॥
 देवान् ददाति मात्राश दयाम्नुष्यामघात्तत ।
 मनुष्यान् मध्यपातेन प्रत्यह स ब्रह्मन् द्विज ॥

महाभारत के कथानक में इंद्र ने प्रजापति त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को अपनी पुरोहित नहीं बनाया है, वहाँ तो उस अयुध, तपस्वी एवं परम जितेन्द्रिय के रूप में स्थापित किया गया है। तपाभ्रष्ट करने के लिए प्रलाम्ब के जब सभी उपाय व्यर्थ हो जाते हैं तो इंद्र का यह भय होने लगता है कि कहाँ यह उम इंद्रासन से ही च्युत न कर दे, अतः वह उसकी हत्या कर देता है। कारण भिन्न हैं किन्तु दाना ही स्थला—महाभारत और स्कन्दपुराण के आख्याना में इंद्र के द्वारा विश्वरूप की हत्या का उल्लेख है।

नहुष नाटक में इस प्रथम ब्रह्महत्या का ताप (पाप) विधि द्वारा दूर किया गया। 'तत्र विधि मटया तापं वनाया गया है। महाभारत की कथा में धार अतः और तप से शुद्ध हुआ कहा गया है।^१ परन्तु स्कन्दपुराण में उस कथानक में विश्वरूप की हत्या के पाप की विमोचिका से स्वर्ग के राज्य का ही छाडकर इंद्र का दूर मात्सरारवर में चले जाना पड़ता है। उसके रिक्त स्थान पर ही देवा और ऋषियाँ तपस्यमानों से पृथ्वी लोक से नहुष को लेकर अभिषिक्त किया जाता है। गर्वातिरोह और कामपरायणता के कारण जब स्वर्ग से नहुष का पतन हुआ जाता है तो उगव पुत्र ययाति का इंद्र के पद पर अभिषिक्त किया जाता है। अपने पूर्वज पुण्या को अपने ही मुँह में बगन करने के कारण और पुण्या के क्षीण हो जाने में ययाति का भी स्वर्ग में पतन होता है।^२ रिक्त पद का पूरण करने की योग्यता वाता विभी व्यक्ति के अभाव में बहुत समय मात्सरारवर में तप से गुज्र हुए पूर्व इंद्र का ही लेकर ब्रह्मसति की महायज्ञ में पुत्र देवराज के पद पर आमान किया जाता है।

देवराज के विहाय पर त्रिरूप का भारन वाता तत्र पुन आमीन हान पर जत्र स्वप्ना को पना चलता है ता इंद्र के नाग के उद्देश्य में वह बड़े ही पराक्रमी एवं विगातकाय पुत्र वृत्र का उत्पन्न करता है। इंद्र वृत्र की शक्ति में भयभीत हो जाता है। ब्रह्मा के परामर्श से देवगण एवं महर्षि दधीचि का शरीर गन्ध निमाण के लिए माँगते हैं। गन्धों के निर्माण

एकना मु मन्त्रेण भूषिता मन्दापवान् ।
 अन्वयमाने तना शाने तस्य विहायितम् ॥
 इत्यानां वाप मित्रवपमन्त्रान् प्रयत्नान् ।
 इमो पुराहितामन्त्राणाम् परया च वरदान् ॥
 इति मन्त्रा तना मन्त्रा वयस्य मन्त्राणां ।
 विष्णोः शिरोमन्त्रे तना शानामन्त्राणां ॥

—स्कन्दपुराण मात्सरार पं० १५ अंश ४६ ।

१ महाभारत उद्योगपर्व पं० ६ अंश ३२६ ।
 २ तन् ह्यना वत्र वारमाचरन् पापमापन ।
 तन्वा च न मन्त्रेण मद् देवैर्मन्त्रेण ॥

तन्मन्त्रेण मन्त्रा अन्वयान् देवतीर्षितं मुनिम् ।
 इत्यानां वाप मित्रवपमन्त्रान् प्रयत्नान् ॥

—म. भा. उद्योगपर्व ६ अंश ६६ एवं ६८ ।

३ स्कन्दपुराणवरीश्वरवर्णनपर्व ३६ ।

—स्कन्दपुराण मात्सरार १५ अंश १०८ ।

के उपरान्त वृत्र से इन्द्र का भयकर युद्ध होता है। इन्द्र मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है। इस पराजय के परचान ब्रह्मा के परामर्श से इन्द्र वृत्र के माथ मित्रता कर नेता है किन्तु हृत्प से, उसके घात के लिए उन्नत अश्वमेध की प्रतीक्षा करता रहता है। वृत्र म गव का प्रतिरेक हो जाता है। नमदा के तट पर पुन इन्द्र और वृत्र का युद्ध होता है। इसमें वृत्र इन्द्र को उठाकर निगल लेता है। उत्तर म जाकर इन्द्र, अपने तीक्ष्ण वज्र से उसके उदर का विदारण करके बाहर आ जाता है। वृत्र मर जाता है।

स्वल्पुगण के इस कथानक म वृत्र के मारने के उपरांत इन्द्र को लगी किसी ब्रह्म हत्या का उल्लेख नहीं है। परन्तु नटुप नाटक म विश्वरूप के मारने के उपरान्त तथा वृत्र के मारने के परचान दाना ही ब्रह्महत्याका उल्लेख है। नाटक का आरम्भ ही वृत्र के मारने की घटना के घटित होने के बाद होता है परन्तु वृत्र के मारने का समस्त विवरण वास्तविक और जयन्त की वाचस्पति म द लिया गया है। इसी विवरण से पता चलता है कि इन्द्र का वृत्र के माथ अन्तिम सन्नाम नमदा नगी के तट पर हुआ था—

नमदा तीर भयो अति सगर काल ने दानव-देव सहारयो ।

‘श्री गिरिधारन’ के परताप सा वासव वृत्र को प्राण निकारयो ॥^१

महाभारत के (उद्योगपर्व, अध्याय ८) कथानक म यह घटना समुद्र के किनारे पर घटी है—

छिद्रावेषी समुद्रविदग्ग सदा वसति देवराट ।

स कदाचित् समुद्रात्ते समपश्यत महासुरम ॥

एव सचित्तयन्नेव शत्रो विष्णुमनुस्मरन ।

अथ फेन तदापश्यत समुद्रे पवतोपमम ॥

स वज्रमय फेन त क्षिप्र वृत्रे निसष्टवान ।

प्रविश्य फेन त विष्णुरथ वृत्र ध्यनात्पयत ॥

—म० भा० उद्योग १०, ३३ ३६

महाभारत के इस कथानक म वृत्र के मारने का साधन भी भिन्न है। यह समस्त काय विष्णु के निर्देश एक सहायक म हुआ है।

नटुप नाटक म वृत्र की शक्ति एक बल के भय से दवगण तथा इन्द्र के देवलाक छोड़ कर भाग जान का उत्तरण हुआ है—

जा दिन सा अरि के भय भागि के त्याग कियो घर मेरे पिता म ।

ता दिन सों जननी ने तज्यो सब धारे हिये ‘गिरिधारन’ ध्यान ॥^२

इसके परचान मव क्षीरमागर के निगट विष्णु के पाम जाकर उपस्थित परिस्थिति से उधार का उपाय पूछत हैं और उह उत्तर मिनता है—

१ नटुप नाटक—१ ७ प० २६ ।

२ नटुप नाटक—१ ६ प० २७ ।

सब सुर जाहूँ दधीचि प मागहूँ तिनको पात ।

तामु अस्थि की कुलिस रचि करहुँ वृत्र को घात ॥^१

महामारत के कथानक में भी युद्ध में परास्त एवं भयभीत देवा का विष्णु की शरण में जाने का उल्लेख है किन्तु वहाँ यह प्रस्तुत परिस्थितियाँ म इंद्र को वृत्र के साथ संधि कर लेने का परामर्श तथा उमंगी सहायता करने का आश्वासन देते हैं—

गच्छध्व सपिगंधर्वा यत्रासौ विम्बहपधक ।

साम तस्य प्रभुजध्व तत एन विजेष्यथा ॥

भविष्यति जयो देवा शत्रस्य मम तेजसा ।

अदशयश्च प्रवेक्ष्यामि घञ्जे ह्यस्यायुधोत्तम ॥

गच्छध्वमृषिभि साध ग धर्वेश्च सुरोत्तमा ।

वृत्रस्य सह शत्रेण संधि कुरुत मा चिरम ॥

परन्तु यहाँ क आख्यान में वृत्र पर विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से महर्षि दधीचि की अस्थियाँ स कुलिग के निमाण एवं उससे युद्ध की चर्चा नहीं है। इस प्रसंग में वहाँ दधीचि के उपाख्यान का कोई उल्लेख ही नहीं है।

परन्तु महामारत में ही अथवा इंद्र के द्वारा वृत्र व वध की घटना का तीन बार विवरण आया है। वनपर्व में इंद्र और वृत्र की कथा पूरे दो अध्यायों में विस्तार से वर्णित है।^२ स्कन्दपुराण के माट्टेस्वरखण्ड में नहुष की कथा के अंत में वृत्रवध के प्रसंग में दधीचि द्वारा अभिषेकान का स्पष्ट वर्णन है। वस्तुतः वृत्रवध की कथा के साथ महर्षि दधीचि के शरीर त्याग की कथा भी जुड़ी हुई है। प्रायः दोनों का उल्लेख एक साथ मिलता है। नाटककार ने नहुष की कथा व साथ वृत्रवध व प्रसंग को जोड़ते हुए दधीचि की कथा का भी मिला लिया है। इससे अतिरिक्त ननुपर्व^३ तथा शांतिपर्व^४ में भी मक्षेप में इस वृत्रवध की कथा का वर्णन है।

इंद्र और वृत्र व इस सप्रसंग में नहुष नाटक व अनुसार वृत्र के दो बार इंद्र को छिनासत्र एवं परास्त किया है। प्रथम बार तो उम ममय जब इंद्र ने वृत्र को लक्ष्य करके गंगा का प्रहार किया। वृत्र ने दग बीच में ही पश्चिम एरावत को मारा। इंद्र इसी पर आरुंध था। गंगा व लगत ही एरावत अचन हातर पृथ्वी पर गिर पत्ता है—और साथ ही उमंगी महावत भी—

सब सुरपति गहि गंगा दनुज दिसि भये चलायत ।

ताहि पश्चिमर गाम तजि ललित ऐरावत ॥

तासा हूँ व विषय भयो गज भूतल आयत ।

चेत सोय यल गोय सुरत गिरि परयो महावत ॥^५

१ नहुष नाटक १ ११ पृ २७ ।

२ महामारत वनपर्व प १० तथा १०१ ।

३ महामारत शंखपर्व प २१ अंश २६ ३० ।

४ महामारत शांतिपर्व प ३४२ अंश ४० ।

५ नहुष नाटक १ ४ पृ ३३ ।

नाटक की इस घटना का उल्लेख उद्योग पत्र की महाभारत की कथा में भी नहीं, किन्तु स्वयं पुराण में कुछ भिन्नता के साथ जुटा हुआ है—

गदा प्रगल्भ देवेन्द्रो वृत्र विध्वापता गदाम ।
धारयामास वृत्रोऽसावतिथि कृपणो यथा ॥
व्यर्याञ्च स्वगदा दष्टवा इन्द्रदिचतामवापह ॥^१

वहाँ वृत्र में अपने प्रति क्रिय गये इन्द्र के गदा प्रहार का वक्ष्य तो किया है, पर प्रतिप्रहार नहीं। इसके पश्चान् नहुष नाटक में मानसि द्वारा मञ्जित रथ प्रस्तुत कराया गया है—

तव मातलि लामो सुरय सुदर भव लणाय ।
तोष वठि सुपवपति मिठे वृत्र सौं जाय ॥^२

इसका उल्लेख महाभारत अथवा स्वयं पुराण में नहीं है। नाटक में इसका बाद वृत्र द्वारा एक प्रहार का वर्णन है जिसमें इन्द्र को न केवल निरम्भ किया है, अपितु लज्जित भी बनाया है तथा वृत्र का एक नम्ब्रा नीतिपूण उपदेश भी सुनना पडा है। नाटक की कथानम्बु के इस अंग का भी कहा उल्लेख नहीं है।

इसके अनन्तर दूसरी बार वाहनमहित इन्द्र का वृत्र द्वारा निगन जान की घटना है।^३ महाभारत के उद्योग पत्र के आख्यान में देवद इन्द्र के निगन जान का उल्लेख है इसके वाहन रथ या गज आदि का नहीं—

सरुद्धोमहाघोर प्रसक्त फुरसत्तम ।
ततो जग्राह देवद्र वृत्रो वीर शतननुम ॥
अपावृत्याक्षिपद् वक्त्रे गरु कोपगमचित ।
प्रस्ते वृत्रेण गरुं तु सम्भ्रातास्त्रिदिवेश्वरा ॥^४

परन्तु स्वयं पुराण के आख्यान में वृत्र वज्र तथा निरीट न सहित इन्द्र का निगलन का निर्देश है—

प्रस्तुषामो महतेजा दत्पानामधिवस्तवा ।
आगय सहसा गरु घ्रासयित्वा सरुजरम ॥
सयञ्च स किरीट य भनन च जगज च ।
निशियात्तरमात्रेण प्रसितोऽज्ञौ पुरन्दर ॥^५

नाटक में वृत्र के उतर में जाकर वज्र में कुनि की चीरकर इन्द्र के वाहन आगे का वर्णन है—

वाणि कुतिस सो कुच्छि कड़े नुरतहि ता थल माहि ॥^६

स्वयं पुराण के कथानक में भी इसी उपाय में इन्द्र के निगलने का उल्लेख है—

- १ स्वयं पुराण माण्ड्यकर अण्ड १७ अंशक २२६ २७ (बम्बई १०) ।
- २ नहुष नाटक १ ६१ पृ० ३३ ।
- ३ नहुष नाटक १ पद्य ५१ पृ० ३५ ।
- ४ महाभारत उद्योग अ ६ ५१ ५२ ।
- ५ स्वयं पुराण माण्ड्यकर अ १७ पत्रो २३५ ३६ ।
- ६ नहुष नाटक १ ५३ पृ० ४५ ।

शम्भो प्रसादात् सहसा विनिगत कुंक्ष भित्त्वा देवराजस्तदानीम् ।^१

परन्तु, महाभारत के आख्यान रूप में वृत्र के जम्हाई लेने के समय, उसके मुख के द्वार से ही इन्द्र बाहर आता है—

विजम्भमाणस्य ततो वृत्रस्यास्यादपावृतात् ।

स्वायगायभित्तक्षिप्य निष्क्रातो बलनाशन ॥^२

इस प्रकार नहुष नाटक में इन्द्र द्वारा वृत्र की हत्या का जो वर्णन दिया है वह अनेक स्थलों में महाभारत के उद्योग पर्व में दिये विवरण से उतना सादृश्य नहीं रखता है, जितना कि स्कन्दपुराण के माहेश्वर खण्ड के विवरण से। परन्तु उमके साथ ही, यह भी द्रष्टव्य है कि नहुष नाटक की कथा वृत्र की हत्या के उपरांत आरम्भ होती है। वृत्र की हत्या का समस्त विवरण प्रथम अध्याय के दो पात्र जयन्त और कार्तिकेय की यात्राचीन से बाद का दशका की मुना दिया गया है। किन्तु स्कन्दपुराण के माहेश्वर खण्ड का नहुष से सम्बद्ध आख्यान त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप की हत्या के पश्चात् ब्रह्महत्या के भय से, स्वर्ग का सिंहासन छोड़कर दूर मानसरोवर में जाकर इन्द्र के छिप जाने पर आरम्भ होता है। अध्याय छोटे माटे अंतरी की ओर आकर देने पर भी कथा का यह अंत महत्त्वपूर्ण है। स्कन्दपुराण में वृत्र की हत्या की कथा नहुष के स्वर्ग से पतन के पश्चात् कुछ व्यवधान देकर आरम्भ होती है। बीच का व्यवधान है नहुष के पतन के बाद यथाति की स्वर्ग का राजा बनाया जाना और फिर उसके पतन के अनंतर भागे हुए, पूव इन्द्र की ही पाप मुक्त करके पुन देवराज के सिंहासन पर आसीन करना। इन्द्र के पुत्र देवराजपत्न प्राप्त कर लेने पर ही पूव वर का प्रतिपाद्य देने के लिए त्वष्टा अति कठिन तप से ब्रह्मा से वर प्राप्त करके एक अति शक्तिशाली पुत्र वृत्र का सजन करता है।

इसलिए यह समझ बैठना उचित न होगा कि नहुष नाटक में वृत्र के संहार का जो विवरण दिया है वह पूरा रूप से स्कन्दपुराण के माहेश्वरखण्ड के आख्यायिका पर आधारित है। पुराण के आख्यान को ध्यानपूर्वक पढ़ने पर एक बात और भी स्पष्ट हो जाती है वह यह है कि महाभारत के उद्योग पर्व के आख्यान में जो विवरण वृत्र के वध का दिया है स्कन्दपुराण के माहेश्वरखण्ड के आख्यान रूप में बसा ही विवरण नमुचि के मारने का है। यह विवरण इस प्रकार है—

मध्य देश में इन्द्र के साथ नमुचि का भयंकर संग्राम हुआ। इन्द्र ने वज्र में उस पर प्रहार किया किन्तु नमुचि का एक रोम भी उमस नष्ट नहीं हुआ। यह देखकर सबका बड़ा आश्चर्य हुआ और इन्द्र तो बहुत ही त्रिस्तुत हुआ। एक दिन माहम वरक उसने नमुचि की जाँघ पर गन्ध म प्रहार किया। गन्ध भी चूर-चूर होकर भूमि पर गिर पड़ी। तलाचातु उत्तन गन्ध में आश्रमण किया और यह भी गन्ध गन्ध हावर गिर पड़ा। इस प्रकार इन्द्र ने नमुचि का मार्ग के लिए जितने भी प्रायुष्य का प्रयोग किया वह सब व्यर्थ हो गया और वह विजयविध विमूढ़ माना गया। नमुचि ने उमस ऊपर बड़ी आश्रमण नहीं किया, वह गन्ध-गन्ध

१ स्कन्दपुराण माहेश्वर ख १० श्लोक २६२।

२ महाभारत उद्योगपर्व ख ६ श्लोक ३३।

हंसता रहा। इसी अवसर पर इंद्र का लक्ष्य करके एक आकाशवाणी हुई कि इसे तुम फेंक स मारो। अथ किसी शस्त्र से यह मरेगा नहीं। यह सुनकर इंद्र समुद्र के किनारे पर गया। नमुचि भी वहां गया और इंद्र से पूछन लगा कि युद्धभूमि छोड़कर वह यहाँ क्यों आया है। इंद्र ने उसकी ललकार क उत्तर में समुद्र का फेन हाथ में लेकर उसे मारा। जो नमुचि किसी शस्त्र से नहीं मरा, वह फेन लगत ही मर गया।^१

महाभारत क उद्योग पर्व के आख्यान में यही विवरण थाडे स अन्तर क साथ, वृत्र के वध के प्रसंग में लिया हुआ है।^२ यहाँ के विवरण में अन्तर इतना ही है कि यहाँ इंद्र वृत्र के साथ संधि करके उसे अपने विश्वास में ले लेता है। फिर किसी समय एक दिन मध्याह्नक में समुद्र के किनारे पर उसे निरस्त्र दबकर, समुद्र के फेन से वज्र का लपेटकर उसका ऊपर प्रहार करता है। इस वज्र में इंद्र की विष्णु की भी सहायता प्राप्त होती है। महाभारत के इस आख्यान में नमुचि दैत्य का उल्लेख नहीं है।

नहुष नाटक में वृत्र क वध क पश्चात्, ब्रह्महत्या के भय से इंद्र का किसी अज्ञात प्रदेश की ओर भाग जाना बताया गया है। जयंत के पूछने पर मातलि कहता है—

वृत्रामुर की मारिक द्विजहत्या भय पाणि।

हम नहीं जानत कौन थल गये देवपति भागि ॥^३

स्कन्दपुराण के माहेश्वर खण्ड में विश्वरूप की हत्या क उपरांत पीछे लगी ब्रह्महत्या के भय में देवलाक को छोड़कर, किसी दूर प्रदेश की ओर इंद्र के भागने का उल्लेख इस प्रकार किया है—

ततो भयेन महता पलायनपरोऽभवत्।

पलायमान त दष्टवाह्यनुयाता भयावहा ॥

यतो धावति साऽपावत्तिष्ठन्तमनुतिष्ठति।

अगृहता यथा छाया शत्रस्य परिवेष्टितुम् ॥^४

वृत्र क वध के पश्चात् भारत में इंद्र की मानसिक स्थिति का चित्रण अधिक स्वामाविक सा प्रतीत होता है। यहाँ इंद्र ने वृत्र का वध विश्वासघात करके छल से किया है। इससे पूर्व भी वह विश्वरूप (त्रिशिरा) को मारकर ब्रह्मघात का अपराध कर चुका था अतः सम्पूर्ण लोक की प्रतिम सीमा पर जाकर, अपने ही पाप से पीड़ित होकर वह अज्ञात रूप से छिप कर रहने लगा—

ततो हते महावीर्ये वृत्रे देव भयकरे।

अनतेनाभिमूतोऽभूच्छत्र परमदुमना

त्रशीपयाभिमूतश्च स पूव ब्रह्महृत्यया ॥

१ स्कन्दपुराण माहेश्वर खण्ड अ० १७ श्लोक २७ ४८।

२ महाभारत उद्योगपर्व अ० १, श्लोक ३३ ३६।

३ नहुष नाटक १ ६१ प ३७।

४ स्कन्दपुराण माहेश्वर खण्ड अ० १५, श्लोक १४ १५।

सोऽतमाश्रित्यलोकानां नष्टसज्जो विचेतः ।

न प्राज्ञायत देवेन्द्रस्त्वभिभूत स्वकल्मष ॥^१

नहुष नाटक के द्वितीय अंक में इंद्र के चल जान के बाद की स्थिति का वर्णन है। वन में तपस्या से देवलोक में लौटने के उपरांत दशगुरु वहस्पति इंद्र का समाचार जानना चाहते हैं। उन्हें जयंत से पता चल जाता है कि इंद्र मानसरावर के जल में ब्रह्महत्या के भय से कमल की नाल में छिपकर तप कर रहा है। इसके पश्चात् गुरु वहस्पति घोषणा कर देते हैं कि जब तक इंद्र की ब्रह्म हत्या दूर नहीं हानी है तब तक राजसिंहासन पर किसी अय को अवश्य बिठा देना चाहिए—

जब लौ छुट न सफ़ की हत्या करि उपचार ।

तब लौ चाहिअ राज प थापन कोउ सरदार ॥^२

इस पर जयंत तथा अय दशगण वहस्पति से आग्रह करते हैं कि इंद्र का ही उपाय से शुद्ध करके पुन देवेन्द्र पद पर आसीन किया जाए। किंतु जब तब पाप का संयोग है तब तक इंद्र लौ नही सकता यह कहकर वहस्पति अस्वीकार कर देते हैं। इसके बाद, जिसा अय देवता या जयंत को ही इंद्र बनाने का प्रस्ताव की उपेक्षा कर देते हैं। वं नहुष को ही इंद्रासन देना चाहते हैं और इसी उद्देश्य से दशरूप विनागद को नहुष के पास भेजा जाता है। वह दशराज वनन का प्रस्ताव स्वीकार ता करता है किंतु इस क्षण पर कि इंद्र की वस्तुएँ—खानपान वाहन, विपिन साजसाज आदि उसे प्राप्त हा—

मुचि खानपान वाहन विपिन जो समाज मुरराज की ।

सो मिन मोहि दिवपति भए तो मैं साधा काज की ॥

जो यामें कछु कसर होय पहिले कटि दीज ।

तब मैं करिहौं राज समुक्ति जिहि वात न छोड ॥

भोहिक मति कछु नाहि होइ मुनि जो मन लट्टू ।

फरौं भजूरी जाय जथा भाडे को टट्टू ॥

जब अधिकार सुरेस को स्वग लोक में पायहौं ।

तब त्यागि आपुने रात कहें इंद्रासन पर जायहौं ॥^३

गुरु वहस्पति नहुष की रम गत का मान देते हैं और एक विशेष विमान से देवराज म लानर इंद्रासन पर उग अभिविनन कर लिया जाता है। सभी ऋषि और देवता उसे उपहार भेंट करते हैं। नहुष स्वनाम का इंद्र बनकर विभिन्न प्रकार के सुभा का उपहार करता है। स्वग का राज्य पाने के पूर्व और पश्चात् समस्त वान पथत नाटक में नहुष का जो चरित्र प्रस्तुत किया गया है वह धार्मिकता और तपस्विता का दृष्टि से बहुत अच्छा है। अपन गामन के उत्तर वान में जा उमर मन में गची के प्रति विचार उपन हाता है वह बाल्यविक्रम नहीं है मुह वदस्पति के नृत्य के विन्दु तिम गण पन्थान का एक रूप है। इसमें

१ महाभारत उद्योगपर्व पं १० पंक्तियाँ ८४-४५ ।

२ महाभारत २ २३ पं ४१ ।

३ महाभारत २ २३ पं ४१ ।

केवल वहस्पति ही सम्मिलित नहीं हैं, वे तो इसके नेता हैं नारद शची जयंत पुलोमा रम्भा, काथ, वमन्त आदि उनके सहायक हैं। गुरु वहस्पति इस नहुप नाटक में बहुत ही प्रभावशाली व्यक्ति हैं कर्ता घर्ता और हर्ता—वे सब कुछ हैं। जिस पर कृपालु हो जायें पृथ्वी में उठाकर स्वर्ग का त्वराज बना दें और जिस पर रूष्ट हो जायें उसे इन्द्रत्व में भी हटाकर मिट्टी में मिला दें। इन्द्र ने एक अपराध विशेष के कारण उस पर क्रुद्ध हुए तो उसका समस्त बभ्रव ही नष्ट कर लिया। इन्द्र से प्रतिशोध लेने के लिए, उन्होंने पृथ्वी से नहुप का बुला कर इन्द्रत्व प्राप्त किया। फिर परिस्थिति कुछ परिवर्तित हुई शची और इन्द्र के पुत्र जयंत के अनुनय विनय क्षमा-याचना तथा अतिशय विनीत व्यवहार से गुरु वहस्पति का इन्द्र के प्रति रोष गान पड़ गया। उसर इन्द्र ने भी क्षमा-याचना के लिए एक वडा ही दय भावपूर्ण पत्र लिखा। दूसरा भी गुरु वहस्पति पर बहुत प्रभाव पडा। जिस नहुप का उ होने स्वयं इन्द्र बनाया था 'प्रम व उमी की अपराध करने के लिए उपाय सोचन लगे। एक पडयंत्र रचा गया। उमी की सन्तान के लिए पत्रस्वरूप नहुप का पतन हुआ। नहुप नाटक व तीन अंका की कथा में इसी का वर्णन है। देखक न इसे उहुत अधिक विस्तार दिया है। 'म पढने व उतरान पाठन की महानुभूति नहुप की आग, जो नाटक का नायक है अधिन बढ जाती है क्यकि उसकी दृष्टि में यह वास्तविक अपराधी नहीं रहता। परन्तु गुरु वहस्पति के प्रति अर्च तथा घणा का भाव जागत होने लगता है, क्यकि वे अपन हाथा स राये कथा को अपनी ही कुल्हाडी में बाट डानत हैं।

नहुप नाटक की तृतीय में पंचम अंक तक की कथावस्तु के स्नात का विचार करने पर महाभारत व उद्यानपर्व की कथा के साथ उसका मालम्ब अधिक है। इसमें यद्यपि गुरु वहस्पति का वह रूप नहीं है जसा नाटक में है। यहा व एन शरण्य व रूप में सामन आत हैं जो कि अपनी शरण में आय हुए व्यक्ति की प्रत्येक प्रकार से रक्षा एवं महायता करने व लिए प्रयत्नशील है। महाभारत व 'म आश्वान में नहुप का स्वर्ग के रिक्त सिंहासन पर विठान बारे तथा एवं ऋषियाम गुरु वहस्पति व नाम का उल्लेख नहीं है। वहा ऋषि और दवता मम भिनकर नहुप व पाम जाकर स्वर्ग का राजा बनने की प्रायना करत है' किन्तु वह इम वाय व लिए अपन का दुवल बताना है। तम व अपना तपायल उम देत हैं और वरदान भी नि—

'जा त्वना शनव यन् राशम, पितर गंधव और भूत मुष्टारे नथा के सामने आ पाएंग, उह दवन ही तुम उनका तज हरण कर लाग।^१ दवा एवं ऋषियाम या तप और वरदान प्राप्त करत हुए नहुप दबदब बना तो सही किन्तु वतने वडे बभ्रव और विविध प्रशानना में पडकर वह काममागो में आमकन हो जाता है और एक दिन पूव इन्द्र की पतिव्रता पत्नी व मौत्य का दवकर उस पर मोहित हो जाता ह। शची अपन सनीत्व की रक्षा व लिए गुरु वहस्पति की शरण में जानी है^२ और व शरणागत की पूणतया रक्षा करत

१ मगधारात उद्योग० म ११ श्लोक १२।

२ वही म ११ श्लोक ४८।

३ वही म० ११ श्लोक १५।

हैं।^१ परन्तु उधर नहुष को अपने इद्रत्व का गव है वह पूव इद्र की प्रत्येक वस्तु पर अपना अधिकार सम्भन्ना है। समय को टालने के लिए गुह बहस्पति के परामश से शची नहुष के पास जाकर कुछ नाल की अवधि माग लेती है। इसके पश्चात् इद्र के पास जाकर उसकी सम्मति से अवाह्य यान पर अपने पास आने के लिए नहुष को स्वयं बहती है। विवेकविमूढ नहुष ऋषिया के कंधे पर पालकी रखवाकर जाता है और भाग म ही अगस्त्य के शाप से पतित हो जाता है।

नहुष नाटक की कथावस्तु में सप्त ऋषिया के कंधे पर रखी पालकी में नहुष के पतन के पश्चात् जयन्त बहस्पति के आश्रम में अपने पिता को मानसरोवर से इन्द्रपुरी में लाता है। अश्रमध यन् के पश्चात् उसे पुन इन्द्रासन पर अभिषिक्त किया जाता है। नाटक में समस्त घटनाओं का सूत्र गुह बहस्पति के हाथ में है वे ही सबसे संचालक और विधायक हैं परन्तु स्वर्गपुराण में आश्रयान में गुह बहस्पति, शची और नहुष का जो रूप चित्रित किया गया है वह सज-सुछ भिन्न है।

यहाँ दबलोक छोड़कर इद्र के चले जाने पर स्वर्ग में अराजकता सी फल जाती है। ममस्त वायानाय को विचार कर अश्रय दवा के साथ बहस्पति उस जलागण के पास जात है जहाँ इद्र पानी में ब्रह्महत्या के भय से छिपकर बठा हुआ है। बहस्पति इद्र से कहते हैं कि तुम्हारी इस समय जो स्थिति है वह तुम्हारे लिए कर्मों का फल है। तुमने जो मरा अपमान किया उसी से तुम्हारा एश्वय नष्ट हो गया है। इस विश्वरूप की हत्या का कोई प्रार्थित नहीं है। तुम्हारे सौ अश्वमेधा का फल भी नष्ट हो गया है। इद्र ने कहा कि मैं तो अपने कर्मों का फल भोग ही रहा हूँ आप अमरावती में जाकर जिम चाहते हैं इद्र बना दीजिए।^२

अश्रय दवा के साथ बहस्पति इद्र के साथ हुई अपनी बातचीत का विवरण देकर, वस्तुस्थिति का विवरण कर ही रहते हैं कि दवायि नारत्त न नहुष को इद्र बनाने का प्रस्ताव किया और सम्मति से इद्र के सिंहासन पर नहुष को बिठा दिया यद्यपि शची को यह पसन्द नहीं था। अतः म बही हुआ जिसकी शची का आगवा थी। नहुष ने इद्र बनत ही, शची का अपनी राती बनाना चाहा। बहस्पति के सादर दा पर उमन प्रतिमत्ते भेजा कि अवाह्य वाहन से यहाँ आकर वह मुझ प्राप्त कर सकता है।^३ इस पश्चात् मर्त्यायि नहीं कवन दा ऋषिया के कंधे पर रखा गिरिका में बठकर वह बना और 'सप सप कहकर उन्हें हीवन गया। अगस्त्य के शाप में उमका पतन हुआ। नहुष के पतन के पश्चात् इद्र के रिक्त आसन पर ययानि का अभिषेक हुआ। उसके मा पतन के अनन्तर शची के प्रयत्न से पूव इद्र का लोकार पुन दवराज बनाया गया है।

पुराण के दम आश्रयान में नाटक की कथावस्तु की शची के समान यहाँ का शची न ता दीन है और न मवदा अममय। गुह बहस्पति के भाग वह दीन बनकर नहा आता है।

१ महाभारत उद्योग ध १२ अनाठ १२ १६।

२ स्वर्गपुराण आश्रयान १२ अनाठ २१ २४।

३ स्वर्गपुराण १२-२६।

वह उन्हें काय का आदेश देती है। न करन पर गाप देने का भय लिग्नाती है।^१ बहस्पति अथ दवा के साथ जाकर ब्रह्महत्या का पृथ्वी, वृष जल एव नारिया म विभक्त करके, निष्कल्प इद्र का अमरावती में लाकर पुन दवराज बना देत हैं।

स्कन्दपुराण के आख्यान के इस भाग का, नहुप नाटक की इस कथा के साथ घटनाओं का, पात्रों के स्वरूपा का तथा विवरण का वैसा सादृश्य नहीं है जमा कि महाभारत के उद्योगपथ व कथानक के साथ है।

नाटक के पष्ठ अक्ष के अंत में, पून इद्र के पुन दवराज के मिहासन पर आसीन होने पर नहुप की अगस्त्य से अमिताप्त, हजारों वर्षों पयंत, अजगर के रूप में रहने के उपरान्त धमराज युधिष्ठिर के सयाग से मुक्ति पाकर एव ब्रह्मतोष के वान का अधिकारी बनकर, त्रिव्य शरीर धारण करके विमान से अमरतोष में गुजरता हुआ दिखाया गया है। इस घटना का आधार स्पष्टतः महाभारत है।^२

विवेचन

लेखक न नहुप नाटक की रचना न ता एकांत रूप से महाभारत के उद्योगपथ के कथानक व आधार पर ही की है और न स्कन्दपुराण व माहेश्वर खण्ड के कथानक के आधार पर ही। कुछ घटनाएँ महाभारत के आख्यान से भिन्नती जुनती हैं ता कुछ स्कन्द पुराण के आख्यान से। एन बात और भी है नहुप के आख्यान का ता पुराण माहृत्य में अधिक विस्तार नहा है किन्तु इद्र और वष के आख्यान का ता पुराण माहृत्य में तब विशेष रूप से, और उमके पश्चान् भी सामान्यतया बडा विस्तार है। यही बात दधीचि के आख्यान के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। भिन्न भिन्न ग्रंथा में कथाओं के रूपा में भी भिन्नता आ गई है।

लाकविश्रुत ऐसे आख्यान अति दीघमाल तन जनता के साहित्य की, जिसका प्रमुख रूप समवन सहस्राण्डिया तन मौखिक रहा है मूयवान सम्पति रह है। रामायण महाभारत, पुराण प्रमति आकर ग्रंथा का जय संग्रह हुआ ता तत्तत प्रदग में प्रचलित कथा व रूपा को संग्रहकर्ताओं ने संगहीन कर दिया। यह संग्रह भौ किसी एक काल में नहीं हुए है, युगा तन चलत रह हैं। इसीलिए एक ही कथा, एक ही ग्रंथ में कई स्थान पर कुछ भेद व साथ मिल जाती है।

यही बात नहुप के आख्यान के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। महाभारत में ही यह आख्यान पांच स्थानों पर आया है। इसका सबसे अधिक विस्तृत रूप उद्योगपथ के आख्यानरूप में है।^३ अनुशासनपथ में जो आख्यान है, वह एक भिन्न प्रसंग में मगु और अगस्त्य की बातचीत में आया है।^४ सप्तम भेद से कथा का रूप भी भिन्न हो गया है। आदि,^५

१ स्कन्द० माहेश्वर खण्ड १६ पात्र ४६।

२ महाभारत वनपर्व अ० १८१ ४४।

३ महाभारत उद्योगपथ अ० ६ १८।

४ वही अनुशासनपथ अ० ६६ १००।

५ वही आदिपर्व, अ० ७५ २५ ३०।

बन' एवं 'गति' पर्वों के आख्यान बहुत छोटे हैं। यहाँ बचानक म वह प्रवाह और एकरूपता नहीं है। इसी प्रकार पद्म पुराण के भूमिखण्ड के आख्यान में नहुष की कथा का जो रूप मिलता है वह इन कथाओं से सबथा भिन्न प्रकार का है। वहाँ उसने जन्म से लेकर विवाह पद्यत की कथा है।^१

स्वर्ग में इंद्रासन पर आसीन हान एवं अग्रस्त्य के शाप से पुन पृथ्वीगत पर आन का वहाँ कोई उल्लेख ही नहीं है। उस आख्यानरूप का विनास सबथा भिन्न परिस्थिति में हुआ है। स्कन्दपुराण के महेश्वर खण्ड का आख्यान भी त्रिगिष्ट धामिनी परिस्थिति के बानावरण में ढाया गया है। वहाँ के आख्यान में स्कन्द स्वर्ग पर भिन्न भिन्न अग्रमरा पर गिब की पूजा एवं भक्ति का विधान है। इसीलिए वहाँ सबथ गिब की ही प्रधानता है।

नहुष नाटक के लेखक श्रीकृष्ण के परम भक्त हैं। अतः स्कन्द स्वर्ग पर उठाने अपनी भावना का रंग नाटक की घटनाओं एवं पात्रों के चित्रण पर भी चलाया है। महाभारत के उद्योगपत्र के आख्यान में भी ब्रह्मा और विष्णु की प्रधानता है इसीलिए कुछ घटनाओं का छोड़कर सामान्य रूप से नाटक की कथावस्तु का आधार महाभारत तथा ही अधिन है।

सत्य हरिश्चन्द्र

भारतेशु बा० हरिश्चन्द्र द्वारा रचित सत्य हरिश्चन्द्र नाटक सन १८७१ के अंत में लिखा गया और अगले वर्ष काशी पत्रिका में प्रकाशित हुआ। यह नाटक भारत-दुता के प्रीड बान की रचना है अतः इस अद्युष्ट माना जाता है। इस नाटक के लिखन का उद्देश्य भारत-दुती न सत उपक्रम में स्वयं ही स्पष्ट कर दिया है—

'भर मित्र बान् बान्-प्रमाण वी० ए० में मुझमें वहाँ कि आप काइ ममा नाटक ना विमें जा तड़का के पत्त-पत्तन के माग्य हो, क्योकि तुमारे रस के आपन जा नाटक विमें हैं के बन् नागा के पत्तन के हैं नरेश का उनमें काई लाभ नथा। उहाँ की इच्छा नुसार मैंन यन् गय हरिश्चन्द्र नामक स्वर लिखा है।'

इन पंक्तियों में स्पष्ट है कि भारत-दुती का इस नाटक का लिखन का उद्देश्य 'स्वात मुगल' न। बान्जन हिनाय मुख्य रूप में रहा है। स्वान्त मुगल ता फन के रूप में उद्युष्ट कृतिना में प्राप्त हा हा जाता है। भारत-दुती के हृदय में अपनी भाषा और राष्ट्र के लिए अमाम स्न' था। सत्य हरिश्चन्द्र द्वारा राष्ट्र में रहने बान व्यक्तियों के चित्रण में यह स्पष्ट

१ कथा बचन पृ १०८, १, २६।

२ कथा गति पृ ६२, ४४, २३।

३ पद्म पुराण भूमिखण्ड पृ १०२, ११०।

४ भारत-दुती नाटक-कथा 'सत्य हरिश्चन्द्र' का 'बचन व भाषा प्रकाश' नामक संग्रह में 'सत्य हरिश्चन्द्र' नामक कथा का उद्देश्य पृ १६६२, पृ ११।

ही है। इमानिए उहनि अपनी रचना क माध्यम क लिए, भारतीय पौराणिक साहित्य का एक परमाज्ज्वल नेवरतन जुना, जा सत्य, धर्म, त्याग तपस्या तथा नतव्यपालन के हेतु सर्वस्व चोछावर करन के लिए मग उद्यत रहा।

भारत-दुजी ने जिस प्रकार हृष्यानुराग की उच्च भूमि की स्थापना चन्द्रावती म की है उसी प्रकार आदम स्वल्प बाह्य सत्यसिद्धात की स्थापना उहोंने सत्य हरिश्चन्द्र म की है।^१ राजा हरिश्चन्द्र क समान भारत-दुजी का अपना जीवन भी अपने सिद्धाता एव आत्सों की रक्षा क लिए श्री अखिल ब्रह्म म व्यतीत हुआ। विद्वाना न नाटक क नायक एव लेखन दाना के जीवन म समता की स्थापना की है।

जो गुण नप हरिश्चन्द्र म, जगहित सुनियत कान।

सो सय कवि हरिश्चन्द्र मे, लखहु प्रतच्छ सुमान ॥^२

दावू हरिश्चन्द्र के सय हरिश्चन्द्र का कुछ आभाचका न उनकी सर्वोद्भूट मौलिक रचना माना है।^३ डा० दण्ठ आभा इस तबसे प्राड और उत्तम वृत्ति मानन ^४ कुछ विद्वाना के विचार स यह उनकी प्राड एव उत्तम वृत्ति हान हुए भी, प्रस्तुत रचना सवथा मौलिक न हुकर स्थापन है। डा० वीरन्द्रकुमार गुक्ल का विचार है— भारत-दुजी क नाटक म 'सय हरिश्चन्द्र' तथा विद्यामुक्त स्थापनित नाटक है। स्थापनित नाटक अनुवादा म भिन हान है। नाटक की आभागिता एव मौलिक नहीं हानी मून कनामा कु आभार माननर उनका कतर परिवर्तन कर दिया जाता है। उक्त मौलिक परिवर्तन म नाट्यकार का निज की प्रतिभा ना विनिवेश रहता है। आयानुवादा म नाट्यकार की अभिरचि के अनुसार हा परिवर्तन दखन का प्राप्त हान है। स्थापनित नाटक म अनून्ति तथा मौलिक रचनामा के मध्य क गुण हात हैं। अनुवाद का अग मून हाना है परन्तु मौलिक विचारधारा का समावेश अघि वृष्टिगत हाना है।^५ सय हरिश्चन्द्र नाटक न ता अनुवाद है और न सवथा मौलिक। इन दाना हा रपा म सर्ग कन गौर दाना स भिन यह स्थापनित है। इसम कुछ घस ठमर का और कुछ सवथा भारत-दुजी का उद्भावना गति की देत है स्याकि यह रचना अति प्रीत एव सुमगठित है, अत यह सवथा मौलिक जसी प्रतीत होनी है। नाटक की कथा इस प्रकार है—

कथानक

इन्द्र राजसभा म पठ है कि सभी नाटकजी पहुँचकर हरिश्चन्द्र क सय और धय का प्रसना करत हैं। इन्द्र ना दप्या हानी ^६ दसनि विद्वामिन इन्द्र की ईप्या दखकर

१ डॉ० गोपीनाथ त्रिपाठ्यत भारत-दुराजान नाटक माध्यम प्रकाशक हिाग भवन, इतहासा १९२९ पृष्ठ १५०।

२ वही पृ १५०-१६१।

३ सय हरिश्चन्द्र की प्रस्तावना पृ २।

४ डॉ० नरधामाकर धारण्य आधुनिक हिा साहित्य म म १९४० इ पृ २२१।

५ हिा नाटक उद्भव और विकास प्रथम स पृष्ठ २१२।

६ भारतेदु का नाट्य साहित्य, प्रथम स० १९५५, पृ० १६३।

हे। प्रातः काल महारानी शय्या, महाराज की उनीची आँसों देवकर रूट होती हैं। इतन म ही गुरुजी के पास स एक तापस गतिजल लेकर उपस्थित होना है, तत्र जागरण के रहस्य को जानकर महारानी उनस क्षमायाचना करती है। उधर महाराज हरिश्चन्द्र विघ्ना के भय स व्याकुल होकर मनोविनोद की इच्छा से आखेट करने के लिए वन की ओर जाते हैं। वन म महर्षि विश्वामित्र महाविद्याया का वस म करने के लिए, अपन आश्रम म यत्र कर रट है। विघ्नराट उमम विघ्न डाल रहा है। नारी रूप म महाविद्याया व आतनाद को सुनकर महाराज उनकी रक्षा करत हैं। महर्षि विश्वामित्र अपने वाय म महाराज का बाधक समझ कर क्रुद्ध होकर उनकी भमना करत हैं। उनके प्राथ का शात करने के लिए महाराज उह अपनी समस्त पथ्वी तथा महापान की दक्षिणा के रूप म एक लाख स्वण मुद्राएँ भी दाा कर दत हैं। दक्षिणा की मुद्राएँ प्राप्त करन के लिए वे काशी जात हैं और आधा लाख स्वण मुद्राया के लिए रानी का और दाप के लिए चाण्डाल के हाथ स्वय को बचकर विश्वामित्रजी की दक्षिणा चुका दत है। चाण्डाल व दास के रूप म व दम्पान म बहा श्रिया व लिए मुदा लान वाला स कर के रूप म कपन लेने लगत हैं। एक दिन सप द्वारा काट लेन स रोहिताश्व की मृत्यु हो जान पर दासा बनी रानी गया पुत्र के अतिम मन्त्रार के लिए उनी घाट पर आती है। हरिश्चन्द्र, मत-पुत्र के पाम विनाप करती रानी का पहचानकर वृत्त दुःखी हात है किन्तु इम अवस्था म भी अपन कर्तव्य म विचकित नही होत हैं तथा क्रिया करने स पूव रानी स कपन मागत है। राजा की सत्यनिष्ठा एव क्त यपरायणता स प्रसन हाकर भगवान धम आत हैं और रोहिताश्व को पुन जीवित कर तथा हरिश्चन्द्र का राज्य लौटाकर उम पर रोहिताश्व का अभिषिक्त कर दत है। महाराज अयोध्या की प्रजा सहित पुण्या के भोग के लिए ब्रह्मलोक के अधिकारी बना दिए जाते है।¹

अतर

भारत दुजी व सत्य हरिश्चन्द्र की कथावस्तु मे इमसे कुछ भिन्नता है। देवराज इन्द्र की समा म देवर्षि नारद अयोध्या स लौटत हुए जात है। व अयोध्या के राजा हरिश्चन्द्र की सयप्रियता की प्रशसा करत हैं। सुनकर देवराज के हृदय म भय और विद्वेप की भावना जागत हानी है और वह उसकी सत्यनिष्ठा की परीभा लेना चाहता है। नारद उसके अशा मन विचार से सहमत नही होत है। इसा बीच महर्षि विश्वामित्रजी तथा इन्द्र दाना मिलकर राजा हरिश्चन्द्र को सत्य स भ्रष्ट करन की एक याजना तयार करत है। इनके समस्त क्रियावय का भार विश्वामित्रजी अपने ऊपर लेत है। उधर अयोध्या म राजा और रानी दोनो ही अनुम स्वान दखत हैं। राजा, सत्य महाविद्याया को वस म करने वाल एव क्रीधी ग्राहण से छी रूपधारिणी महाविद्याया की रक्षा करत हुए उसका कापभाजन बन जाता है। विनयपूर्वक मनाए जान पर वह राजा स उसका समस्त राज्य माग लेता है। रानी को स्वन् म राजा शरीर पर भस्म लगाय दिखायी देता है तथा रोहिताश्व का सप डस लेता

है। दाना स्वप्न के अग्रिम फल की शान्ति के लिए कुलगुरु उपाय करते हैं।

राजा स्वप्न में दिए दास का उसी ब्राह्मण का सौपन के लिए चिन्तित है तथा मन्त्री का बुलाकर आशंका देते हैं कि जब तक वह ब्राह्मण नहीं मितना हरिश्चन्द्र प्रतिनिधि के रूप में उसके राज्य की रक्षा करते रहेंगे। इसी समय त्रास से उद्भासित विन्वाभिन्न आ जाते हैं और स्वप्न में लिया राज्य तथा ज्ञान की दक्षिणा मांगते हैं। हरिश्चन्द्र राज्य अर्पित करके दक्षिणा की दम सहस्र स्वयं मुष्ण एव गाम नर चुनाने का आदेशात्मक दत्त है। काशी जाकर पांच सहस्र म राहिताश्व सहित रानी का एक ब्राह्मण के हाथ तथा गण राशि के लिए अपने को एक चाण्डाल के हाथ बंधकर ऋणमुक्त हो जाते हैं। चाण्डाल का दास बनकर, श्मशान में अपने स्वामी के लिए व मनक कर वसूल करते हैं। एव न्नि गव्या मत-पुत्र राहिताश्व का गरीर तकर त्रिया के लिए उन्नी श्मशान में पहुँचता है। हरिश्चन्द्र रानी और पुत्र गरीर का पहचानकर कुछ क्षणा के लिए विचिन्तित दान लगते हैं परन्तु गाम ही प्रकृतिस्थ होकर मन क्षार की त्रिया के रूप में पूज्य अन्न स्वामी के आदेशानुसार गण या से आधा कर्षण मांगते हैं। अम ठारतम परीक्षा में भी राजा का अविचल तथा सयनिष्ठ देखकर भगवान् स्वयं दशन दत्त हैं। राशिनाश्व का पुत्र जीवन प्राप्त होता है। इन्द्र और विश्वामित्र वहाँ आकर हरिश्चन्द्र की प्रशंसा करने हैं तथा उनका राज्य लौटते हैं।

भारत-तुर्गी के समय हरिश्चन्द्र एक आय क्षमास्वर के चण्डीगिरि इन दासों नाटकों का प्रकृत कथानुष्ठा का सुनना मन्त्र दृष्टि से स्वप्न पर दाना में अधिक अन्तर प्रतीत नहीं जाता है। साथ ही दोनों साथ ही एक भी नहीं हैं। डा० वारेडकुमार के अनुसार दाना का अन्तर कुछ इस प्रकार है—

सत्य हरिश्चन्द्र में नवानता तथा मौलिकतामूलक कथापरिवर्तन, इन्द्रसभा में नारद का प्रवेश तथा अयाग्या के राजा हरिश्चन्द्र की प्रशंसा करना है। इन्द्र का द्वेष के कारण गन्धर्व्युक्त होना तथा उसकी परीक्षा का युक्ति निगानना विश्वामित्र का आगमन नारद के ज्ञान के उपरांत सत्य की परीक्षा लेने की मन्त्रणा करना और राजा तथा रानी के स्वप्न की वाचा आदि मुख्य हैं। इनके अनिर्दिष्ट सिद्धियाँ के प्रलाभन से विचित मात्र भी न लिंगना, दुःख और विपत्ति से छुटकारा पान के लिए आत्मघात के लिए उद्यत होना, अन्न में शिव, विष्णु आदि अन्न देवताओं का आना नवीन परिवर्तन कह जा सकते हैं।

चण्डीगिरि के कथानक में उपयुक्त छायानुवाच सन्निभ स्वरूप स्थापित करके दान कथा प्रसंग इस प्रकार है—

‘प्रथम अन्न में विद्वेषक राजा तथा रानी के कथापरिवर्तन, विन्नाट का वारह रूप धारण करना तथा राजा का आघात के लिए जाना विश्वामित्र की तपश्चर्चा महाविद्याया का भ्रमवर्ण वचन में राजा पर बाध तथा सबस्वप्न गण चाण्डाल का राजा हरिश्चन्द्र को श्मशानघात तक ले जाना मतवर्मा की सूचना तथा राहिताश्व का अर्पण। आवश्यकता अनुसार नवीन पात्रों का भी प्रवेश लाया गया है। सत्य हरिश्चन्द्र में चण्डीगिरि के कुछ पात्रों के वैयक्त नाम मात्र ही बदलते पड़े हैं। उदाहरणार्थ चण्डीगिरि की चारमति के स्थान पर मन्त्री मगा के स्थान पर भरव तापस के लिए ब्राह्मण तथा धम के स्थान पर भगवान् का प्रवेश कर दिया गया है। सत्य हरिश्चन्द्र की नवानता केवल इस प्रकार के

इसमें भावसाम्य भी इतना अधिक है कि पाठकों के मन में सत्यहरिश्चन्द्र पढ़ते समय चण्डकौशिक के साम्य-युक्त स्थला की स्मृति आय बिना नहीं रहती। इस बचन की पुष्टि के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि दोनों नाटकों का तुलनात्मक रूप यहाँ प्रस्तुत किया जाए।

सत्य हरिश्चन्द्र एवं चण्डकौशिक दोनों नाटकों से कुछ मूल अंश नीचे दिए जा रहे हैं—

सत्यहरिश्चन्द्र से—

हरिश्चन्द्र—लोजिए इनमें विलम्ब क्या है ? मैंने तो आपको आगमन के पूर्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया। (पृथ्वी की ओर देखकर)

जेहि पाली इच्छवाकु सौं, अब लो रवि कुल राज।

साहि दंत हरिचंद नय, बिश्वामित्रहि आज ॥

वसुधे तुम बहू सुख कियो, मम पुरुषन की हौय।

धरम बढ़ हरिचंद की, छमहु सु परवस जोय ॥^१

सत्य हरिश्चन्द्र के इस पद की तुलना चण्डकौशिक के निम्नांकित पद से कीजिए—

“राजा—भगवति वसुधरे तदियमापृप्सामि—

यवस्वतेन पतिभि किल लोकधात्रि

त्व देवि वीरयगासा सह रक्षितासि।

त्यक्ता मया यदसि दुतभ पात्र लोभाद्

एक क्षमस्व मम दुनयमेनमेव ॥^२

दोनों पदों में विषय अंतर नहीं है। सत्य हरिश्चन्द्र में चण्डकौशिक के पद्य का ही स्वतंत्र रूपान्तर मात्र है।

भाग उत्तराहरणस्वरूप कुछ और साम्य युक्त स्थान दोनों नाटकों से प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

सत्यहरिश्चन्द्र से—

हरि०—महाराज मैं ब्रह्मचण्ड से उतना नहीं डरता जितना सत्य दण्ड से। इससे—

बेचि देह दारा मुघन, होइ डारत हू मद।

रखिहै निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचंद ॥^३

चण्डकौशिक से—

“आत्मानमेव विक्रीय सत्य रक्षामि नाश्रयतम्।

सस्मिन्नरक्षिते नून सोऽद्वयमरक्षितम् ॥^४

१ सत्य हरिश्चन्द्र (भारतभूषण नाटकावली भाग १) पृ० ६२।

२ चण्डकौशिक—बाबलगायत्र समरणा १६३१ अंक २ पंजाब ३३।

३ सत्यहरिश्चन्द्र (भारतभूषण नाटकावली भाग १) पृ० ६६।

४ चण्डकौशिक—अंक २ पंजाब ६ पृ० ८०।

सत्य हरिश्चन्द्र का दाहा चण्डकौशिक के श्लोक का नगण्य भेद के साथ छायानुवाद मात्र है।

× × × ×

सत्य हरिश्चन्द्र से—

“हरि०—क्या करें ? कुबेर को जीत कर धन लावें ? पर कोई शस्त्र भी तो नहीं है, तो क्या किसी से माग कर दें ? पर क्षत्रिय का तो यह धम नहीं, कि किसी के आगे हाथ पसारें ?”

चण्डकौशिक से—

कि जित्वा धनमाहरामि धनदम त्यक्तश्रिय किं जये ?

धात्वादयमपि द्विजातिसुलभ न क्षत्रिया बुधते ।^{१२}

ऊपर सत्य हरिश्चन्द्र का गद्य भाग उस श्लोक की छायामात्र है।

× × ×

सत्य हरिश्चन्द्र से—

विश्वामित्र—(आप ही आप) हमारी विद्या सिद्ध हुई भी इसी दुष्ट व कारण सब बहक गई। कुछ इन्द्र के बहन ही पर नहीं, हमारा इस पर स्वन भी काष है, पर क्या करें, इसके सत्य, धय और विनय व आगे हमारा श्रेय कुछ काम नहीं करता। यद्यपि यह राज्य भ्रष्ट हो चुका, पर जब तक इस सत्य भ्रष्ट न कर लूंगा, तब तक मेरा सत्तोप न होगा ।^{१३}

चण्डकौशिक से—

“प्रणागाद विद्याना करतल-गतानामुपचितौ ।

निरुद्धो दुयुद्धे विनयमसणस्तस्य चरित ॥

× × ×

पश्यामि यावच्चलित न सत्याद् ।

राज्यादिव स्वादचिराद् भवतम ॥

त्वद् नयोद्दीपित-सौम्र तेजा ।

तावन्नमे शांतिमुपति मयु ॥^{१४}

हिन्दी के गद्यचण्ड एवं चण्डकौशिक के दोनों पद्या के अतिशय साम्य का लक्ष्य बीजिए कितनी एकरूपता है—

सत्य हरिश्चन्द्र से—

‘हरि०—(ऊपर देखकर) क्या कहा ? क्या तुम ऐसा दुष्कर काम करते हो ? आय यह मत पूछो, यह सब काम की गति है। (ऊपर देखकर) क्या कहा, तुम क्या कर सकते

१ सत्यहरिश्चन्द्र (भारतेन्दु नाटकावली भाग १) पृष्ठ ७४ ।

२ चण्डकौशिक—अध २ श्लोक ८ पृष्ठ ७६ ।

३ सत्य हरिश्चन्द्र—(भा ना० भाग १) पृष्ठ ७५ ।

४ चण्डकौशिकम्—अध ३ श्लोक १२ १३ पृ० ८२ ८३ ।

ही क्या समझत हो और जिम तरह रहाने ? इसका क्या पूछना है । स्वामी जा कह्या वह करण, गमभक्त सय कुछ ह पर इस समय पर समझता कुछ नाम नहीं घाना और जिम प्रकार स्वामी रसेगा कम रहग । जय धरन से घा ही गिया पर इसका क्या विचार है । (ऊपर देखकर) क्या क्या ? कुछ नाम कम क्या ? और तम साथ ता क्षत्रिय हैं हम दा यान नहीं से जानें ।^१

इस गद्यगण्य का नीचे का चण्डीगीत का गण्य म प्रति पक्षि और प्रति गण्य मित्त कर साम्य और असाध्य के अंगित—

× × × (आसामे) कि ब्रूथ ? तिमयमित्त त्वया गण्य कम प्रारथमिति ?
निमानानि तिमधेन विचित्र गण्य जीवनात् । (पुनःपुनः गद्या घातानि) कि
ब्रूथ । ता गति कि च ते कम कीत्त च पानमिति ? (स्मित्वा) —

यद अशरितानि स्वामी तत परोम्यविचारितम् ।

गासनास्खला भक्तुभत्यस्य परमो गुण ॥

(आसाम्य) कि ब्रूथ ? भूखितर मूल्यमुक्तवानमि तन् पुन नावन्भिधीयतामिति ?
(मत्तम्) भा भी साधर । तिमिवा वरम न पुन पुनरभिमान जानाम ।^२

^ < × ×

मयहरिश्चन्द्र मे—

'हरि०—ग्रहह ! भाग्य ! यह भी तुम्ह देसना था ? हा ! अयाया की प्रजा रोती रह गयी । हम उनका कुछ धीरज भी न द आए । उनकी अब कौन गति होगी । हा ! यह नहीं कि राज छूटन पर भी छुटवारा हो । अब यह क्या पडा । हत्य । तुम इस चक्रवर्ती की सेवा योग्य बालक और स्त्री का विमता देगार दुकड दुकड क्या नहीं हा जात ? (बारबार लम्बी भांस कर भांस वहाता है ।)^३

सत्य हरिश्चन्द्र का इस गण्य की तुलना अब चण्डीगीत का नीचे का इस पद्य से कीजिए और हमने अन्तिम साम्य को सत्य कीजिए—

'धारा सिक्त तणाप्र विदुत्तरला काम निरस्ता त्रिय

त्यक्तास्ते सुहृदोऽनु वेन वदना नाशवासितास्ता प्रजा ।

दाराणा तनयस्य विशयमहो दष्टवापि यच्चेतसा ।

चूरेण स्फुटित न मेऽद्य हृदय वज्रेण मये कृतम् ॥'^४

× × × ×

सत्य हरिश्चन्द्र मे—

'गव्या—(ऊपर देखकर) क्या क्या ? क्या क्या करानी ? मरपुरुष से सभापण और उच्छि

' । छट भोजन छोटकर और सब भावा कम्पनी । (ऊपर देखकर) क्या कहा ? इतने माल

१ सत्य हरिश्चन्द्र—भा० ना भाग १ प ७३ ।

२ चण्डीगीत—अव ३ प० ५७ ५८ ।

३ सत्य हरिश्चन्द्र—अव ३ पत्रोत् १६ प० ७८ ।

४ चण्डीगीत—अव ३ पत्रोत् १६ प० ५६ ।

पर कौन लेगा ? अथ, कोई साधु ब्राह्मण महात्मा वृषा करके ले ही लगे ।

(उपाध्याय और वटुक आत है ।)

उपाध्याय—क्या र कौशिक सब ही नासी प्रियती है ?

वटुक—हा गुजरी, क्या मैं भूत बहूंगा ।^१

अत्र इस खण्ड की एकरूपता नीचे के चण्डीशक्ति के सम्बद्ध खण्ड में परित्यक्त कीजिए—

चण्डीशक्ति में—

'गव्या—(आवागे वण दत्वा) अज्जा ! कि भणाय ? नित्तिसो दे ममघाति ? परपुरिस—
पज्जुवामण पफ़्छिट्ठभोग्गण परिहरिअ सत्तम्मदारिणीति ईत्तिसो म ममघो ! (पुन वण
दत्वा) कि भणाय ? वा तुम इमिणा समएण विणित्तिसदित्ति ? ता गच्छ म पसीदध, कि
तुम्हाण इमिणा पओघण, त्तिअररा दीणजणानुक्की अणो वा कोवि माधू म विणि
म्मत्ति ।^२

(तत प्रविशति उपाध्यायो वटुश्च)

उपा०—वस कौशिक सत्यमेवापणे दामी विनीयत ?

वटुक—विभनीकमुपाध्याया विनाप्यत ।^३

स्पष्टत ही भारते-दु जी न चण्डीशक्ति के इस खण्ड का अनुवाद मात्र सत्य हरिश्चन्द्र में कर लिया है । वही वार्ध परिवर्तन नहीं है । यहाँ तक कि नाटकीय संकेत भी वही है । आगे के भाग का भी सादृश्य दृश्य है—

सत्य हरिश्चन्द्र से—

'उपा०—(गव्या को त्यक्त्वा) अरे यही दामी विनीयते है ? पुत्री, कहो तुम कौन-कौन
मेवा वगगी ?

गव्या—परपुरिस म समापण और उच्छिष्ट भाजन छोडकर और जा कहिएगा सब मेवा
वगगी ।

उपा०—वाह ! ठीक है । अच्छा तो यह सुनण । हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र की अग्नि का
सवा म घर व काम नाज नहीं कर सकती, सा तुम सम्हालना ।

गव्या—(हाथ पताकर) महाराज आपन बडा उपकार किया ।

उपा०—(गव्या का मनीषाति दग्धकर आप ही आप) अहा ! यह निस्सन्देह किसी बड़े
बुन की है । इसका मुख सहज लज्जा से ऊँचा नहीं होना और दृष्टि वरावर पर ही
पर है । जो बालती है वह धीर धीरे और बहुत सम्हाल के बोलती है । हा ! इसकी
यह गति क्या हुई ? (प्रगट) पुत्री, तुम्हारे पति है न ?

१ सत्य हरिश्चन्द्र (भा० ना १) प ७६ ।

२ (आवागे वण दत्वा) अवागे कि भणत ? कौशिक ते ममघ इति ? परपुरिसपयवानेन पराच्छिट्ठभोजन
परिहृत्य मवक्कमारिणीति ईदधो म ममघ । (पुन वण दत्वा) कि भणत ? वस्त्वामनेन ममघेन
वप्यतीति ? तत्त गच्छ प्रयात्त कि युष्मात्तम अनेन प्रयाजतम् । त्तिअररो वीनजणानुक्की अयोवा
कोवि माधू मा वप्यति ।)

३ चण्डीशक्ति—अव ३ पृ० ६० ।

(ज या राजा को और देखती है ।)

उपा०—(राजा को देखकर आश्चर्य से) अरे यह विदाल नय, प्रसन्न वन्धुवत् और सत्कार की रक्षा करने योग्य लबी लबी भुजा वाला कौन मनुष्य है और मुकुट व याग्य सिर पर तण क्या रखा है ? (प्रगल्भ) महामा तुम हमका अपन दुख का भागी समझो और कृपापूर्वक अपना सब वत्तात कहो ।

हरि०—भगवन, और तो विदित करने का अवसर नहीं है इतना ही वह सजता है कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दगा हुई ।

उपा०—तो हमसे धन लेकर आप भीघ्न ही ऋणमुक्त हुआ ।

हरि०—(दोनों काना पर हाथ रखकर) राम राम ! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है । आप से धन लेकर हमारी कौन गति होगी ।

सत्यहरिदचन्द्र के इस उपयुक्त खण्ड को ध्यानपूर्वक पढ़ने व पढ़नात् यदि प्रति पति एक प्रति गद्य की तुलना नीचे दिए चण्डीगीत के संस्कृत खण्ड से की जाए तो हम इस लिप्य पर पहचेंगे कि भारते दुर्जी ने चण्डीगीत से अनुवात् मात्र कर लिया है । निम्न लिखित मूल अंग के तुलना अंगित है—

उपा०—(दृष्ट्वा सास्वयम) कथमिय सा ? भवति कीदृशस्त समय ?

श या—परपुरुषयथासन परोच्छिष्टभोजा परिहृत्य सवकमकारिणीति ।

उपा०—(सहपम) सुष्ठु खल्वयंते समय । तन्मुनव समयनास्मदगहे विधम्यताम । पत्नी ममाग्नि परिचया पराधीनतया न सम्यक् महावेम्भा क्षमा । तत गह्यता सुवणम ।

श या—(सहपम) अनुगहीतास्मि । यथाय आनापयति इति ।

उपा०—(चिरमवलोक्य सविस्मयमातमगतम)

गिरो यदवगुण्ठित सहज-रुद-सज्जानतम
गतव परिमथर चरणकोटिलक्ष्मे दशो ।
वच परिमितञ्च यमधुर मन्द मदाक्षरम
निज तदियमगता वदति नूनमुञ्च कुलम ॥

(सचितम) ने युक्तमस्यावृत्तिविशेषस्यदभवस्यातरम । तत कथमिमा दगामनुप्राप्ता ? (प्रकाशम) अयि जीवति ते भता ?

श या—(गिरसा सजा दत्ताति ।)

उपा०—अयि सनिहित स्यात् ?

श या—(मात्र राजानम भवलाकयति)

उपा०—(दृष्ट्वा सविस्मयम) अय ! कथमयमस्या भता ? (चिर निवण्य सखेदम्)—

वपस्वथ मत्तद्विरद-कर पीनायतभुजम
वपुव्यूढोरस्क मनु भुवनरक्षा क्षममिदम ।
तण मौली चूडामणि-समुच्चिते किं विदमहो ।
नर धामारम्भ कथिव न विधाता प्रहरति ।

(उपमृत्यु सास्त्रम्) भा महात्मन, स्वदुःखसम्भागाविभागेन मा वक्तुमहसि । तत कथ्यता
किमस्य त्वया प्रारब्धमिति ।

राजा—भो साधो न विस्तरस्यदानी दशकाशौ तत समासत कथयामि श्रूयताम् ब्रह्मस्व
पीडितनेद मया प्रारब्धम् ।

उपा०—तन हि तत प्रतिगह्यता भो धनम् ।

राजा—(कणोपिधाय) भा भो साधो, प्रथमवर्णवतिरिय प्रतिपिद्धास्मदविधानाम ।^१

×

×

×

सत्य हरिश्चन्द्र से—

'हरि०—(अत्यंत धवराकर) अरे अर विवाता ! तुझे यही करना था ! (आप ही आप)
हा । पहले महारानी बनाकर अत देव ने इस दासी बनाया । यह भी देखना वदा था ।
हमारी इस दुगति से आज कुलगुर भगवान् मूय का भी मुख मलिन हो रहा है ।^२
इस छोटे म सद्म की तुलना नीचे मस्वृत्त के मूत्र अश से अवनीकनीय है ।

चण्डकौशिक से—

"राजा—(सवकलयम्) ननु अनुमनमेव प्रमथतो विधे । (सापालम्भम आत्मगतम्) ननु
भो हतविध—

देवी भाव नीत्वा परगृह परिचारिका कृता यदियम् ।

तद्विद चूडारत्न चरणाभरणस्वमुपनीतम् ॥

(सविदोपकरणम्) भा कष्टम्—

ममविधि निहतस्य मद बुद्धे

ध्रुवमधुना सुत दार विश्रयेण ।

निजकुल परिवार मममूर्ते

अपि सवितुमलिनीकृता मुखश्री ॥"^३

यहां स्पष्टत ही चण्डकौशिक से जा बात कही गई है उसी का उमी धम म प्राय उसी
प्रकार क शान्ता म सत्य हरिश्चन्द्र म कुछ सङ्गित करके कह दिया गया है ।

सत्य हरिश्चन्द्र से—

'हरि०—(धय से) देवी ! उपाध्याय की आराधना मनी प्रकार म करना और इनके सब
पिप्या से भी मुहूर्दमान रखना ब्राह्मण की स्त्री की प्रीतिरुक्क सत्रा करना बालक का
यथागम्भव पालन करना और अपने धम और प्राण को रक्षा करना । विदोय हम क्या
ममभाव । जा जा त्व त्तिवाव उस धीरज से देखना ।^४

चण्डकौशिक से—

'राजा—(आत्मान सस्तभ्य) प्रिय—

१ चण्डकौशिकम्—अव ३ प ६३ ६४

२ सत्यहरिश्चन्द्र—(मा० ना १) प० ८२

३ चण्डकौशिकम्—अव ३ श्लोक २४ २५ प० ६६ ६७

४ सत्यहरिश्चन्द्र—(मा० ना भाग १) पृ ५२ ८३

आराध्योऽयं ब्राह्मणस्ते सगिप्य,
पत्नीचास्य प्रातिवायोपचर्या ।
रक्षया प्राणा बालक पालनीय
यद् यद् दयं नास्ति तत् तद् विधेयम् ॥^१

यहाँ 'चण्डकौशिक' के इस श्लोक में जो बड़ा गया है, सामान्यतः उम्मी की छायामात्र 'सत्य हरिश्चन्द्र' के सदृश है।

× × × ×

सत्य हरिश्चन्द्र से—

बालक—(राजा से) पिता माँ बर्झा जाती ए ?

हरि०—(धय से आगू रोकर) जहाँ हमारे भाग्य न उस गसी बनाया है।

बालक—(बटुक से) अरे माँ का मत ले जा (माँ का आचन पकड़ के पीचता है)

बटुक—(बालक को ढकेलकर) चल चल देर होनी है।

(बालक ढकेलने से गिरकर रोता हुआ उठकर अत्यंत क्रोध और क्रूर बहना से माता पिता की ओर देखता है।)

हरि०—ब्राह्मण देवता बालक के अपराध से स्पष्ट नहीं होना चाहिए। (बालक को उठाकर धूर पाछ के मुह धूमता हुआ) पुत्र मुझ चाण्डाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्या देखता है ? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दान में सहना चाहिए। जाओ माता के संग मुझ भाग्यहीन के साथ रहकर क्या करोगे ?^२

चण्डकौशिक में यह स्थल इस प्रकार है। तुलना प्रप्रेषित है—

'बालक—आवुव कहि अम्बा गच्छति ?

राजा—(सधेन्म्) यत्र तं पितु बलत्र दासी भूवा गच्छति ।

बालक—अरे बटुक कहि तुम अब णेदुमिच्छसि ? (इति मातु पटान्त धारयति)

बटु—(सकीपम) अयहि गम्भारास ! (इति तिप्त्वा पातयति)

बालक—(साधरमग पितरौ पदयति)

उम्मी—(मारुमवलाकयत)

राजा—ओ ब्राह्मण अनपराद्ध त्विल शैशवम् । तत्राहस्यव वक्तुम् । (बालकमुत्थाप्य सिर स्थाप्रायातिग्य च सबकलव्यम्)—

किं वस, मयुभरविस्फुरिताधरोष्ठ
पापस्य पश्यसि मुखं मम निघणस्य
येषां प्रिया न शिगव पिशिताज्ञानानां
तेषामपि प्रियतमा वनिता तिरश्चाम ॥^३

उपर के दानो खण्ड पढ़ लेने पर उनकी एकरूपता स्पष्ट भनकती है। वही भी कोई विशेष

पचानामपि यो जम क्षत्रयोनी भरिष्यति ।
तथापि ब्राह्मणो द्रोणि कुमारान यो हनिष्यति ॥

(पुनरुध्वमवलोक्य सहपम्) अथ वयममी—

मददष्टिपात भय क्षम्यत लोल घण्टा
टङ्कार पूरित वियत् स्खलतो विमानात् ।
वेल्लद ध्वजागुक् विदष्ट त्रिरीट कौटि
प्रभ्रष्ट कुण्डलमवात् मुलमापतति ॥

राजा— (ऊध्वमवलोक्य सम्भयम्) ग्रहो ! प्रभावस्तपसाम स्थान गतु विनश्यति हरिश्चन्द्र ।
भगवन् अलमयथा सम्भावितन—

गह्यतामोजितमिद भार्या तनय विप्रश्यात् ।
शेषस्यार्थे करिष्यामि चाण्डालेष्यात्मविप्रयम् ॥

कौशिक — (सक्रोधम्) वृत्तमर्धेन, नवसेपमेव दीयताम् । ^१

यहाँ दाना सत्रार्थों को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर स्पष्ट ही भाषित हो रहा है कि सत्य हरिश्चन्द्र म 'चण्डकौशिक' के कथापकवन का प्रायः उसी रूप और क्रम से अनुवाद कर दिया गया है। अथ तीन श्लोकों का अनुवाद यद्यपि म दिया गया है। सत्य हरिश्चन्द्र के नाट्यनिर्देशन भी वही हैं जो चण्डकौशिक के हैं। हिन्दी म उनका अनुवाद मात्र कर दिया गया है।

ऊपर उल्लिखित खण्ड के अनिर्दिष्ट नीचे तुलना के लिए दोनों नाटका के कुछ और भी समान स्थल दिए जाते हैं—

सत्य हरिश्चन्द्र से—

धम—(आगे बढ़कर) अरे ! अरे ! हम तुमको मोत लगे लेब यह पचास सौ माहर लेब ।

हरि०—(आनाद से आग बढकर) बाह वृषातिथान । बट अवसर पर आए । लाइए (उसको पहचानकर) आप मान लेंगे ?

धम—हाँ हम मान लगे । (साना दना चाहता है ।)

हरि०—आप कौन है ?

धम—हम चौधरी डोम सरदार । अमल हमारा दोना पार ॥

सब मसान पर हमरा राज । कफन भागन का है काज ॥

हरि०—(बड़े दुख से) अहह ! बडा दारण व्यसन उपस्थित हुआ है । (विश्वामित्र से) भगवन ! पर पडता हूँ मैं जीवन भर आपका दास होकर रूगा मुझे चाण्डाल होने से बचाइए ।

विश्व०—छि भूख भला हम दास लरर क्या करेंगे ? स्वयं दासास्तपस्विन ।

हरि०—(हाथ जाडकर) जा आजा काजिण्या हम सब करग ।

विश्व०—सब करेगा न ? (ऊपर हाथ उठाकर) धम के साथी देवता लोग मुनें, यह कहता है कि जो आप कहेंगे मैं सब करूंगा ।

हरि०—हाँ, हा जो आप आना बीजिएगा सब कहेंगे ।

विश्वा०—तो इसी गहन व हाय अपने की बेचनर अभी हमारी शेष दणिणा चुका द ।

हरि०—जो आता (आप ही आप) अब कौन मोव है । (प्रवट धम से) तो हम एक नियम पर विकेंगे ।

धर्म—वह कौन ?

हरि०—भीख असन, कवल वसन, रसिहैं दूर निवास ।

जो प्रभु आता होइहैं करिहैं सब ह्व दास ॥

धम—ठीक ह लेव साना (दूर मे राजा व आचल म मोहर दता है ।)

हरि०—(लेकर हप स आप-ही आप)

श्रुण छूटयो पूरयो वचन, द्विजहु न डीनो साप ।

सत्य पालि बडाल ह होइ आजु मोहि दाप ॥

(प्रगट विद्यामित्र स) भगवन, लीजिए यह माहर ।

विश्वा०—(मुह चिन्कर) सचमुच देता है ?

हरि०—हाँ हा यह लीजिए (माहर दत है ।)

विश्वा०—(सकर) स्वस्ति (आप ही आप) वम अब चलो, बहुत पगीना हा चुकी । (जाना चाहत है)

हरि०—(हाय जोडकर) भगवन दणिगा दन म दग् हान वा अपराध शमा हुआ न ?

विश्वा०—हाँ क्षमा हुआ । अब हम जात ह ॥^१

हरिश्चंद्र के इस स्यन की तुलना नीचे दिए जा रहे चण्डीशिक के भग स कीजिए और देखिए कितना अत्रिक साम्य है—

‘धम—(सप्तभ्रममुपगम्य प्रकाशम) अत्रे उत्थेहि, अह के तए अयी गल्ल एद अ जघा पयिद गुवण्ण ।^२

राजा—(सहपमुत्थाय) मा साधा । उपनीयताम । (दृष्ट्वा सविपाटम) भद्र भवानर्थी ?

धम—याड हग जेज ताए अत्थी ।^३

राजा—तन वा भवान ?

धम—‘गव भशाणाहिबइ गुम्मटठोणाधिप्राण पञ्चदडे ।

बभट्टाणिउत्ते बडाल महत्तले षतु हगे ॥^४

राजा—(मावेगमपसत्य काशिकस्य पाण्यानिपत्य) भगवन प्रसीद, भगवन प्रसीद—
तवव दासता गत्वा चरमानण्यमस्तु मे ।

न दृष्टान् श्रुता ज्ञेय ब्रह्मन् चाण्डालवासता ॥

कौणिव—पिठ मूर स्वय त्सास्तपस्विन । तत कि त्वया त्सेन मे नियत ?

१ सत्य हरिश्चंद्र (भा० ना भाग १) प० ८६ ८६

२ अर । उतिले अ तवानी गहाने यवाप्रावित मुवण्णम् ।

३ वादम् भहमव तवार्थी ।

४ सवशमशानात्रिनियन्मन्थानाधियाना प्रत्यशित ।

वध्यस्थाननियुक्तशचण्णान महानर बत्वहम् ॥

राजा—(सानुनयम) भगवन यदादिशसि तत करिष्ये ।

कौशिक —शृणवतु विश्वदेवा, यदादिशामि तत करिष्यसि ?

राजा—धातम करोमि ।

कौशिक —यच्छेवम, अस्मिन्वर्षिनि वित्रीयात्मान प्रयच्छ मे दणिणामुवर्णाणि ।

राजा—(सवकनयमात्मगतम) अहह ! का गतिरिदानीम् (प्रवाशम्) भगवन् यदादिशसि
(चाण्डालमुपगम्य) मा स्वजातिमहसर समग्न मा श्रेतुमहसि ।

चाण्डाल —अथ कीन्दि दे गमय ?^१

राजा—शूयताम—

मक्षयासी दूरतस्तिष्ठत रथ्याम्बरपरिच्छद ।

यद यदादिशसि स्वामी तत करोम्यविचारितम ॥

उभौ—मपरितापम् अल ! गुट्टु एष द शमण । गल्ल एद गुवण्ण ।^२ (इति दूरान्पयति)

राजा—(गहीत्वा सहपम)—

अनणम्य ममेदानीमन्तस्य द्विजमना ।

अपरिभ्रष्ट सत्यस्य इलाध्या चाण्डाल दासता ॥

(कौशिकम प्रति सानुनयम) भगवन प्रतिगह्यतामिदमशेष धनम ।

कौशिक —(मवलश्यम्) दास्यसि ?

राजा—(सानुनयम) भगवन गह्यताम ।

कौशिक —(परिगह्य स्वगतम) किमत पर नित्र धन ? भवतु गच्छामि । (मवलश्य तथा
करोति ।)

राजा—(सविनय अर्जलि बद्धवा) भगवन कालाश्लेषट्टनस्त्वपराधो मा प्रति मपणीय ।

कौशिक —धातम । (इति निष्प्रात ।)^३

इस स्थल क अतिगम साम्य एव एकरूपता का देवकर एसा प्रतीत होता है कि चण्डकौशिक को सामन रखकर ही भारत-दुजा ने वही नही सामान्य सा परिवर्तन करके अनुवाद कर दिया है पर तु जहाँ परिवर्तन किया है वहाँ मूल की अपथा अधिक स्वामाविकता एव सौन्दर्य आ गया है ।

×

×

×

मय हरिश्चंद्र क चतुथ अक म, भारत-दुजा ने शमगान का जो बणन किया है वह अति राजीव है । इस बणन से पूव इसी अक क आरम्भ म उहान राजा हरिश्चंद्र की मानसिक स्थिति का थाडा मा चित्रण किया है । यह भी अति स्वामाविक एव हृदयरपर्शी है । साथ हरिश्चंद्र के चतुथ अक क आरम्भ क इस प्रसंग का पत्न क पदचात यत्ति 'चण्ड

१ अथ धातम त समय ?

२ अर गुट्टु एष त समय गहणद मुवणम ।

३ चण्डकौशिक अक २ प० १०३ १०६

कौशिक के इसी प्रसंग के स्थल को पढ़ें ता हमे अत्यधिक साम्य मिलेगा। उदाहरण के रूप में दोनों नाटकों से कुछ अंश इस प्रसंग से भी नीचे उद्धृत हैं—

सत्य हरिश्चन्द्र ने—

हरि०—(सती सास लेकर) हाय ! जन्म भर यही दुःख भोगना पड़ेगा ।

जाति दास चंडाल की, घर घनघोर मसान ।

कफन खसोटी का करम, सब ही एक समान ॥

बड़ा न सच कहा है कि दुःख से दुःख जाता है। शनिष्ठा का ऋण चुका तो यह कर्म करना पडा। हम क्या क्या सोचें ? अपनी अनाथ प्रजा का या दीन नातेदारों को, या आरण्य नीकरा को या राती हुई दामिया का, या दामी बनी महारानी को या उस अनजान बालक को, या अपने ही इस चण्डालपन को। हा ! बहुत बंधकों से गिरकर राहितारों ने प्राधमरी और रानी ने जात समय कर्णामरी दृष्टि में जा मेरी ओर देगा था वह अब तक नहीं भूलती। (घबडाकर) हा देवी ! सूयकुल की वह और चन्द्रकुल का बेटी होकर तुम बेची गई और दासी बनी। हा तुम अपने जिन सुकुमार हाथा में पून का माता भी नहीं गूथ सकती थी उनसे बरतन कैसे माँजोगी ?

सत्य हरिश्चन्द्र के इस प्रसंग की तुलना यदि हम चण्डकौशिक के मम्बद्ध स्थल से कर तो हम दोनों में अतिशय सादृश्य मिलेगा। चण्डकौशिक का यह प्रसंग इस प्रकार है—

राजा—(निश्चय आत्मगतम्) कष्टम् अनवधिरग्र यथालक्षणो म व्यमनपरम्परापात ।

तथाहि—

इवमद्य मम श्वपाक दाम्यम्

वसतिर्घोरतर महाश्मानम ।

मृत-बम्बल हारिता च फम

परिणात ध्यसनेष्वहो, न दवम ॥

(सगावम्) सुष्टु खिद्वदमुच्यते 'दुःख दुःखस्तिरोधीयत' इति । यथा दम्निष्ठा नप्यतिव क्षमाम आशोना बाधत ।

(वैकल्य नाटयित्वा)—

किं शोचामि मदेकबाधतया सम्प्रत्यनाया प्रजा ?

किं बधूनतिरत्सलानशरणानेताश्च भूत्यानहम् ?

किं दासीं द्विजसद्मनि श्रियतया वत्स च किं वा निगुम ?

किं चाण्डाल भुजिष्यतामुपगत पायो निज जीवितम् ?

(विचिन्त्य मधुदमात्मगतम्)—अहं हृद पीडयति मा सम्प्रति तत, यत तन्—

त्वरयति गुरोर्भक्ष्या तस्मिन् द्विजे च रपाहणे

श्वनि च तदा क्षिप्ते बाले पटातनिरोधिनि ।

विषत विषतर्षापोऽपीडजडीकृततारका

कथमपि तथा क्रूरे दृष्टिश्चिरामपि सहता ॥

(सवकनभ्यम्) हा दयि—

यदि तपनकुसोविता षडूरुत्वम्
यदि विमने गगिन कुले प्रभूता ।
मयि विनिपातितान्ति भस्मरागो
सुतनु घताहृतियत तदा कथं त्वम् ?

अपि च राजपुत्रि—

उपयन नयमानिका प्रभूत
सजमपि या परितितमे सूजतो ।
परिजन घनिचोचिनानि कर्मा
ष्यपरिचितानिकय विधास्यति त्वम् ?''

ऊपर 'चण्डीशिव' व 'इग गण' व 'गौड शंकरा' म जा कडा गया है। भारत-दुजी व 'गण्य हरिश्चन्द्र' व 'गण्य भाग' म उगा का अणुवा' कर लिया गया है। जा कुल अंतर है यह धना का है। प्रतिशय बंधु का नला। मरुटन नाटका का घना म प्रवर्ग तथा स्वगत सम्भागा म भी गद्य के साथ शंकरा की प्रभुता श्यन का मिनती है। 'जा' की व कथना म श्यामा विवना और प्रवाह म 'पड' जाता है पर जिय युग म 'गण्य' गित लिया गया था, यह युग उसी प्रकार की रचि का था। वनमान युग की गति मिन है, अतः भारत-दुजा व 'इग प्रवार' की अस्वामाविचिताया का अणन नाट्य स ययामम्भर पत्तिर कर लिया है। समय की गति बडी तीव्र है। समय व गाय ही मान्य का भावनागण लय उमर मान्य पत्तिरिन होत रहन है। अतः बीसवा 'गना' व 'गण्य' दणक व पाठ्य और अनाचर की दृष्टि म ता भारतेदु युग भी अनीन का युग ही माना जायगा। इग युग का कृतिषी भा कुछ सीमा तक, प्राचीन युग की कृतिषी मानी जाएगी। मय हरिश्चन्द्र का भाषा शनी गीन अति सभी कुछ बीसवी 'गती' व उत्तराय के अनाचर की दृष्टि म अनीन का हा गया। परन्तु इतना तो निविवा' ही है कि 'साहित्य' की काई भी विधा 'गिनी' भी युग की हा, उत्तरा वास्तविक एव समुचित मूल्याहन तर तर सम्भव नहीं होना जब तक कि अलोचन उस उस युग की उही परिस्थितिया व अनुकूल अपनी मन स्थिति को न बना ल। अय क्षमीश्वर व 'चण्डीशिव' एव भारत-दुजी के 'सत्य हरिश्चन्द्र' व तुलना म अभ्ययन म भी इस दृष्टि विदु का ध्यान रचना अर्पित है। एसा करन पर ही 'चण्डीशिव' म भारत-दुजी द्वारा किय गण परिवर्तना का तथा सामाय रूप से गद्य व स्थान पर गद्य व प्रयोग का भी समभा जा सवगा।

+ + + +

भारत-दुजी म सत्य हरिश्चन्द्र म श्मशान का वगन थडा ही सत्राण किया है परन्तु इसके लिए भी वे अय क्षमीश्वर व अणुणी है। दोना नाटका के वगन की एव भीको इस प्रकार है—

सत्य हरिश्चन्द्र से—

'हरि० + + + (नपथ्य म कोताहल मुनवर) हाय हाय ! कैसा भयकर श्मशान है। दूर से मटल बाध जाधकर चाच बाए डैना फँलाए, कगारा की तरह मुँों पर गिद्ध कसे गिरत हैं और कमा मास नाच नाचकर आपम म लडत है और चिंलात हैं। इधर अयत कणकटु भ्रमभन के नगाडे की भाति एक के गब्द की लाग से दूसरे सियार कसे रोत है। उधर चिराइन फलाती हुई, चट चट कर्ती चिलाएँ कसी जल रही ह जिनम माम के टुकडे उडत है, कही लोह वा चग्नी वहती है। प्राण का रम मास के सम्बन्ध मे नीला पीला हा रहा है ज्वाला धूम धूमकर निकलती है कभी एक माघ घघक उठती है, कभी मन् हो जाती है। धुआ चारा ओर छा रहा है। (आप दरकर आदर स) अहा ! यह बीमस व्यापार भी बडाई के शाय्य है। शव ! तुम धय हा कि हा पशुशा के इतन वाम आत ने + + + अहा ! देना—

सिर पर घठयो फाग आस दोड खात निकारत ।
खींचत जोमहि स्यार अतिहि आनन्द उर धारत ॥
गिद्ध जाप कहेँ खोदि खोदि क माम उपारत ।
स्वान आर्गुरिन कानि काटि क खान विचारत ॥

अहा ! गरीर भी क्या निरमार वस्तु है !

सोई मुप सोई उदर, सोई कर पद दोष ।
भयो आजु कुछ और ही, परसत जेहि नहि कोष ॥
हाड मास लाला रक्त, वमा तुचा सय सोष ।
छिन छिन दुःखमय, मरे मनुस के होष ॥
कायर जेहि लपि क डरत, पडित पावत लाज ।
अहो ! प्रथ ससार को, बिषय वासना साज ॥”

यह स्थान 'चण्कौशिक' म दम प्रार है—

'राजा—(दृष्ट्वा सावष्टम्भम) अय कथमिद महारमशानम ।—

विदूरादभ्यस्तथियति बहुशो मण्डलशत
उञ्चत पुच्छाप्र स्तिमित त्रित्त पक्षतिपुट ।
पतत्येते गध्रा गव पिणित लोलाननगुहा—
गलल्लालाकवेद - स्थगित निजचब्रभमपुटा ॥

(नपथ्य कलवन)

राजा—(कण दत्त्वा अत्रलोक्य च) अहा ! वीमत्सरोद्रता मशानस्य । तथाहि—

इमा मूच्छत्यत प्रतिरचभत कणकटव
गिवा शूराश्चरशिव पट्टाडम्बर रवा ।
ज्वल स्त्रेते ताप स्फुटित तक्चोटी-पुत्र दरो
लस मस्तिष्कावता स्तिमितजरिजाग्रा हुतमुज ॥

(अप्रतावलाक्य सशलापम्) अहा ! वीमत्सगमपि स्पृहणीपमिद वतत । मद्र !

कुणप ! तवस्वप्नाह्निमि प्रणविभिश्च स्वापगण यथमुपभुज्यमाना धय त्वमग्नि । तयाहि—
 भिनत्यक्षणोमुद्रां गिरति धरणो यरय वरट
 शिवा तवकोपात्ते प्रसति रसनाप्र विस्तुठितम ।
 छिनत्ति श्या भेद प्रथयति च गध्रोऽत्र विवर
 यथेष्टध्यापारास्तवयि कुणप ! यच्छवापदगणा ॥

ग्रहा निस्मारता शरीराणाम्—

तमध्ये तदुरस्तदेव घदन ते सोचन त भ्रूयो
 जात तवममेध्य गोणित यसा मातास्थि तालामयम ।
 भीरुणा भयद श्रपात्पदमिद विद्याविनीतात्मनां
 तमूढ त्रियते कथा विपयिभि धुग्ने-भिमानप्रह ॥^{११}

उपर सत्य हरिश्चन्द्र व राण म ग्राह शाना वा ग्राहा ता गन्त धोर वही मान
 अनुवा है । नाथ विस्तार भा विया गया है यथा

“छिनत्ति स्वा भेद प्रथयति च गध्रोऽत्र विवरम” वा
 ‘गिद्ध जांघ कर्हं खोदि खोत्रि क मास उचारत ।
 स्वान आगुरिन काटि काटि क रान विचारत ॥’

इस रूप म अनुवा वरव भारत-दुर्जी न सस्मृत व म प न अभिव्यञ्जित अस्वीकृता को
 भी वचा लिया है ।

इमान की वीमसता व वगन म कात्यायनी की सज्जा भी वम वीमस नहा है ।
 यह भी दानीय है । भारत-दुर्जी न सत्य हरिश्चन्द्र म स्वका विव्रण इम प्रकार किया है—

(आग दम्बर) धरे यह इमान तवी है । ग्रहा ! कात्यायनी को मा कसा वीमस उपचार
 प्यारा है ? यह देखो, डाम लागान मूये गल मड फूटा वी माता गगा म से पकडकर
 दनी को पहिना दी है और कपन का घृजा लगा गी है । मरे बल और मना के गले व
 घटे पीपल का डार म लटक रह है जिनम लावन की जगह नखी की हडनी लगी है ।
 घट व पानी स चारा धार से दबी का अभिपक हाता है और पड व सभ म लहू व—
 उनारा की बलि दी गई है उसक खान का बुत्ते तियार लट लडकर कोलाहल मचा
 रह हैं ।

(हाथ जोडकर)—

भगवति ! चण्डि ! प्रते ! प्रेतविमाने ! ससत्प्रते ।

प्रतास्थिरौद्ररूपे ! प्रताग्नि ! भरवि ! नमस्ते ॥

(नपथ्य म) राजन हम कवल चाण्डाला व प्रणाम के योग्य है । तुम्हारे प्रणाम स हम लज्जा
 धानी है । मागा क्या वर मागत है ?

हरिं—(सुनकर आश्चर्य म) भगवति यदि आप प्रसन्न है तो हमारा स्वामी का बल्याण
 कीजिए । (नपथ्य म) साधु ! महाराज हरिश्चन्द्र साधु ॥^{१२}

१ चण्डकीर्तिक अंक ४ पृ० १११ ११४

२ सत्य हरिश्चन्द्र (भा ना० भाग १) पृ० ६५ ६६

सत्य हरिश्चन्द्र का यह प्रसंग 'चण्डकौशिक' में इस प्रकार है—

'राजा—(सवताज्वलाक्य सविस्मयम्) अहा बीभत्सपचार प्रियत्व कात्यायन्या ।
तथाहि—

जरन्निर्भाल्याडया मतमहिप गो-चण्डलुसिता
प्रलम्बत घण्टा श्रवणकट्टु-टकार पटव ।
तरुस्तम्भे देव्या कृतहृषिर पचागुलितले
रटस्येते चास्मिन् प्रकृति बलि लोला बलिभुज ॥

(सप्रणाममर्जान बद्धवा) —

भगवति ! चण्डि ! प्रेते ! प्रेतविमानप्रिये ! लसत्प्रेत ।

प्रेतास्थिरोद्दरुपे ! प्रेताग्निनि । भरवि । नमस्तु ॥”

चण्डकौशिक में इमशान दैवी का वणन अत्रिज नहा है। भारतन्दुजी नइमना थाडा वना दिया है परतु दैवी की स्तुति का भगवति चण्डि—यह शना जया रान्या मूल रूप म ही उद्धत किया है। इसका हिन्दी में अनुवाद करन का उहान आवश्यक्ता नहा सगभी। इमके अतिरिक्त दैवी की स्तुति क उपगत प्रमन हानर राजा हरिश्चन्द्र का वर मागन क लिए कहना तथा राजा द्वारा अपन स्वामी चण्डान क कन्याण के लिए प्रार्थना करता तथा दैवी द्वारा हरिश्चन्द्र की दम सामुता की सराहना करना—यह अश 'चण्डकौशिक' में नही है। यह भारतन्दुजी की अपनी उदभावना है।

इमशान क वणनरम म ही मूर्पास्ति एव यम पचात रात्रि क अवनार की भय करता तथा तत्रत्य भूत पिशाचा क त्रिया रलाप का जा मजीव भयनर चित्र भारतन्दुजी ने उपस्थित किया है, वह 'चण्डकौशिक' में भी दशनीय ह। मूयास्त का चित्र 'मय हरिश्चन्द्र' में इस प्रकार है—

'हरि०—(उपर दक्कर) यहा म्भिरना त्रिसी का भी नहा ? । जा मूय उदय हान ही पदमिनीकहनम और लौकिक बन्धु दोना बर्षों का प्रवतन था जा दापहन तन अपना प्रचण्ड प्रताप क्षण क्षण वताना गया जा गगनागन ना दीपक और कान मप का शिखा मणि था, वह इस समय परवट गिद्ध की भांति अपना मव तज गँवानर देखा समुद्र म गिरा चाहता है। अथवा—

संभ सोई पट लाल करो कटि, सूरज खप्पर हाथ लह्यो है ।
पच्छिन के बहु शम्भ के मिस जीव उखाटन मात्र कह्यो है ॥
मद्य भरी दर छोपडो सो ससि को अब विम्बहु धाड गह्यो है ।
द बलि जीव पसु यह मत हू बालकपालिक नाचि रह्यो है ॥
सूरज धूम जिना की चिता सोई अत भैल जल माहिं बहाई ।
बोले घने तरु बठि बिहगम रोग्रत सो मनु लोग जुगाई ।
धूम अंधार कपाल निसारर, हाड नछर लहू सो ललाई ॥
आनद हेतु निसाचर के यह काल मसान सो संभ बनाई ॥

'चण्डकौशिक' के उपरिनिहित—“अयममौ ' आदि श्लोक के पुराघ के केवल न चरणा का ही भारते दुर्जी ने—“जा गगनागन का दीपक और बाल सप क्षिप्रामणि था —इन गंगा म रूपांतर किया है। नेप पवित्रया का आधार, चण्डकौशिक नहीं है। इसी प्रकार ग्राम के लाना पद्य गण्य, ऊपर निचे—‘सध्यावध्यान्मगोणम्—” और ‘आम्बुधादुत्पतन ’ इन दोना श्लोका के स्वतन्त्र रूपान्तर हैं। यत्र तत्र परिवर्तित रूप भी परिवर्तित हो रहा है। श्मशान सध्या ना यह वणन सत्य हरिश्चन्द्र' का अपभा 'चण्डकौशिक' म अधिक् उद्गाम है। जमे—

नाखाशा नम्बि शीपत कुपप घन-वसा-ग-धमादाय रौद्रम ।

श्रद्धत स्फारपति स्फुरदमलशिला फेरव फेहृनानि ॥

म वीमत्स रूप की जो अभि-यक्ति हुई है, वह सत्य हरिश्चन्द्र के 'अम्बुधा चतुर्दिसि—' पद्य भाग की—

रोन्नत सियार गरजत नदी, स्वान भूकि डरपावहीं ।

सग दादुर भँगुर हदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मजावहीं ॥ आदि

पवित्रया म नहीं है। चण्डकौशिक' म अोजगुण^१ एव गौरीवृत्ति^२ न श्मशान व वीमत्स-वणन को अधिक् प्रभावपूण बना दिया है। परन्तु मवत्र पसा नहीं, जलती चिता का चित्र सत्य हरिश्चन्द्र म कितना सजीव है—

' श्म समय य चिन्ता भी कैसी भयकर मालूम पडती हैं। किसी का मिर चिता के नीचे सटव रहा है कही आत्र स हाथ पर जलवर गिर पडे हैं, कही शरीर आधा जला है कही विस्कुल बच्चा है किसी का वस ही पानी म बहा लिया गया है किसी को कितारे ही छोड दिया गया है किसी का मुह जल जान स दाँत गिनला हुआ भयकर हो रहा है और काई आग म ऐसा जन गया है कि कही पता भी नहीं है। वाह र शरीर, तरी क्या-क्या गति हानी है ३ ॥

यह वणन 'चण्डकौशिक' म नहीं है। श्मशान के वणन म पिगाच एव डाकिनिया का वीमत्स चित्र भी बडा मजावह ४—

हरि०—(कौतुक ग देगकर) पिगाच का श्रीला कुतूहन भी देखन योग्य है। अहा ! यह कसे बाल गान भाड से मिर क बान खडे क्रिय नखे-लम्ब हात्र-पर विकरान लान, लम्बी जीम निवान इधर उधर दौडत और परस्पर किलकारी मारले है माना मया नक रस की सना, मूर्तिमान हात्र यहा स्वच्छन्द विहार कर रही है। हाय ! हाय ! इनका खेल और सहज व्यवहार भी क्या भयकर है। काई कटावट हडडी चया रहा

१ श्लोकचित्तस्य विस्ताररूप दीप्त उमुच्यते ।
वार-वीमत्स रीपु प्रमथाधिरयमग्य तु ॥
दीप्यामस्तिनहेतु श्लोक ।

—माहि-यणपण परि ८ कारिका ६२६

—काव्यप्रकाश ८ ६६

२ श्लोक प्रकाशक वर्षो व घ माडम्बर. पुन । ममान वदुला गौरी ।

—माहि-यणपण ६, ६४७

३ सत्य हरिश्चन्द्र (पा० ना० भाग १) पृ० १७ १८

है कोई खोपड़ी या मे लहू भर भरकर पीता है कोई सिर का बँद बनावर खेलता है कोई अँतड़ी निकालकर गने म डाले है और कोई चन्म की भाँति चरबी और लोहू गरीर म पात रहा है । एक दूसरे मे मास छीनकर ले भागता है । एक जलता मास मारे तप्या व मुह मे रख नेता है पर जब गरम मानूम पडता है तो धू यू करवे धूव देता है और दूसरा उसी को फिर भन्के से खा जाता है । हा ! देखो, यह चुडल एव स्त्री की नाक नथ समेत नोच लायी है जिसे देखने का चारा और से सज भूत एकर हो रह हैं और समा को इसका बडा कौतुक हो गया है । हँसी म परस्पर लोहू का गुल्ला करत है और जलती लकड़ी और मुर्दा व अगो से लग्न हैं और उनका ले लेकर नाचने है । यदि तनिक भी प्राध म आते हैं तो मदान क गुत्ता को पकड पकड कर खा जाते ह । ^१

चुडल और पिगाचा का यह चित्रण चण्टरीशिक म भी इसी प्रकार का बीमत्स है । केवल भापा एव शली का अन्तर है । वहा यह इस प्रकार है—

राजा—(सावष्टम्भ परित्रम्य दृष्ट्वा) अहो ! त्रीमसन्शना कौणपनिक्वाया । तथाहि—

जरत्कृपाकारनयन परिवेषस्तनुशिरा
करालोच्चघोणा कुटिलरवना फूरवदना
अमी नाडी जघा द्रुम कुहर निम्नोदर भुव
घन-स्नायुच्छन स्थपुटपटल विभ्रति वपु ॥

(समीतुक्म अवलाक्य) अहो ! क्रीडा कलह कौशल पिगाचानाम । तथाहि—

पिबत्येकोऽयस्मात् घनरुधिरमाच्छिद्य चपक्म
बलज जिह्वो वक्त्राद्गलितमपरो लेडि पिबत ।
ततस्त्यानान कश्चित भुवि निपतितान गीणितरुणान
क्षणादुच्चघोवो रसपति लसददीघरसन ॥

(समीतुक्म अवलाक्य सस्मिताम्) अहा नु गलु मो । परिहाम इव दुविदग्नाना केनिरपि रसान्तरम आनम्नत यातुधानानाम । तथाहि—

व्य रम्य सम्भोगो मृदु मधुर चेष्टागमुभग
कटाक्षा वधायोऽय प्रलयविततोल्बालुतिमृत ।
व्य दष्टामघट्ट ज्वलित - दहनश्चुम्बितविधि
घनाशनेय व्वाय प्रतिरमदुर पजर रव ॥

(मघूणम अयरोक्य) धिर । अत्रिमीमममना—

चितान्नेराकृष्ट नलक गिलर प्रोतमसकृत
स्फुरद्भिनिर्वाय प्रलय-पवन फूत्कृतगत ।
गिरो नार प्रेत कबलपति तष्णावगललन
करालास्य प्लुप्यद्वदन-शुहरस्तूदगिरति च ॥^{१२}

१ मय हरिश्चन्द्र (भा ना भाग १) पृष्ठ ६६१ ०

२ पण्डरीक मय ४ प १२१ १२३

सो हम नित धित इक सत्य मे जाके बल सय जग जिपो ।

सोइ सत्य परिच्छन नपति षो, भ्रान्तु भेष हम यह कियो ॥

(बुछ साचकर) गजवि हरिश्चन्द्र की दुग परम्परा अथवा पाण्डवीय और अनन्तर चरित्र अथवा आश्चर्य के हैं । अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है ।

सहत विविध दुख मरि मिटत, भोगत साधन सोग ।

प निज सत्य न छोडहीं जे जग सांचे लोग ॥

यह सूरज पच्छिम उग, विषय तर जल भाहि ।

सत्यवीर जन प षवहें, निज बच टारत नाहि ॥

अथवा उनके मन इतने बड़े हैं कि दुग का दुग गुग का गुग गिनत ही नहीं । चले उनका पाम चल (आगे बटार और देखकर) धर । यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं ? (प्रश्न)

महाराज कल्याण हो ।^१

चण्डीगिरि में यह इस प्रकार है—

‘(तत् प्रणिगति कापालिनवेगो धम)

धम —अथमह भो ।

अयाचितोपरिणतभक्ष्यवति

निवृत्त पचेन्द्रियनिस्तरण ।

व्यतीत्य ससार महाऽमगानम

चरामि बीभर्षमिदं मशानम ॥

(विविध) स्याने स खलु द्रो भगवान् महाप्रत चचार । पर क्लिाय प्रकय कामचारिणाम । किन्तु—

भक्ष्याद्भवत तपोऽद्भवत त्रिपाद्भवत च तत्परम ।

सुखम सत्रमेधतदारमाद्भवत तु दुःखम ॥

× × × (समतात्त्विकताय सागरम आत्मगतम)

मया त्रिय ने भुवन यमूनि

सत्यच मा तत्सहित विभति ।

परीक्षितु सत्यमतोऽस्य राज्ञ

कृतो मया वेश परिग्रहोऽयम ॥

(विविध साश्चर्यम आत्मगतम) आश्चर्य दुःखपरस्परस्वगोच्यमानस्य राजपरिचरित्रस्य चरितम । अथवा प्रकृतिरिय महात्मनाम् । कुत —

सुख वा दुःख वा किमिव हि जगत्पस्ति नियतम ?

विवेकध्वसात् भवति सुखदुःखव्यतिकर ।

मनोवति पुसा जगति जयिनी काऽपि महताम

यया दुःख सुखमपि सुख वा न भवति ॥

भवन्तु तत्सवागमेव गच्छामि । (परिजम्ब दृष्टवा सशताधम) अथ । अथमसौ महात्मा

तदुपसपामि । (तथावृत्वा) मो राजन । सिद्धिभाजन भूया । १

‘सत्य हरिश्चन्द्र म ‘चण्डकौशिक’ के विचिन्त्य स्थान स खलु—यहा से लेकर आत्मा-द्वततु दुलमम’ इस अंग को छोड़ लिया गया है और ‘सहत विविध दुख’ स आरम्भ करके ‘निज वच टारत नाहि’ तक की पत्तिया विदिष्ट हैं । आप अत्र प्राय चण्डकौशिक का अनुवाद मात्र ही है । न कही काइ परिवतन न वनिष्टय ।

× × ×

‘हरि०—(प्रणाम करके) आइय यागिराज ।

धम—महाराज हम अर्थी हैं ।

हरि०—(लज्जा और विवल्गता का नाटय करता है ।)

धम—महाराज, आप लज्जा मत कीजिए । हम लोग योग बल से सब-कुछ जानते हैं । आप इस दगा पर भी हमारा अध पूण करने के लिए बहुर है । चन्द्रमा राहु से ग्रसा रहता है, तब भी दान दिलवाकर मिश्रुआ का कल्याण करता है ।

हरि०—हमार याम्य जा कुउ हो आना कीजिए ।

धम—अजन गुटिका पादुका, घातु भेद बानाल ।

वच रमायन जोगिनी, माहिनी सिद्धि यहि काल ॥

हरि०—ता मुझे जो आना हो वह करू ।

धम—आना यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हा गए हैं पर विघ्न इसमे बाधक होत हैं । सो विघ्ना का निवारण कर दीजिए ।

हरि०—आप जानत हैं कि मैं पराया दास हूँ इससे जिसम मेरा धम न जाए वह मैं करने का तैयार हूँ ।

धम—महाराज, इसम धम न जाएगा क्यकि स्वामी की आना ता आप उल्लघन करते ही नही । सिद्धि का आकर इमी श्मगान के निकट ही है और मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूँ आप विघ्ना का निपेघ कर दीजिए । (जाता है ।)

हरि०—(लतकारकर) हटो र हटो विघ्नो । चारों ओर से तुम्हारा प्रमार हमन रोक दिया । २

यह अण्ड चण्डकौशिक म भी इसी प्रकार है—

‘राजा—स्वगन महावनचारिणा नष्टिास्य ।

कापालिक —मा राजन अधिनो वय भवतमुपागता ।

राजा—(लज्जा नाटयति)

कापालिक —अत्र श्रीहृद्या यागचश्रुपा हि वय विन्तितवनात्ता एव भवन । तथाप्यवमवस्यस्यापि तन न समीहितदान दारिद्रयम् । तथाहि पश्य—

परेणानुपकाराय न क्यच्चिन्न साधव ।

कुहूमपि समासाद्य धिनोनीटुवनस्पतोन ॥

१ चण्डकौशिक अंक ४ प० १२६ २६

२ सत्य हरिश्चन्द्र (भा० भा० भाग १) प १० १०५

तदवधत्ता पुन ।

राजा—अवहितोऽस्मि ।

बापा०—

बताल - वज्र मुष्टिकाजन पादलेप—

वत्पाङ्गना विधि रसायन धातुवादा ।

तच्चित्त्यता करतलोपगता ममते

विघ्न पटस्त्रि यथा न तिरस्त्रियते ॥

तदादिश्यता विघ्नप्रत्यूह इति ।

राजा—भो साधक योगशलाज्जानात्यव भवान् अस्वाधीनमिदं शरीरकम् तत् स्वाम्यर्था विरोधनं प्रयतिष्य ।

बापा०—भो राजन कुताऽत्र स्वाम्यर्थविरोधः ? नवानामानसम्पाद्य न समीहितं भवत । तन्त्रिणा नातिदूरे सिद्धरसाया महानिधानमस्ति । तदथमस्माभिरारम्भणीयमस्ति । भवता पुनरिहस्थेनव विघ्नप्रत्यूहं प्रति सावधानेन भवितव्यम् । (इति निष्प्रातः)

राजा—(सावष्टम्भं सवतं परित्रम्यं) प्रात्सरत प्रात्सरत विघ्ना सवथा प्रतिहतो व प्रसर इति ।

चण्डकौशिक की इन पंक्तियों की सत्य हरिश्चन्द्र के ऊपर क उद्धृत स्थल के साथ तुलना करने पर यह बात स्पष्ट रूप में भासित होने लगती है कि भारत-दुर्जी न यहाँ चण्डकौशिक के समान अंग का अनुवाक मात्र कर दिया है। दोनों अंगों में वही कोई अंतर नहीं है। इसी प्रसंग का अंगों का अंग भी दृष्ट्य है—

सत्य हरिश्चन्द्र से—

‘(नपथ्यं म), महाराजाधिराज जो आना । आप से सत्यवीर की आना कौन लांघ सकता है ।

बुल्यो द्वार कल्याण को, सिद्ध जोग तप प्राज ।

निधि सिद्धि विद्या सब करहि, अपने मन को काज ॥

हरि०—(हृष स) बड़े आनंद की बात है कि विघ्ना ने हमारा कहना मान लिया ।

(विमान पर बठी हुई तीना महाविद्याएँ आती हैं ।)

म० विद्याएँ—महाराज हरिश्चन्द्र ! बधाई है । हमी लोग का सिद्ध करने का विश्वासिन्ने ने बड़ा परिश्रम किया था तब देवताओं ने माया में आपका स्वप्न में हमारा रोना सुनाकर हमारा प्राण बचाया ।

हरि०—(आप ही आप) अरे ! अरे ! यही मृष्टि का उत्पन्न पालन और नाग करने वाली महाविद्याएँ हैं जिन्हें विश्वासिन्ने भी न सिद्ध कर सक । (प्रगल्हाय जाइकर) त्रिनाशविजयिनी महाविद्याओं को नमस्कार है ।

म० वि०—महाराज हम नाग तो आपका वरम म हैं । हमारा ग्रहण कीजिए ।

हरि०—श्रिया यदि हम पर प्रमन हा तो विश्वासिन्ने मुक्ति की वावर्तिनी हो, उल्लेख आप नाग के वामन वर परिश्रम किया है ।

म० वि०—थय महाराज थय जा आना । (जली हैं ।)

(धम एक वंतान के मिर पर पिटारा रखवाए दूए आता है ।)

धम—महाराज का कन्वाण हा । आपकी कृपा म महानिधान सिद्ध हुआ । आपका बधाई है ।
अब नीजिए अस रमद्र का ।

याही के परभाव सों, अमर देव सम होइ ।

जागी जन विहरहि सदा, मेह गिरर भय खोइ ॥

हरि०—(प्रणाम करके) महाराज दामधम क यह विन्द ह । इम समय स्वामी स कहे
बिना मेरा कुछ भी लना स्वामी का घोला दना है ।

धम—(आश्चय स आप ही आप) बाह रे महानुभावता ! (प्रगट) ता इमसे स्वण बनावर
आप अपना नाम्य छुटा लें ।

हरि०—यह ठीक है पर मैंने ता बिनती की न कि जब मैं तुमर का दाम हा चुका ता इम
अवस्था म मुझे जो कुछ भित सब स्वामी का ह क्यकि मैं ता तह के साथ ही
अपना स्ववमात्र धव चुका इमसे आप मेरे वत्त कृपा करके भरे स्वामी ही का रमद्र
दीजिए ।

धम—(आश्चय स आप ही आप) धय हृन्दिचद्र ! धय तुम्हारा धय ! धय तुम्हारा
विवक और धय तुम्हारी महानुभावता !

चले मेरु वरु प्रलयजल, पवन भक्कोरत पाय ।

प बीरन के मन करहुँ चलहि नहीं ललचाय ॥

तो हम भी इम वीन हठ है । (प्रत्यय) वंतान जाआ जा महाराज की आना ह
वह करा ।

धम—महाराज ब्राह्ममुद्रन निरुट आया अब हमका भी आना हा ।

हरि०—यागिराज हमका भूत न जानएगा कभी-कभी स्मरण कीजियगा ।

धम—महाराज उन्-वते देवता आपका स्मरण करन है और करेग । मैं क्या कहूँ ?
(जाता है ।)

मयहृन्दिचद्र का यह म ग चण्णौगित म निम्न प्रकार म है । आना की गङ्गपता
गनीय —

(नपथ्य) राजन ! यथा० तापयनि—

श्रयासि निवृत्तद्वाराण्यद्य विद्या स्वयवरा ।

सिद्धय कामचारिण्यस्त्वनाज्ञा क्रोडनिवतते ॥

राजा—(सहस्रम) दिष्ट्या तवनि प्रतिप नमस्मद्वचन विघ्न । प्रिय न प्रियम । (तत
प्रविशति विमानचारिण्यो विद्या)

विद्या—(महामागमृय) राजन ! हरिश्चद्र ! दिष्ट्या वधस—

त्वम्यवेष्टत राजये क्रुद्धा यत दाहणो मुनि ।

विद्यास्त्वदविपदा मूल ता वध समुपस्थिता ॥

राजा—(दृष्टवा मान्चयम आमगतम्) वाममाम्ना भगत्या विद्या । यागु भगवतो

विश्वामित्रस्यापि तीव्रंस्तपामिरवगन्तम् । (प्रणामं भजति बद्धया) नमस्त्रिलोक
विजयिणीभ्यो विद्याभ्यम् ।

विद्या—राजन त्वदायत्ता वयम् भक्तस्त्र शाधि न ।

राजा—यदि मामनुग्राह्य भवत्याज्जुमयत, तदा भगवत वीर्याम् उपनिषद्वचम् ततो भन
पराद्ध मुनेरात्मान समथयामि ।

विद्या—(सविस्मय परस्परम् भ्रवलोचय) राजन ! एवमस्तु ।

(इति निष्प्रान्ता)

(तत प्रविशति स्व-पाराशरिण निधानेन वतालनानुगम्यमान कापालिक)

कापालिक —(सहसापमृत्यु) राजन् ग्लिप्त्या बद्धस ममिद्धरमस्यास्य महानिधानस्य लामा
भ्युदयन तदुपयुज्यता भगवान् रमद्र ।

यस्योपयोगादवधूय मृत्युम्, आसाद्य सद्योऽमरलोकमागम ।

विरुद्धकल्पद्रुम मजरीणि, गिरसि मेरोविहरति सिद्धा ॥

राजा—ननु दासमावविरुद्धमेतत एव विल वचित स्वामी स्यात् ।

कापालिक —(साश्चयम् आत्मगतम्) अहो आश्चयम् भवतु एव तावत् (प्रवणाम)
यद्येव गह्यता सन्ततस्यात्मनो निष्क्रयाय एत महानिधानम् ।

राजा—वयमेव भविष्यति ? यतोऽप्यन दासमाव मयत । स्वाम्यथतस्तु नैद प्रत्याख्यान
महति इत्यनुमत एवाय भवत सकल्प । तत प्राप्पता स्वामिनो निभृतमिद महा
निधानम् ।

कापालिक —(साश्चयम् आत्मगतम्) अहो धयम् ! अहो ज्ञानम् ! अहो महानुभावता च !
अथवा—

चलति गिरय काम युगान्त पवनाहता ।

कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव धोराणा निश्चल मन ॥

तन्ममापि किमतिनिबन्धेन ? (प्रकाश वताल प्रति) मद्र ! गम्यताम्, त्रियतामस्य राज
समीहितम् ।

कापालिक —(समतादवलोक्य) भो राजन् प्रमातप्राया वतते विभावरी, तत् साधयिष्याम
तावत् ।

राजा—भो साधन ! स्मत्तया वय दु स्थितकथासु ।

कापालिक —राजन ! देवतास्त्वा स्मरिष्यति ।^१

सत्य हरिश्चन्द्र के उपरिनिर्दिष्ट पूर्व खण्ड के समान इस खण्ड में भी अतिशय समानता
है। जहाँ-कहीं कुछ अंतर है भी वह अति अल्प है। जैसे, चण्डबीशिक म जिहे विद्याएँ कहा
गया है सत्य हरिश्चन्द्र म उह महाविद्या कहकर पुकारा गया है। ये विद्याएँ या महाविद्याएँ
दोनों ही नाटक म राजा हरिश्चन्द्र की वगवतिनी होने की घोषणा करती हैं।^१ परंतु

१ चण्डबीशिक मक ४ प० १३१ १३६

२ राजन् स्वभावता वयम् भनस्त्र शाधि न—चण्डबीशिक, मक ४ प० १३
महारज ! हम लोग तो आपके वश में हैं हमारा ग्रहण बीजिए—स० ह०)

चण्डकौशिक म विद्याभ्रा द्वारा जा विश्वामित्र का उल्लेख हुआ है उसम उह हरिश्चन्द्र की विपत्ति का मूल कहा गया है—

त्वय्यचेष्टत राजये ऋद्धो यद दारुणो मुनि ।

विद्यास्त्वदविपदा मूल ता वय समुपस्थिता ॥

यहाँ उस घटना की आर मकत किया गया है जज विद्याभ्रा का आतना मुनवर राजा हरिश्चन्द्र रक्षा के लिए उद्यत हात हैं तथा उनके इस प्रयत्न स क्षुब्ध विश्वामित्र क क्रोध का भाजन बनत हैं। इमीलिए यहाँ 'त्वदविपदा मूलम्' कहा गया है। किन्तु सत्य हरिश्चन्द्र म इस घटना को कुछ मिन रूप म स्वप्न म घटिन बनाया गया है अत यहा पर भी हमी लोगो का मिद्ध करन का विश्वामित्र न वडा परिश्रम किया था तब दवनाभ्रा न माया स आपको स्वप्न म हमारा रोना सुनाकर हमारा प्राण वचाया एसा महाविद्याभ्रा से कहलाया गया है। यदि 'चण्डकौशिक' की पत्निया का अनुवाामान कर लिया जाता तो सय हरिश्चन्द्र का एक प्रधान घटना म विरोध हो जाता। अज भारत-दुजी न कौशल स इस वचा लिया है। गेप खण्ड के रूपांतर म उल्लख योग्य कोइ अन्तर नही ह।

चण्डकौशिक म ऊपर उल्लिखित खण्ड की समाप्ति के साथ ही चतुथ अक की समाप्ति हो जानी है, परन्तु सय हरिश्चन्द्र म चुय अक चलता रहता है; यहा राजा की परीक्षा का त्रम अमी और चलता है। यहाँ की अष्ट महामिद्धिया, नव निधिया वारह प्रयोग और दयताभ्रा द्वारा हरिश्चन्द्र की आग की परीक्षा का वणन चण्डकौशिक म नही है। राजा हरिश्चन्द्र का डिगान क अय उपाया के असफज हा जान पर अन्तिम उपाय के रूप म तपक का उपयोग किया जाता है—

' (एक स्वर स) तो अज अन्तिम उपाय किया जाय ?

(दूमर स्वर स) हाँ, तक्षक का आना दें। अज और कोई उपाय नहा है। १

इमके पश्चात रोहिताश्व का सप द्वारा डमा जाना और उस लकर अन्तिम क्रिया क लिए शय्या का श्मशान म आना, विलाप करना करण स्वर स आकृष्ट हाकर राजा हरिश्चन्द्र का समीप आना, दलना, पहचानना और धय धारण करन हुए अपन कतव्य पथ स किंचिन भी च्युत न होना आदि बातें बाट की घटता हैं। चण्डकौशिक म रोहिताश्व का मरना और उसके पश्चात की ममी घटनाएँ पचम अक म सनिविष्ट हैं। इन घटनाभ्रा के वणन त्रम म दोना नाटका म यद्यपि पचाप्त समानता है फिर भी उतनी नही जितनी ऊपर प्रदर्शित खण्ड म परिनिमित्त होनी है। 'सत्य हरिश्चन्द्र के चतुथ अक के उत्तराष्ट म पूर्वार्ध की अपभा कुछ अधिक स्वतंत्रता स काम लिया गया है। इस खण्ड को अनुवाद न कहकर स्वान रूपांतर कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। यद्यपि यहा भी इस प्रकार के अनेक छाने-छाट अश उद्धत किये जा सकते हैं जा कि चण्डकौशिक के अनुवादमान हैं तथापि अधिकांश गद्य एव पद्य एसा ह जिमका रूप या तो कुछ स्वतंत्र है या स्वच्छंद रूपांतर है।

सत्य हरिश्चन्द्र के चतुथ अक के उत्तराध म रोहिताश्व के मरने पर गव्या का

विलाप बड़ा ही हृत्पद्रावक है। यह इतना कर्ण है कि पत्थर को भी पिघला देने वाला है—
अपि घ्रावा रोदिति, अपि दलति यज्जस्य हृदयम् ।^१

यह दृश्य चण्डीगीत में भी अति कर्णक है। भारत-दुर्जी ने इस आधार बनाते हुए इसमें अपनी कल्पना का पुत्र देकर इस अतिगाय कर्ण बना लिया है। दुर्जानिरेक के कारण शायद आम्रधान करना चाहती है। उसी समय आडम से राजा हरिश्चंद्र उठे सावधान कर दते हैं—

तर्नाहं वेचि दासी कहवाई। मरति स्वामि आयसु विनु पाई ॥

कह न अधम सोच जिय माहीं। 'पराधीन सपने सुख नाहीं' ॥

सुनकर गया सचत हा जानी है—अहा! यह निम्न इस कठिन समय में धर्म का उपदेश किया। सच है मैं अधम दह की वीन हूँ जा मर मरूँ? हाय दह! तुझमें यह भी न देखा गया कि मरकर भी सुख पाऊँ? ^२

राजा भी पुत्रमरणजनित अत्यधिक वेदना के कारण दुष्ट से गलत फर्मा लगाकर मरने का प्रयत्न करता है किन्तु एक आतिरिक्त चेतना से सचत हा जाता है और चौककर बहने लगता है, गादित! गादित! यह मैंने क्या अनर्थ विचार! भना मुझ पास या अपने गरीर पर क्या अधिकार था कि मैंने प्राणत्याग करना चाहा। ^३

चण्डीगीत में राजा के प्राणघात के प्रयत्न का यह दृश्य इस प्रकार चित्रित किया गया है—

तत्र विलम्बत। भयानु भागारवा-नरपातवु सुनगागामि त्त्वमानमामान निवाप यामि। (अति मद परिक्रम्य स्मृतिम् अमिनीय मगम्भ्रमम्) अहह! मनान पराधीनम् आत्मान विस्मृतास्मि। (विचिरेय सबवन यम्) कष्ट भा कष्टम्—

मरणानिवृत्तिं याति धया स्वाधीनवत्तय।

आमविश्रमिण पापा प्राणत्यागज्यनीयरा ॥

(वक्तव्य नाटिका) तत् अस्मान्पि मनारयात् भ्रष्टास्मि मदमाय।

कुत—

दारुणस्यास्य दुःखस्य धयमस्त्येव भयजम्।

दुर्वारविनिपातोय भतु राज्ञायतिश्रम ॥”^४

यही गद्या का भी राजा दमा (मरणानिवृत्तिम्) उद्घासन के द्वारा मचत करता है। साथ हरिश्चंद्र को तर्नाहं वेचि दासी कहवाई य पत्नियों भारत-दुर्जी की कल्पनाप्रसूत है मरणानिवृत्ति याति धया का अन्वय नही है।

मनुष्य का इस अवस्था में भी राजा अपने स्वामी के आदेश के अंतर्गत अपने कर्तव्य के प्रति सावधान रहता है। मुझे वा आधा कर्ण दिए बिना वह दमागान में सिंगा का भी

१ उत्तरराजवर्णन अध १ अंश ० ८

२ गद्य हरिश्चंद्र (भा ना० भाग १) प० १२ १२१

३ अंश ५ ११६

४ चण्डीगीत अध ३, प० १२५ १२१

अंतिम क्रिया की आज्ञा नहीं देता है। रानी स भी राहित्वाश्व का दाहकम करने से पूर्व आधा कफन मांगता है। कफन मागन के लिए राजा के हाथ फलाने के साथ ही आकाश स पुष्पवृष्टि हाती है और नपथ्य से—

अहो धयमहो सत्यमहो ! दानमहो यलम ।
त्वया राजन हरिश्चन्द्र सव लोकोत्तर कृतम ॥^१

चण्डकौशिक म भी—

राजा—मन्नाग

अकृत्वा मत्परिज्ञानमदत्त्वा मृतकम्बलम ।
प्रवतनीया केनापि न इमज्ञानोक्षिता क्रिया ॥

सदुपनीयता म भनकम्बल । (इति सवाष्पस्तम्भ कर प्रमारयति ।)

गव्या—(भय नाटयती) महमुह दूरवा चिटठ । अह द उवणदरम ।^२

राजा—(ब्रौण नाटयित्वा स्थित)

ग वा—(राहित्वाश्वस्य गरीरान पटमाहृष्य अषयती हम्न समावाक्य सविम्मयम आत्म गनम) कथ चक्षवन्ति लक्ष्यग मणाहो वि अक्ष पाणी इमस्म बाजारम्म उवणीदो (अपमय शन प्रत्यङ्गम अशलाक्य सप्रत्यभिमानम) कथ उज्ज उनो (ससम्भमम) हा ! अज्ज उत परित्ताहि परित्ताहि (इति आत्मान पानयति) ।^३

राजा—अपमत्य देवि ! न मा श्वपार तस्य दूषित स्पष्टुमहसि तत समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

शय्या—(समाश्वस्य) हद्दी हद्दी ! कि ण्णेत्त ।

राजा—वमणा विपार तदल परिण्वितन, उपनीयनामेतत ।

शय्या—(सत्रकनयम अषयति) आकाशात् पुष्पवृष्टि ॥^४

सत्य हरिश्चन्द्र म भी गव्या मत कम्बल मागन क लिए राजा के हाथ फलाने पर उसका हाथ म चम्बली का चिह्न देखकर राजा का पहचाननी है और कफन के लिए राजा क आग्रह करन पर फलान के लिए उद्यत हाती है। टीक उसी समय पथवी कापन लगती है। भगवान नारायण स्वय उपस्थित हाकर राजा का हाथ पकड तत ह। चण्डकौशिक म रानी आधा कफन फाडकर देती है उस पर पुष्पवृष्टि होती है। एक म फाडन के लिए उमका उद्यत हाता है और दूसरे म फाडकर देता है यही दोना का अंतर है। इसी प्रसंग म 'सत्य हरिश्चन्द्र वा अहा धयमहा सयम आदि शत्राक चण्डकौशिक म भी ह किन्तु याड स परिवतन के साथ। यह कहा इस प्रकार है—

१ सत्यहरिश्चन्द्र (भा० ना० भाग १) पृ० २०१

२ भन्मद्य दूरता निष्ठ मह त उपनप्यामि ।

३ कथ चक्षवन्ति लक्षणनाशोप्यय पाणिरदस्य व्यापारस्यापनीत ! कथ आषयुत्त ! हा आषयुत्त ! परित्तापस्व ! परित्तापस्व !

४ चण्डकौशिक अंक ३ प० १३७ १६०

अहो दानमहो शीलम अहो धयम अहो क्षमा ।

अहो सत्यमहो ज्ञान हरिश्चन्द्रस्य धीमत ॥^१

सत्य हरिश्चन्द्र म मत रोहिताश्व के श्मशान म लाने से लेकर उसके पुन जीवित होने तक का दृश्य बडा ही वरण एव नाटकीय दृष्टि स अति प्रभावोत्पान्क है । चण्डवीणिक म भी यह दृश्य कम कारणिक नही है परंतु भारत दुजी ने अपनी परिष्कृत लेखनी से इसे अधिक चमत्कारी, प्रभावशाली एव स्वामाविक बना दिया है । आधार वही है किंतु अपनी कल्पना और प्रतिभा से इसे और अधिक चमका दिया है । इसम जो गति एव प्रभाव प्रतीत हाता है, वह मूल म उम मात्रा म परिलभित नही होता । इस कथन की पुष्टि के लिए दो उदाहरण सत्य हरिश्चन्द्र म से नीचे उद्धृत है—

हरि०—प्रिय ! धीरज घरा यह रोने का समय नही है । दत्ता, सगरा हुआ चाहता है ऐसा न हो कि कोई आ जाए और हम दाना को जान ल और एक लज्जा मात्र बच गई है वह भी जाय । चलो बलज पर सिल रखकर रोहिताश्व की क्रिया करा और आधा कम्बल हमरो दा ।

गया—(रोती हुई) नाथ ! भरे पाम तो एक भी कपडा नही था, अपना आचन फाडकर इमे लपट लाई हूँ इसम स आधा दे दूगी तो यह खुला रह जाएगा । हाय ! चक्रवर्ती क पुत्र को आज कपन भी नही मिलता । (बहुत रोती है ।)

हरि०—(बलपूर्वक आसुआ का रोककर और बहुत धीरज धरकर) प्यारी रोआ मत । ऐस ही समय म तो धीरज और धरम रखना काम है । मैं जिमका दास हूँ उसकी आना है कि बिना आधा कपन लिए क्रिया मत करने दो । इसम मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समभरर तुमस आधा कपन न लू तो बडा अधम हो । जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धम न छोडा उसका धम आधा गज कपन के वास्त मत छुडाओ और कपन स जल्दी आधा कपडा पाड दा । दत्तो, सगरा हुआ चाहता है ऐसा न हो कि कुलगुरु भगवान मूय अपने वश की यह दुदशा देखकर चित्त म उदात हा । (हाय फलाता है ।)

गया—(रोती हुई) नाथ जो आना । (रोहिताश्व का मृतकम्बल फाडा चाहती है कि रगभूमि की पृथ्वी हिलती है । तोप छूटन का सा गन्ध और विजली का सा उजाला होता है । नपथ्य म वाजे की और बस धय और जय जय की ध्वनि हानी है फून बरसत हैं और भगवान नारायण प्रकट होकर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड सते हैं ।)^२

चण्डवीणिक का सम्बद्ध प्रसंग उपर उद्धृत किया जा चुका है । दाना की तुलना करने पर यह स्पष्ट है कि जो नाट्य की गम्भार सरिता सत्य हरिश्चन्द्र म प्रवाहित हा रही है वह चण्डवीणिक म नहा है । बच्च क हृदय को भी दलित करने की क्षमता सम्भवत उसम नहा है । इसक परधान घटन वाली घटनाआ का दृष्टि म रखकर नाटका की तुलना करने पर जा निष्कप निवलत है व निम्नलिखित हैं —

१ चण्डवीणिक धम १, पृ ११

२ सत्य हरिश्चन्द्र भा (ना० भाग १) प० १२२ १२५

१ सत्य हरिश्चन्द्र म भगवान नारायण स्वय प्रकट होत हैं । राजा और रानी दाना को धैय और आस्वासन दत हुए रोहिताश्व को जीवनदान दते हैं । इसके पश्चात महादेव, पावती, भरव, घम, सत्य, इंद्र और विश्वामित्र बही उपस्थित होत हैं । विश्वामित्र राजा को उसका राज्य लौटाना चाहत हैं परन्तु हरिश्चन्द्र प्रश्नभरी दृष्टि से भगवान और घम की ओर देखत हैं । घम कहता है—

महाराज, राज आपका है, इसका मैं साक्षी हू । आप नि सन्देह इस लीजिए ।”
सत्य समथन करता है—

ठीक है, जिसा हमारा अस्तित्व सत्तार म प्रत्यक्ष कर दिखाया, उमी का पृथ्वी का राज्य है ।”^२

श्रीमहादेव आसीर्वात् दत हैं—

‘पुत्र हरिश्चन्द्र ! भगवान नारायण के अनुग्रह स ब्रह्मलाक पयन्त तुमन पाया तथापि मैं आगीवात् देना हूँ कि तुम्हारी कीर्ति जत्र तक पृथ्वी है, तत्र तत्र स्थिर रह और राहिताश्व दीर्घायु प्रतापी और चन्द्रवर्ती हा ।’^३

इंद्र भी राजा को आर्लिगन कर एव हाय जाडकर कहता है—

महाराज मुझे क्षमा कीजिए यह मेरी दुष्टता था, परन्तु इस बात स आपका कल्याण ही हुआ । स्वर्ग कौन कह आपन अपन मयजल स ब्रह्मपद पाया । दखिए, आपकी रथा के हेतु श्री शिवजी न भरवनाय का आना दी थी आप उपाध्याय बने थ । नारन्जी बटुक बन थे, साक्षात घम न आपके हेतु चाडान और कापालिक का भेष लिया और सत्य न आप ही के कारण चान्दल क अनुचर और वताल का रूप धारण किया । न आप विवे न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान नारायण की दृच्छा स केवल आपके सुयोग क हेतु किया गया ।”^४

अत म हरिश्चन्द्र भगवान स एव वर मांगत है कि उनकी प्रजा भी उनके साथ वकुण्ठ जाए और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रह । उनकी यह कामना पूण होती है । भगवान वर दत हैं—

‘एवमस्तु तुम ऐम ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हार कारण अयाध्या के कौट पतंग जीव-मात्र सब परमधाम जायेंगे और कलियुग म घम क सब चरण टूट जायेंगे, तब भी वह तुम्हारी इच्छानुमार सत्यमात्र एव पद स स्थिर रहगा ।’^५

इस प्रकार भारत दुर्जी ने पत्नी और पुत्र सहित राजा हरिश्चन्द्र को प्रमुख देवताआ का एव विश्वामित्र का आगीर्वात् तथा राज्य दिलाकर नाटक को समाप्त किया है । परन्तु इस प्रसंग के चित्रण म चण्डीकौमिक म कुछ भिन्नता ह । यह इस प्रकार है—

१ सत्य हरिश्चन्द्र (भा० ना, भाग १) पृष्ठ १२५

२ वही प १२५

३ वही प० १२५

४ वही प० १२६

५ वही प० १२७

यहाँ दाहक्रिया करने से पूर्व मृतकम्बल लन का तो उल्लेख है, आधे मृतकम्बल का नहीं—

अकृत्वा मत्परिचानमदत्त्वा मृतकम्बलम् ।

प्रवतनीया केनापि न श्मशानोचिता क्रिया ॥^१

चाण्डाल का दास बनने के समय भी राजा के श्मशान में कत्तय के निर्देश में भी चंडाल रूपधारी धर्म की ओर से— दण्डिणश्मशानं गत्वा मृतकचौरहारकेण भूत्वा अहोरात्रं जागृति यम् अहमपि स्वमवनेभेव गच्छामि ।^२ मृतचौर का ही उल्लेख है अधचौर का नहीं । साथ हरिश्चन्द्र के तृतीय अंक में जहाँ हरिश्चन्द्र डोम के हाथ बिकते हैं वहाँ भी कफन के दान का ही उल्लेख है—

जाओ अभी दक्खिनी भसान । लव वहाँ कफन का दान ॥

जा कर तुमको नहीं चुकाये । सो किरदा करने नहीं पावे ॥^३

यह पद 'चाण्डकीर्ण' के अकृत्वा मत्परिचानम् का ही रूपांतर है । परंतु चतुर्थ अंक में गान्धर्व कफन का प्रथम श्राव उल्लेख— ता अत्र चरें उमसे आधा कफन मागें (आगे बढ़कर और बलपूर्वक आमुद्या का रोकर श्राव या स) महामान, श्मशानपति की आज्ञा है कि आधा कफन त्रिजिना का मुरगा फूटन न पावे सा तुम भी पट्टे हम कफन दे ला तब क्रिया करो ।^४ इसी स्थल पर कुछ ही आगे— लाधा मृतकम्बल हम दा और अपना काम आरम्भ करा ।^५ म कवन मृतक के घनमात्र का ही उल्लेख है किंतु इसी पृष्ठ पर गान्धर्व की उक्ति में पुनः आधे कफन का उल्लेख— नाव मरे पास एर भी कपडा नहा था अपना आंचित फाटकर हम लायी हैं उममें म भी आधा दे दूंगा ता यह खुता रह जाएगा ।^६ इससे आगे— मैं जिसका दाम है उसकी आज्ञा है कि त्रिजिना आधा कफन लिए क्रिया मत करन दा । इसमें मैं यदि अपना स्त्री और पुत्र समझकर तुममें इसका आधा कफन न लू ता अधम हा । जिस हरिश्चन्द्र ने उष्य से अस्त तक का पृथ्वी के लिए धर्म न छाया उसका धर्म आधा गज कफन के वास्तु मत छुड़ाया और कफन से जन्नी आधा कपडा फाड दो ।^७

इस प्रकार साथ हरिश्चन्द्र में भी स्थला पर कफन की चर्चा है और उक्त से सात में आधे कफन का उल्लेख है ।

'चाण्डकीर्ण' में हरिश्चन्द्र के गान्धर्व मृतकस्त्र मागने एवं अर्पण के पदवाचक आवागम में पुण्यवृष्टि के साथ जा दृश्य परिवर्तन हाता है उत्तम केवल धर्म का ही प्रवेश निम्नाया गया है । साथ हरिश्चन्द्र के समान भगवान् नारायण धर्म साथ गिव पावती इन्द्र भरव निद्रामित्र आदि घटुत में व्यक्तिया का नहा । यहाँ धर्म का ही सर्वोपरि देवता माना गया है । साथ हरिश्चन्द्र में जा काम मगवान् नारायण से कराया गया है वह यहाँ

१ चाण्डकीर्ण अंक १ श्लोक १६

२ वहाँ अंक ३ पृ० १०६

३ साथ हरिश्चन्द्र (भा० ना० भाग १) अंक ३ पृ० ८६

४ वहाँ अंक ४ पृ० १२१

५ वहाँ अंक ४ पृ० १२२

६ वहाँ अंक ४ पृ० १२३

७ साथ हरिश्चन्द्र (भा० ना० भाग १) अंक ४ पृ० १२३

धम न बिया है। उम यहाँ 'भगवान धम कहा गया ह। उमका मामय्य भी कम नही है—

अयेपा ये दुलभा पायिबाना सत्यदीनिर्हजित कमभिद्वच ।

तानेबाह ब्रह्मसालोक्य-भूतानाप्तो दातु गान्वतानद्य लोकान् ॥^१

राजा हरिश्चन्द्र अत्र भी अपन का स्वपात्र-दास्य दूषित' समझन हैं इसलिए पुनरज्जीवित पुत्र राहिताश्व का अपन गरीर-स्पर्श का निषेध करत हैं। परन्तु धम उन्हें दिव्यचक्षु देकर उनकी धारणा का निराकरण करत हैं—

श्रेता योऽस्या ब्राह्मणस्ते सदारी यन्चाण्डालो यत्र राज्य च तत ते ।

राजन, गुह्य तत्त्वतोऽज्ञातुमेतद्विद्य चक्षु साम्पत ते ददामि ॥^२

अत्र पदेवान राजा हरिश्चन्द्र विमान पर उठकर दिय चक्षु मे ममस्त स्थिति की वास्तविकता का परिचय प्राप्त करत हैं। चक्षु मे ह कि विद्याया की उपरान्त म स तुष्ट हाकर भगवान बौगिक न हरिश्चन्द्र का राज्य मन्त्रिया का मान लिया ह। धम उत्र प्रताता है कि मुनि विद्वामिन न नुम्हारी सभ्यपरीया क निर ही बैमा किया था राय की कामना न नत्। यमीलिए उनके प्रति भ्रम नही शाना चाहिए—

राजन, मवा सत्यजितानयधामो मुनिम्भजा वृत्तवान न तु राज्यायितया। तत्र मम्भ्रमण। विदुद्भमानाकपता तस्मि मवम।^३ राजा दिय चक्षु म स्वय सारी स्थिति का जान लन पर अपनी रानी गव्या का भी परिचय करान ह—

दवि लिष्टया चद्रम—

श्रेता स ते प्रकृति कारुणिको द्विजमा,

जाया सखी ननु गिबो किल दम्पती तो।

श्रेता ममापि खलु यो भगवान स धम,

तेनापुना मनसि गत्यमुपति गतिम् ॥^४

जसा कि उपर दियाया जा चुका है मय हरिश्चन्द्र म समस्त स्थिति का स्पष्टीकरण दत्र क मुख स कराया गया ह।^५

सय हरिश्चन्द्र के विपरात चण्णबौगिक म मुनि विद्वामिन द्वारा राज्य लीया स्थिति जान पर भा राजा हरिश्चन्द्र स्वय राज्यासहामन पर नहा वरत हैं अनितु धम क आदेश स पुत्र राहिताश्व का राधाभिषेक किया जाना है और सब विमानधारी देवता इनका अभिनयन करत हैं—दिष्टया रिमानचाग्णीमिद्वेवनाभिरभिनयत वत्स राहिताश्वस्याभिषेक महासय।^६ धम के आदेश म राजा हरिश्चन्द्र का ता ब्रह्मनाक का अधिकारी बनाया जाता है, किन्तु राजा अत्र नही अपनी प्रजा का माय लेकर ही ब्रह्मनाक जाना चाहत है। विद्वामिन क द्वारा राय ग्रहण क समय जा प्रजा उनक साथ जान क लिए उद्यत था,

१ चण्णबौगिक अत्र ५ श्लोक २१

२ वही अत्र ५ श्लोक २ पं १६४

वही अत्र ५ पं १६५

४ वही अत्र ५ श्लोक २६

५ मय हरिश्चन्द्र (भा० ना० भाग १)

६ चण्णबौगिक अत्र ५ पं १६८

आज प्रह्लादाक का अधिकारी बनने पर स्वार्थी बनकर उस प्रजा का कस छोड़ द—

शुद्धे तजन तत्परे खलु गते दष्टाधरे षोडशके
नाथतान क्व विहाय गच्छसि ? नयास्मानप्यनाथानिति ।
प्रत्यग्रागतवाप्य दीन वदनरक्तोऽस्मि यस्तान कथम,
त्यक्त्वाऽऽत्मभरिरभ्युपमि भयता लोकान प्रदिष्टानहम् ?^१

परन्तु इस सत्कार में तो प्राणी अपने किय कर्मों का फलभोग करता है। निम्नान्त कर्मों में रत समस्त प्रजा का यह अहोभाग्य कैसे हो सकता है कि राजा के साथ वह सीधे ब्रह्मलोक जाय ? यही धम की अपेक्षा है— राजन स्वयं वचि-योच्चावच स्वभावात् प्रजानां क्व पुनरुत्पत्ति मागधेर्माणि ।^२ किन्तु राजा हरिश्चन्द्र उनके पुण्या का अभाव में अपने पुण्यों के अभाव में ही उन्हें साथ न जाना चाहते हैं—

क्षण क्षणाद्य सह तामिरेव लोकान प्रजाभिर्विहरामि तास्तान ।
मयव या पुण्यलवेन तासा भवन्तु लोका भवता प्रदिष्टा ॥^३

राजा हरिश्चन्द्र की स्वपुण्यदान की भावना से प्रभावित होकर धम प्रजा को भी अथवा लोका का अधिकारी बना देता है—

धम — (मविममयम) अहा ! लोकांतर चरितमस्य राजपे । राजन अनेन पुण्यदान
सम्भाविनानापरण पुण्यसम्भारण प्रजानामामनश्चापारिता गद्वता लोका ।^४

इस प्रकार ऊपर उल्लिखित उद्धरणों से यह बात स्पष्ट है कि सत्य हरिश्चन्द्र का धार्मिक भाग अपने आधारभूत अथवा धर्म धर्मोत्थर के चण्डीगिरि से कुछ भिन्न हो गया है। सत्य हरिश्चन्द्र में न तो राक्षसात्मक रायामिषेय का कहीं उल्लेख है और न उसी समय राजा का ब्रह्मनाश का निषेध प्रदान करने का। यद्यपि राजा हरिश्चन्द्र ने यहाँ भी भगवान् से यह वर माँगा है कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ वदुष्ट जाय और सत्य सत्ता पृथ्वी पर स्थिर रहे ।^५ तथापि यही तत्काल ही राजा का ब्रह्मनाश का निषेध प्रदान करने का आदेश नहीं है। सम्भवतः नाटककार का गिरु राक्षसात्मक का ऊपर में पिता की छाया हटाना धर्मोत्थर नहीं था।

विवेचन

ऊपर हरिश्चन्द्र का कथानक एवं उक्त मूलग्रन्थ का विवेचन करत हुए चण्डीगिरि में गया। तुलना गिरिदार में का गया है। इससे पता चल चुका है कि तुलना करना अत्यन्त ही ठीक था कि भारत में न नाटक माहित्य का विषय अध्ययन प्रस्तुत करने

१ कण्डीगिरि अध १ श्लोक २३

२ कण्डी अध १ श्ल १९६

३ कण्डी अध १, श्लोक २६

४ कण्डी अध १, श्ल १३ १३१

५ सत्य हरिश्चन्द्र (भा. भा. भाग १)

वाले डॉ० बीरेन्द्रकुमार गुक्ल न भी इन दाना नाटक की विस्तृत तुलना नहीं की है।^१ दूसरे स्पष्टरिक्त नाटक की समीक्षा करते समय, यह बताना भी आवश्यक हो जाता है कि कितना अंग अनूक्ति है और कितना स्वकल्पित। यहाँ समस्त नाटक की प्रतिपत्ति एवं प्रतिशब्द की तुलना तो नहीं की गयी है, क्याकि ऐसा करने में अत्यधिक विचार हो जाता और सम्भवतः यहाँ इनके विस्तार से ऐसा करना अपरिचित भी नहीं था। फिर भी द्वितीय अंक के अन्तिम भाग से लेकर चतुर्थ अंक की समाप्तिपर्यन्त सभी साम्यदानक स्थान सन्निविष्ट हो गये हैं।

इन सभी स्थानों का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने के उपरान्त यह बात स्पष्ट हो जाती है कि साथ हरिश्चन्द्र के द्वितीय अंक के उत्तरार्द्ध में चतुर्थ अंकपर्यन्त कुछ अल्पम अंग को छोड़कर दाना नाटक में अति साम्य है और चण्डकौशिक का अनूक्ति भाग ही इसमें अधिक है। वहाँ-वहीं मूल के भाव का परलवन भी है। इसके साथ-साथ वही मतिप्रीतिकरण और वही अनुपयोगी अंग का परित्याग भी देखा जाता है। चतुर्थ अंक के समाप्त बणन, शय्या का विलाप तथा हरिश्चन्द्र की मार्मिक वेदना व चित्रण में भारत-दुर्जी न स्वतन्त्रता में काम लिया है। यहाँ अनुवाद के साथ-साथ उनकी कल्पना का योग भी देने को मिलता है। जहाँ वही उद्देश्य अपना अंग में कुछ नया जाड़ा है वहाँ स्वाभाविकता तथा नाटकीय सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। इसमें सन्देह नहीं। डॉ० बीरेन्द्रकुमार गुक्ल न इस अन्तर को इस प्रकार प्रदर्शित किया है—

“चण्डकौशिक के जिन स्थलों को उद्देश्य छोड़ दिया है वे अधिक उपयोगी प्रतीत नहीं होते। उनके स्थान पर काल्पनिक घटनाचक्रों को जोड़ा है। विद्रूपक और महाराज तथा रानी और चारमति की बातों बनेकर द्वारा सुप्रसन्न की प्रशंसा राजा तथा सून के द्वारा आश्रम का वणन या चाणाला का हरिश्चन्द्र का पथप्रज्ञा व वनना, मतवत्सा के अंग की सूचना हरिश्चन्द्र की बार-बार अंग वाली मूर्च्छा तथा अभिप्रेत व प्रवचन आदि प्रसंगों को निरर्थक समझकर छोड़ दिया गया है और कथाविस्तार के लिए नवीन घटनाओं को रखा गया है। महाविद्या के प्रसंग का स्वप्न में दिखाने सत्य हरिश्चन्द्र की कथा को स्वाभाविक तथा रोचक बनाने का प्रयास किया गया है। संस्कृत नाटक के शिथिल प्रसंग जिनसे नाटकीय कथावस्तु में निश्चितता अंग की आगवा भी छोड़ लिये गए हैं।^२

साथ हरिश्चन्द्र के कथानक में वही नहीं जो आप आ गए हैं उनमें अंग भी डॉ० गुक्ल न संभवतः किया है— कथावस्तु में कुछ अममार्थ प्रसंग आ गये हैं जो कथानक में खटकने वाली घटनाएँ प्रतीत होती हैं। ऐतिहासिक तथ्यानुसार राजा हरिश्चन्द्र के काल में गंगा का वणन अंगगत लगता है। भगीरथ राजा हरिश्चन्द्र के बाल हुए हैं, अंग उस काल में गंगा का वणन प्रामाणिक वस्तु नहीं वही जा सकती। स्वप्न में दान देकर प्रतिष्ठित सत्य मानकर, अमुक नाम आह्वान का अपना सम्बन्ध अंग कर देना, कथानक की स्वाभाविकता में बाधा उत्पन्न करता है। कथानक में अपने कथानक में अनिर्जना का अत्यधिक

१ भारत-दुर्जी का नाटक-साहित्य प्रकाशक रामनारायणनाथ प्रयाग प्रथम संस्क० १९५५।

२ वही पृ १७१-७२

आश्रय दिया है।^१

भारत-दुर्जी मानुष व्यक्ति है। भावना व आश्रय पर प्रभाव म रहकर उत का प्रेम का ध्यान नहीं रहा है। अनिरजन शेष का भाग्य। कारण है। यह मण्डि त्रिगुणात्मक है। मानव भी उसी का एक अंग है। रजागुण का चरित्र मणि व माय जय सत्य का अंग कुछ निराश्रित हो जाता है तो प्रायः बौद्धिक विज्ञान की क्षमता कुछ कम हो जाता है। माननाप्रवण व्यक्तियों का साथ एसा अधिक होता है बौद्धिकता की अभाव में हृदयगत उनका अधिक प्रबल बन जाता है। इसानिण माहि-यग्य का विषय दास मयथा प्रशम्य नहीं हात हैं। सत्य हरिश्चन्द्र का चतुर्थ अंग म रानी का या व विनाय शौर राजा हरिश्चन्द्र की वरणाद्रता का चित्रण भारत-दुर्जी का मानुषता के प्रकृत उपाकरण है।

वस्तुतः सत्य हरिश्चन्द्र भारत-दुर्जी की मयथा मौलिक रचना का ही अन्तर्भाव है। इसलिए इसमें उनका मौलिक भाग उनका रहा था पाया है जितना कि स्वतंत्र रचनाओं में मिलता है। एमरी आधारभूमि प्रायः श्रेयस्कर का चण्डीगिरि ही है। एमरी रचना म यत्र तत्र 'नेम' की स्वतंत्र वृत्ति भा परिवर्तित होती है अतः एम मयथा अनुवाक न रहकर छाया अनुवाक स्वच्छन्द अनुवाक अथवा स्तन्य रूपान्तर रह सकते हैं। या तो राजा हरिश्चन्द्र की कथा पुराणा में मिलती है। विष्णुपुराण^२ भागवतपुराण^३ और दहीभागवतपुराण^४ में इस कथा का गद्यान्त विस्तार है। प्रायः शमीश्वर का चण्डीगिरि की कथावस्तु का आधार पुराण प्रसिद्ध तथा ही रही है। इसमें मन्त्र नही। सत्य हरिश्चन्द्र की कथा का आधार मुख्य रूप से चण्डीगिरि है अतः इसकी तुलना चण्डीगिरि से करना ही समीचीन प्रतीत हुआ पुराणा में प्राप्त कथा का रूपा में नही।

चण्डीगिरि की कथा का आधार

उपयुक्त विवरण से सिद्ध है कि भारत-दुर्जी का सत्य हरिश्चन्द्र की कथावस्तु का मुख्य आधार प्रायः शमीश्वर का चण्डीगिरि है और इसकी कथावस्तु का आधार मुख्य रूप से माकण्डेय पुराण में वर्णित महाराज हरिश्चन्द्र की कथा है।^५ हरिश्चन्द्र की कथा अथ वई पुराणा एक एतरेय ब्राह्मण में भी विस्तार से वर्णित है किन्तु चण्डीगिरि की घटनाओं का साम्य जितना माकण्डेय पुराण की कथा में प्राप्त है उतना अथय नहीं।

चण्डीगिरि का प्रथम अंग म अनिष्ट स्वप्नगत से कर्तव्य राजा हरिश्चन्द्र का मनाविनाश का लिए मगया करन बन म जाना वहा महर्षि विद्यामित्र द्वारा वग म लान के प्रयत्न म खिन महाविद्याया का नारी-स्वर म अतना करना तथा मुनवर राजा द्वारा

१ भारत-दुर्जी का नाट्य-नाट्य प्रयास १९५५ प १७५

२ ब्रह्मपुराण अथ दायम पूना म १०५ १५

३ भागवतपुराण स्कंध ६ म ७ ७ २३

४ दहीभागवतपुराण स्कंध ७ म १६ २७

५ माकण्डेयपुराण म ७ और ८

उनकी रक्षा, उसक इस काय से विश्वामित्र का क्रुद्ध हाना, मनाने के लिए राजा का प्रयत्न तथा समस्त पृथ्वी विश्वामित्र का दान कर दना और दक्षिणा का धन चुकान के लिए एक मास की अवधि माग लेना आदि सभी घटनाएँ माकण्डेयपुराण में बिना किसी विशेष परिवर्तन के उसी रूप में वर्णित हैं।

माकण्डेयपुराण की कथा के क्रम में थाडा सा यह अंतर है कि यहाँ विश्वामित्र का यथेष्ट वस्तु देने के लिए राजा के प्रतिश्रुत हो जाने पर, ऋषि पहले 'राजसूयिकी दक्षिणा मागत है। इसका आश्वासन प्राप्त होने के पश्चात पृथ्वी के दान की याचना करते हैं। राजा ने कहा—

उच्यता भगवन यत् ते दातव्यमविशक्तिम् ।
दत्तमित्येव तद् विद्धि यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥
हिरण्यं वा सुवर्णं वा पुत्रं, पत्नी, क्लेवरम् ।
प्राणा राज्यं पुरं लक्ष्मीयदभिप्रेतमात्मनः ॥^१

राजा के इस वचन के पश्चात विश्वामित्र ने कहा—

राजन प्रतिगृहीतोऽयं यस्ते दत्तं प्रतिग्रहं ।
प्रथच्छ प्रथमं तावद् दक्षिणा राजसूयिकीम् ॥^२

दक्षिणा का आश्वासन दत्त हुआ और भी कुछ बाञ्छित वस्तु मागने के लिए राजा ने ऋषियाँ स आग्रह किया—

ब्रह्मण तामपि दास्यामि दक्षिणा भवतो ह्यहम्
त्रियता द्विजशाबूलं यस्तवष्टं प्रतिग्रहं ॥^३

राजा हरिश्चन्द्र के वचन से आश्चर्य होकर महर्षि विश्वामित्र ने यह बड़ा दान मागा—

ससागरा धरामेता सभूभदशामपत्तनाम् ।
राज्यं च सकलं वीरं रथाश्वगणसकुलम् ॥
काष्ठागारं च कोषं च यच्छास्यद् विद्यते तव ।
दिना भाषा च पुत्रं च शरीरं च तवानघ ॥
धमं च सत्रधमज्ञं यो यात्तमनुगच्छति ।
बनुना वा किमुक्तेन सर्वमेतत् प्रदीयताम् ॥^४

इतना महानान प्राप्त करने के पश्चात भी पूरे प्रतिश्रुत 'राजसूयिकी दक्षिणा' के लिए ऋषि के आग्रह पर राजा पत्नी पुत्र सहित एक मास की अवधि लेकर वाशी चला जाता है।

द्वितीय अक्षर में चतुर्थ अक्षरपत्र की घटनाओं में कोई उल्लेख याग्य परिवर्तन नहीं है। पंचम अक्षर का आरम्भिक भाग भी सामान्य है। इस अक्षर के उत्तरार्द्ध में राहिताश्व का जीवित करने के उपरांत ऋद्ध, धम विश्वामित्र प्रभृति सब लोग पढ़ने अथवा या जाता है।

१ माकण्डेयपुराण अ ७ श्लोक २३-२४

२ वही श्लोक २५

३ वही श्लोक २६

४ वही श्लोक २७ म २६

वही सबप्रथम विश्वामित्र साहित्यकार का साध्यात्मिक काल है—

आनीय रोहिताश्व घ विश्वामित्रो महातपा ।

अयोध्यास्थे पुरे रम्ये सोऽर्घ्यायननुपात्माम ॥^१

और राजा हरिश्चन्द्र दयतामा का आग्रह से अपनी प्रजा सहित परमधाम की यात्रा करते हैं ।

इस प्रकार से, आदि और अन्त में, चण्डवीर्य नाटक में जो भेद पाया जाता है, उसका कारण उसका आधार है ।

सत्याग्रही

राजा हरिश्चन्द्र एवं विश्वामित्र के कथानक को लेकर लिखा गया अज्ञान-दण्ड नाम का सत्याग्रही इस विषय का दूसरा नाटक है ।^२ यह नाटक लेखक ने विशेष परिस्थितियों में एक एक विशेष दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखकर लिखा है इसलिए इसकी मूलकथा, पुराणों में प्रसिद्ध हरिश्चन्द्र की कथा में लेखक ने इच्छानुसार अनेक परिवर्तन किये हैं । नीचे संक्षेप में नाटक की कथावस्तु दी जा रही है ।

कथानक

अयोध्या के राजा हरिश्चन्द्र कुछ दिन ग्राम्य जीवन बिताकर राजधानी में लौटते हैं । ग्रामवासियों का सरल जीवन उन्हें बहुत प्रभावित करता है । उनमें शिक्षा आदि की कमी को दूर करने के लिए वे पूरा प्रयत्न करते हैं सबके दुःख दूर करने के लिए । प्रजा उन्हें बहुत स्नेह करती है । उनकी दानशीलता एवं सत्यवाग्निता दोनों लोकप्रिय हैं । वे देवलोक में इंद्र को भी आश्चर्यचकित कर देती हैं ।

एक दिन पराक्ष में राजा के कुछ सैनिक महर्षि विश्वामित्र का आश्रम में जाकर आश्रम की कुछ हानि पहुंचाते हैं परंतु राजा को इसकी कोई सूचना नहीं मिलती है । आश्रम की हानि का पता लगने पर विश्वामित्र का रोष भडक उठता है । वे समझते हैं कि जो कुछ हुआ है वह राजा के परिज्ञान में एवं उसके सनेत से ही हुआ है । वे राजा से इसका बदला लेने के लिए और उसकी श्वांति के प्रति स्वाभाविक डाह के कारण उसे असत्यवादी सिद्ध करने के लिए उसके पास जाकर उसका समस्त राज्य माग लेते हैं और दम्पिता के रूप में एक सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ देने के लिए भी विवश करते हैं ।

१ माण्डव्यपुराण अ. ८ श्लोक २७०

२ ले० अज्ञान-दण्ड नामी प्रजा दण्डिण भारत हिन्दी प्रकार मन्ना मन्ना प्र० संस्कृत १९३९ ई

राजा हरिश्चन्द्र ता पहले ही राज्य के प्रति निःस्पृह है। उसके प्रति उनकी कोई आसक्ति नहीं। उसकी तो इच्छा पहले से ही एक कृपक जैसा जीवन बिताने की रही है। दूसरी बात यह कि वह स्वप्न में एक ब्राह्मण का राज्य दान कर ही चुका है, इसलिए भी उस पर अपना अधिकार वह नहीं समझता। अतः विश्वामित्र के मागन पर वह प्रसन्नता से राज्य उन्हें दे देता है और विश्वामित्र की इच्छानुसार केवल पहने हुए बस्त्रों के साथ पत्नी शब्या और पुत्र राहित का लेकर राज्य की सीमा से बाहर हो जाता है। वाशी में जाकर वह अपनी पत्नी और स्वयं का बेचकर विश्वामित्र को देने के लिए दक्षिणा की सहस्र मुद्राएँ जुटाता है। रानी दासी बनती है और वह स्वयं एक डाम का भृत्य। वह सपने के काटने से पुत्र के भरन पर भी अपने सत्य और धर्म में विचलित नहीं होता।

इधर विश्वामित्र को वाशी में राजा के कष्टों का जब समाचार मिलता है तो उनका पथर हृदय द्रवित हो उठता है। पश्चात्ताप की अग्नि उन्हें अज्ञात बना लेती है। उनका राध सात हो जाता है। उनके हृदय में करुणा का एक पवित्र अंश उमड़ आता है। वे अयोध्या के प्रमुख नागरिकों को लेकर वाशी जाते हैं। वहाँ वे उस समय पहुँचते हैं जबकि रोहित को बिना पर रखा ही जा रहा है। दूर से ही पुकारते हुए वे उस रात दत्ते हैं। रोहित की जिह्वा और नाडी को देखकर वे उस एक जड़ी दत्ते हैं। कुछ और उपचार भी करते हैं। रोहित जीवित हो जाता है। विश्वामित्र राजा के चरणों में गिरकर उससे क्षमा याचना करते हैं और राध का पुनः स्वीकार करने के लिए उससे प्रार्थना करते हैं। पर हरिश्चन्द्र दान दी हुई वस्तु कैसे लौटा ले? अतः समस्या का समाधान यह किया जाता है कि विश्वामित्र राध राहित को दत्ते और जब तक रोहित राज्य के योग्य न बन जाय हरिश्चन्द्र उनके मंत्रों के रूप में काम करे। इसी में हरिश्चन्द्र के वचन और विश्वामित्र की इच्छा की पूर्ति सम्भव होती है।

आधार

इस सत्याग्रही नाटक की मूल कथा में कोई विशेष अंतर नहीं है। परन्तु यहाँ लेखक ने उन्हीं पुराणों में प्रसिद्ध कथा का आधुनिक युग की नयी दृष्टि परिवर्तित वातावरण एवं विचारधारा के अनुकूल ढाँचने का प्रयत्न किया है। कोई भी घटना अमानवीय अथवा अलौकिक नहीं है। जो कुछ भी घट रहा है वह स्वभाविक है और इसलिए ग्राह्य भी। नाटककार ने इस नाटक के घटनाक्रम का गठन कुछ इस रूप में किया है कि कहीं पर भी सामान्यतया बुद्धिग्राह्य तरता अथवा अतिरजसता नहीं आने पायी है। इसके गठन के सम्बन्ध में नाटक के आरम्भ के कथन में लेखक ने अपना दृष्टिकोण इस प्रकार स्पष्ट किया है—

‘इस नाटक के सम्बन्ध में दो बातें प्रधानतया आँगी। पहली यह कि इसका कथा नर पौराणिक और बहुत प्रचलित है। फिर भी मैंने इस नया रूप या आधुनिक रूप दिया है। दूसरी बात यह है कि हिन्दुओं की पुरानी शक्ती में ही धर्म को न बाँधकर इसमें मैंने राष्ट्रभाषा या हिन्दुस्थानी शक्ती बरती है। इन बातों का मेरा या उत्तर होगा—

‘हमने पुराने नाटकों के पौराणिक पात्रों को अमानव या अतिमानव बनाकर उनके द्वारा हानि बाने मनुष्य जीवन पर के अमर का बहुत काम कर दिया है। उसका फल यह

होता है कि पाठक या दर्शक उसके गुणा को अलौकिक मानकर स्तम्भित रह जाता है उन्हे पाने की वाग्नि नहीं करता। अमग पौराणिक या उग तरह के नाटक सिर्फ साहित्य और कल्पना की चीज ही रह गए हैं। उनमें मानव जीवन को उठाने की ताकत कम हो गयी है। उस जमाने के लिए वह भले ही ठीक रहा हो लेकिन आजकल के कथानिक या तार्किक युग के लिए यह जरूरी है कि हर एक बात जहाँ तक हास्य मनुष्य की बुद्धि की पहुँच के अन्दर कर दी जाय ताकि वह उससे अधिक से अधिक फायदा उठा सके। इस नाटक में दर्शकों को उठाने के लिए मनुष्य के मन में यह कोशिश की है कि इसका पात्र का आज की आवश्यकता और उच्चतर विचारों के अनुकूल बनाऊँ तथा इसके कथानक को ज्यादा स्वामाविक और कथानिक बनाऊँ। मैं पूरी कोशिश की है कि हरिश्चन्द्र की प्रचलित कथा में विशेष परिवर्तन न हो।^१

जसाकि नाटककार के इस वक्तव्य से स्पष्ट है इस नाटक की रचना विशेष उद्देश्य को सामने रखकर की गयी है। अति मानवीय घटनाओं का मानवीय रूप देने में उसे पर्याप्त निश्चय करना पड़ा होगा इसमें शक नहीं। अधिक कठिनाई इसलिए भी हुई होगी कि हरिश्चन्द्र की प्रचलित कथा में किसी विशेष परिवर्तन के बिना ही घटनाओं का आधार कथानिक एवं वातावरण के अनुकूल बनाने की और लेखन का ध्यान रखा है।

इस नाटक की प्रस्तावना धाराणसी के कपोतबुद्ध साहित्यकार बाबू रामचन्द्र वर्मा ने लिखी है। इसके सम्बन्ध में वे लिखते हैं—

चण्डीगढ़ भी इसी प्रकार के आदर्श नाटकों में से एक है जिसके आधार पर स्वर्गीय भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने उस सत्य हरिश्चन्द्र नाटक की रचना की थी जिसका आदर आज तक किसी जगत् में बचना ही जाता है। महाराज हरिश्चन्द्र की जगत् प्रसिद्ध तथा अनुपम दानशीलता के आधार पर यह सत्याग्रही नाम का नाटक लिखा गया है जो अनन्त दृष्टियाँ से नवयुवकों और विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। यह नाटक विद्यार्थियों और विशेषतः दक्षिण भारत के उन विद्यार्थियों के लिए लिखा गया है जिनमें आजकल हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रचार बहुत ज़ारा से बढ़ रहा है।^२

सत्याग्रही नाटक की कथा का आधार राजा हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध में प्रसिद्ध पौराणिक कथा ही है। यद्यत् उस कथा में स्वामाविकता एवं बुद्धिमत्ता लाने के लिए लेखक ने कुछ परिवर्तन किये हैं जिनका स्पष्टीकरण उसने नाटक के आरम्भ में किए अपने वक्तव्य में कर दिया है। अतः इसके स्रोत भी वही है जो सत्य हरिश्चन्द्र एवं चण्डीगढ़ के हैं।

विवर्तन

इस नाटक के आरम्भ में ही स्वयं नाटककार ने एव प्रस्तावना लेखक बा० रामचन्द्र वर्मा ने नाटक का शेष और उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है। यह नाटक पाठ्य होने के साथ साथ

१ मयावती भविष्य प ११

२ मयावती प्रस्तावना पृ० ६

अभिनय भी है। इसके दस्यो में बही अतिरंजन या अस्वभाविकता नहीं है। उन दृश्या का सपन्नतापूर्वक रंगमंच पर दिखाया जा सकता है। इसकी भाषा परिमार्जित एवं सरल है।

ऊपर की पंक्तियाँ में राजा हरिश्चंद्र की कथा का आधार बनाकर लिखे गए तीन नाटकों की चर्चा की गयी है। ये तीनों ही, रचना की दृष्टि से, इतिहास व तीन युगों की विशेषताओं को अपनी अपनी कथा और गीतों में सन्निविष्ट किए हुए हैं। तीनों नाटकों का प्रतिपाद्य लक्ष्य भी पृथक् पृथक् रहा है। आय क्षमीस्वर के चण्डकौंगिक की रचना एवं निश्चित लक्ष्य का समर्थ रंगकर्म की गयी है। जसा कि नाटक व गीतों से ध्वनित हो रहा है उसमें महर्षि विश्वामित्र के प्रचण्ड स्वरूप का चित्रण करना, सम्भवतः, नाट्यकार का प्रमुख उद्देश्य रहा है। यहाँ नाटक के दो प्रधान पात्र महर्षि विश्वामित्र और राजा हरिश्चंद्र क्रमशः अपने क्रोध और सत्योदाय की चरम सीमा पर खड़े हुए चित्रित किये गए हैं। अतः में विजय राजा हरिश्चंद्र के त्याग और गीत की ही जाती है। अपने निमाणकाल की चिंतनधारा एवं सामाजिक परिस्थितियों से भी यह प्रभावित है। भारत-दुर्जी न चण्डकौंगिक का अवलम्ब लेते हुए भी, सत्य हरिश्चंद्र में राजा हरिश्चंद्र की अविचल सत्यपरायणता के चित्रण का ही अपना प्रधान लक्ष्य बनाया है। भारत-दुर्जी का समय राष्ट्रीय चेतना एवं हिन्दी के नवोद्योग का युग था। इसकी भावना का सत्य हरिश्चंद्र में स्पष्ट देखा जा सकता है। तृतीय नाटक, ब्रजनन्दन नामा व 'सत्याग्रही' में गांधीजी के युग का स्वर ध्वनित हो रहा है। अपने युग के स्वर को ध्वनि देने के लिए उन्होंने कथा के मूल रूप को ही एक भिन्न दृष्टि दी है। उन्होंने आज के बुद्धिवादी युग के समर्थ राजा हरिश्चंद्र की पौराणिक कथा की तत्कालीन बुद्धिग्राह्य व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

वेणु कथा

पुराणों में एक अति क्रूर राजा वेणु नाम से प्रसिद्ध है। यह आजीवन प्रजा को सताने, अत्याचार करने तथा अनीति अपनाने में ही रत रहा। इसके जीवन से सम्बन्धित निम्नलिखित नाटक प्राप्त हुए हैं—

वेणु सहार बालकृष्ण भट्ट, वेनचरित बदरीनाथ भट्ट, क्रूर वेणु हरद्वार प्रसाद जालान।

वेणु सहार^१

बालकृष्ण भट्ट लिखित वेणु सहार एक संक्षिप्त नाटक है। यह तीन अंकों में विभाजित है। दृश्या के स्थान पर गर्भांक हैं। इस नाटक का आरम्भ पुराने नाटकों के ढंग पर होता है। नाट्यी सं प्रारम्भ करके सूत्रधार नटी का आगमन तथा प्रस्तावना इत्यादि सभी कुछ दिखाया गया है। आरम्भ में सूत्रधार के द्वारा नाटक का नाम न बहलाकर इस प्रकार बहलाया है—

सूत्रधार— (थोड़ा ठहर याद कर) हम तो भूल ही गये थे। अच्छी याद आयी हाल में हिन्दी प्रतीक के सम्पादन महागण ने एक नया नाटक तयार कर हम लिया है वह इस समय के लोगो की रचि के बहत ही अनुकूल होगा। चलो उसी के लिए तयार होने को अपने साथिया से कहे।'

कथानक

नाटक का प्रारम्भ एक पुरुष के द्वारा ढाडी पिटन से हाता है जो कहता है कि राजा का आदेश है कि राज्य में कोई व्यक्ति धर्म-धर्म एवं दान पुण्य न करे। न हान्य न दातय। जनता यह सुनकर प्रति चिन्तित होती है। तपोवन में छात्रगण परस्पर वाता वाप करते हैं जिसमें विन्ति हाता है कि कुछ गिष्ट यकिनया के पधारने के कारण उम निन अनध्याय है। उधर भगु मुनि विचार करते हैं कि देग में अनावलि दुर्भिक्ष तथा ऋतु विषयय हान का कारण राजा की अननिकता तथा अत्याचार ही हो सकता है। नागरिक आकर यही सूचिन करते हैं और प्राथना करते हैं कि राजा के अत्याचार से उन्हें मुक्त किया जाय। राजा वेणु प्रति मन्त्राध एक दुर्गोत है। भगु जब ऋषिगणा के साथ राज दरबार में पहुचते हैं तो वेणु प्रति उद्धत है। उनका अपमान करना है और उनकी कार्य

सम्मति सुनने के लिए तैयार नहीं होता । तब ऋषि समूह मारण मात्र पढ़कर वेणु का संहार (अन्त) कर दत्त हैं ।

वेनचरित'

प्रस्तुत कथा से सम्बंधित प० बदरीनाथ भट्ट वी० ए० लिखित दूसरा नाटक 'वेनचरित' है, जिसे लेखक के कथनानुसार नया रूप दिया गया है—

'इस नाटक में अराजकता के भीषण परिणाम तथा बरान' राजसत्ता की भयानक अठखेलियाँ और फिर उसका अंत दरसाने की चेष्टा की गयी है । आजकल मत्सर में राज नतिक उथल पुथल की धूम है । इसीलिए हिंदी पाठकों के मनोरंजाय इस पुरानी कहानी को नई पोशाक में रखने का साहस मैंने किया है ।'^१

इस नाटक की कथा लगभग पूर्ववत् ही है किंतु इसी नाटक में उच्च वण तथा निम्न वण का वैषम्य भी प्रदर्शित किया गया है । राजा अग का पुत्र वेन बहुत अत्याचारी है । प्रजा में दो दल हैं—एक तो द्विजातियाँ का जिसमें आपस में भी एकता नहीं है और जा वन को राजा बनाने के पक्ष में भी नहीं है । दूसरा दल शूद्रों का है जिसमें सगठन' है और यह वग वन का पक्षपाती है । वेन अत्याचारी और क्रूर है । राजा बनकर वह शूद्र दल के नायक की अपना मन्त्री बनाना है । यह व्यक्ति उच्च पद पाकर और अमिमानी बनकर अपने वग के लागों का भी क्राघभाजन बन जाता है । उसके द्वारा शूद्रों पर भी अतिरिक्त कर लगाये जाते हैं ।

अन्ततः दोनों वर्गों में मेल हा जाता है । राजा के अत्याचार और बर्त जाते हैं । किंतु हर वस्तु की एक सीमा होती है । सम्मिलित प्रजा विद्रोह कर दती है, वन को बन्नी बना लिया जाता है । उसकी माता को पूव महाराज अग के पास भेज दिया जाता है । राज्य शासन प्रजा के हाथ में आ जाता है । इसमें वन की मृत्यु नहीं दिवायी जाती ।

क्रूर वेण'

कथानक

हरद्वारप्रसाद जलान लिखित 'क्रूर वेण' नाटक तीन अंकों में सम्पूर्ण होता है । अपने बालसाथी सुंदरसिंह को यह अपना प्रगान मन्त्री बनाता है और दूसरे साथी क्रूरमह

१ प्रकाशक रामप्रसाद एण्ड ब्रन्स भागरा प्रथम संस्करण १९७६

२ नाटक में लेखक का निवेदन

३ प्रकाशक हरद्वारप्रसाद जलान नवरत्नलाल तुलस्थान चौक भागरा प्र० संस्करण १९८१ ई०

का प्रधान प्रान्तीय गायक। सुंदर वार रमणिया ही इसकी मनोरंजन की माधन हाती हैं। कोप म सताइस करोड का लाभ होने पर भी बीस करोड का झूठा घाटा लिखाकर प्रजा क ऊपर तरह तरह के कर लगाय जात हैं। राज्य म सबन बठोर दण्ड दिया जाता है। दरबार म विलामिता और क्रूरता का साम्राज्य है। नाम के लिए एक प्रतिनिधि सभा भी बनी हुई है किंतु उसके सत्स्या को कोई पूछता तक नहीं।

एक दिन शिकार क लिए राजा वन म जाता है जहाँ कामातुर होकर वह ऋषिकन्या गायत्री का पकड लेता है और ऋषियों के विरोध करन पर भी बलपूर्वक उसे घर ले जाता ह। कन्या के पिता अपन योगबल से ऐसा चित्र लिखात है कि राजा भयभीत होकर मूर्च्छित हा जाता है। ऋषि के आदेश स राजा के शरीर क टुकडे करके उसका मथन किया जाता है। उसस एक दिव्य पुरुष उत्पन्न होता है जिस सब प्रणाम करत हैं और क्रूर वेण का अंत होना ह।

आधार

इन तीना नाटकों के कथानक लगभग एक समान है। सबत्र वेण एक क्रूर अत्याचारी एक अधार्मिक राजा के रूप म चित्रित किया गया है। राजा वंश की कथा विभिन्न पुराणा म भी बबल कुछ भिन्नताओं के साथ लगभग समान रूप म ही उपलब्ध हानी है अत तीना नाटकों क मूलाधार समान स्थल ही कह जा सकते है। य स्थल इस प्रकार है—

भागवतपुराण^१

भागवतपुराण म वंश सम्बंधित कथा इस प्रकार है—

एक वार राजर्षि भग्न न अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया उसम कन्वानी ब्राह्मणा क आवाहन करन पर भी स्वता जब अपना भाग लन नहीं धाय तो राजा न चिंतित होकर दम काप का कारण पूछा। ऋषिजा न बताया कि राजा क पुत्रहीन होन क कारण ही दवता उत्पन्न है। ऋषिजा न ही तत्र राजा को पुत्र प्राप्ति करान का निश्चय कर यज्ञरूप म रत्न बान विष्णु भगवान क पूजन क लिए पुराणाग नामक चक्र समर्पित किया। अग्नि म आहुति जानत ह। अग्निवृष्ण म मोन का शर और शुभ वस्त्रा म त्रिभू पित एत पुत्र्य प्रकट हुआ जा एत स्वर्णपात्र म सिद्ध लीर त्रिय हुए था। पुत्रहीना रानी मुनीषा न यह लीर खाकर वंश का जन्म लिया जा अपन नाना मृत्यु क प्रभाव क कारण अग्नि कर हुआ। उसक उपवहार एक क्रूरता स तुम्हिन हाकर राजा भग्न न एत राज चुपचाप घर छान लिया।

एक वंश क राजा बनने पर उसक अध्याचार स्व गार ऋषि मुनि एतत्र हुए और अपना त्रास छिया उन समझत तब कि उन यज्ञार्थि धार्मिक अनुष्ठान कर स्वताप का निश्चय न। करना चाहिए। वंश न ऋषिया क उपर पर कोई ध्यान नया कि और उनत त्रिभू भगवान की मरपूर निन्दा का। एतस्वरूप क मृत्यु का प्राप्ति

हुआ किन्तु वंश के अग्र एव उसकी अमाघ शक्ति को सुरभित रखने व निग, मत राजा की जाँच को मथनर, ऋषिया न एव बाल बोन पुरष की उत्पत्ति की, जो 'निपाद' कहलाया और जिसके वगधर हिमा लूटपाट शत्यानि भरत रहन नग । वंश की भुजाआ का मथन करन स राजा पथु तथा उमकी पत्नी श्रिचि का जन्म हुआ ।

मत्स्य पुराण

मत्स्य पुराण^१ म भी वंश के पिता का नाम अग्र और माता का नाम मुनीया है । वंश यहाँ भी अति अत्याचारी अधर्मी और नास्तिक है । उसके कुवर्मों के कारण ऋषि मुनिया न शाप द्वारा नष्ट कर उसका मथन किया । उसकी देह के मातअग से मन्च्छ जाति के व्यक्ति उत्पन्न हुए और पितअश स एव धार्मिक पुरष उत्पन्न हुआ, जो अति तजोमय और निव्य स्वरूप वाला था । यह वंश की निगिण भुजा स उत्पन्न हुआ था और जन्म के साथ ही धनुष-बाण, गदा और रत्नमय वक्च तथा अग्रण से युक्त था । अभिपेक के उपरांत भी उसन बडा भारी तप किया और एव अति प्रतापी राजा बना ।

विष्णु पुराण

विष्णु पुराण^२ की कथा म भी मत्यु की मुनीया नाम वाली प्रथम पुत्री प्रजापति अग्र को पत्नी रूप म दी गयी थी । स्वभाव स दुष्ट अत्याचारी व्यसनी तथा अधर्मी वंश इनका पुत्र था जिसन राजा जनने पर पापणा कर दी कि यनपुरष में ही हूँ अत मरी ही पूजा की जाय । ऋषिगण न समभाया कि 'यन्ि तुम हम धार्मिक कृत्या की स्वतंत्रता दोगे ता हमारे पुण्यफन म मे छडे, भाग के तुम भी अधिकारी बनाग' किन्तु वंश पर किसी तक अथवा प्राथना का कोई प्रभाव नहा हुआ । फनस्वरूप ऋषिया न उसकी बहुत निगिण की और लाग का आदेश किया कि एस दुराचारी राजा का मार डाला, किन्तु भगवान की निदा तथा अग्रन कुकृत्या के कारण वंश पहले ही मर गया । इनके उपरांत मुनिया न उस मरे हुए राजा को मात्र न पवित्र किये हुए कुण स पुन पीटा ।

तत्पश्चात् राष्ट्र के राजाहीन हान से प्रदक्षमर म बड़ी भूल उठी । नर मुनिया ने सम्मति करके, राजा की जघा का पुन के लिए यत्नपूर्वक मथन किया । त्रघा के मथन पर जा पुरष निबला वह जले ठूठ के ममान काला नाटा और छोटे मुय बाना था । उमन भयाकुल हाकर पूछा—मैं क्या कर्क ? तो मुनिया न उसस बठ जाने के लिए कहा (निपीन) और इसीलिए वह निपाद कहलाया—

किं करोमीति तासर्वास विप्रानाह चातुर ।

निपीदेति तमूचस्ते निपादस्तेन सोऽभवत् ॥^३

भागवत पुराण म भी इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है— निपीदत्यश्रुवस्तात् स निपाद

१ मत्स्य पुराण अध्याय १ श्लोक ३१

२ विष्णु पुराण प्रथम अक्ष प्र १३, श्लोक ११ ६२

३ विष्णु पुराण बहा प्र० १३ श्लोक ३५

सतोम्बत् ।^१ वेण की दाइ भुजा का मथन करने में परम प्रतापी वंशमुत्पन्न पुत्र उत्पन्न हुआ । सत्पुत्र के जन्म लेते ही वेण 'पुनाम नरक' से बच गया ।

वामन पुराण

वामन पुराण^२ में वेण के पिता का नाम भ्रग न होकर क्षुत है जो मनुपुत्र है और इसकी पत्नी वेण की मा का नाम भया है जो यमराज की पुत्री है । राजा क्षुत ने उपरांत वेण राजा बना । विष्णु पुराण^३ में सट्टग यहाँ भी वेण ने प्रजा के ऊपर, भ्रमरुधा भ्रवानार किया है और देवपूजा पर बठोर प्रतिबन्ध लगा लिया है । प्रजा के हाहाकार के कारण ऋषि मुनियों ने उसे नष्ट कर लिया है और उसकी वाम भुजा से एक ह्रस्वगान पुत्र निपात उत्पन्न किया है जो वेण के पाप को लेकर उत्पन्न हुआ । दाइ भुजा से जो पुण्य उत्पन्न हुआ उसकी भुजा धनुष-बाण चन्द्र और ध्वजा से अलित थी । इसका नाम वण्य था । ऋषि मुनि तथा देवगण ने मित्रवर इसका अभियेक किया और अपने पिता के स्थान पर वह प्रजा का रजन करने वाला बना । उसी समय से पृथ्वी पर शासन करने वाले व्यक्ति का नाम राजा प्रचलित हुआ—

पित्रा विरजिता तस्य तेन सा परिपालिता ॥

ततो राजेति शब्दोऽस्य पृथिव्या रजनादभूत् ॥^३

इसके उपरांत की कथा वण्य द्वारा पिता के पाप माजन करने तथा उन्हें स्वर्ग में प्रेषित करने से सम्बन्धित है । वण्य को नारदजी द्वारा ज्ञात हुआ कि उसका पिता वेण मृत्यु के उपरांत म्लेच्छों के मय उत्पन्न हुआ है और क्षय और कुष्ठ रोग से पीड़ित है । नारदजी ने मोक्ष का उपाय उसके पिता द्वारा विभिन्न तीर्थों की यात्रा निश्चित की । तदनुसार वण्य स्वयं पहुँचकर, अपने पिता को म्लेच्छों के बीच से लाया और विभिन्न तीर्थों की यात्रा स्वयं करवायी । कुरुक्षेत्र के समीप स्थाणु तीर्थ पर स्नान करने से पूर्व ही आनाश वाणी द्वारा उसे स्नान करने से रोका गया जिससे तीर्थ अपवित्र न हो जायें किन्तु ब्राह्मणों की सम्मति के अनुसार प्रतिकूल दिशा में जात हुए समस्त तीर्थों पर स्नान करने के उपरांत जब उसने द्वारा स्थाणु तीर्थ से जल लेकर स्नान करके शिवजी की आराधना की गयी तो शिवजी ने उसे भ्रमन होकर वरदान दिया कि अपने पापों से मुक्त होने के लिए उसे हिरण्याक्ष असुर के यहाँ अधक नाम से एक जन्म और लना पडगा और तत्पश्चात् शिवजी के द्वारा बध किया जाने के उपरांत वह शिवजी के भगि नाम के गण के रूप में उनके गणा में सम्मिलित हो जायगा और शिव के समीप रह सकेगा ।

आलोच्य नाटकों की कथा से यह कथा सवधा भिन्न है ।

१ भागवत पुराण चतुर्थ स्कंध में १४ श्लोक ४५

२ वामन पुराण अध्याय ४७ ६८

३ वामन पुराण अध्याय ४७ श्लोक २५

हरिवंश पुराण

हरिवंश पुराण^१ में भगवण के पिता अग और माता मुनीया है। अन्य पुराणा की कथा से यहाँ यह अंतर है, कि यहाँ वेण की जीवितावस्था में ही उस पकड़कर ऋषि मुनीया द्वारा उसकी दाइ जघा का मथन कर निपाद को प्रकट किया गया है। पृथु का जन्म दाइ भुजा में हुआ है। भागवत पुराण में भी जघा के मथन से निपाद की उत्पत्ति हुई है पर जघा का दाया-बाया वहाँ उल्लिखित नहीं है। वेण की भुजाओं से पृथु तथा उसकी पत्नी अर्चि उत्पन्न हुई। जघा से निपाद की उत्पत्ति का वणन अत्र नहीं मिलता।

ब्रह्म पुराण

ब्रह्म पुराण^२ में वण की माता का नाम मुनीया ही है किन्तु पिता का नाम प्रजापति तग है जो अत्रि वंश में उत्पन्न हुआ है। मातामह के दाप से ही वेण महा अयाचारी राजा सिद्ध हुआ। ऋषिया ने यहाँ भी वेण की दाइ भुजा को मथकर निपाद तथा दाइ से पृथु का उत्पन्न किया है। वण की मृत्यु से राज्य में शान्ति छा गयी है और पृथु की उत्तम राज्य व्यवस्था से प्रजा का रजन हुआ है तथा सत्पुत्र का पिता होने के कारण, यहाँ भी वण की पुन्यात्मा नरक से मुक्ति वर्णित है। राजा नाम को साधक सिद्ध करने वाला वामन पुराण का समकक्ष इनाक दशम पुराण में भी उपलब्ध है—

पित्रापरजितास्तस्य प्रजास्तेनानुरजिता ।

अनुरागात्स्तस्य नाम राजाभ्यजायत ॥^३

10

ब्रह्माण्ड पुराण^४

इस पुराण में वेण सम्बन्धी कथा मत्स्य पुराण की कथा के सदृश ही है। राजा नाम सिद्ध करने वाला इनाक यहाँ भी प्राप्य है—

पित्रापरजितास्तस्य प्रजास्तेनानुरजिता ॥ १५५

ततो राजेति नामास्य ह्यनुरागादजायत ॥ १५६

—ब्रह्माण्ड पुराण अध्याय ३६

पद्म पुराण

राजा वेण की कथा पद्म पुराण^५ में अति विस्तार से मिलती है। इसका रूप भी अन्य पुराणा की अपेक्षा भिन्न प्रकार का है—

१ हरिवंश पुराण हरिवंश पर्व अध्याय ५ इनाक १ २१

२ ब्रह्म पुराण चतुर्थ अध्याय श्लोक २८ ५२

३ ब्रह्म पुराण चतुर्थ अध्याय श्लोक ५७

४ ब्रह्माण्ड पुराण (पूर्व भाग) अध ३६ श्लोक १२६ १५६

५ पद्म पुराण (भूमि खण्ड) अध्याय २८ २६

धर्म का सम्बन्ध म प्रसिद्ध है कि यह प्रजापति पुत्र धर्म का गणना भी मुनीपुत्र था। यथा 'म स्थान म प्राग्भ्य हाता है कि 'ता याम्य तिता वा म तात' इन उक्त विपरीत किंग प्रजापति हुई ? मुनीपुत्र 'कपिला वा 'म यता वा गणायान करन ह्य वता ? है कि तत्र वायु धर्म त रत्न म इन्द्र का वध कर 'ता धीर उगत मर म यत् कामना जता कि उगत पुत्र भी इतता ही यमवगात्री हा। इम उद्दश्य म यह तपस्या कर । तगा । उपर वधान म मुनीपुत्र के द्वारा, जब चा पुत्र यम म उगत निरपराधी तपस्या मुनीपुत्र तपस्या करत हुए पाया गया ता उगत मुनीपुत्र ता पाय किया—

तात्स्य च गणतयाय सहभर्ता यदा धर्म ।

पापाचारमप पुत्रो देवब्राह्मणनिरर ॥'

मुनीपुत्र का पिता धर्मराज यह मुनीपुत्र बट्टा दुगी हुए । उपर तपस्याकर धर्म म सिन्धु न प्रमन हाकर वर पाचना करन का निष्प कहा ता धर्म त सिन्धु त 'ता जगा यमवगात् पुत्र पात भी ही कामना की ।'

विष्णु न यह वर सह्य प्रजापति किया । सिन्धु वर प्राप्त करत का उतरात भी धर्म मय मुन्तर सुयोग्य पत्नी की प्राप्ति का निष्प तपस्याकर रहा । मुनीपुत्र धर्म मुन्तरा भी । पुत्री को उगत देग पिता यमराज न धारवस्त किया था कि मी तुम्हारा विराट मय अष्ट व्यक्ति स करगा कि तपस्वी मुनीपुत्र का पाप कभी कभीभूत नहीं होगा । मुनीपुत्र यह मुन्तर प्रसन्न चित्त अपनी सभी रम्भा का साथ भगवत की धीर पूजन निता गयी । धर्म इगी रत्न पर तपस्या कर रहा था । रम्भा का द्वारा धर्म का परिचाय पाकर धीर स्वयं उसकी धार आर्वापित हुई मुनीपुत्र न रम्भा की सम्मति स मायित रूप धारण कर किया धीर एक प्रति मुन्तर भूत पर बठरा भूतने धीर मान गयी । मधुर स्वरतहरी स निचकर धर्म भी मुनीपुत्र के प्रति आर्वापित हुआ धीर उसका कुल तथा मुनीपुत्र स प्रभावित हाकर धर्म न मुनीपुत्र का आर्वाह्य म प्राप्त करन की इच्छा प्रकट की । रम्भा न मुनीपुत्र की धार स राजा के प्रस्ताव को स्वीकार लिया किन्तु साथ ही यह प्रतिपा करवा ली कि यदि उस मुनीपुत्र म कोई दोष भी लिखेगा ता वह उस त्यागता नहीं । धर्म न यह स्वीकार किया धीर मुनीपुत्र स गा धर्म विवाह कर लिया । कुछ समय का पश्चात् वध का जन्म हुआ । विष्णु के वरदान के अनुरात वध मत्पनिष्ठ प्रतापी तजोमय वदा म निष्णात तथा देव धीर ब्राह्मणा म निष्ठा रखने वाला आस्तिक पुत्र था । ऋषि मुनियाने न इत प्रजापति का पद किया । अपने पत्न पर स्थित हुए वध न 'यायपूण देग स राज्य सचालन का काय किया ।

एक दिन मभा मण्डप म पहुच हुए एक अपरूप यज्ञोपवीत रहित तपस्वी जसी आर्वाति वाते 'यक्ति के द्वारा उपनिष्ठ होकर वध नास्तिक धीर वेद तथा ब्राह्मणा स धूणा करने वाला बन गया । पिता तथा माता के आदेश की भी उसने उपेक्षा की धीर वदिक धर्म छोडकर जिनधर्मानुयायी बन गया । शेष क्या धर्म पुराणा का सहस्र ही है अर्थात् ऋषि मुनियों के समझाने स जब वध सत्य पर नहीं आया तो ऋषियों ने उसकी वाइ मुजा का मथन कर

१ पदम पुराण (भूमि खण्ड) अध्याय ३० श्लोक ७०

२ वही अध्याय ३२ श्लोक ६४-७

निपाद का तथा दाड़ से पृथु का उत्पन्न किया। निपादरूपी पाप के निस्त हो जान से वण शुद्ध हो गया तथा तप करने अरण्य में चला गया। वहाँ १०० वर्ष पयत्न उसने तपस्या की और मोक्षपद प्राप्त किया। अथ कथाआ के सदृश यहा वण की मृत्यु नहीं होगी।

इस कथा के मध्य जन धर्म के सिद्धांत उनका महत्त्व तथा पापमाजन के विभिन्न उपाय का भी विस्तार से बणन है।

अंतर

वालकृष्ण भट्ट रचित वणु सहार तथा हरद्वारप्रसाद जालान लिखित नाटक 'श्रूर वण के कथानका में मूल कथाआ से सामान्यत कोई विशेष अंतर नहीं है। नाटक में सौंदर्य लाने तथा रचना में नाटकीय तत्त्व की प्रतिष्ठा करने के लिए प्राय साधारण हर-फेर लेखक द्वारा किया जाता है, किन्तु य अंतर तभी तब वाचनीय हैं जब तब मुख्य कथा के तत्त्व इससे विवृत न हो। इस प्रकार के अंतर यहाँ दृष्टव्य हैं।

भट्ट जी रचित 'वणु सहार नाटक में डाडी पिटना मगु के आश्रम में शिष्या द्वारा अनध्याय सम्प्रधी चर्चालाप, इसी प्रकार के दृश्य हैं। हरद्वारप्रसाद जालान लिखित श्रूर वण में सुदर्शसह, कूरसिंह इत्यादि पात्र कल्पित हैं। कामातुर होकर राजा वण के द्वारा ऋषि कथा गायत्री का बलात पकड़ लिया जाना भी वाचनिक दृश्य है।

पौराणिक कथाआ में प्राप्त वण की देह से निपाद का ज म जमी घटना वणु सहार तथा 'श्रूर वण रिमी नाटक में नहीं है। वण की देह क टुकड़ा का भक्षण करने के उपरांत, जो दिव्य पुरुष श्रूर वण नाटक में जन्म लेता है उसका नाम वहा नहीं लिया गया है अथ नाटक तथा आधारभूत कथानका में यह पृथु के नाम से प्रतिष्ठ है।

वदरीनाथ भट्ट लिखित वणचरित नाटक लोना नाटका तथा उनके मूलभूत पौराणिक कथानका से इस दिशा में भिन्न है कि यहाँ लेखक ने द्विजाति तथा शूद्र दला के मध्य वमनस्य दिखाया है। वण की मृत्यु भी यहा नहीं है केवल वण अपने अपराधा के कारण बनी बना लिया जाना है। पंच पुराण^१ की कथा से इस नाटक का कथानक अधिकान्त में मिलता है क्योंकि बलिक धमावलम्बी तथा जिनधमानुयायियों के पारस्परिक सघष का संकेत यहा भी है। वण की मृत्यु भी पंच पुराण की कथा में नहीं है राइ भुजा से निपाद के निकल जाने पर वण यहाँ शुद्ध पापमुक्त हो जाता है और सौ वर्षों तक तप करता है।

विवेचन

सघष के उपयुक्त साधारण सक्त का लेकर, इस नाटक में युगानुरूप ढालना, लेखक की मौलिकता का परिचायक है। यह नाटक अपने युग की धार्मिक एवं त कालीन राजनीतिक विचारधारा पर भी पर्याप्त प्रकाश डालना है। गांधीवाणी सिद्धांतों एवं तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलन से नाटककार अत्यधिक प्रभावित प्रतीत हाना है।

कथानक तथा शली, दोना दृष्टिकोणा से यह नाटक अन्य नाटका तथा पुराणा में

प्राप्त कथानका से कुछ अंश म भिन्न है। वेन चरित नाटक म पौराणिकता की छाप कहीं नहीं दिखायी देती। 'पुरानी कहानी को नयी पोशाक मे रखने वाले'^१—स्वयं नाटककार के शब्द इस नाटक के सम्बन्ध म अक्षरशः सत्य उतरते हैं।

साधारण भिन्नताओं के रहते हुए भी यह सुनिश्चित है कि ये नाटक वेणु सम्बन्धी पौराणिक कथाओं के अति निकट हैं। नाटककार ने वेणु का अत्याचारी, दुराचारी और विमूढ चित्रित करने के अतिरिक्त उसकी देह का मयन तथा उसकी देह स पृथु या जम भी दर्शाया है।

मारण मन्त्र के प्रभाव से वेणु का सहार (वेणुसंहार-बालवृष्ण भट्ट) देह के टुकड़े करके दिव्य पुरुष की उत्पत्ति (कर वेणु-हरद्वारप्रसाद जालान)—ये दृश्य पौराणिकता की रक्षा करने की दृष्टि से भल ही सफल माने जायें किन्तु नाटक के गार्हस्थ्य नियमों तथा तार्किकता से ये मेल नहीं खाते। इतना बीभत्स दृश्य रंगमंच पर प्रस्तुत करना, न तो सम्भव ही दीक्षता है और न सुस्वीकृत और उपादेय। इसका अभिनय केवल जादू के खेल से अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध न होगा।

द्वितीय अध्याय

- १ अजना कथा (क) अजना (मुदशन), (ख) अजना मुदरी, (ग) अजना मुदरी (उमाशकर-मेहता) ।
- २ शिव-पावती चरित (क) शिव विवाह, (ख) सतीन्हन,
। (ग) गौरी शकर (घ) गणेशजम,
(ङ) सती पावती
- ३ वरमाला
- ४ राजा शिवि

अजना

अजना नाटक हिंदी के यशस्वी कहानीलेखक श्री मुदशनजी की उनके प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन की सुदूर वृत्ति है ।^१ इस नाटक की कथा निम्नलिखित है—

कथानक

अमृतपुर के राजा की पुत्री सुलता पवन के प्रति आसक्त है । पवन, राजा प्रह्लाद विद्याधर का पुत्र है । पवन अपने माता पिता की इच्छानुसार अजना से विवाह करने का निश्चय कर लेता है और चित्र मे अजना के अद्भुत लावण्य को देखकर अजना का विवाह स पूव ही देखन के लिए अपने मित्र प्रहसित के साथ चल पडता है । इसमे पूव वह सुखदा से भी

१ प्रकाशक नाथूराम प्रेमी हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय गिरगाँव बम्बई प्रथम संस्करण १९२३

मिलता है जो उसमें अपने साथ विवाह करने का आग्रह करती है किन्तु पवन उसकी ओर ध्यान नहीं देता। महानगर के प्रभावशाली पण्डित अजना तथा उसकी सविया का पारस्परिक वातावरण सुनकर पवन अनुमान लगाता है कि अजना एक अथ राजकुमार विद्युत्प्रम के प्रति भी आकर्षित है। अतः वह निश्चय कर लेता है कि विवाह स वास्तव में पवन अजना का मूल नहीं देखेगा।

उधर विद्युत्प्रम पवन से बदला लेना चाहता है। इस पक्ष में मुक्ता भी जो विद्युत्प्रम के प्रस्ताव को ठुकरा चुकी थी सम्मिलित हो जाती है और अपना नाम ललिता रखकर पवन और अजना को दण्ड देने के लिए निकल पड़ती है।

विवाह के उपरांत अजना के साथ उसकी सखी वसन्तमाला भी जाती है। पवन अपनी प्रतिभा का पालन करता है किन्तु दुर्मति नगर के अधिपति वरुण से लड़ने जाने पर वहाँ नहीं के किनारे चकवी का वरुण स्वर सुनकर अजना के प्रति वह पुनः सदाय हो उठता है।

प्रहसित के कहने पर और क्योंकि बारह बप का समय भी समाप्त पर ही है पवन छुपकर अजना से मिलने के लिए पहुँचता है और कुछ समय उसके पास रहने के उपरांत अपनी अगुठी जिसमें नग के नीचे उसके हस्ताक्षरों से युक्त कागज रखा था अजना को देकर और आवश्यकता पड़ने पर प्रयाग में लाने के लिए कहकर वहाँ चला जाता है। वह उस समय अपने माता पिता से नहीं मिलता है।

विद्युत्प्रम और ललिता छत्र से वह अगुठी लेकर चम्पा दासी के द्वारा अजना के पास नरसी अगुठी भिजवा देते हैं। अजना के गमचिह्न प्रकट होने पर उसकी सास वतुमती उसके शील पर सन्तुष्ट करके उसे घर से निम्न देती है। अजना अपनी सखी वसन्तमाला के साथ वन में घूमती रहती है। मुक्ता और विद्युत्प्रम वहाँ भी उसके पीछे नहीं छोड़ते और उस तरह तरह से बप देते हैं। वहीं जगन् से अजना के मामा मामी प्रतिभूय गौर रविशुक्री उसे अपने घर में आते हैं। बालक का जन्म मामा के घर हनुनगर में होने के कारण उसका नाम हनुमान रखा जाता है। यही अजना के माता पिता आते हैं और अजना को पवन के युद्ध से लौट आने का सुमवाद सुनाते हैं। किन्तु पवन जगन् में अजना को दूत हुए विद्युत्प्रम के द्वारा पकड़ा जाता है।

उधर मुक्ता चम्पा दासी को अजना के घोड़े में मार डालती है और फिर पागल हो जाती है। अजना दस्यु में पवन और अजना एक दूसरे से मिल नहीं पाते हैं। अतः एक जगन् में जहाँ बिना जल रही है और अगुठी पड़ी है दाना मिलते हैं।

मुक्ता का अन्तिम क्षण तक नहा मानुष पड़ता कि अजना जीवित है और उसके स्थान पर चम्पा मरी है। पागलपन की यह पराकाष्ठा है।

अन्तिम दस्यु पवन और अजना के प्रेमालाप से समाप्त होता है।

आधार

अजना हनुमान की माता और पवन पिता थे। अजना और पवन की कथा बहुत प्रसिद्ध है। मन्वि वासीकि की रामायण^१ में हनुमान के जन्म का विवरण मिलता है। आनन्द

रामायण^१ एवं अध्यात्म रामायण^२ में भी हनुमान की जन्म-कथा का कुछ मतेन मिलत हैं। गाना जी की योद्ध के अवसर पर समुद्र पार जाने के लिए मुन्दीव के अनुचरों के निर्माण होने पर जाम्बवान ने हनुमान के बल का स्मरण किया तब हुए उसका जन्म और बरतपराक्रम की प्राप्ति की कथा वाल्मीकी रामायण में मुनाई है। यहाँ के ग्रन्थान्त में कहा गया है कि पुत्रिवस्थला नाम से विख्यात एक श्रेष्ठ अम्बरा थी। उमका नाम भजना था और वह बंसरी वानर की पत्नी थी। वानरों के राजा बज्र की यह पुत्री, तीना लाना में, अग्रतिम सुन्दरी थी। स्वच्छा से गाप के कारण वह वानर्यानि में आयी। एक समय रूप और यौवन से मुग्धमिहान वानरी भजना मानवी गरीर धारण करके वर्षाकालीन मघ के समान श्यामवर्णित वान एक पर्वत शिखर पर रोगी बन्धु एवं पुष्पामरण धारण किए हुए विचर रही थी। लान तिनारी वाले उसके पीले वस्त्र का मातृ ने धीरे में हरण किया उसके माहुर रूप को देख ही यह काम मोहित हो गया, एवं अपनी विज्ञान भुजाओं से उमन भजना का आर्लिंगन में लीया। उसनी इस क्रिया से हड्डाकर भजना ने उमसे कहा कि मैं पतिव्रता नारी हूँ। मातृ ने उम आश्वासन दिया कि उमका गील का भग नहीं होगा और उम एवं शक्तिशाली पुत्र हागा। उमका पश्चात पर्वत की गुहा में उमन अति पराक्रमी पुत्र को जन्म लिया। अग्न शत्रु में ही यह पुत्र एक दिन उगत हुए मूय को पत्र समभकर पकड़ कर के लिए तीन मी याजन ऊपर आकाश में उड़ गया। मूय की ओर तजी से जात हुए को देखकर इंद्र ने वज्र का प्रहार किया जिससे उमकी ठाडी का बाया भाग भण्डित हो गया। वानरों को आहत हुआ देखकर बुद्ध वायु ने अपनी गति रोक दी। ब्रह्मा ने उस युद्धभूमि में किसी भी शस्त्र से न मारे जाने का और इंद्र ने इच्छामत्स्य पान का वर दिया।^३

वाल्मीकीय रामायण में हनुमान की यही कथा विस्तार से पुन उत्तरकाण्ड में कही गया है। वहाँ इस कथा के कहने वाले महर्षि अग्रस्त्य हैं और श्रोता स्वयं श्रीरामचन्द्र हैं।^४ वाना स्थला की कथा का प्रसंग मिला है परंतु कथा एक-सी ही है। अंतर केवल इतना है कि किष्किंधाकाण्ड की कथा का रूप कुछ संक्षिप्त है और उत्तरकाण्ड की कथा का विस्तृत। किष्किंधाकाण्ड की कथा में हनुमान का ब्रह्मा इंद्र वरुण, यम, सूर्य, कुंवर, शक्र और विश्वरमा से उत्तमात्तम वर दिलाए गये हैं। अग्रतिम शक्ति प्राप्त कर ऋषिपिता की हानि करत के कारण उनसे उसे गाप भी लाया गया है, कि जब तन कोई अथ व्यक्ति स्मरण नहीं दिलाएगा वह अपने बंधन का भूला रहगा। यही कारण है कि मुन्दीव और वानरी के सपथ में हनुमान मुन्दीव की कोई सहायता नहीं कर सके और जब तक जाम्बवान ने स्मरण नहीं दिलाया सीता के अवपण के काय में भी हनुमान अपनी शक्तिहीनता का अनुभव करत रहे।

अध्यात्म रामायण में भी हनुमान के जन्म एवं पराक्रम का जो उल्लेख है, वह वाल्मीकीय रामायण के समान सीता के अवपण के प्रसंग में जाम्बवान ने ही किया है। हनुमान का

१ आनन्द रामायण सारकाण्ड सग १३ श्लोक १५५, १७८

२ अध्यात्म रामायण यातात्रय स २ १५ दशम मं० किष्किंधाकाण्ड सग ६ १६ २०

३ वाल्मीकीय रामायण किष्किंधाकाण्ड सग ६६ श्लोक ८ २६

४ वाल्मीकीय रामायण उ० काण्ड सग ३५ ३६

उदबोधित करत हुए वे कहत हैं कि तुम मौन हारकर एतान म क्या बडे हा इस समय तुम अपना बल प्रदर्शित करो । तुम तो वायु के समान पराक्रमवान साक्षात् वायु व पुत्र हो । राम के वायु के लिए ही तुम्हें उत्पन्न किया गया है । तुम उत्पन्न हान व उपरांत ही, उत्पन्न होत हुए सूर्य को पका फल समझकर पकड़ने व लिए पाँच सौ योजन उड़ गये थे । तुम्हारे बल की महत्ता का वर्णन सप्ताह म कौन कर सकता है ।^१

वाल्मीकीय रामायण के किष्किंधाकाण्ड एव उत्तरकाण्ड व अघ्यात्म रामायण के आख्यान म और आनन्द रामायण के आख्यान म भी गिणु हनुमान व उग्र्य वालो न सूर्य के बिम्ब का देवकर पके फल की भ्रांति स पकड़ने व लिए आरान म मजडा योजन दौड़ने का उल्लेख है । वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड एव आनन्द रामायण व कथानका म इसके साथ राहु का प्रसंग भी जुडा हुआ है । गिणु हनुमान जिस दिन सूर्य बिम्ब की ओर दौडा जा रहा था उस दिन अमावस्या थी । अतः राहु भी सूर्यकिम्ब का प्रसने के लिए उसके पास पहुँचा हुआ था । हनुमान ने राहु को दबाया । राहु किसी अग्र्य राहु की आका स डरकर इन्द्र के पास गया । इन्द्र राहु को साथ लेकर अपने गेरावत पर चढ़कर उसी ओर चला । हनुमान गेरावत को ही पन समझकर उम परड़ने व लिए लपटा । इन्द्र ने अपना बज्र चलाया । हनुमान आहत होकर पाँच सौ योजन दूर पृथ्वी पर गिरा । उसकी वाइ ओर की ठाडी टूट गयी । पुत्र की यह अवस्था देखकर वायु क्रुद्ध हुआ और परिणामस्वरूप हनुमान को सब प्रमुख देवा का वरदान प्राप्त हुआ । अघ्यात्म रामायण की कथा मे हनुमान के सूर्य बिम्ब की ओर जा का उल्लेखमात्र है । राहु का विवरण यहाँ नहीं है । हाँ पाँच सौ योजन दूर भूमि पर गिरने का निर्देश है ।

वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड के आख्यान म मुमेरु पवत के शासक कंसरी को हनुमान का पिता कहा गया है तथा उसकी पत्नी अजना के गम स इस वायु द्वारा उत्पादित बताया गया है ।

सूर्यदन्तवरस्वण मुमेरुर्नाम पवत ।
यत्र राज्य प्रणास्त्यस्य कंसरी नाम व पिता ॥
तस्य भार्या बभूवेष्टा अजनेति परिश्रुता ।
जनयामास तस्या व वायुरात्मजमुत्तमम् ॥^२

किष्किंधाकाण्ड के आख्यान म भी हनुमान को कंसरी का क्षेत्रज पुत्र और मास्त का औरस पुत्र कहा गया है—

स त्व कंसरिण पुत्र क्षेत्रजो भीमविश्रम ।
मास्तस्यौरस पुत्रस्तेजसा चापि तत सम ॥^३

वाल्मीकीय रामायण के दोना स्थला के आख्यान म हनुमान की माता का नाम अजना और पिता का नाम कंसरी है तथा वह अपने पिता कंसरी का औरस पुत्र नहीं क्षेत्रज

१ अघ्यात्म रामायण किष्किंधाकाण्ड मग ६ श्लोक १६२

२ वाल्मीकीय रामायण उ काण्ड मग ५ १६२

३ वाल्मीकीय रामायण किष्किंधा काण्ड मग ६६ श्लोक २६

पुत्र है। ऊपर के श्लोक में क्षेत्रज्ञ और औरस गणा की स्पष्टता न इस बात के लिए सन्देह का कोई अवसर नहीं छोड़ा है।

वाल्मीकीय रामायण के त्रिपिंडाकाण्ड के आख्यान में हनुमान का जन्म राजमहल में नहीं हुआ म हुआ बताया गया है—

एवमुक्त्वा ततस्तु तुष्टा जननी ते महाकपे ।

गुहाया त्वा महाबाहो प्रजन्ते प्लवगपते ॥^१

उत्तरकाण्ड के आख्यान में गुहा का स्पष्ट निर्देश तो नहीं है किंतु हनुमान का जन्म वन में हुआ इसमें तो सन्देह नहीं है—

शालिशूकनिभाभास प्रासूतेभ तदाजना ।

फलान्याहतुकामा य निष्क्रान्ता गहने वरा ॥

जिस समय बालक उत्पन्न हुआ उस समय उसकी कान्ति धान के अन्नभाग के सदृश थी। एक समय फल लेने के लिए अजना गहन वन में निकल गयी। यहाँ निष्क्रान्ता गहन वरा से स्पष्ट है कि हनुमान का जन्म एक पालन पापण वन में ही हुआ है। रामायण के इन दानो स्थानों के आख्यान में हनुमान के जन्म के समय उसका पिता केमरी या किसी अन्य सम्बन्धी का अजना के पास होने का उल्लेख नहीं है। वस्तुतः इन आख्यानो में अजना, उसके माना पिता, सास-ससुर, पति सखिया परिजन आदि किसी का विवरण नहीं दिया है। इन आख्यानो से अजना एक पवन के वैवाहिक जीवन, अजना की कष्टमहिष्णुता, पतिभक्ति, आत्मसम्मान आदि बातों पर प्रकाश नहीं पड़ता है। यहाँ हनुमान के जन्म से पूर्व की कथा को संवधा छोड़ लिया गया है। दा स्थला पर, जिन प्रसंगों में यह आख्यान दो भिन्न-यक्तियों द्वारा सुनाया गया है वहाँ मुख्य रूप से हनुमान के शीघ्र एवं पराक्रम का वर्णन करना ही मुख्य लक्ष्य रहा है। इसलिए भी रामायण में अजना की संमस्त कथा सुनाने की सम्भवतः आवश्यकता ही नहीं थी। इसलिए सुम्नान जी की अजना की कथावस्तु ने मूल-स्रोत के विवरण के लिए रामायण के अनिर्दिष्ट और स्वातंत्र्य भी खाजन की आवश्यकता है। रामचरितमानस में इस कथा का संवधा छोड़ दिया गया है। ऊपर बताये प्रस्तुत प्रसंग में वहाँ केवल इतना ही है—

बहुई रीछपति मुनु हनुमाना । का चुप साधि रहेउ बलवाना ॥

पवन-सनय बल पवनसमाना । बुधि विवेक विषयान्निष्ठा ॥^२

वा० श्यामसुन्दरनाम द्वारा सम्पादित इण्डियन प्रेस के रामचरितमानस में इस चौपार्स की पार्लिपणी में हनुमान के जन्म के सम्बन्ध में, वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा का संपिप्त रूप लिया हुआ है।^३ यहाँ हनुमान की माता का नाम अजनी लिखा है।

हनुमान के शीघ्र एवं पराक्रम की कथा का महाभारत के वनपर्व में बड़ा विस्तार है।^४

१ वाल्मीकीय रामायण त्रि- वा० सं० ६६ २०

२ रामचरितमानस त्रिपिंडाकाण्ड चतुर्थ सोपान ३२२ इण्डियन प्रेस में

३ रामचरितमानस त्रिपिंडाकाण्ड चतुर्थ सोपान ५० ७४८-४९

४ महाभारत वनपर्व अ० १४६ १५१ वन २८२ २९५

कुछ पुराणों में भी इसका वर्णन है परन्तु इन ग्रंथों में प्रधान रूप से अजना के चरित्र पर प्रकाश नहीं डाला गया है।

आचाय रविपेण का पद्मपुराण

जन सम्प्रदाय के आचाय रविपेण की एक महत्वपूर्ण रचना पद्मपुराण है।^१ इसमें प्रधान रूप से रामकथा का वर्णन है। राम से सम्बद्ध अन्य व्यक्तियों के चरित्र भी इसमें मिलते हैं। इसमें हनुमान हनुमान के पिता, पवनजय और माता अजना का चरित्र बड़े विस्तार से दिया हुआ है।^२ इनके अतिरिक्त उस युग की और भी अनवरत बातों का स्पष्टीकरण यहाँ मिलता है। श्रीसुम्नान के नाटक अजना की कथा का मूल आधार यह पद्मपुराण की कथा ही है। ग्रंथ के सात विशाल पर्वों एवं नूत्रे पृष्ठों में यहाँ इस कथा का विस्तार है। आचाय रविपेण के पद्मपुराण में वर्णित यह कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

भारतक्षेत्र के अत में महासागर के निकट आनन्द दिगा में दन्ती नाम का पर्वत है। अति पराक्रमी महेंद्र विद्याधर जब से उस पर्वत पर नगर बसाकर रहने लगा तभी से उसका नाम महेंद्रगिरि पड़ गया और उस नगर का नाम महेंद्रनगर प्रसिद्ध हो गया। विद्याधरों के राजा महेंद्र के हृदयवर्गा नाम की रानी थी जिससे राजा के सौ पुत्र और अतिम पुत्री उत्पन्न हुई। पुत्री का नाम राजा ने अजनासुन्दरी रखा। यह तीनों लोको में परमसुन्दरी थी। जब यह युवती हुई तो पिता को इसके विवाह की चिन्ता हुई। उसने अपने प्रधान राजपुरुषों के साथ विचार विनिमय करके यह निश्चय किया कि आन्तिवपुर नगर के राजा प्रह्लाद के रूपवान पुत्री एवं पराक्रमी पुत्र पवनजय के साथ अजना का विवाह करना चाहिए।

इसके पश्चात् वसन्त ऋतु में फाल्गुन मास के अन्तिम आठ दिनों में आष्टाहिक महास्वयं आया। इस मनाने के लिए राजा महेंद्र अपने समस्त परिवार सहित कलापपर्वत पर गया। आन्तिवपुर का राजा प्रह्लाद भी अपने आत्मीय जनो सहित वहाँ पहुँचा था। राजा महेंद्र ने जब प्रह्लाद के सामने उसके पुत्र पवनजय के साथ अपनी पुत्री अजना के विवाह का प्रस्ताव रखा तो उसने स्वीकार कर लिया और ज्योतिषियों के परामर्श से तीन दिन के पश्चात् वही कलाप पर ही विवाह कर देने का निश्चय हुआ परन्तु पवनजय का बीच के तीन दिनों का व्यवधान भी असह्य हो गया अतः वह अपने मित्र प्रहसित के साथ अजना को देखने के लिए वहाँ बदलकर उसके भवन में गया। भवन के सप्तम खण्ड में जहाँ अजना अपनी सखियाँ सहित विद्यमान थी दाना मित्र मोतिया की जाली के पीछे छिपकर झरोखे में बैठ गया। सखियों की बातचीत का विषय अजना का विवाह ही था। उसकी सखी वसन्ततिलका ने पवनजय के गौरव आदि की खूब प्रशंसा की किन्तु एक मिथवेणी नाम की अन्य सखी ने हेमपुर के राजा वनरदुति के पुत्र विद्युत्प्रभ की प्रशंसा की और पवनजय को उसकी तुलना में हीन बताया। यह सुनकर पवनजय को बड़ा क्रोध आया। उसने अपने मित्र प्रहसित से कहा कि अबश्य ही यह बात अजना के लिए इष्ट होगी तभी तो यह स्त्री मिथवेणी इसके समस्त

इस घृणित बात का कह जा रही है। ऐसा कहकर वह अपनी तलवार से दोनों कायाभ्रा का मस्तक काटने के लिए उद्यत हुआ, किन्तु प्रहसित के समझाने से वह विरत हो गया और वे दोनों अपने निवासस्थान पर आ गये।

पवनजय ने अजना से खिन होकर वहाँ से सेना सहित प्रस्थान का त्रिगुण वज्रवा किया। उधर राजा महेंद्र के गिबिर म भी इस समाचार से बड़ी चिन्ता हुई। किसी प्रकार स्वसुर और पिता के अनुरोध से पवनजय विवाह के लिए तयार हुआ किन्तु उमने निश्चय कर लिया कि विवाह के उपरांत वह अजना को समागम के बिना दुखी करेगा। प्रहमित न भी पवनजय के इस विचार का अनुमोदन किया—

समुह्यं शातयाग्नेना दुःखेनासगजंभना ।

येनायतोऽपि नवेया प्राप्नोति पुरुषात् सुखम् ॥

चकार विद्विताय च मित्र तेन च भाषित ।

साधु ते विद्वित बुद्धया मयाप्येतन्निहपितम् ॥^१ -

विवाह के उपरांत पवनजय ने अजना की सवथा उपेक्षा कर दी। अपने महल में वह अपनी सखी वसन्तिलला के साथ रात दृष्ट दुःख से दिन काटने लगी। इसी प्रकार दिन मास और वर्ष बीतते गये।

उसी समय पातान के राजा वरुण के साथ विद्याधरा के अविपति रावण का युद्ध छिड़ गया। रावण ने पहले तो दूत भेजकर अपनी अधीनता स्वीकार कर लेने के लिए सन्देश भेजा, किन्तु वरुण के अस्वीकार करने पर उमने एक विशाल सेना के साथ वरुण पर आक्रमण कर लिया। वरुण की सेना और उसके राजीव, पुत्रीक आदि सौ पुत्रों के साथ वे आगे रावण की सेना टिक नहीं सकी। खरदूषण बंदी बना लिए गये। रावण ने खरदूषण के प्राणा को बचत म आया देख युद्ध का उस समय बन्द कर देना ही ठीक समझा। इसके पश्चात् उसने अपने विद्याधर मामता को सहायता के लिए पत्र लिखे। आदित्यपुर के राजा प्रह्लाद के रावण की समस्त सहायता के लिए जान को तयार होने पर पिता के स्थान पर पवनजय ने स्वयं जाना उचित समझा। एक बड़ी सेना और मित्र प्रहसित के साथ उसने प्रस्थान किया। चलते समय उमने अजना की दुखी दशा भी देखी। तथापि वह द्रवित नहीं हुआ।

सेना का पहला पड़ाव मानसरोवर पड़ा। पवनजय रात का चक्के के विरह में दुखी चक्का को देखकर और भावविभोर होकर अजना से मिलने के लिए अति उत्कण्ठित हो उठा। चन्वी थाड़ी दर के लिए भी अपने प्रिय का विरह नहीं सह सकती थी और उसने ता वापस लौट कर अजना का अनादर किया है। अपने मित्र के साथ परामर्श करके उसी रात गुप्त रूप से वह अजना के महल में गया और कई दिन तक उसके साथ रहा। अजना के अनुरोध करने पर भी लज्जा के कारण वह अपने आगमन का समाचार देने के लिए अपने माता पिता के पास नहीं गया किन्तु अपने शीघ्र लौटने का आश्वासन देकर और आवश्यकता पडने पर निश्चान के लिए स्वनामांकित बडा देकर पुन युद्ध के लिए चला गया।

कई महीने बीत जाने पर भी पवनजय युद्ध से नहीं लौटा। उधर अजना के शरीर

भगवान् के विरुद्ध अंगार उमरी माग भुजुमी । उगत माग बडा कठोर धरमार्थ दिया । पवाजय का दिया पडा दियात पर भी उमा दियाग नही दिया धोर गनी यगामाता व माय उग अन पर ग तिमल दिया । वजुमी का मकर अजना का महेतार व ममाय का म छाडार पालन चला गया । शोभा ने रात्रि का मही दियायी । प्रात व गता महेतार नगर पडेती विनु पत्री का दग गता म अंगार भी दिया व अगत यही धारय नही दिया यही ता वि अगा राज्य म धारय गत वात व तिम भी प्राणरुत की पापना करवा गी । यगामाता के साथ अजना फिर यात म गयी गयी । यही धर्मिणति ताम व मुतिगत का वृषा से अजना का उरी की मुठी म धारय मित गया । मुतिवर नही धोर तातर गता लग । एक दिन एक भयकर मिह व अजना पर धारमता गता पर की गतात एक गधय द्वारा उमरी रथा की गयी । दमन पशान् साधारण का म उमी मुति गी वृष म अजना व एक पुत्र का जम दिया । वृष्ट समय व पशान् दवगाय ग हुनुह तामा गीत का विद्यापर राजा प्रतिमूय अपनी पत्नी व साथ विमान म उधर आ जिया । अजना व गा व गता को सुनकर वह रत गया । यगामाता म अजना का पत्रिय प्राप्त कर उगत गता पत्रिय दिया । प्रतिमूय अजना का मामा था । यह पुत्र गहित अजना और यगामाता का विमान पर बिठार अरु अपनी राजधानी व तिम चत पडा परनु माग म विनु अजना की गात म उछलकर नीच गिर पडा । जिम विना पर व गिरा था उगत दुनड दुनड हा गय विनु बालक को वाई चाट गही आयी ।

अपनी राजधानी हनुह नगर म त जाकर प्रतिमूय व वातन का जमागय गूर धूमधाम से मनाया । बालक न गल पर जम प्राप्त दिया और पश्चात् गिरा पर पूष भी दिया अत उमना नाम शीतन रया गया । हनुह नगर म वातन व ससार हुए अत उस हनुमान कहा गया ।

उधर जब पवनजय वरुण रावण युद्ध म विजय प्राप्त करर आन्तियपुर आया तो अजना को वहाँ न देखकर बडा दु खी हुआ और अपने बालमप नाम व हस्ती पर सवार होकर अपने मित्र के साथ अजना को खोजन व लिए निकल पडा । सस पहन वह महद्वनगर गया । वहाँ से निराश होकर उसने अपने मित्र प्रहसित को तो अपने आगे के वाययम ता समाचार देन व लिए आन्तियपुर भेज दिया और स्वय अजना को खोजन व लिए वन की ओर चल पडा । भूतरव नामक वन म हाथी से उतरकर मुनि के समान आसन जमाकर अजना का ध्यान करता हुआ वह वही बठ गया । उसन निश्चय कर लिया कि यदि प्रिया नही मिलेगी तो वह वन मे ही मर जायगा । उसका हस्ता उसकी रक्षा करता हुआ पास म ही थठा रहा ।

प्रहसित ने जब आन्तियपुर जाकर पवनजय का वतात कहा तो रानी वेनुमती को अजना के साथ किये गय अपने व्यवहार के लिए बहुत पश्चात्ताप हुआ । व सत्र लोग एक साथ पवनजय के पास चल । राजा प्रह्लाद न एक दूत हनुह नगर म राजा प्रतिमूय के पास भी भेज दिया । पवनजय के अजना की खोज म जगता म निवल जाने के समाचार से प्रतिमूय और अजना का बडा दुःख हुआ । प्रतिमूय विमान म बठकर उसी वन म पवनजय का खोजन के लिए गया । ऊपर स उसका हाथी का पहचानकर वह नाच उतरा । अय सब सम्बन्धीजन भी वही पहुच गये । प्रतिमूय ने उन सब के सामने अजना प्राप्ति

और उनके पुत्र के सम्बन्ध में समस्त समाचार विस्तार में गुनाया। सत्रही अपने साथ लेकर वह अपनी राजधानी हनुमह गया। सब विद्याधर वहा का मान तक रहकर अपने अपने स्थान का चर गए। पुत्र हनुमान और पत्नी अजना को पाकर पवनजय की मान सिक् स्थिति ठीक हा गयी। जब हनुमान युवा हुआ तो उसका गरीर मेरु पवत के समान दन्तेप्यमान हा गया। उसे समस्त विद्याएँ सिद्ध हो गयीं। वह वरा ही प्रभावगानी विनयी गुणी वनवान समस्त शास्त्रा म निष्णात् उदार तथा गुम्जना का शुभ्रुपक था।^१

हनुमान की कथा रविपेण के पद्मपुराण में अमी और आगे चरती है। वरुण के साथ रावण क पुन युद्ध में वह उसकी सहायता करता है। उसकी वीरता की बडी व्याप्ति होती है। उसका विवाह हाता है आदि। यहा आगे की कथा इसलिए उही दी जा रही कि हमारे प्रस्तुत नाटक अजना की कथावस्तु से आगे की कथा का कोई सम्बन्ध नहीं है।

हनुमान की यह कथा स्वयम्भुव व अश्रुत भाषा के महाकाव्य 'पद्मपरिउ म भी आती है।^२ यहा पर आचाय रविपेण के पद्मपुराण के कथानक के समान कथा का अधिक विस्तार नहीं है। बीच बीच में विस्तृत वर्णन भी यहाँ नहीं लिय गए हैं तथापि क्रमवद्ध कथा के प्रवाह में वही स्थिति नहीं आने पायी है। यहा के आख्यान की कुछ विशेषताएँ नीचे दी जा रही हैं—

- १ यहा पवनजय का पिता आश्लिष्यपुर का राजा प्रह्लाद वरुण पर पवयात्रा के समय महेंद्रनगर के राजा महेंद्र म जब मिलता है ता वह उपहास में ही अपने पुत्र पवन के साथ उसकी पुत्री अजना का विवाह कर दन के लिए कहता है। राजा महेंद्र का यह प्रस्ताव पसंद आ जाता है और तीसरे दिन सोना के विवाह का निश्चय कर दिया जाता है।^३ यहाँ बीच के दो दिना में ही पवन की असह्य कामानुरता का वर्णन है। पद्मपुराण में अजना का पिता महेंद्र बहुत साव विचार के पश्चात प्रह्लाद के सामने प्रस्ताव रखता है। वहा अजना के प्रति पवन की उत्सुकता ता दिखायी है किन्तु अमह्य कामवदना नहीं।
- २ वरुण और रावण के युद्ध में रावण की सहायता के लिए अपनी सना क साथ जात हुए मानमरोवर से पवन अपने मित्र क साथ केवल एक गति के कुछ घण्टा के लिए ही अजना क पास रक्ता है तथा प्रभाव हात में पूव ही चला जाता है। आचाय रविपेण क आख्यान में पवन अजना क पास गुप्तरूप से कई दिनों तक रहता है।
- ३ अजना से मिलने के पश्चात अपवाद की सम्भावना को रोकने के लिए पवन उस वगन के अनिश्चित और भी कुछ वस्तुएं दे जाता है। केतुमती के सन्नेह करने पर अजना की सखी वसंतमाला उन सभी वस्तुआ वगन परिधान और स्वणमाला का दिखाकर अजना की शुद्धता का प्रमाण प्रस्तुत करती है किन्तु इन वस्तुआ के रहत

१ यहाँ जिन पद्मपुराण का कथा को सन्निपद रूप में शक्ति लिय गया है कि नाटक की कथावस्तु क सात की विवेचना करन क लिए मूलकथा के स्वरूप का जानना अनि आवश्यक है।

२ पद्मपरिउ प्रथम भाग सचि १८-२० प्रकाशक मरनाथ पादरीड काशी प्रथम संस्करण १८५७

३ वही सचि १८ ४ ७६।

हुए भी बेतुमती पहले उन दोनों का कोठा से बार-बार पीटती है और फिर घर में निकाल देती है।^१ आचार्य रविप्रेष के आख्यान में कवन एक कगन देने का ही उल्लेख है और वहाँ दोनों के कोठों से पीटे जाने की चर्चा भी नहीं है।

४ अजना जब अपनी सखी के साथ सास से तिरस्कृत और निपनासित होकर अपने पिता के घर शरण लेने के लिए जाती है तो न केवल पिता, माई प्रसन्नकीर्ति व द्वारा भी वह अपमानित की जाती है। दोनों मृत्यु से अजना को बन की आर सदेडवा दत्त हैं। आचार्य रविप्रेष की कथा में केवल पिता के कठोर व्यवहार का ही उल्लेख है माई के व्यवहार नहीं।

५ वरुण के साथ युद्ध में रावण व विजयी होने पर पवन के समय अपने घर लौटने पर अजना को घर से निकाल दिए जाने का समाचार से दुखी होकर पवन बन का चला जाता है और वहाँ विभिन्न सा पवत पशु पक्षी आदि से अजना का समाचार पूछता है और उसका विवाह में साधक बन जाता है। आचार्य रविप्रेष के आख्यान में पवन के विरह की इतनी तीव्रता का चित्रण नहीं है।

अन्तर

सुतशनजी की अजना की कथावस्तु व साथ रविप्रेषाचार्य के पद्मपुराण की कथा की तुलनात्मक समीक्षा करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सुतशनजी ने अजना की कथावस्तु के लिए इस पद्मपुराण को मुख्य आधार बनाते हुए भी यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन किए हैं। इस कथा में उनका प्रमुख परिवर्धन तो यह है कि उन्होंने इस नाटक में पवनजय के प्रति प्रणय का एक प्रतिस्पर्धी पात्र मुखदा की भी सृष्टि की है। मुखदा भी अजना व समान राजकुमारी है। वह अमरपुर के राजा की पुत्री है। वह अपने पिता से ही पवन से स्नेह करती है किन्तु उसका विवाह उसके माता पिता राजकुमार विद्युत्प्रभ से करने का निश्चय करते हैं किन्तु वह इकार कर देती है। वह पवन व पास जाकर अपना प्रणय निवेदन करती है परंतु वह तो पहले ही अजना को अपनी प्रियसी बनाने का निश्चय कर चुका है। अतः मुखदा के प्रणय को ठुकरा देता है। बस यही स उसकी प्रतिश्रिया आरम्भ होती है। तिरस्कृत होकर वह पवन से कहती है—

तुमने मरा लिल ताड़ा है इसलिये याद रखा तुम सुख की नील नहीं सा सक्ते ।
जिसके कारण तुमने मुझे अवला का ठुकराया है, वह आराम से जीवन व्यतीत नहीं कर सकती । स्त्री को प्रेम व पश्चात् प्रतिकार प्यारा है । मरा प्रेम तुम देख चुके अब प्राध

१ इस कथन में इम परिवर्धन इम कथानामु पशु जणहो ।

२ तो का वि परिवर्धन कर परिमु-अनु जण म-म जणहो ॥

३ विमुक्तवि केवनि ममन्टिय घ-पुण ।

४ के वि ताउ कमधाएनि इयउ पुणपुणु ॥

की वारी है ।^१

- १ मुख्या को मुत्तानजी न बडा ही सदावत और भयावह चित्रित किया है । प्रतिपन्न उसम प्रतिगाध की अग्नि प्रस्ववित रहती है । वह आधी, बाड और विजली के समान तेज और भयकर है । मुखदा बडी चतुरता मे अपन वाय म राजकुमार विद्युत्प्रम को सहायक बना लेती है । पद्मपुराण की मून कथा के वनकपुर के राजा हिरण्यद्युति के पुत्र विद्युत्प्रम का नाम राजकुमारी अजना के विवाह के प्रसंग म थाया है ।^२ परंतु मुख्या के सम्बन्ध के समान अजना के चुनाव के अवसर पर भी पवन से उसे तिरस्कृत होता पडा है अत पवन को दिखाने के उद्देश्य म मुख्या को सहायता दान के लिए वह उद्यत हो जाता है । मुखदा रानी केतुमती की दासी चम्पा को भी लोभ देकर अपनी महायिवा बना लेती है और अपना ललिता नाम रखकर आदित्यपुर के राजमहल म दासी बनकर रहने लगती है । बारह वष के पश्चात् इस अजना से बन्दा लने का अवसर मिलता है ।
- २ अजना नाटक म बारह वष पयत, अजना की उपभा करने के उपरान्त युद्ध के लिए जात हुए माग से गुप्त रूप स लौटकर पवन व अजना के पाम तीन दिन तक रहने की घटना का वणन मूल आम्नयान म भी आता है परन्तु वहा तीन दिन की अवधि निश्चित नही हुई है । वहा अनेक रात्रिया और अनेक दिन तक उन दाना का सह वास बताया गया है—

तयोरजातयोरेव यथोचितविधायिनो ।
 अतीयाय निगामेका क्षणाद्गान भीतयो ॥
 उत्तिष्ठ मित्रगच्छाव साम्प्रत बहुषो गता ।
 दिवस्तास्ते प्रसक्तस्य प्रियासमानकमणि ॥^३

- ३ मूल कथा म, अजना से मिलने के लिए जात हुए पवनजय के साथ उसका मित्र प्रहमित भी जाता है किन्तु नाटक मे पवन तीन दिन तक अजना के पाम रहने के लिए मित्र को सना की दग्गमाल के हेतु मानमरोवर पर ही छोड देता है । अजना मिलन के परिणाम स आशुवित होकर पति से अनुराध करती है कि वह अपन आन और मिलने की सूचना अपन माता पिता का अवश्य दे दे परंतु पवन युद्ध के लिए जात हुए माग से ही गुप्त रूप स लौटकर आन व कारण, अपन माता पिता के सामन जाने म नज्जा का अनुभव करता है । वह अजना का आश्वासन दता है कि गभ के चिह्न प्रकट होने के पूर्व ही वह युद्ध से वापिस आ जायगा । तथापि गना दूर करने के लिए वह अपनी अंगूठी दकर चना जाता है ।

मून कथानक म अंगूठी व स्थान पर स्वनामांकित सान के बडे का उल्लेख है ।^४

१ अजना अक १ प १५

२ पद्मपुराण जनपव ३७ ५१

३ पद्मपुराण जनपव १६ श्लोक २१२ २२२

४ पद्मपुराण पव १६ श्लोक २३७

४ अजना व प्रामाण्य म, पना व चन जा व ग" नाट्य म मून ग्राम्यात व गदण ही घटनाएँ घटती है किन्तु नाट्यकार व उक्त एत मुक्तिगुण रूप मन का प्रयत्न किया है। पयन की भी हुई यास्तमि भ्रंगूठी मुग्ग चम्पा द्वारा व मती है और उसके स्थान पर मिलती जुगती दूगरी भ्रंगूठी गाने हुई अजना के हाथ म पहनना दती है। उधर रानी वनुमती के वान अजना व चरित्र व सिद्ध पद व ही मर गिा जात हैं। अपन पाग गुत्त रूप स अपन पति व भागमन वा अजना प्रमाणित कर नही पानी। भ्रंगूठी सोटन पर नचना गिद्ध हो जाती है। वनुमती अजना व गीत पर सान्ह करती है और उस पर म विमाल दती है।

अजना के घर म निरासन की घटना मूल कथानर म मा है। वहाँ वह अपन पति का नामासित बडा टिपाती है फिर भी वनुमती विश्वास नही करती। प्रमाण हान पर भी वह उस निरासत म्नी है। यहाँ नाट्यकार न वनुमती व व्यवहार पर शीक्षक का आचरण डालने के लिए ही सम्भवत भ्रंगूठी की कल्पना की है। आजनन पुरुष कडा नही पहनत हैं भ्रंगूठी की कल्पना सम्भवत इमीलिए की गई है।

इसके पश्चात गमवती अजना और वमतमाला पिता के घर मट्टनगर म तिरस्त्रुत हाकर जब वन म रहने लगती है उस समय मुग्ग अजना की हत्या का प्रयत्न करती है। चम्पा अपनी बलि देकर अजना की रक्षा करती है। विद्युत्प्रम व हाथा म पडने पर एव वार मुखदा भी अपन प्राणा का सपट म डालकर पवन को बचा लेती है और इस प्रकार स अपन पापा का प्रायश्चिा न्ना कर लेती है।

५ इन घटनाआ का मूल कथा व साथ कोई सम्बन्ध नही है। जसा कि ऊपर कहा गया है मुखदा और चम्पा नाना नाटककार की अपनी सृष्टि हैं। कथा म वमतवार श्रीमुख्य और गति लाने व लिए ही सम्भवत नाटककार न प्रतिद्वंद्वी पात्रा की रचना की है। जो भी हो, इनस कथा व प्रवाह म कही अस्वाभाविकता नहा आने पायी है। मूल कथा म विद्युत्प्रम का उल्लेख तो हुआ है किन्तु उसका कथा के विकास म कही कोई योग नही है। नाटककार न मुख्या की कल्पना के साथ प्रतिनायक व रूप म उसका पूरा उपयोग किया है।

मूल कथा म अय जो परिवर्तन किए गय हैं वे विशेष महत्त्वपूर्ण नही हैं। कथा के प्रवाह अथवा पात्रा के चरित्र चित्रण पर उनका कोई विशेष प्रभाव नही पडता है अत विशेष रूप स यहा पृथक्-पृथक् उनकी चचा नही की गई है।

विवेचन

अजना पवन और हनुमान—इनके सामाजिक जीवन स्वरूप आदि के सबन्ध म रामायण महाभारत पुराण तथा जैन सम्प्रदाय के ग्रथा म मन ही मतभेद हा किन्तु एक वान एसी है जिसम सबका एक मत है और वह है हनुमान का जम। चाहे वह केसरी का

पुन हा या भारत^१ का, पवाजय^२ या पवन वा^३ और उमकी पत्नी अजना, चाह अक्सरा^४ रही हो या विद्याधरी^५, मानुषी^६ या वारी^७—हनुमान का जन्म वन में एक गुहा में हुआ और कुछ समय तक वहीं उनका पालन-पोषण भी हुआ। विविध ग्रन्थों की कथाओं के जितने रूप मिलते हैं उनमें इस बात की सबत्र समानता है।

हनुमान की कथा के विविध रूपों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह कथा जन साहित्य में अति प्राचीन समय से चली आ रही होगी। कथा का प्रसार क्षेत्र के भेद से कथा के रूप में भी कुछ अंतर पड़ गया होगा। कथा को लावप्रियता और प्रसिद्धि प्राप्त करने के कारण लिखित साहित्य में इस स्थान प्राप्त होने पर, व्यक्ति और प्रदेश के भेद से पूर्व का भेद कुछ स्थिरता प्राप्त कर गया होगा। पवन वायु का भी पयाय है अतः वह वायु (भौतिक) का पुत्र भी बन गया। क्षत्रज और औरस की कल्पना के भ्रम में भी कुछ इसी प्रकार के तत्त्व रहेंगे। साहित्य में भौतिक तत्त्वों का मानवीकृत रूप में प्रस्तुत करने की परम्परा तो प्राचीनतम अथ ऋग्वेद में भी देखी जा सकती है।^८ हनुमान के हनुमान और श्रीगल नामों के लिए जा तक और आधार प्रस्तुत किये गए हैं, वे भी कम रोचक नहीं हैं। ऊपर से गिरने से 'हनु (ठोड़ी) टूट गयी' ता 'हनुमान' नाम पड़ गया।^९ इसी प्रकार राक्षस में 'हनुरूह' नगर में लानन पालन हुआ तो 'हनुमान' नाम हुआ।^{१०} पवन पर वह उत्पन्न हुआ या ऊपर से नीचे गिरने पर उसने गिला का तोड़ डाला, इसलिए वह श्रीगल हो गया।^{११} इस प्रकार की मायताओं एवं कल्पनाओं के पीछे भी विचारधारा का इतिहास हो सकता है। व्यक्तिगत नामों के निवचन की परम्परा का पुराणा

१ रामायण कि० का ६६ २८ (मारुतस्थीरम पुत्रमन्जसा चापि तलम) ।

२ पद्मपुराण (जन) पव १५ ४६

३ रामायण कि० काण्ड अ० ६६ १४

४ धर्मशास्त्रना ज्येष्ठ दिव्यता पत्रिकस्थला ।
अजनेनि पत्न्यात् पत्नी कमरिणो हर ।

(रा कि ६६ ८) ।

५ महेन्द्र विद्याधर की पुत्री होने से विद्याधरी—(विद्याधरो महेन्द्राद्या महेन्द्रोपमविक्रम) ।

—पद्मपुराण पव १५ १३

६ मानव विग्रह कृत्वा रूपयौवनशालिनी—(रा कि ६६ १) ।

७ अग्निशापात्सूत तात कपित्थे कामरूपिणी—(रा० कि० ६६ ६) ।

८ ऋग्वेद साहित्य उपम (१ ४८ ४६) इन्द्र (१ ८१ ५७) आदि

९ रामायण—उत्तरकाण्ड ३६ ११

मत्करोत्पष्टवज्जण हनुमस्व यथाहत् ।

नाम्ना च कपिशदूनु भविता हनुमोपिनि ॥

१० पद्मपुराण (जन) पव १७ ४ ३—

पुरे हनरे यस्माज्जात संस्कारमाप्तवान् ।

हनमानिनि तनागान् प्रसिद्धि स महोदय ॥

११ पद्मपुराण स्कन्ध ४ २—

जन्म क्षेत्रे यत्र शन शल चाधुनयत्तत् ।

थाशल इति नामाम्य चक्र मात्रा समुपया ॥

म पर्याप्त विस्तार मिलता है।

हनुमान के बल पीरप एव लोकोत्तर पराक्रम के सम्बन्ध में जिस प्रकार का वर्णन रामायण, महाभारत एवं पुराणा में है, उस प्रकार का अतिरजित चित्रण रविपणाचाय के पद्मपुराण में नहीं है। यहाँ के वर्णन में लोकोत्तरता की अपेक्षा स्वामाविकता अधिक है। यही बात अजना और पवन के चरित्र में भी मिलती है। यह बात नहीं कि अतिरजन का यहाँ अभाव है। विस्मय अद्भुतता वीरुहल आदि का भाव यूनानाधिक रूप में मानव प्रकृति में ही पाया जाता है।

अजना मुदशनजी का एक सफल नाटक है। इसके संवाद बड़ सजीव तथा ओजपूर्ण हैं किन्तु भाषा की दृष्टि से यह नाटक कुछ गिरिया है। इसका कारण एक तो मुदशनजी हिन्दी में उद्भूत सभाय है। दूसरे वे जन्म से पंजाबी हैं तथा उनकी शिक्षा भी तो पानन पोषण सब पंजाब में ही हुआ इसलिए भी इस नाटक में उनकी भाषा में वह परिष्कार नहीं है जो कि उनके प्रौढ़ जीवन की रचनाओं में मिलता है। बस एक भाषा गिरित्य को छोड़कर, जो कहीं-कहीं ही है सच नहीं अन्य नाटकीय तत्त्वों की दृष्टि से उनका अजना नाटक स्तुत्य है। श्रीसतराम बी० ए० की दृष्टि में 'मुदशनजी की यह रचना एक सिद्धहस्त नाटककार की रचना है। संवाद अर्थ और दृश्य वितरण रंगभूमि के संकेत व्याप्ति जितनी भी नाटक की विशेषताएँ होती हैं उन सब पर आपका पूर्ण ध्यान है। प्रत्येक दृश्य आपस में खूब सम्बद्ध है। कथानक ऐसे ढंग से रखा गया है कि पाठकों की उत्सुकता बराबर बढ़ती चली जाती है। पुस्तक को समाप्त त्रिय बिना छोड़ना कठिन हो जाता है। सम्पूर्ण नाटक शृंगार वीर वरुण और अद्भुत रस से श्रोत प्रोत है। इसमें स्वामिभक्ति पतिभक्ति प्रेम तथा प्रकृति का वर्णन अनूठा है। मुदशनजी मानव मनोविकारा को खूब समझते हैं। उनके प्रकट करने में भी वे कमाल करते हैं। मनोभावा और कल्पनाशा का वर्णन वे ऐसी स्पष्ट रीति से करते हैं कि पाठकों की आँखों के सामने उनका एक जीता-जागता चित्र-भा नाचने लगता है।'^१

अजनासुन्दरी

यह नाटक भरतपुर के श्रीकृष्णलाल ने लिखा है।^२ इसमें पाँच अंक हैं और प्रत्येक अंक दृश्या में नहीं गर्भाव में विभाजित है। प्रथम में दो द्वितीय में तीन तृतीय में चार चतुर्थ में तीन तथा पंचम में पाँच गर्भा हैं। इस नाटक के लिखने में लेखक का एक विषय उद्देश्य रहा है और वह है रचना के माध्यम से नारी के सुन्दर चरित्र का प्रकाश में लाना और इस प्रकार नारीजगत को प्रभावित करना। अपने उद्देश्य की सफलता के लिए उन्होंने धार्मिक तथा को आधार बनाया है।^३ नाटक के प्रारम्भ में अग्नेजी में तिली अपनी भूमिका में उन्होंने अपने उद्देश्य को स्पष्ट कर दिया है—

१ अजना की प्रभावना—पृष्ठ २

२ प्रकाशक यमराज श्रीहरण्यम था बेंकटस्वर प्रग बम्बई में १९२७ कि अक्षर १८२२

३ अजनासुन्दरी नाटक भूमिका प १

I have been cherishing innumerable new ideas for the betterment of the condition of the fair sex and in order to try them before the public in the interesting drama, I have selected this story so that it may be both novelty and didactic x x x x I have made it a general instructive comedy without any regard to the religious sentiments

आधार

नाटककार ने नाटक की भूमिका में इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि यह धार्मिक कथा उतने किस ग्रन्थ से ली है। ऊपर मुद्गलनजी की अजना की विवचना करत समय रविवेणाचार्य के पद्मपुराण की हनुमानकथा का सन्धिप्त रूप दिया गया है। नाटक अजनासुन्दरी की कथा का आधार भी यही पुराण है। इसके लेखक कल्याणलाल ने भी मूल कथा में जहाँ-तहाँ सामान्य हर फेर किया है। उनसे मुख्य कथा के प्रवाह अथवा उसकी मूल भावना में कहीं अन्तर नहीं आया है। कथावस्तु के कुछ परिवर्तन को नाच प्रस्तुत किया जा रहा है—

अन्तर

१ अजनासुन्दरी नाटक का पवनजय, पाताल के राजा वरुण के साथ रावण के युद्ध में सहायता करने के लिए अपनी सेना लेकर मित्र प्रहसित के साथ जात हुए सायकाल के समय मानसरोवर पर स्वता है। वहाँ त्रैलोक्य पक्षी द्वारा चक्रवर्ण के मार लिये जाने पर वह अपने प्रिय के वियोग में तड़पती हुई चक्रवर्ण को देखता है और उसे अजना का स्मरण आ जाता है। उसका हृदय अति द्रवित हो उठता है। इसके पश्चात् प्रहसित के साथ पवनजय आदिशपुर में अजना के पास रात में ही जाता है और प्रमात् होन से पूव ही लौट जाता है। विदा लेते समय, अजना के आग्रह पर वह अपनी अगूठी अजना का दन्त उस आशवासन दे जाता है कि सकट की समावना का समय आन में पूव ही वह युद्धभूमि से लौट आयागा।

मूल कथा में त्रैलोक्य पक्षी के द्वारा चक्रवर्ण के मारने का कोई उल्लेख नहीं है। इन्ध को अधिक करुण बनाने की दृष्टि से नाटककार ने ही यह परिवर्तन किया है। सम्भव है ऐसा करत समय वाल्मीकीय रामायण के आद्य द्वारा त्रैलोक्य पक्षी के मारे जाने और वियोग में तड़पती हुई त्रैलोक्य को उसे स्मरण हो आया हो। दूसरी बात यह है कि नाटक में रात ही रात में अजना से मिलकर पवनजय के मानसरोवर पर पड़ी अपनी सेना से मिलने का वचन है। मूल कथा में पवन गुप्त रूप में कई दिन तक अजना के महल में उसके साथ रहता है। प्रहसित के चरने के लिए आग्रह करने पर ही उसके साथ वह पुनः सेना में जाता है।

२ सास रानी अन्तुमती द्वारा घर में निकाली गयी अजना आश्रय पाने के विचार में जब अपने पिता के घर महेन्द्रनगर जाती है तो पिता के आदेश से भाई प्रसन्नकीर्ति द्वारा वन में लुप्त की जाती है। मूलकथा में भाई से बढे जान का कोई उल्लेख नहीं है। पिता

के घर में निवास जा। पर धर्मि मन्त्रात्मजमाया के साथ घटना घटा घटा ही या म जाती जाती है।

- ३ पञ्चाजय का पण्य के साथ युद्ध में विजय प्राप्त करने की योजना पर तैयारी करना के घर में निवास जा। का समाचार मिलता है तो घर में घर के दरवाजे बंद करना का घर ही सोचता परत महानगर जाता है। परी प्रणालीति में समाचार पाकर यज्ञ की शीघ्र उक्त सोचना के विचार घटा जाता है। उक्त बात पञ्चाजय के माता पिता साथ समुद्र प्रतिगुप्त और उनकी परी मन्त्रात्मजमाया गति घटना—गर्भी माता समग्र एव साथ ही पञ्चाजय के घर में मिलता है। मूल कथा में घटना घटा युद्ध के साथ कथा मायी के साथ ही हनुमन्त द्वारा मरती है। घर में कथि पञ्चाजय का राजा के और साथ तैयारी हनुमन्त में लयन हा। है और परी का साथ कर रता है। नाटक की भाषा परिवर्तित रहा है। भीष भीष ५ बर मही बायी मन्त्रात्मज और उद्ध के पर है। मरुत के दत्तात्रेय का भी साथ ही साथ लिया हुआ है। नाटक में तत्त्वा की दृष्टि में भी यह एक मापारण नाटक है।

अजनासुन्दरी

इस कथा पर आधारित तीसरा नाटक उमागर्भर मन्त्रात्मज का घटनासुन्दरी है। मन्त्रात्मज की कथायन्तु का मुख्य आधार भा यही कथिणागाय के पञ्चाजय की हनुमान कथा है। नाटककार ने मूल कथा का नाटकीकरण करते समय थोड़ा-भा विभिन्न परिवर्तन किये हैं—

अन्तर

- १ अजनासुन्दरी नाटक का आरम्भ विद्याधर राजा महेंद्र की पुत्री अजना और आनन्दपुर के राजा प्रह्लाद विद्याधर के पुत्र पवनजय के विवाह के उपरान्त होता है। विवाह से पूर्व की समस्त घटनाओं की सूचना पवनजय के मित्र प्रह्लाद और विदूषण की बातचीत से बाद का दे दी गयी है।
- २ इस नाटक में विदूषण की कल्पना इस कथा पर आधारित मन्त्रात्मज की तुलना में सखिया नहीं है।
- ३ अजना की माता रानी वेतुमती अपने लोगों के सम्मान-सुखों पर भी अपने निरक्षय से टलती नहीं है। अजना के पवनजय की झगड़ी दिवाने पर भी वह अपने विचार की बदलती नहीं है और अजना को घर से निकाल ही देती है।
- ४ रानी वेतुमती के द्वारा घर से निकाल लिये जाने पर अजना आश्रय पान के लिए अपने पिता के घर महेंद्रपुर में नहीं जाती है। वह अपनी सखी वसन्तमाला के साथ

मीधे वन में चली जाती है।

- ५ वन में भटकते हुए शिव और पावती ने उमरा साभात्कार हो जाता है और उनके अनुरोध में वह उन्ही के आश्रम में रहने लगती है। उनके आश्रम में ही उसके पुत्र का जन्म होता है।

शिव और पावती के साथ अजना का परिचय तथा उन्ही के आश्रम में रहने की कल्पना नाट्यकार की अपनी नयी कल्पना है। भूतकथा में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है। अजना के मामा प्रतिभूय और उनकी पत्नी के साथ उमरा शिवपावती के आश्रम में ही भेल हा जाता है। यही से प्रतिभूय पुत्र के साथ उमर अपनी राजधानी हनुपुर में जाता है। प्रतिभूय के विमान से हनुमान के नीचे गिरने का उल्लेख यहाँ नहीं है।

- ६ अजना के वियोग में दुःखी पवनजय के उमरी स्वाज में वन में चले जान पर श्रय सम्बन्धी जन भी पवनजय को स्नाजने निवृत्त पड़ते हैं। राजत-स्नाजत निराग हाजर पवनजय अपने जलन के निरा शिवजी के आश्रम के समीप ही एक चिन्ता तयार करता है। ठीक समय पर उसका एक सम्बन्धी वहाँ पहुँच जाता है। अजना के जीवित रहने तथा पुत्र हान का गुम समाचार राजा प्रतिभूय से वही मिलता है। सब सागा का गुम मिलने शिवजी के आश्रम में ही होता है।

प्रस्तुत नाटक की भाषा एवं इगका स्तर मामा्य है।

शिव पावती चरित

शिव-पावती की कथा पर आधारित निम्नलिखित नाटक उपलब्ध हुए हैं।

१—शिव विवाह	रामगुलामरसिक विहारी
२—सती-हृत्	वही
३—गौरी शवर	रामनारायणसिंह जायमवाल
४—गणेश जन्म	रामारण आत्मान
५—सती-पावती	राधेश्याम कविरत्न

शिवविवाह नाटक

रामगुलाम रसिक विहारी लिखित प्रस्तुत नाटक पाँच अक्षों में विभाजित है। कथागत नाटक के नामानुसार शिव के विवाह से सम्बन्ध रखता है। नाटक में कथा का स्वरूप इस प्रकार है—

हिमवान के घर में कथा का जन्म होता है। सत्र लाख प्रसन्न होते हैं। देवता भी आनन्द वशाद् यत हैं। नारदजी तप करके शिवजी का प्राप्त करने के लिए उपदेश देते हैं।

पावती नारदजी के उपदेशानुसार तप करने के लिए वन में चली जाती हैं। वहाँ आराम वाणी हाती है कि 'जिस समय तुम्हारे पास सप्तपि आयेँ तुम अपनी तपस्या को पूरा समझना।' अनेक वर्षों तक पावती की बठोर तपस्या चलनी रहती है। सप्तपि शिवजी के पास जात है और पावती की तपस्या का सम्पूर्ण समाचार दत्त हैं। पावती की निष्ठा की परीक्षा लेने का प्रस्ताव भी व शिवजी के सम्मुख रखते हैं। शिवजी अनुमति दे दत्त हैं। सप्तपि पावती के समीप पहुँचकर पहले तो शिवजी की निन्दा करते हैं किन्तु पावती की शिव के प्रति अटल आस्था देखकर उसे मनोरथ पूरा होने का आशीर्वाद देकर कहते हैं कि तुम्हारी तपस्या पूरा हो गयी और शीघ्र ही शिवजी से तुम्हारा विवाह सम्पन्न होगा। हिमवान नारदजी से पावती के तप की पूणता का समाचार पाकर उसे घर बुला लत है।

उधर तारक इत्यादि अमुखा व अत्याचारो से प्रजा एवं ऋषि मुनि सब व्यथित हैं। अपनी तपस्या में विघ्न उपस्थित देख वे मिनकर ब्रह्मा के पास जाते हैं। ब्रह्मा शिवजी के मन में काम भावना जाग्रत करने के लिए कामदेव को शिवजी के आश्रम में भेजते हैं किन्तु शिव काम के बुद्धि का अनुभव कर अज्ञान तीर्थ नेत्र से उभर मस्म कर डारत है। तदनंतर शिव कामदेव की दुखी पत्नी रति की प्रायना पर कामदेव को अनग बनाकर उसे प्राणिमात्र के मन में विचरण करने वाला रूप दे देते हैं। देव और ऋषि मुनि अब उनसे पावती से विवाह कर लेने की प्राथना करते हैं और शिव का स्वीकार करना पडता है। ऋषि मुनि तथा अपन गणा की बरात बनाकर शिव नत्नी पर चढ़कर पावती का व्याहने जाते हैं। उनका इस रूप को देखकर पावती की मा तथा अय सम्बन्धी डर जाते हैं। नारदजी के समझान-बुझाने से विवाह सम्पन्न होता है।

यह कथा लगभग इसी रूप में विभिन्न स्थला पर प्राप्त होती है। प्रमुख स्थल निम्नलिखित हैं—

रामचरितमानस

रामचरितमानस^१ की कथा में केवल यही अन्तर है कि यहाँ शिवजी से पावती का साथ विवाह करने की प्राथना श्रीरामचन्द्रजी करते हैं। तत्पश्चात् सप्तपि शिवजी के पास पहुँचते हैं और शिवजी की अनुमति से पावती की निष्ठा की परीक्षा लते हैं। शेष कथा पूर्ववत् है।

स्कन्द पुराण (माहेन्दवर खण्ड)

स्कन्द कथा स्कन्द पुराण^२ में केवल इसी अन्तर के साथ मिलती है कि वहाँ शिवजी

१ रामचरितमानस मानसाय (गोताप्रस गोरखपुर) बालखण्ड ६४ दोहे की तीसरी चौपाई से लेकर १ दोहे की तीसरी चौपाई पद्यत प ११२ १३७
 २ स्कन्द पुराण (स्कन्दपुराण प्रकाशन बनारस) स २०१६ सन् १९५६
 (माहेन्दवर खण्ड) प्रथम भाग अध्याय २ २६
 वरत पुराण अध्याय २२ श्लोक १३०

पावती की तपस्या करते समय, स्वयं बटु के रूप में परीक्षा ली जाती है। वे पावती के सम्मुख शिव की निन्दा करते हैं। पावती क्रुपित होकर बटु-पधारी शिव का चले जाने का आदेश देती हैं। बटु को तुरन्त अदृश्य हो जाने पर पावती समझ लेती हैं कि वे शिव हैं। तत्पश्चात् शिवनी पुनः प्रकट होते हैं और वर देकर पावती के तप का पूरा बतलाते हैं। अतः पावती घर लौट आती हैं। सर्वापि पिता के घर ही उद्दृश्य जाते हैं। तत्पश्चात् विवाह सम्कार सम्पन्न होता है।

वराह पुराण

वराह पुराण में इस कथा में जो अन्तर लीख पड़ता है वह इस प्रकार है—

पावती दश के अशुभकृत में सती होकर हिमालय के यहाँ उत्पन्न होती हैं किन्तु शिव का पाने की इच्छा उनकी इस जन्म में भी प्रयत्न बनी रहती है। अतएव वे तप प्रारम्भ करती हैं। बड़ा एक दिन शिव, बृद्ध ब्राह्मण के रूप में मिथ्या माग्न आते हैं। पावती नदी में स्नान कर ब्राह्मण में मिथ्या लेन के लिए कहती हैं ता ब्राह्मण वेपधारी शिव नहीं के पानी में गिर पड़ते हैं और रक्षा की याचना करते हैं। क्षण भर को पावती को सचाच हाता है कि वे ब्राह्मण (परपुरुष) का स्वयं कस करें किन्तु रक्षा के अभाव में ब्राह्मण के नष्ट हो जाने के डर से वे उमका हाथ पकड़कर बाहर निकाल लेनी हैं। शिवजी प्रकट होकर कहते हैं कि 'जिसके लिए तुम आराधना कर रही हो उसी ने तुम्हारा हाथ घामा है।' पावती प्रसन्ननापूर्वक घर लौट, पिता से यही सब निवेदन करनी हैं और इसमें उपरांत शिव पावती का विवाह हो जाता है।

ब्रह्मवत पुराण

ब्रह्मवत पुराण^१ की कथा में शिव, पावती के सम्मुख शिव के रूप में पहुँचते हैं, तथा गीघ्र ही तुम्हें शिव के दान हाँगे ऐसा कहकर उन्हें घर भेज देने हैं। तदुपरांत शिवपुत्र में शिव पुनः पावती के घर पधारते हैं और पावती के समक्ष शिव की निन्दा करते हैं पर पावती अपने निश्चय पर अडिग रहती हैं। सम्पूर्ण भक्त प्रकट होने पर विवाह सम्पन्न होता है।

लिङ्ग पुराण^२ तथा पद्म पुराण^३ दोनों में यह कथा इसी रूप में मिलती है।

देवी भागवत पुराण^४ में केवल गौरी जन्म की कथा है। कथा से सम्बंधित अन्य विवरण यहाँ प्राप्त नहीं हैं।

१ ब्रह्मवत पुराण अध्याय ३८-४५

२ लिङ्गपुराण (गणेशस्तव प्रकाशन कानवत्ता) म० २०१७ मन् १६६० अध्याय १०१-१०२

३ पद्म पुराण बही सं० २०१५ मन् १६५७

(मालिनीय) प्रथम भाग अध्याय ४५

४ देवी भागवत पुराण (पण्डित पुराणालय वाशा) १६५६ संज्ञक स्वयं अध्याय ३१

शिव पुराण

शिवपुराण^१ में नारद पावती से तप करने के लिए नहीं कहते प्रत्युत पावती स्वप्न में देखती हैं कि कोई तपस्वी ब्राह्मण शिवजी की प्राप्ति के उद्देश्य से उनसे तप करने के लिए कह रहा है। पिता से सम्पूर्ण वृत्त वर्णित किये जाने पर तथा पुत्री के आग्रह पर हिमवान् कन्या को लेकर शिव के समीप पहुँचते हैं और शिव के समीप पावती को उनकी सेवा के लिए छोड़ने की इच्छा प्रकट करते हैं कि नु शिव इसे स्वीकार नहीं करते। अतः पावती स्वयं समाधिस्थ हो जाती हैं। इस प्रसंग में तारकामुर के जन्म की कथा भी विस्तार में वर्णित है। सप्तपिपायक उपरान्त यहाँ शिवजी ब्राह्मण का रूप धारण कर स्वयं पावती की परोक्षा करने आते हैं। पावती की तपस्या सफल होती है किन्तु शिवजी हिमवान् से पावती का स्वयं मागने के लिए प्रस्तुत नहीं होते। उनका कथन है कि मागने से व्यक्ति छोटा हो जाता है। पावती निराश होकर घर लौट आती है। अब शिवजी ननक का वेष धारण कर हिमवान् के घर पहुँचते हैं और उस समय भिन्ना में शिवा (पावती) को मागने हैं। पावती की माता, मना नतक (मिशुक) की यह माँग सुनकर अति क्रुद्ध होती है। हिमवान् भी पुत्री को एक ननक को देने के लिए राजी नहीं होने, तो शिवजी अदृश्य हो जाते हैं। तत्पश्चात् ब्रह्मा सप्तपिपायक को हिमवान् और मना का समझाने के लिए भेजते हैं। अन्तर्गत कोष भवन में पड़ी मना को समझाते हैं। कई उदाहरण तथा घटनाएँ प्रस्तुत करती हुई कहती हैं कि भवितव्यतावश शिवजी पावती को स्वयं ही प्राप्त कर लेंगे इसमें अस्मत्त्वा है कि तुम अपने हाथ से ही कन्यादान कर दो। पिप्पलाद मुनि और राजा अनरण्य की पुत्री पद्मा का विवाह अतत होकर ही रहा।

सब कुछ समझ बूझकर पति पत्नी शिव के साथ पावती का विवाह रचाने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं किन्तु शिवजी की बरात तथा उनका स्वरूप देखते ही मना मूर्च्छित हो जाती है और चतन होने पर फिर हठ पकड़ लेती है कि वह अपनी पुत्री का विवाह शिवजी के साथ नहीं करेगी। ऋषि मुनि हिमवान् का फिर समझाते हैं और मना से शिवजी के अनुपम गुणा का वर्णन करते हैं। हिमवान् स्वयं सब गलो से सम्मति लेते हैं और सबकी सहमति पाकर तथा मना की स्वीकृति पर पुरोहित गर्गाचार्य द्वारा विवाह सम्पन्न होता है।

ब्रह्म पुराण

ब्रह्म पुराण^२ में शिव विवाह का रूप अथ पौराणिक कथाओं से भिन्न प्रकार का है। यह प्रसंग यहाँ स्वयंवर से सम्बन्ध रखता है। ब्रह्मा द्वारा दश को एक यशस्विनी पुत्री प्राप्त होने का बरदान मिलता है। दश में तीन पुत्रियाँ उत्पन्न होती हैं—अपर्णा, एकपर्णा तथा त्र्यम्पाटना। उमा नामधारिणी अपर्णा शिव के लिए तप करती है। शिव वहाँ एक

१ शिव पुराण शम्भुनाथगत (पद्मनाथप्र) पृ १४६

२ ब्रह्म पुराण (गुणकान्त प्र कर्ता) पृ २१ मन् १६५४ प्रथम भाग अध्याय ५३६

अपरूप ब्राह्मण के रूप में पहुँचते हैं—

विद्वत् रूपमास्थाय ह्रस्वो वाहक एव च ।

विभक्त नासिको भूत्वा कुब्ज केशात् पिण्ड ॥^१

पावती शिव को पहचान लेती हैं और पूजा अचना के उपरान्त, स्वयं को पिता में मागन के लिए प्रार्थना करती है। पिता से पावती की याचना करने पर, शिवजी को प्रत्युत्तर मिलता है कि 'उमा का स्वयंवर रचा जायगा, उसमें क्या जिसको चरेगी उसी से उसका विवाह सम्पन्न होगा।' शिवजी निराश होकर पावती के समीप पुनः जाते हैं और सदेह प्रकट करते हैं, कि सम्भवतः स्वयंवर में उमा उन्हें न चरे इस पर देवी, अशोक का गुच्छा लेकर शिवजी के कंधे पर रखकर कहती हैं कि मन स मैन तुम्हें चर लिया—

गहीत्वा स्तवकं सा तु हस्ताभ्यां तत्र सस्थिता ।

स्वधे शम्भो समाधाय देवी प्राह वतोऽसि मे ॥^२

इसमें उपरान्त भी शिवजी शिगु रूप में सरोवर में गिर पड़ते हैं और उमा की परीक्षा लेने के लिए ग्राह से स्वयं की रक्षा करने की याचना करते हैं। ग्राह उमा से कहता है कि शिगु को छोड़न मैं मैं असमर्थ हूँ क्योंकि 'महीने के छोटे दिन जो वस्तु मुझे प्राप्त है, उसी का मैं अपना आहार बनाऊँ ऐसा मैंने विहित है। आज महीने का छोटा दिन है।' उमा तब किसी भी मूल्य पर शिगु को बचाने की इच्छा प्रकट करती है। ग्राह कहता है कि यदि तुम अपने सम्स्त पुण्य दान में दे दो तो मैं इस शिगु को छोड़ दूंगा। उमा इसे सह्य स्वीकार करने लेती है और अपने सम्पूर्ण पुण्य दान में दे देती है। ग्राह प्रसन्न होकर तपस्या का पुण्य तथा शिगु दोनों ही लौटाना चाहता है किन्तु उमा शिगु का दान लेने से इन्कार कर देती है। शिगु इस घटना के उपरान्त ही अदृश्य हो जाता है। इसके पश्चात् स्वयंवर होता है और वहाँ पावती शिगु रूप में पधारे शिवजी का ही वरण कर लेती है। यह देख कर इंद्र प्रहार करने का निशंका उठाना है किन्तु इंद्र का हाथ स्पन्धित हो जाता है। तदनन्तर ब्रह्मा पुरोहित बनते हैं और शिव उमा विवाह-वाय सम्पन्न करवाते हैं।

अन्तर

ब्रह्मपुराण के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुराण तथा आलोच्य नाटका में शिव के विवाह की कथा स्वयंवर से नहीं जुड़ी है। इस दृष्टि में यह कथा एक नूतनता लिए हुए है।

पुराणा की शिव विवाह सम्बन्धी ये सभी कथाएँ थोड़ी बहुत एक दूसरे से भिन्न अवश्य हैं किन्तु यह निश्चित है कि शिव पावती विवाह वडे सधप एक पावती के महान तप के द्वारा ही सम्पन्न हुआ।

सतीदहन नाटक^१

राममुक्ताम रसित विहारी लिपित, यः दूगरा नाटक गीताश्रम भाषित की रचना से ही सम्बन्धित है। इसका प्रधानतः निम्नलिखित है—

दण्डक वा म राम-नन्दमणः नामा साक्षात्करणं च यान् शुभा शान्तर मन्त्र यः । इमा समयं शिवजी श्रौतं गन्तो यन् प्रान्तं है । शिवना राम च ब्रह्ममय रूपं वा ध्यातं कर्तव्यं उच्यते प्रणामं कर्तते हैं । गनी पति स प्रणामं कर्तुं वा वाच्यं भूत्वा है । शिवजी राम च महत्त्व श्रौतं स्वल्पं वा वचनं कर्तते हैं किन्तु गनी शिवाय गतीं कर्तते । शिवजी वा धनु मति स जय वे स्वयं परागता नती है तभी उक्त विचारण शक्य है । शिवजी म परो म सम्बन्धी कुछ बातें य फिर भी लिखानी हैं । शिवजी मन ही मन समस्त विवरण जाणकर सती से शरीर सम्बन्ध न रखन वा निश्चय कर्तते हैं ।

इसमें उपरान्त अपने पिता का प्रजापति च यज्ञ वा समाचार पात्र पर गीता शिब स वहाँ जान की अनुमति माँगती है और अनिमित्तन प्रवस्था म भी जात च तिल उभुत हो उठती है । शिवजी अनिच्छापूर्वक अनुमति न दत्त हैं । वहाँ शय्य दयनाया च साथ पति वा भाग न देखकर स्वयं वा अपमानित अनुभव कर्तव्य पिता वा निरन्तर कर अपने ही तज स व वही भस्म हो जानी हैं । शिव च गण यह समाचार शिवजी को दत्त है और शिव वीरमद्र वा बुलाकर यज्ञ वा विघ्नस कर डालन वा आशय दत्त हैं । वीरमद्र च द्वारा शिव के आदेश वा पालन किया जाता है । दधीनि भी का साथ देकर यत्नयन स चन जान है । दण वा मार डाला जाता है । बहुत म दय भी भय विरत हा जान है ।

प्रमुख देवमण तब शिवजी च गमीय पहुँचकर उनकी स्तुति कर्तते हैं । शिवजी प्रसन्न हाकर यत्नयन पर पधारत हैं । दण च घट पर बकर वा सिर रखकर शिवजी द्वारा उह जीवित कर दिया जाता है । दक्ष शिवजी स क्षमा प्रार्थना कर्तते हैं और यज्ञ पूज होता है ।

आधार

प्रस्तुत नाटक वा आधार मुख्य रूप से रामचरितमानस^२ है । बसल दण च घट पर बकरे वा सिर रखकर उह जीवित कर लिये जान वाचा प्रसंग यहाँ नहीं है । यह प्रसंग शिवपुराण^३ तथा भागवत पुराण^४ म प्राप्त होता है । शिव द्वारा धनुमित पावनी द्वारा राम की परीक्षा लेन की घटना तो नाटक म रामचरितमानस च निम्नलिखित पत्र की छाया ही प्रतीत हाती है—

१ प्रशासक प्रह्लाद दाम बनसरर चौक पटना सिटी प्र म सन १९१२

२ रामचरितमानस मानसाव (गीताप्रस गोरखपुर) बालगण्ड मासपारायण पहला विभाग ४७ दोहे से मासपारायण दूसरे विभाग के ६४ दोहे की दूमरी चौपाई तब पृष्ठ १० ११२

३ शिव पुराण रुद्र संहिता द्वितीय (सनी खण्ड) अध्याय २४ ४३

४ भागवत पुराण (गीताप्रस गोरखपुर) चतुर्थ स्कन्ध अध्याय ७ श्लोक १८

जो तुम्हरे मन अति सदेह । तो फिर जाइ परीछा लेहू ॥
 तब लगि बठ अहक बट छाहीं । जब लगि तुम्ह ऐहहू मोहि पाहीं ॥
 जते जाइ मोह भ्रम भारी । करेहु सो जतनु विवेक विचारो ॥
 चली सती सिव आयसु पाई । करहि विचार करों का भाई ॥^१

सीता का रूप धारण कर पावती के द्वारा राम की परीक्षा लेने वाला प्रसंग शिवपुराण^२ में भी इसी रूप में उपलब्ध है ।

वायु पुराण

सतीरहन की कथा वायुपुराण^३ में भी मिलती है किन्तु वहाँ पर सतीरहन का मन्त्रयज्ञ की घटना से नहीं है और जहाँ यज्ञ की घटना है वहाँ सती यज्ञ-स्थल में प्राण नहीं त्यागती । ये दोनों प्रसंग वायु पुराण में इस प्रकार हैं—

प्रथम प्रसंग

दश के आठ कथाएँ थीं । वे यज्ञध्रुवसर पर अपनी सभी पुत्रियाँ को आमंत्रित कर दक्ष ने उनका अच्छा सत्कार किया, किन्तु अपनी सबसे बड़ी पुत्री सती को, जो महादेव से व्याहृत था, नहीं बुलाया । उसने अनामंत्रित चले आने पर तथा आमंत्रित न करने का कारण पूछने पर दक्ष ने कहा कि ' यद्यपि तू मेरी ज्येष्ठ और श्रेष्ठ पुत्री है किन्तु तेरा पति महाश्व मर विन्द है । तू उड़ी की सेवा करती है इसलिए मैंने तुझे नहीं बुलाया ।' इस पर निरस्तृत अनुभव कर प्राधित हो, सती यागासन लगाकर बैठ गयी । मन ही मन उठाने अग्नि की धारणा की । उम धारणा से आग्नेयी वायु उत्पन्न हुई जिसने समूची देह में आग मड़वाकर सती का समाप्त कर लिया । शिव ने तब दक्ष को आगामी जन्म में वक्षक्या मापा के गम से उत्पन्न हूँ तथा दक्ष नाम ही रहने का श्राप लिया ।^४

दूसरा प्रसंग

दक्ष ने हिमालय के पृष्ठ दग में यज्ञ आरम्भ किया । इस यज्ञ में देव यज्ञ, गन्धर्व महत्तगण तथा विष्णु सभी पहुँचे किन्तु शिव का आमंत्रित नहीं किया गया । दधीचि ने शिव की अनुपस्थिति के कारण यज्ञ की सफलता पर सदेह प्रकट किया पर दक्ष ने ध्यान नहीं दिया । उधर तब पावती ने दक्ष आदि दक्षनायक का जात देव शिव से पिता द्वारा न बुलाए जाने का कारण पूछा । शिव ने कहा कि दक्ष ने ही यह निश्चित किया है कि हमारे लिए किसी भी यज्ञ में भाग न रखा जाय । तैवी ने पूछा कि मैं इसके लिए कौन-सा दान नियम या तप करूँ जिससे आपका भाग मिलने लगे । शिव ने समझाया कि इस यज्ञ में

१ रामचरितमानस मानसाक्ष गातायन शारङ्गपुर) वाक्यान्व (११ दाह व जयराज चौपाई १ २

२ शिव पुराण चद्र महिमा (मनोवण्ड) अ २४ २६

३ वायु पुराण (ज्याम्बवानपाद) अ० २ श्लोक ३७ १०६

४ वायु पुराण (ज्याम्बवानपाद) अध्याय ० श्लोक ३७ ६२ प ४१ ४२ ।

हमारे लिए चाहें भाग न रखा जाय, पर मन्त्र हमारी ही महिमा व्याप्त हो रही है। पावती के विनाश न करने पर गिब न अपने मुँह से जावन्यमान अग्नि की तरह एक भूत को उत्पन्न किया, जिसके हजार मिर हजार पर तथा हजार भाँसे थी। अपने सभी हाथों से हजारों मुँहों और हजारों बाणों को वह धामे हुए था। इसकी आकृति का विस्तृत वर्णन वायु पुराण में है। इसी व्यक्ति ने दशक यज्ञ का विध्वंस किया और इसी का नाम वीरभद्र था। पावती के प्रायः से उत्पन्न माहेश्वरी भद्रवाली भी वीरभद्र के साथ ही गयी थी।^१

गिब पुराण

सती दहन का प्रसंग गिबपुराण की वायुमहिता^१ में भी मिलता है। यहाँ भी सती के यज्ञकर्म में गिरकर प्राण नष्ट पाया है। प्रसूत गरीर का माण द्वारा त्यागकर वे हिमालय पर्वत का चली गयी हैं। दहन उपरान्त गिबजी दशक काय दत्त हैं। सती का अग्रमान करने के कारण तब धर्म अथ वाम के बायीं में गंगा विघ्न पड़ना। सती के पावती रूप में हिमालय के पर जन्म लेना तथा गिब के साथ विवाह होने के उपरान्त जब दशक अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ करते हैं तो यहाँ गिब पुनः वीरभद्र के द्वारा यज्ञविध्वंस करवाया है।

गिरारण की रक्षा महिमा^२ में भी वीरभद्र के द्वारा ही दशक का यज्ञ होता है। उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त सती दहन का प्रसंग प्रकारान्तर में अथर्व भी उपलब्ध है।

पद्म पुराण

पद्म पुराण^३ में पावती जब दशक यज्ञ में पहुँचती है तो वे सभी देवताएँ तथा गर्वार्थी दशक के अन्त में अपने पिता प्रजापति दशक में गिब के आसन्नित त करने का कारण मूल्य है। दशक दहन है कि मैं गिब का उनका अनुभव करके डग मक्ख स्वल्प के कारण ही आर्मात्त नष्ट किया। वे पावती का विविध प्रकार से समझाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु पावती दशक को मत्त-सुरा बट्टा हूँ। दशक तथा गंगा के सम्मुख ही गिबजी का उत्सव कर करने काय को चली जाती है। तन्नाशान् गिबान् की पुत्रा के रूप में जन्म लेकर योत्रा का प्राण करके पावती द्वारा वे गिब का पुनः प्राण करते हैं।

सर्व पुराण (माहेश्वरी पर्व)^४

के मध्य गिब को न न्य, दधीचि न्भ से कहत हैं कि, "समस्त दध ऋषि तथा नरणा के आ जाने पर भी पिनाकी (शिव) के बिना तुम्हारा यन शोभा नहीं देता। कपर्दी नीलकण्ठ की वृषा से अमगल मगल म परिवर्तित हो जात हैं और मवत्र शान्ति छा जाती है। एमे गिब को विष्णु ने द्वारा अवश्य आमंत्रित किया जाना चाहिए था।' दधीचि की बात सुनकर दध कहत हैं—'यहा मू गिब का क्या काम है? मैं ब्राह्मणा के कहने स गलती से अपनी क्या उस ब्याह दी है। वह शिव अत्रुगीन है भूत पिशाचा का स्वामी है और दुरात्मा है।' इस प्रकार दक्ष गिब के लिए अनन्ता दुवचन कहत है।

उधर महासती जब चन्द्र इत्यादि विविध देवा को विमान स गुब्रतर दखनी हैं, ता शिव स पूछने पर उह पिता के यन के सम्बन्ध म विदित होना है तब पिता माता मुझे किस प्रकार भुला दठे, यह विचार करती हुई, अपने गणो स धिरे बठे गिब से पित्त-गह जान की अनुमति चाहती हैं। सती के पूछने पर गिब, पिता के यहा जाने क लिए मना करत हुए कहत हैं—

अनाहताश्च ये सुभ्रु गच्छन्ति परमदिरम ।
अपमान प्राप्नुवन्ति मरणादधिक तत ॥
परेया मन्दिर प्राप्त इन्द्रोऽपि लघुता व्रजेत ।
तस्मात् त्वया न गतव्य दक्षस्य यजन गुभे ।^१

गिब की सम्मति सुनकर भी सती पिता क दुष्ट आचरण का कारण जानन के लिए, जाना हा चाहती ह। तब गिब अपन पाच सहस्र गणा के साथ दधी को दक्ष क यन म भेज दत हैं। पित्तगह पहुचत ही वे पिता स गभु क अनादर का कारण पूछती हैं, तो दक्ष तदस्य भाव स उत्तर देत हैं—

गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे, कस्मात् त्व हि समागत ।
अमगतो हि भर्ता ते अग्निबोऽसौ मुमयमे ॥^२

पिता क इस प्रकार क वचन सुनकर सती अपमान स पीडित हाकर अग्नि म प्रविष्ट हो जाती हैं। लौटे हुए गणा स सम्पूर्ण समाचार सुनकर शिव वीरमद्र का दक्ष-यन नष्ट करन के लिए भेजत हैं। वीरमद्र के द्वारा दक्ष का शिरच्छेदन कर दिया जाता है। ब्रह्मा द्वारा पुन स्तुति किये जान पर गिब वीरमद्र का दक्ष क सिर क स्थान पर पशु के सिर को जोड कर जीवित करन का आदस देत है।

यह क्या इस पुराण म अति विस्तार म वर्णित है।

स्कन्द पुराण (काशी खण्ड)^३

इस स्थल पर भी यह क्या इसी रूप म उल्लेख है।

- १ स्कन्द पुराण (गुरुमण्डल प्र बलकता) वि० न २ १६ मन् १९५९ (माहेश्वर खण्ड पूर्वदि)
अध्याय २ श्लोक ५७ ५८ पृष्ठ ७
- २ स्कन्द पुराण (गुरुमण्डल प्र० बलकता) स० २०१६ मन् १९५९ (माहेश्वर खण्ड) प्रथम भाग अध्याय
३ श्लोक १६ पृष्ठ ९
- स्कन्द पुराण (काशी खण्ड गुरुमण्डल प्र बलकता) स २०१८ मन् १९६१ अध्याय ८७-८९

कूर्म पुराण

कूर्म पुराण की इस कथा में अथर्व वेदात्मक यह अन्तर है कि यहाँ सती अर्थात् पिता का यहाँ मिल्कन नहीं जाती, प्रयुक्त का यथा म भाग का यथा कृति मृद्विषया तथा उग। अन्य सहायता सभी व विनाग व विना गिव म याचना करती है—

दक्षो यज्ञेन यजते पिता मे पूय जग्मनि । विनिच्छ भवतो भायम ध्यात्मान चापि गरर ॥
देया महपयश्चासस्तत्र साहाय्यकारिण । विनागयागु त यज्ञ धरभत युगोम्यहम् ॥^१

ब्रह्म पुराण

दशयज्ञ विध्वंस सम्बन्धी कथा ब्रह्मपुराण^३ में भी उपलब्ध है । अर्थात् यहाँ सग भग वायुपुराण के सदृश ही है । ब्रह्मन् मनु व मय म न यत्न विरग किम प्रारर हुआ ? इसका प्रयुक्त म यहाँ ब्रह्मा कथा मुनात है । इस कथा व अगुमार सती दशयज्ञ म नृता जाती, प्रयुक्त मेरुपर्वत पर गिव व साथ अद्विष्टयन पावनी दशगण का जान हुए म्ग गिज्जो स इस सम्बन्ध म वानालाप करती है । गिवजी अपनी प्रोधागिनी न वीरमन् की तथा महा काली को उपन करव, दशयज्ञविध्वंस व लिए भेजत हैं । या ता नष्ट हाता ही है त्व ताया व साथ गिवजी भी अर्पण भाग व अधिगारी वन जान है । यहाँ वीरमन् व द्वारा जय यन रूपी मग का पीछा किया जाता है ता जो स्वर्गिन्दु धम व कारण धरती पर गिर पडत है उनस हा ज्वर की उत्पत्ति हाती है । दा अर्पण वृत्त्य व लिए क्षमा मांगना है और तत्पन्तर शिवजी की कृपा स यन समाप्त हाता ह ।

इस पौराणिक कथा में निम्नाल्लिखित तथ्य दृष्ट्य हैं—

- १ यह दशयज्ञविध्वंस पावती—हिमवान की पुत्री—और गिव व विवाह व दान की घटना ह शिवजी तब श्वगुर गह स मरु पर्वत चल गय व और दश का यन हिमानय की पृष्ठ भूमि म प्रारम्भ हुआ था ।
- २ अतः दक्ष यहाँ पावती व पिता नहीं है । इस दशयज्ञविध्वंस का कारण ब्रह्मन् गिवजी को उनका भाग न मिलना तथा पावती का इस कारण कुपित होना बताया गया है ।

हरिवंशपुराण

हरिवंशपुराण में दक्ष^४ व यन म सती के जाने का उल्लेख नहीं है । केवल रुद्रदेव अपने सहयोगी नदी तथा गणा के साथ पट्टुधते हैं और यन का विध्वंस कर देत हैं । महा देवजी दोना घटना व बत खडे हो महायन को अर्पण वाण का निगाना बताते है । वाण स घायन हो वह यन आकाश म उछलता है और मृग होकर आतनाद करता हुआ ब्रह्माजी के

१ कूर्म पुराण (गुरु मण्डन प्र कनकता) स २ १७ सन १९६१ (पूर्वाङ्क) प १५

२ वही अ १५ श्लोक ३४ ३५

३ ब्रह्मपुराण (गुरु मण्डन प्र कनकता) स २ १ सन् १९५४ (पूर्वाङ्क) प्रथम भाग प ३९

४ हरिवंश पुराण (गीताप्रम पारशुर) अविष्णव अध्याय ३२

पास दौड़ा चला जाता है। ब्रह्माजी उसे सान्त्वना देकर कहते हैं— तुम एक महान मग के रूप में आकाश में स्थित रहोगे और मृगशिरा कहलाओगे।”

निग पुराण

निग पुराण^१ की कथा के अनुसार मां दश यन के अश्वमेध पर अश्वमेधित पावनी के योगाग्नि से भस्म हो जान पर शिव क्रोधित होत है। यहाँ य वीरभद्र के साथ भद्र नामक अश्वमेध गण को भी भेजते हैं जो यन विष्वक् वरुण में वीरभद्र की सहायता करता है। यन में पधारे हुए इन्द्र का वह सिर काट लेता है। वीरभद्र अग्निदेव के दाना हाथ तथा जीम भी काट देता है। यहा विष्णु तथा शिव का युद्ध भी होता है। शिव दश का सिर काटकर अग्नि में डाल देते हैं। सरस्वती की नासिका के अग्रभाग का छेदन भी शिव के द्वारा किया जाता है। ब्रह्मा की प्रार्थना पर ही शिव का क्रोध शांत होता है और दक्ष के माथ समस्त अश्व विष्णु देवगण पुन जीवित तथा स्वस्थ हो जाते हैं।

विवेचन

इस प्रकार सतीदहन नाटक की घटनाएँ पुराणा में विविध स्थला पर विखरी मिलती हैं। प्रस्तुत नाटक की विभिन्न घटनाओं के श्रोत उपयुक्त विभिन्न स्थल ही हैं। स्थान स्थान पर सतीदहन के विविध रूप हैं। वही सती यन में भस्म होती है वही वे स्वयं योगाग्नि से समाप्त होती हैं और वही यनस्थल पर व उपस्थित भी नहीं होतीं। किन्तु, उन सब कथाओं से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सतीदहन का सम्बन्ध दक्ष यन के साथ ही है। वीरभद्र यहा एक प्रमुख चरित्र है और दक्षिण की भविष्यवाणी भी अपना एक विनिष्ट महत्त्व रखती है।

यहा तक नाटक की शली का प्रश्न है यह नाटक घटनाप्रधान है इसमें चरित्र चित्रण की आर ध्यान नहीं दिया गया है। नाटक की भाषा तथा शली दाना साधारण हैं।

गौरी शंकर नाटक^३

कथानक

कथा का आरम्भ देवलोक की एक सभा में होता है जहा समय की गंभीर स्थिति पर विचार करने के लिए प्रधान देवगण यथा विष्णु इन्द्र चंद्र, यम, आदि एकत्रित होत हैं। विचारणीय विषय है कि असुर तारक ने अश्वमेध की जा दुर्दाना कर दी है, देवा की शांति और सुख नष्ट कर दिया है उसे किस प्रकार समाप्त किया जाय। उधर ब्रह्मा ने तारक

१ हरिवंश पुराण (गीताप्रसन्न शंकरपुर) भविष्यपर्व अध० ३२ श्लोक २३ २४ २७

२ निग पुराण (मुद्ररामप्रकाशन कानकता) अ २ १७ मन् १६६ (पुत्राढ) अ ६६ १०

प्रकाशक वैश्वक स्वयं शंकरपुर दिना गाड़ीपुर (प्रथम सं) मन् १६२६

का, उसारी तपस्या से सुख प्राप्त कर लिया है कि फिर पावती के उद्वेग (काव्याय) पुत्र के प्रतिरिक्त कोई भी भय व्यक्त उमरा करे म समथ गरी प्राणा ।

उपर अभ्युता गी के गरीर त्याग के बाद गिवत्री के नागपरा पर प्रिय म दुभी होकर अगण समाधि में तीर है । दया के प्राण से काम के उमी स्थान पर पहुँचा है और समाधि भंग कर म सपत्न हो जाता है किन्तु उमी समय गिव के मरीच तत्र म अम्म भी कर लिया जाता है । सप्ततर हिमवान् नारजी के द्वारा सम्पूर्ण गृहगत जाकर तथा यह मानकर कि पावती पूव जन्म की मनी ही है फिर के मात पुत्री का रिश परने के लिए तयार हो जात हैं और सरनता से रिवाट सम्पत्त हा जाता है ।

आधार

प्रस्तुत कथा विभिन्न पुराणा में स्यात-न्याय पर प्रियरी पड़ी है । इन पुराणा का सत्य गिवविवाह नाट्य की विवेचना के प्रगम में उपर लिया जा चुका है । इसी पुराण वृत्ति यहाँ अतर्पित है । नाटक का विविष्ट आधार भी यही स्थल है ।

अंतर

इस नाटक की कथा में प्रमुख अंतर यही है कि इसमें गिव की प्राप्ति के लिए पावती तपस्या नहीं करती प्रत्युत गिव पावती को पात के लिए विह्वल दोग पडत हैं । यह स्थल कल्पित प्रतीत होता है क्योंकि पुराणा की कथा में मवत्र ही पावती द्वारा गवर प्राप्ति के लिए तपस्या का वर्णन है ।

विवाह के समय पावती इस नाटक में आठ वर्ष की आयु की गियायी गयी है किन्तु उनकी बाती में सम्पूर्ण नाटक मक्ती भी गगत्र नहीं भनवता । यहाँ पावती को अपने पूव जन्म का सम्पूर्ण वृत्त भी स्मरण है ।

पावतीजी के स्यात पर गिवजी का ही पावती प्राप्ति के लिए विह्वल प्रर्णित कर नाटककार ने नाटक का इस स्थल पर एक नया रूप दिया है । इसका मूल में सम्भवत युग परिवर्तन ही कारण है । युग की नयी मायताया के अनुसार पुष्प और नारी का स्तर समान है । अतः यह स्थल नारी के प्रति लसक की अधिक सवेदनशीलता मौलितता एवं कल्पना प्रवणता को व्यक्त करता है ।

गणेश जन्म

रामशरण आत्मानन्द लिखित गणेश जन्म नाटक बहुत विस्तृत है । नाटक का नाम यद्यपि गणेश जन्म है किन्तु लखर ने शिव पावती के जन्म से सम्बंधित विभिन्न घटनाओं

रा भी मुख्य घटना के आरम्भ में लिया है। इनमें से अधिकांश घटनाएँ पूर्व विवक्षित नाटकों में सट्टा ही हैं। सन्धि में कथावस्तु इस प्रकार है—

महर्षि भृगु एक यज्ञ का आयोजन करते हैं। इसमें ब्रह्मा विष्णु, महेश एवं अग्रे देवों को आमन्त्रित किया जाता है। यज्ञ चल रहा है। प्रजापति दश पधारते हैं। दश के सम्मान में ब्रह्मा, विष्णु और महेश का छाड़, सभी देव और ऋषि-मुनि खड़े हो जाते हैं। ब्रह्मा उनका पिता हैं, विष्णु आराध्य देव हैं इसलिए उनका खड़ा न होना उचित कहा जा सकता है पर जामाता महेश के न खड़े होना पर वे रुष्ट हो जाते हैं। वे इसे अपना घोर अपमान मानते हैं और महेश को भला-बुरा कहते हैं। ब्रह्मा और विष्णु दोनों ही दश के व्यवहार की निंदा करते हैं समझते भी हैं किन्तु दश का क्रोध शांत नहीं होता। महेश शांत रहा है।

यस घटना का विवरण भागवत पुराण में यथावत मिलता है किन्तु वहाँ उपलक्ष्य भृगु द्वारा यज्ञ न होकर ब्रह्मा द्वारा अपने पुत्र दश का प्रजासजन का काम सौंपा है और इसी उपलक्ष्य में सभा का आयोजन किया गया है। इसके उपरान्त की कथा राम गुणाम रसिक-विहारी त्रिविक्रम नाटक सतीदहन की कथा के सट्टा है जहाँ सती राम के माहात्म्य के सम्बन्ध में सिद्धजी के बताने पर भी विश्राम नहीं करती और उनकी परीक्षा लेने पर उतारू हा जाती है। परिणामस्वरूप परिस्थितिवश ही अपने पति का प्रेम खो देती है। तदुपरान्त ही दक्षयज्ञ की घटना घटती है जहाँ अनामित्र अवस्था में पहुँचने पर उनका अपमान होता है। पति की निंदा करने में कारण वे योगाग्नि में अपने शरीर का भस्म कर देती हैं। इसके उपरान्त वीरमद के द्वारा दश का सिर काटा जाता है।

दश घटना के खोला का त्रिविक्रम सतीदहन नाटक के विवचन के समय किया जा चुका है। इससे आगे की घटनाएँ सती के हिमवान के घर जन्म लेने से सम्बन्ध रखती हैं और निम्न विवाह नाटक की घटनाओं के समान हैं। अतएव इन घटनाओं तथा उनके खोला की पुनरावृत्ति यहाँ अनावश्यक है।

नाटक का प्रमुख प्रसंग जाति-पावती की कथा से सम्बद्ध है और अब तक विवेचन किसी भी नाटक में उपलब्ध नहीं है गणेश जन्म है। नाटक में प्रस्तुत प्रसंग का रूप निम्न प्रकार है—

पावतीजी स्नान करने के लिए अपने भवन से बाहर मरौवर पर जाना चाहती हैं किन्तु उस समय घर में किसी अग्रे व्यक्ति के उपस्थित न होने के कारण वे अपने शरीर के मंत्र से गणेश नाम के एक पुत्र का निर्माण करती हैं। तदुपरान्त उस घर के द्वार पर चौकसी के लिए बठाकर उसे आदेश देती हैं कि उनकी अनुपस्थिति में कोई भी व्यक्ति भीतर प्रवेश न कर पाए। थोड़ी देर के उपरान्त वहाँ शिव पधारते हैं। गणेश उनमें परिचित न होने के कारण, पावतीजी के आदेशानुसार उन्हें भीतर प्रविष्ट होने की अनुमति नहीं देते। क्रुद्ध हो शिव उका सिर काट लेते हैं और भीतर चले जाते हैं। पावतीजी लौटकर अपने पुत्र की बड़ दुखवस्था देखती हैं ता महात्कारिणी काली का रूप धारण कर लेती हैं और समस्त

उपरोक्त की विगलन व निम्न उक्त हो जाते हैं ।

द्विगण एतद्विद्वान्तर पावतीजी म धान्न धान व निम्न विषय करत है और विजया स प्राथना करत है कि व उस मूल पुत्र की जीवित कर दे । विजयी व धान्नागुमार ब्रह्माजी उत्तर लिया की और प्रत्यान करत है क्याकि उक्त कहा जाता है कि जो प्राणी इस लिया म सप्तम पुत्र मित्त यत्ति उमरा मिर तान्त्रिक गणन व धन पर रग लिया तान तो वह जीवित हो जायगा । ब्रह्माजी ता सप्तप्रथम एत हाथी लिया गता है । उमरा का सिर वाटकर ल अगत हैं और इस प्रकार गणन ता पुत्र जीवा प्राप्त हो जाता है ।

विजयी गणनजी का वर गत है कि सप्तम पद उहा की पूजा हाया । विजयी व ज्येष्ठ पुत्र यह सुनकर अति क्रुद्ध होत हैं । कार्तिकेय नाम व दस पुत्र का कथा है कि व बड है अत उनका सम्मान प्रथम हाया उचित है । विजयी कार्तिकेय तथा गणन दोना पुत्रा से कहत है कि जो सम्पूर्ण भूमण्डल की परिश्रमा करव पहने घा जायगा वही बडा माना जायगा । कार्तिकेय सुनत ही परिश्रमा के लिए तिल पत्रत हैं किन्तु गणनजी सात बार बवल माता पिता की परिश्रमा करन व उपरान्त ही बठ जात हैं । उनका कहना है कि व पृथ्वीमण्डल स भी माता पिता की परिश्रमा का विस्तार अधिक समभन हैं । उनका धान स प्रसन्न होकर द्विगण उन्हें आणीर्वाद दत है और कहत हैं कि निश्चित ही सप्त देवताप्रा म सप्तम पूव उनका ही पूजा हायी क्याकि व जानी हाने के साथ साथ माता पिता व भक्त भी हैं ।

आधार

शिवपुराण म यह कथा उवा ती-त्यो मिनती है ।^१ साधारण अन्तर निम्नविरित है—

- १ शिव पुराण म गणेशजी के निर्माण का कारण नाटक के कारण स भिन है । यहाँ जया विजया नाम की सविद्या पावतीजी का सुभाती हैं कि तुम्हारी रणा सबदा शिव के गणा स ही की जाती है । शिव के गण होने व कारण ये गण शिवजी की ही आनापातन करन म तपर रहत हैं । शिवजी एक दिवस तुम्हारे स्नान करत समय इसीलिए भीतर चले गाय व क्याकि उहे कोई बताने वाला अथवा रोक्ने वाला नहीं था । यदि तुम अपने किसी निजी गण का निमाण कर लो तो वह तुम्हारी सेवा करने तथा आज्ञा मानने के लिए सदा उद्यत रहेगा । सखियों के सुभाव व उपयोगी मान पावतीजी ने अपने मल से गणेश का निर्माण कर लिया तथा उस द्वार पर पहरा देन तथा किसी को भीतर प्रविष्ट न होने देन का बडा आदेश दिया ।
- २ शिव पुराण म शिव को भीतर न आने देन पर भयकर युद्ध हुआ । युद्ध करन बाल प्रथम शिव के गण तदुपरान्त अथ द्विगण तथा विष्णु थे ।^२
- ३ शिव पुराण म कुमार कार्तिकेय और गणेश म विवाद का विषय नाटक स भिन एक दूसरे स पूव विवाह करने की हठ है जबकि नाटक म एक-दूसरे से बडकर सम्मान पान

१ शिव पुराण श्री बेंकटेश्वर प्रस बन्धु रत्नसहिता (कुमार खण्ड) अध्याय १३ १६

२ शिव पुराण श्री बेंकटेश्वर प्रस रत्नसहिता (कुमार खण्ड) अ० १४ स अध्याय १० के श्लोक ३४ तक ।

की कामना है ।^१

मत्स्य पुराण

मत्स्य पुराण^२ में भी इस कथा का संकेत है, किंतु इसका रूप वहाँ दूसरा है ।

विवाह के उपरान्त दीर्घकाल व्यतीत हान पर भी जब पावती के कोई सन्तान न हुई, तो पावती ने एक दिन शिवजी से पुत्र की इच्छा प्रकट की । शिवजी ने सामन खेलत हुए अनक वाचका में से एक स्वल्प सुन्दर बालक का सागर पावती से कहा ता यह तुम्हारा पुत्र गणेश है । पावती ने इस पुत्र रूप में स्वीकार किया ।

पद्म पुराण

पद्म पुराण^३ में गणेश जन्म की कथा भी अति मण्डित है । विवाहोपरान्त मन्दर गिरि पर निवास करने हुए एक बार पावतीजी ने अत्रि नाम पुत्रा के गिल्लीन बनाकर खेतना प्रारम्भ किया । एक दिन मलजा न उबटन करने के उपरान्त, अपने मल में एक पुष्प आकृति बना दा और उस खेतत मय जल में फेंक दिया । वहाँ वह पावती की मसी जाह्नवी के संरक्षण में पवित्र हुआ और इसी की गणना की मना गी गई ।^४

वामन पुराण

वामन पुराण^५ में प्रस्तुत कथा का रूप इस प्रकार है—

शिवजी का पावती के साथ आसक्त हुए तत्र पर्याप्त समय हो गया और सबन अन्यथा फलन लगी ता दवगण एकत्रित हाकर शिवजी के द्वार पर पहुँचे । द्वार पर नदी नामक गण के द्वारा विन्ति हुआ कि प्रकृत निषिद्ध है । दवगण अति निरास हुए । चिन्तानुर म्यति में सबन एकाएक देखा कि इसी की एक बड़ी पत्ति भीतर से निकल रही है । अग्नि देव के संस्तिप्त में तब एक विचार जगा और वे स्वयं इस का रूप धारण करके शिव के समीप पहुँच गये । बहापहुँचकर अति मूर्ख रूप धारण कर जब उहाने शिव से दवताप्रा की प्रतीक्षा के सम्बन्ध में बताया ता शिव गुरत बाहर आ गए । प्रसन्न हाकर उन्होंने दवताप्रा में वरदाचना के लिए जय कहा तो देवा ने पावती से सन्तति उत्पन्न न करने का वर मागा—

यदि तुष्णोऽसि देवाना वर दातुमिहेच्छसि ।

तन्निह त्यजता तावमहामयुनमोदवर ॥^६

शिवजी ने इस स्वीकार किया किंतु पावती यह सुनकर अति दुःखित हुई और उहाने

१ शिवपुराण वैश्वदेव प्र म बम्बई एम्बिका कुमाग्रण्ड अध्याय १६ श्लोक ११ १२

२ मत्स्य पुराण (महामन्त्र प्र वरकता) म २ ११ मन् १६२४ म० १२३ म० ४२१

३ पद्म पुराण वही म० २ १ मन् १६२७ (मुष्टि खण्ड) अध्याय ४५

४ वही अध्याय ४५ श्लोक ४४१-४४८

५ वामन पुराण म २४ विनायकोत्पत्ति श्लोक १०-७३ प ६८

६ वही श्लोक ४६

देवताओं का गाय लिया कि वह सत्ता सत्ता रति रत्न ।

तत्पश्चात् पावती अपनी सविका मालिनी की सहायता में स्नान के लिए तयारी करने लगी । उबटन इत्यादि लगाकर मालिनी बाहर गई तो पावतीजी ने अपने उज्ज्वल ने मल से एक एस बालक का निमाण किया जा चतुर्भुज, पीन वन और पुरण के लक्षणों से युक्त था । शिव इस भ्रातृति का देखकर अति प्रसन्न हुए, किन्तु साथ ही उज्ज्वल यह भी कहा क्योंकि इस बालक की उत्पत्ति भुङ्गम नहीं हुई है इसलिए इसका नाम विनायक रगा—

नायकेन विना देवी मया भूतोऽपि पुत्रक ।

यस्माज्जातस्ततो नाम्ना भविष्यति विनायक ॥^१

ब्रह्मवैवत पुराण

ब्रह्मवैवत पुराण^१ में गणेश जन्म की कथा इस प्रकार वर्णित है—

एक बार पावतीजी ने श्रीकृष्णजी की स्तुति की तो श्रीकृष्ण अति रम्य रूप में उनके सम्मुख प्रकट हुए । श्रीकृष्ण का वह स्वरूप अति ललित था । अपने सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित उनका सौंदर्य करांडा कामधेया के लावण्य के सदृश प्रतीत हो रहा था । पावती जी ने श्रीकृष्ण के इस आकषक सौंदर्य का देखकर मन में उसी रूप का पुत्र पान की कामना की । तदनुसार वह देकर ही श्रीकृष्ण अंतर्धान हो गए ।^२

पावती ने इसके उपरांत विभिन्न व्यक्तियों का बहुत-सा दान लिया और पुष्प, चंदन, कस्तूरी इत्यादि से युक्त हाथों के समीप आ पहुँची । शिव तथा पावती अभी सुरत-यापार में ही रत थे कि उसी समय विष्णु भगवान एक दिन वृद्ध ब्राह्मण के रूप में शरणागत बनकर आ पहुँचे । पावती और शिव दोनों ही उस ब्राह्मण की पुकार से सम्भ्रम सहित उठ बैठे और अतिथि जानकर उनका भरपूर स्वागत किया । पूण रूप से परितुष्ट हो विष्णु भगवान ने पावती को आशीर्वाद दिया कि उनकी गोत्र में शीघ्र ही गणेश रूप श्रीकृष्ण श्रीडा करेंगे । उनसे इस कथन के उपरांत ही वृद्ध अतिथि रूपधारी विष्णु अदृश्य हो गए और शिशु रूप में पावती की उसी शय्या पर जाकर प्रकट हो गए, जहाँ शिव का गुक्र गम्या पर रह गया था ।^३

शिववैवत

शिव-पावती के दोनों पुत्रों में विवाद का कारण शिवपुराण की कथा से भिन्न प्रस्तुत करने इस नाटक में लेखक ने निःसन्देह मौलिकता के साथ साथ अपनी मुक्ति का भी परिचय दिया है । सम्पूर्ण कथानक पौराणिकता की रक्षा करने में पूणरूपेण समर्थ है किन्तु गणेशजी का सिर कटने तथा जुड़ने जैसी त्रय घटनाओं के कारण नाटक बुद्धिसंगत नहीं रह

१ वामन पुराण अध्याय १४ श्लोक ७२

२ ब्रह्मवैवत पुराण अध्याय ८ गणेश खण्ड

३ वही अध्याय ८ श्लोक ८ ६

४ ब्रह्मवैवत पुराण अध्याय ८ श्लोक ८२ ८४

पाया है, माथ ही प्रस्तुत रचना की विभिन्न घटनाओं का कई स्थला पर अभिनय करना भी मरल नहीं है।

प्रस्तुत नाटक का विभाजन यद्यपि तीन ही अंका में है तथापि नाटक का कलवर बहुत बढ गया है। इसकी सौली थियेटिकल नाटका जमी है किन्तु इसकी भाषा परिष्कृत है।

सती पार्वती'

इस कड़ी का अन्तिम नाटक का राष्ट्रीयताम चरित्ररत्न लिखित सती पार्वती नाटक है जा विस्तार में गणेश जन्म नाटक के सहा ही बटा है। इसके कथानक में भी पूर्व उल्लिखित नाटकों के सहा ही शिव-पार्वती में सम्बंधित विभिन्न प्रसंग समाविष्ट हैं। प्रमुख प्रसंग तथा उनके श्रोत निम्नलिखित हैं—

गणेश जन्म नाटक के समान यहा भी नाटक प्रारम्भ देवसभा के आयोजन में होता है। यह आयोजन यहा प्रजापति का कायमार दण का मौपन के उपलक्ष्य में किया जाता है। यहा दण के क्रुद्ध होने का कारण शिव की सभा में बिलम्ब में पहुँचना दिखाया गया है।

इस प्रसंग का आधार भागवत पुराण है^१ किन्तु भागवत पुराण की कथा से नाटक की कथा में कुछ प्रमुख अन्तर भी देख जा सकते हैं जा इस प्रकार हैं—

१ भागवत पुराण में दण प्रजापति के यज्ञ में मग्न बड़े-बड़े ऋषि देवता और मुनि वृथाएँ एकत्रित होत हैं। दण के प्रवण करने पर महादेव और ब्रह्मा के अतिरिक्त सब उठकर खड़े हो जाते हैं। दण महादेव के उस व्यवहार को अपना अपमान समझता है और मनोमालिन्य उत्पन्न हो जाता है।

२ पौराणिक घटना से नाटक की घटना में द्वितीय अन्तर यह भी है कि नाटक में दण दुमावना के जन्म के उपरान्त, सती स्वयंवर आयोजित होता है जबकि भागवत पुराण में यह मनोमालिन्य विवाह के बाद का प्रसंग है।^२

कथा का अगला प्रसंग सतीदहन नाटक की कथा से सादृश्य रहता है जहाँ पिता के आमन्त्रित न किए जाने पर भी सती अग्नि-मण्डल पर पहुँचकर अपने प्राण त्याग देती है।

आधार

इस प्रसंग के आधार-मूल सती-दहन [नाटक के सहा रामचरितमानस^४ तथा

१ प्रजापति लेखक स्वयं राष्ट्रीयताम पुस्तकालय बरेली मन् १९३६

२ भागवत पुराण (मानाप्रम कोल्हापुर) अनुप स्कं अध्याय २ अंका १५ १६

३ भागवत पुराण (गीताप्रम कोल्हापुर) अनुप स्कं अध २ अंका १५ १६

४ रामचरितमानस (मानाप्रम मानाप्रम कोल्हापुर) बालकाण्ड माग वाराणस दूसरा विधाम ६ अंका की ४ बीगाई प १११

भागवत पुराण^१ के अतिरिक्त ग्रंथ य पुराण भी हैं जिनका विवरण सीट्मन् नाटक का विवेचन करत समय दिया जा चुका है।

अन्तर

इस स्थल पर अन्तर बतल इतना ही है कि नाटक में सती यज्ञस्य मूर्धिराज स्वयं को भस्म करती है जसकि रामचरितमानस तथा भागवत पुराण की कथाओं में मता यागानि द्वारा अपने को यज्ञस्थल पर ही समाप्त करती है।

इसके आगे की कथा तारा प्रसूति असुरों की समाप्ति य त्रिण कुमार कानिष्य को उत्पत्ति हेतु शिवजी के विवाह का ही घटनाक्रम का अन्त बतती है। रामगुणम रमिक विहारी लिखित नाटक शिव विवाह में भी असी घटना का उल्लेख है। इस नाटक में कामन्द्य के द्वारा शिव की समाधि भंग करने का प्रकरण अति विस्तार में है। रति के निनाप में द्रवित हो शिवजी कामन्द्य को अनग के रूप में फिर जीवन कर दत है तथा शरीर रूप में द्वापर में प्रद्युम्न के रूप में जन्म लेने की बात बत घटाय है। तब कथा शिव प्रसंग तथा उनके आधारे शिव विवाह नाटक के विवचित प्रसंग तथा उनके आधारे के सदा ही हैं।

विवेचन

प्रस्तुत नाटक का मजल काल पूर्व विवचित ग्रंथ सभा नाट्य के पञ्चात सन १९३६ है। इस दृष्टि में इस नाटक में पौराणिक असंगतिया के अभाव की बलना की जा सकती थी क्यकि किसी भी कलाकृति के रचनाकाल की मूल प्रवृत्तिया स रचनाकार का बचना प्राय सम्भव नहीं होता किन्तु कल्पना के विपरीत प्रस्तुत नाटक कई असंगत प्रसंगों का पिढारा लिखाई देता है।

इही कथानका पर आधारित इससे पूर्व रचित नाटक इसलिए क्षम्य कह जा सत है कि उनके रचनाकाल में पाठना अथवा दशका का ताकिक बुद्धि का पलडा धार्मिक भावना के समक्ष नीचा ही रहा होगा। प्रस्तुत नाटक के सजनकाल तक पाठक पर्याप्त ताकिक हा बुके हाग और इस प्रकार की असंगत घटनाओं में उनका जी नहीं रमता होगा। राधश्याम कविरत्न युग की प्रवृत्तिया से प्रभावित नहीं हुए अर्थात् उहाने पौराणिक घटनाओं को अपनी कल्पना के बल पर कोई नूतन युगानुरूप जामा नहीं पहनाया इसका कारण सम्भवत उनका स्वयं का कथावाचकीय धार्मिक दृष्टिकोण तथा रचनाओं में पौराणिकता की भरपूर रक्षा का लक्ष्य ही प्रतीत होता है। जो कुछ भी हो राधश्याम की रोचक गली सतुलित चरित्र चित्रण एवं पात्रानुकूल भाषा के दान इस नाटक में भरपूर हात है। साथ ही यह तथ्य भी अवलोकनीय है कि नाटक में इतनी घटनाओं का गुम्फन होत हुए भी इसमें कही असम्बद्धता नहीं आने पायी है। पौराणिक प्रसंगों की रक्षा की दृष्टि से यदि इस नाटक का मूल्य आँका जाय तो नि सदेह यह नाटक अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

वरमाला

वरमाला^१ हीन अर्वा का एक सुन्दर सयागात नाटक है। इसके अनेक गाविदवत्तलम पत हैं। नाटक की कथावस्तु निम्नलिखित है—

कथानक

वरधम भूमडल क महाराज का पुत्र अवीक्षित विवाह की कामना से विन्ध्या की राजकुमारी (राजा विगल की पुत्री) बगालिनी के पास विवाह स पूव ही प्रहंगिया का रिशवत देकर उपवन मे प्रविष्ट हो जाता है। राजकुमारी यहाँ आगामी दिन हाने जाने स्वयवर के लिए वरमाला तयार कर रही है। अवीक्षित को इस स्थिति म दग्कर वह कहती है कि कल चाहे वह किसी क कण्ठ म माला डाल देगी पर अवीक्षित को नहीं बरेमी। अवीक्षित की अनुनय विनय तथा प्रणय-याचना कुछ भी राजकुमारी को अपन निश्चय स नहीं हटा पाते।

राजकुमार अवीक्षित दूसरे दिन उसे बलात् रथ पर चढाकर चल पडता है किन्तु वशालिनी फिर भी प्रभावित नहीं हाती। माग मे दाना रथ से उतरत हैं। वशालिनी, अशोक वृक्ष की छाया म बठनी है। अवीक्षित अपना धनुष वाण रगकर जल लेन के लिए, नदी के तट पर जाता है। राजकुमारी इस बीच रथ पर बठकर भागना चाहती है किन्तु थोडी दर बाद राजकुमार का रथा के लिए स्वर मुन पडता है। बगालिनी जाकर दखती ह कि एक मगरमच्छ अवीक्षित का निगहन का प्रयत्न कर रहा है। बगालिनी धनुष-वाण उठाकर उसे विद्ध कर देता है।

तभी अवीक्षित का वशात्रिनी के पिता की सना आकर घेर लेती ह। अवीक्षित क्षत विधत हा जाता है किन्तु उम स्थिति म भी बगालिनी के द्वारा दी गइ कटार स तीरा को काटता चला जाता है। बगालिनी अति प्रसन्न होती है और राजप्रासाद मे पहुँचकर उसनी सेवा गुथ्रुपा मे जुट जाती है। अब राजकुमारी अवीक्षित स विवाह करना चाहनी है किन्तु अवीक्षित अपने का कायर एव अनुपशुक्त कहकर उसने प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है। वशालिनी स-यासिनी बनकर वन म चली जाता है। अवीक्षित राजकुमारी वशालिनी के लिए यथित रहन पर भी राज काय मे मन लगाने का प्रयत्न करता है।

एक दिन वन म पहुँचा हुआ अवीक्षित वशालिनी का सलाने वाले राक्षस का मार डालता है। बगालिनी पेड क पीछे छिप जाती है कहती है—

राजकुमारी जानकर प्यार नहीं किया ता मिखारिणी को कैसे करोग। पर अत म बगालिनी सूखी हुई वरमाला निकालकर अवीक्षित के गले म डाल देती है।

आधार

उपयुक्त कथा मूलतः माकण्डेय पुराण^१ पर आधारित है। वही कथा का रूप इस प्रकार है—

यहाँ राजकुमार अवीगित प्रहरिया का पुत्रराज राजकुमारी क उपवन म नहा पहुँचता वह राजकुमारी को सीधे स्वयंवर मण्डप से बलान् उठाकर ले जाता है।^२ उपस्थित नृप-समूह वही उस पर आक्रमण करता है। अवीगित सामना करता है किन्तु मणप म क्षण क्षिप्त हो जाता है। अवीगित का पिता करधम राजा विशाल पर आक्रमण करता है। पर्याप्त मारकाट होनी है। अतः दोनों म मल हो जाता है किन्तु अवीगित अत्र वगातिनी से विवाह करना स्वीकार नहीं करता। उसका कथन है कि राजकुमारी के सामने ही मैं परास्त हुआ हूँ, मेरा स्वाभिमान अब राजकुमारी से सम्बन्ध करने की आज्ञा नहीं दता।^३

पिता के आग्रह करने पर भी अवीगित इस सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करता अत्युत्तम आज्ञा म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा करता है। वशालिनी निराश और उदास हारकर तपस्या करने चली जाती है। तीन माह तक निरंतर तप करने क उपरांत वह देह त्यागन का निश्चय करती है तभी एक ध्वजदूत आकर कहता है कि तुम चक्रवर्ती पुत्र की माता बनोगी। 'राजकुमारी आश्चय प्रकट करती है क्योंकि अवीगित के अनिर्दिष्ट वह किसी स भी विवाह करने के लिए प्रस्तुत नहीं थी।

इसके उपरांत कथा उस स्थल को छूती है जहाँ अवीगित की माता वीरा पुत्र स किमिच्छक व्रत करने का समाचार देती है। साथ ही बताती है कि इसका समापन अवीगित तथा उसके पिता की सहायता पर निर्भर है। अवीगित विश्वास लिनाता है कि वह अपनी देह से इस दिना म हर सम्भव प्रयत्न करेगा। राजा करधम स नीति निपुण मंत्री कहत हैं कि पुत्र के निपुण रहने से राज्य की तथा तुम्हारी बहुत हानि होगी। अतः किमिच्छक व्रत क अंतगत अवीगित के द्वारा अर्थिया को आश्वस्त करने पर कि वह उनकी इच्छा अवश्य पूर्ण करेगा उसका पिता राजा करधम स्वयं याचको म सम्मिलित हो जाता है और याचना म पौत्र दान की कामना करता है। विवश होकर अवीगित को विवाह न करन का अपना निश्चय त्यागना पडता है।

माकण्डेय पुराण म कथा अब आगे बढ़ती है। राजपुत्र अवीगित जगन म मगया के लिए जाता है जहाँ वह 'वाहि वाहि' का शब्द सुनकर उसी लिना म भागता है। वहाँ एक

१ माकण्डेय पुराण कनकता सस्वरण १८१२ शक सं० अध्याय १२२ १२६

२ कनी परिभूयाधिलान भूपान् स्वेच्छया न वतस्या।

वताजग्राह विप्रपे । यथाया बलगवित ॥

—अध्याय १२२ श्लोक २१

३ माकण्डेय पुराण अध्याय १२५ श्लोक २६ ३ ३६

४ वहा—'व अविगमि कल्याणि जननी चक्रवर्तिन ।

—अध्याय १२५ श्लोक ५४

क्या का राजम के द्वारा केश पकड़ी हुई पाना ह। वह क्या आनमणकारी का बता रही थी कि वह राजा करघम की बहू तथा अवीक्षित की भाया है। अवीक्षित को आदर्य हीना है, किन्तु वह उसकी रक्षा करता है और मरलता से ही दुष्ट दानव का बाणा म छेद डालता है। देवता प्रमन हात हैं। देवतामा क आन्य स वह रश्मि की हुई क्या वैंगालिनी को ही पत्नी रूप म स्वीकार करता है और इस प्रकार पिता की इच्छा पूण करता है।

अंतर

नाटक म मूल क्या से मुख्य अंतर यही है कि यहाँ वैंगालिनी अवीक्षित से विवाह करना स्वीकार नहीं करती जबकि मूल क्या म अवीक्षित स्वय विवाह करन के लिए प्रस्तुत नहीं होता।

विवेचन

नाटककार ने अपन नाटक म क्या को एक नया माड देकर नारी के स्वामिमान को उभारन का प्रयत्न किया है। स्वभावत नारी, पुण्य म अदम्य साहम और अतुनित पौण्य लवन की कामना करती है। पुण्य के बलाकार क सम्मुख समपण करना नारी कमी स्वीकार नहीं करती। इसी आन के कारण नाटक की नायिका वैंगालिनी राजकुमार अवीक्षित को उस समय तक स्वीकार नहीं करती जब तक वह उपवन म चुपके से प्रवेश करके तथा अपहरण इयाति कुवृत्त्या द्वारा अपन उच्च खल माहस का प्रदान करना रहता है। प्राणा का उत्सव करके जब वह उसके पिता की सेना स जूमकर अपन पौण्य का चमत्कार निखाता है तमी वैंगालिनी म समपण की भावना जागती है। अवीक्षित को राजपुत्र जानकर भी वैंगालिनी उस अस्वीकार करती रहा यही नारी का स्वामिमान ह।

नाटक की गप घटनाएँ मूल क्या के ही महान हैं। नारी का भावनागत मानसिक अतद्वद्ध अंत म खर उभरा है। यह नाक क हृदय म एक कसक मिश्रित आनन की अनुभूति जगा जाता है। नाटक सयोगात होत हुए भी दान और पाठक क मन म एक विचित्र टीस छाड जाता ह।

प्रस्तुत नाटक के सम्बन्ध म सम्पादक का मत इस प्रकार ह—

‘हिन्दी साहित्य म वास्तव म नाटक कह जान योग्य नाटक कम हैं। जा कुछ हैं भी उनम ऐमे नाटका की सख्या बहुत ही घानी है जा मफलता क साथ रगमच पर खेने जा सवन का गौरव पा सकें। इसका कारण यही है कि नाटक-लखन प्राय अभिनय तथा रगमच स अपरिचित ही रहत ह। गाविल्लवरनम पत प्रतिभांगली उनीयमान लखक हैं। यह मौनिक नाटक, हिन्दी म नयी चीज है। यह पदन क नायक हान के साथ ही सुचार रूप स रगमच पर खेनन लायक भी है। आप यावुल नाटक कम्पनी के नाटक लखक रह चुके हैं।

सयोगात नाटक का मापक लक्षण यही है कि उसकी नायिका अपन प्रेमास्पद का अंत म पा जानी ह। इस नवान नाटक की नायिका पहन निम नहीं चाहती उसी के गने अंत म वरमाला टालती ह—एवय क लिए नहीं रायविभव के लाभ के लाभ स नहीं

तृतीय अध्याय

- १ व्यवन मुक्त्या कथा (क) सती मुक्त्या
(ख) आदश कुमारी (ग) मुक्त्या
- २ सगरविजय
- ३ शक्ति पूजा
- ४ देवहूति

भगु ऋषि के पुत्र लाक विधुत महर्षि व्यवन और ववस्वत मनु क पुत्र राजा शर्षाति की पुत्री मुक्त्या की कथा क आधार पर लिखे हुए हि दी म तीन नाटक मिले हैं जिनके नाम लेखको सहित इस प्रकार है—सती मुक्त्या बाबू श्यामाचरण जीहरी आदश कुमारी श्रीरामचन्द्र भारद्वाज मुक्त्या श्रीराजाराम शास्त्री । इन सब नाटको का कथानक लगभग एक-सा है । जो थोडा-बहुत अन्तर है वह केवन कुछ स्थला पर और अति साधारण है । इन सबम सबसे पहला नाटक सती मुक्त्या है ।

सती मुक्त्या^१

महाराज शर्षाति अपनी महारानी पुत्री तथा सेना के साथ वनविहार के लिए निकल पडते हैं । वन म उनकी पुत्री मुक्त्या अपनी सखिया के साथ पुष्प चयन के लिए जाती है । एक कुज म वह मिट्टी के बडे ढेर म दा चमकती हुई रत्न जसी चीजें देखती है । वह कुतूहलवश यह जानने के लिए कि वह चीजें क्या है एक काटेदार लकडी से उहे कुरेन्ती है । उस ढेर म से एक पीडायुक्त स्वर सुनकर उसक आश्चय का ठिकाना नहीं रहता ।

१ प्रकाशक—शिवरामनाथ मल्ल उन्नावसबहार माफिय काली प्र० संस्क० १९२३ ई० ।

वाग् को विदित होता है कि सुक्या न भूल से दीषकाल में तपस्या में लीन, च्यवन ऋषि की आर्क्षे फोड़ दी हैं। राजा गयाति महर्षि व बाधक्य तथा अधेपन को ध्यान में रखकर अपराध प्रक्षालन व निमित्त अपनी कथा सुक्या का विवाह उनके साथ कर दत हैं।

सुक्या, परमवद्ध महर्षि च्यवन को अपना परम आराध्य मानकर तन मन से उनकी परिचया करती है। इसी समय घूमत घामत अश्विनीकुमार उस वन में जा निवसत हैं जहाँ महर्षि च्यवन का आश्रम था। सुक्या अपने पति की पूजा के लिए पुष्प चयन करने पास के वनवण में जाती है। वहाँ अकली एवं परमसुन्दरी सुक्या का देखकर व दाना विविध प्रकार से उसके नीचे की परीक्षा लत हैं और उनसे प्रसन्न होकर वे उसके वद्ध एवं अवे पति महर्षि च्यवन को, सुन्दर युवा बनाने का विश्वास दिलाते हैं। किन्तु ऐसा करने के लिए व एक शत उपस्थित करते हैं, कि स्नान करने के लिए एक सरावर में दोना कुमार तथा महर्षि च्यवन एक साथ ही प्रवण करण और एक साथ ही बाहर निकलेंगे। सरोवर से बाहर निकलने पर तीनों का रूप रूप एवं आकार, वयस सब समान हुआ। उस समय सुक्या का तीनों में से अपने पति को पहचानना होगा। अश्विनीकुमारा की इस शत को भी सुक्या स्वीकार करती है। वद्ध एवं सबथा जीण च्यवन अश्विनीकुमारा की कृपा से कामदक से भी सुन्दर रूप और पुन नवज्योति के साथ पूण जीवन प्राप्त करते हैं। सुक्या उन तीनों एक में दिखने वाल नवयुवक में से अपने पति को पहचानकर अश्विनीकुमारा की इम परीक्षा में भी सफल हाती है। दक्चिन्सक अश्विनीकुमारा के इस काय से महर्षि च्यवन अपने को अनि अनुगहीन अनुभव करत हैं तथा कृतज्ञ भाव से प्रत्युपकार के रूप में, इन्द्र प्रमति अय देवताओं के साथ यज्ञा में, उन्हें भी सोमपान का अधिकार दिलाने का आश्वासन दत हैं।

इसके पश्चात महर्षि च्यवन अपने आश्वासन का पूण करने के लिए अपने स्वसुर महाराज शर्याति को प्रेरित करके एक सोमयज्ञ का आयोजन करत हैं। इस यज्ञ में इन्द्र प्रमति अय देवताओं व साथ अश्विनीकुमार भी प्रथम बार सोमपान करने का अधिकार प्राप्त करत हैं और इसी रूप में व अपने उपकार का प्रतिदान पाते हैं। राजा शर्याति के इस यज्ञ में महर्षि च्यवन स्वयं पुरोहित बनते हैं।

आदश कुमारी

आशकुमारी के लेखक रामचन्द्र भारद्वाज ने सुक्या के प्रभाव की विनिष्पत्ता एवं अलीकिकता बताने के लिए मुख्य कथा के साथ जो 'सती सुक्या के समान ही है, 'रुण कथा के रूप में राजकुमार चन्द्रनेतु की कथा का और जोड़ दिया है पर इमसे मुख्य कथा के रूप में कोई अन्तर नहीं आया है।

सुक-या'

श्री राजाराम दास्त्री ने भी प्रस्तुत नाटक की कथा का प्रस्तुतीकरण व धार भेन व अतिरिक्त सभी स्थला पर सती सुक-या के समा ही रगा है ।

इन तीनों नाटकों के कथानक समान होने व कारण इनका आधार-स्थान भी समान हैं । इसीलिए इनके मूल श्रोता का विवेचन अलग अलग न करवा गन गाय ही किया जायगा ।

आधार

च्यवन और सुक-या की यह कथा बहुत प्राचीन है । भागवत च्यवन का नाम ऋग्वेद म ऋषियो म आता है ।^१ अश्विनी सूक्ता म कई स्थला पर च्यवन (च्यवान) ऋषि के पुन यौवन प्राप्त करने का उल्लेख हुआ है ।^२ शतपथ^३ और जमिनीय^४ ब्राह्मण म च्यवन और सुक-या की कथा मिलती है । ऐतरेय ब्राह्मण^५ म भी कथा का संक्षेप मिनता है । निरुक्त^६ म भी च्यवन व नवयौवन प्राप्ति की चर्चा आयी है । जमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण^७ म भी यह कथा आती है । ऋग्वेद संहिता पर आधारित द्विवे^८ के ग्रन्थ नीति मजरी^९ म भी च्यवन की कथा का उल्लेख हुआ है । इन वदिक ग्रन्था व अतिरिक्त महा भारत^{१०} भागवत पुराण^{११} पद्म पुराण^{१२} देवीभागवत पुराण^{१३} और विष्णुधर्मोत्तर पुराण^{१४} आदि ग्रंथो म भी इस कथा की किसी न किसी रूप म चर्चा आई है और इन ग्रंथो म इसके कहीं विस्तृत और कहीं संक्षिप्त विवरण पाय जात है ।

आलोच्य नाटकों की कथा के मूल स्रोत का जानने के लिए वदिक साहित्य एवं

१ प्रकाशक सत्योगी प्रकाशन जवाहरनगर दिल्ली ।

२ ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १६

३ ऋग्वेद अश्विनी सूक्त मण्डल १ सूक्त ११६ मंत्र १ । म० १ सूक्त ११७ मंत्र १३ । मण्डल १ सूक्त ११८ मंत्र ६ । मण्डल ५ सूक्त ७४ मंत्र ५ । मण्डल ७ सूक्त ६८ मंत्र ६ । मण्डल ७ सूक्त ७१ मंत्र ५ । मण्डल १ सूक्त ३६ मंत्र ४

४ शतपथ ४ १ ५ ६

५ जमिनीय ब्राह्मण ३ १२० १२७

६ ऐतरेय ब्राह्मण ८ २१

७ निरुक्त ४ १६

८ जमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ४ ७ १ ८ ३ ५

९ नीति मजरी (शारदासि) पृष्ठ ३८ पृ० ८१ ८३

१० महाभारत वनपर्व अ० १२१ १२३ आदि० अ० ५ ६

११ भागवत पुराण स्कन्ध ६ अ ३

१२ पद्मपुराण पानातखण्ड अ १४ १६

१३ देवी भागवत पुराण ७ अ० २ ७

१४ विष्णुधर्मोत्तर पुराण ५ अ० १६६

उत्तर-वदिव साहित्य में प्राप्त कथा के विविध रूपों पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है और पढ़ने-वदिव साहित्य और उसके पश्चात् उत्तरवदिव साहित्य के कथा रूपों पर विचार करना उपयुक्त होगा।

सूक्त-कथा की कथा का मूल स्रोत हम ऋग्वेद संहिता^१ में मिलता है। यद्यपि यहाँ सुमन्वद्ध कथा तो नहीं मिलती है किन्तु अनेक मण्डल के विविध सूक्तों में विच्छिन्न-जा मनके मिलते हैं, यदि उन्हें एक सूत्र में पिरो दिया जाय, तो वे कथा का एक सम्बद्ध रूप ग्रहण कर लेते हैं। जिन सूक्तों में वृद्ध च्यवन ऋषि के अश्विनीकुमारा की कृपा से, पुनर्-यौवन प्राप्त करने तथा यौवन सम्पन्न कथा से विवाह का उल्लेख है वे सूक्त प्रायः अश्विनीकुमारा से सम्बद्ध हैं और उन्हीं की स्तुति के प्रसंग में वर्णित हैं। कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

जुजुष्यो नासत्योत वद्वि प्रामुचत द्रापिमिव च्यवानात् ।

प्रातिरत जहितस्यापुदस्त्रादित्यतिमकृणुत कनीनाम् ॥

—ऋग १ ११६, १०

इस मंत्र का भाष्य करते हुए सायणाचार्य, मंत्र की पृष्ठभूमि के रूप में इससे सम्बद्ध एक आख्यान का उल्लेख करते हैं—

अग्नेदमाख्यानम् । बलीपलिनादिभिरुपतो जीणाम पुत्रादिभि परित्यक्त च्यवनाख्य ऋषि अश्विनौ तुलाव । स्तुतावश्विनौ तस्मै ऋषये जरामपममय्य पुनर्यौवनमदुस्त्रा मिति ।'

मंत्र की व्याख्या में यह बात और भी स्पष्ट करके कही गई है—

हे अश्विनौ जुजुष्य जीणान च्यवानात् च्यवनाख्यात् ऋषे सकाशात् वद्वि कृत्स्न शरीरमावत्यावन्धिता जरा प्रामुचतम् प्रकर्षणामाच्यतम् ।

तत्र दृष्टान्त । द्रापिमिव । द्रापिरिति क्वचस्याख्या । यथा वद्विन क्वच कृत्स्नशरीरव्यापक धत्वा पश्चात् शरीरात् पृथक् कराति तद्वन् जहितस्य पुत्रादिभि परित्यक्तस्य ऋषे आयु जीवन प्रातिरत प्रावधयतम् । युवान सत् कनीना मन्याना पति भतार अकृणुतम् अकृणुतम् ॥

इस मंत्र और इसके भाष्य से तीन बातों पर स्पष्ट रूप से प्रकाश पड़ता है—

- १ वृद्ध च्यवन के बुढ़ापे की अश्विनीकुमारा ने दूर किया।
- २ उन्होंने ऋषि का यौवन के साथ आयु भी दी।
- ३ कनीना का पति बनाया।

ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र १ १७७, १३ में यह बात और भी स्पष्ट करके कही गई है—

“युद्धं च्यवानमश्विना जरत पुनयुवान चन्द्रयु गचीभि ।”

१ ऋग्वेद संहिता १ ११६ १ १ ११७ १३ १ ११८ ६ ५ ७४ ५ ७ ६८ ६ ७ ७१, ५ १० १६ ४

सायण—

“हे अश्विनो, युव युवा शचीभि आत्मोप क्मभि जरत जीयत च्यवान एतत सज ऋषि युवान पुनयौवनोपेत चत्रयु कृतवती ।”

यही बात एक और मात्र (१ ११८ ६) में भी च्यवान चक्रधुयुवानम्' के रूप में दुहरायी गई है। और एक अर्थ स्थान (७ ७१ ५) पर भी यही बात युव च्यवान जरसा मुमुक्तम कहकर कही गई है। जिस प्रकार स एन चतुर बड़ई जीण रय म नय पुजें लगाकर उसको पुन नय जसा कर देता है इसी प्रकार अश्विनीकुमारा ने भी बद्ध च्यवन को पुन युवा बना दिया (१० ३६ ४)।

एक अर्थ स्थल (७ ६८ ६) पर च्यवन ऋषि के जीवन प्राप्ति के प्रसंग में प्रत्यु प्रकार के रूप में च्यवनकृतृ व हवि का भी उल्लेख किया गया है जो कि इस कथा का एक अंग है। यहाँ यह बात विशेष रूप से स्मरणीय है कि इससे पूर्व अश्विनीकुमारा का यना में अय इत्र प्रमति देवताओं के साथ हवि प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। यह च्यवन ऋषि के ही प्रयत्न का फल था कि उनको भी सत्रक साथ यह अधिकार प्राप्त हो गया।

इस प्रकार इस प्रसंग के समस्त मान या मात्र खण्डों को एक साथ मिलाकर उनके प्रतिपाद्य अर्थ की यति अति मिलायी जाय तो ऋषि च्यवन और महाराज गर्गाति की पुत्री सुक या व सम्ब व म सून अश्विन अश म मिल जाते हैं। कथा के तानि-धान को क्रमिक रूप में प्रस्तुत करने के लिए कल्पना का भी सहारा लेना होगा क्योंकि कथा के रूप में यहाँ कथा नहीं है। अश्विनीकुमारा के जीवन के उत्पन्न कार्यों व प्रसंग में च्यवन ऋषि के प्रति जो कुछ उद्धाने किया और पाया उसका सम्बन्ध म सवेत मान हुआ है।

शतपथ ब्राह्मण

शतपथ ब्राह्मण^१ में जो च्यवन और सुकया की कथा है वह कुछ निम्न प्रकार की है। विचाराय सक्षप में उसका यहाँ हिन्दी रूपांतर किया जा रहा है—

भगु के पुत्र च्यवन जीण और विरूप थ। एन समय मनुपुत्र गर्गाति अपन परिवार और राजकीय पुरपा सहित विचरण करत हुए उसी वन में पठुच और आश्रम व समीप ही उद्धाने अपना शिविर डाला। इधर उधर ढीडा करत हुए उनके कुमारा ने जीण एव मयानन रूप बान् मुनि को अनथकारी समझकर ढला स आहत किया। मुनि ने क्रुद्ध होकर गर्गाति व लोका म मति विभम (असना) उत्पन्न कर दिया। पिता पुन से भाई भाई स युद्ध करने लग। राजा न इस अनय व कारण की जितासा की। परिणामस्वरूप, उसका गापाला और अविपाला न कुमारा व व्यवहार की बात राजा से निवृत्त कर दी। इस प्रकार गर्गाति को नात हुआ कि उसका कुमारा ने किसी ऐसे वस व्यक्ति व साथ नहीं, अपितु महर्षि च्यवन व साथ यह दुःपवहार किया है। वह रथ पर चढ़कर उनके पास

क्षमा याचना के लिए गया और उपहार में अपनी पुत्री सुन्या को देकर अपराध के लिए क्षमा मांगी और वचन दिया कि इसके बाद मैं फिर नहीं हागा।

एक समय घूमते हुए अश्विनीकुमार उमी प्रदेश में आए। मुक्त्या के पास जाकर उन्होंने जीण और भयवर (कृत्या रूप) मुनि को त्यागकर अपने में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कहा। पिता ने जिसे सौंप दिया है जीवन पयन्त उमरो नहीं छोडूंगी।' ऐसा कहकर मुक्त्या ने उनकी बात का विरोध किया। मुनि का सुन्या से जब यह विदित हुआ तो उन्होंने कहा कि 'यदि पुन व तुममें इस प्रकार कहें तो तुम उन्हें बताना कि आप साग अशुभ और असम्पन्न हैं, फिर भी मेरे पति की निन्दा करते हैं।' जब वे पूछें कि 'किस ?' तो तुम कहना कि पहले आप मेरे पति को युवा बना दीजिए तब बताऊंगी। ऐसा ही हुआ। अश्विनीकुमारा ने कहा कि तुम्हारे पति यदि इस सरोवर में डुबने लगाएँ तो जसा रूप चाहें वस ही रूप में युक्त होकर व बाहर निकलेंगे। च्यवन ने वसा ही किया। फलतः वे पुन युवा बन गए। तब अश्विनीकुमारा ने मुक्त्या से पुन वह प्रश्न पूछा कि वे अशुभ और असम्पन्न किम प्रकार हैं। प्रत्युत्तर में च्यवन ने कहा है—

कुरुक्षेत्र में देव लाग जा यत्न कर रहे हैं उसमें आपका भाग नहीं दिया गया है। इसलिए आप अशुभ और असम्पन्न हैं।' इसमें पश्चान् अश्विनीकुमार कुरुक्षेत्र गए और वहाँ उन्होंने अपने कौशल से यत्न भाग प्राप्त किया। यहाँ का यह विवरण कुछ विस्तार में है और मुख्य तथा व साथ उसका माशान सम्बन्ध नहीं है अतः अनर्पणित है।

गातपथ ब्राह्मण की कथा की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं ऋषि च्यवन के नाम के साथ 'भागव' और 'आगिरस' दाना विशेषण मयुक्त हैं। राजा का यहाँ 'गातमानव' कहा गया है। इसके अनिश्चित—

- १ ऋषि के जीण और मयानव रूप को देखकर राजा के कुमारा ने उसे अनथकारी समझकर अज्ञान से डेर मार मारकर अहत्त किया है।
- २ राजा के पूछने पर गोपाला और अश्विपाला ने कुमारा के द्वारा ऋषि के ताडन रूप व्यवहार की सूचना दी है। मारने में उनका योग नहीं रहा है।
- ३ ऋषि के अघा हान या करने का यहाँ कोई उल्लेख नहीं है।
- ४ ऋषि के क्रोध से राजा के लाग में अश्विभक्त (असना) उत्पन्न हुआ है।
- ५ ऋषि का त्रास गात कराने के लिए राजा ने स्वयं ही मुक्त्या को अर्पित किया है। ऐसा करने के लिए, ऋषि के संकेत या आग्रह का यहाँ उल्लेख नहीं है।
- ६ च्यवन ऋषि की प्रेरणा से मुक्त्या अश्विनीकुमारा से पति को पुन युवा बनाने के लिए कहती है।
- ७ युवा बनने के लिए यहाँ सरोवर में केवल च्यवन ऋषि ने ही प्रवृत्त किया है, अश्विनी कुमारा ने नहीं जसा कि अश्वत्थ मिलता है।
- ८ च्यवन ऋषि द्वारा कराए गए किसी एते यज्ञ का जिसमें प्रत्युपकार के रूप में अश्विनीकुमारा को सोमपायी बनाने का प्रयत्न हो, यहाँ उल्लेख नहीं है।
- ९ वद एव जीण च्यवन ऋषि को युवा बनाने से पूर्व बदले में उन्हें भी ऋषि द्वारा यत्न में सामपान का अधिकार दिलाने की किसी बात का या युवा बनने के उपरान्त प्रत्य

पवार के रूप में ऋषिपुत्र तृतीय का प्रयत्न था भी यहाँ उल्लेख नहीं है।

१० जीण च्यवन को युवा बनाने जमा त्रिगिण्टा पाय कर देने पर भी न ता अश्विनी पुमारा की आर स बल म कुछ पान का और न ऋषि ती आर म कुछ पान का कही कोई उल्लेख है।

जमिनीय ब्राह्मण^१

जमिनीय ब्राह्मण में यह कथा शतपथ ब्राह्मण का तथा ती अप ता अधिन विम्नार से मिलती है। इसातिण इस स्थल की कथा में स्पष्टता भी पवाप्त है। यहाँ की यह कथा सामवद के वास्तुपथ्य ब्राह्मण^२ के पान की चचा के प्रसंग में आयी है।

यहाँ की कथा के विवरण से प्रतीत होता है कि भगु के पुत्र ऋषि च्यवन पुत्रा बाल हैं। वे अपन वाधक्य से दुःखी हैं। वे पुन युवा होकर किसी पुमारा से विवाह करना चाहत हैं। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए वे सहस्र मुद्राघा से एक बहद धन करत हैं। उनके पुत्रा ने उनका त्याग दिया है और वे अपनी जीण अवस्था में तपोरत रहत हुए सामस्तुनि में लीन रहत हैं।

एक दिन मनुपुत्र शर्यात अपन दल-बल के साथ विचरण करत हुए उधर पहुच जाता है। उसके बुमार गापाल और अविपाल सब डेन गोर और धूल ऋषि के उपर डालत हैं। ऋषि के क्रोध से सब में मतिशू यता आ जाती है। वारण विन्ति होने पर राजा ऋषि के पास जाकर धन आदि देकर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहता है किंतु ऋषि उसकी पुत्री सुक्या का ही लना चाहत हैं। राजा को भुक्ना पडता है परंतु आश्रम से जात हुए राजकीय पुरष उसमें बहत हैं कि इस वृद्ध के पास तुम्हारा रहना उचित नहीं। तुम हमारे पीछे-पीछे चली आना। वह जाना चाहती है कि माग में एक काल सप के आ जाने से स्व जाती है।

इसके बाद इसमें अश्विनीकुमारा का प्रसंग आता है। यह कुछ अगा में तो शतपथ ब्राह्मण के समान है और कुछ में भिन्न भी है। यहाँ सुक्या अश्विनीकुमारा से कहती है कि आप तो देवता हाकर भी सोमपायी' नहीं हैं अत अपूण है और मेरे पति सामपायी है अत पूण हैं। वे आपको भी सोमपायी बना सजत हैं किंतु एक शत के साथ कि पहल आप मेरे पति का युवा बना दें। अश्विनीकुमार स्वीकार करत है। सरावर में प्रवेश करने से पूर्व च्यवन सुक्या को अपनी विशेष पहचान बता देत हैं जिससे कि वह उन्हें पहचान सके। क्याकि सरोवर के बाहर आन पर तीना का रूप एक मा होगा ऐसी सूचना अश्विनीकुमार पूर्व ही दे चुके होत हैं।

च्यवन के यौवन प्राप्त हान पर अश्विनीकुमार उनसे अपना वचन पूरा करने के लिए

१ जमिनीय ब्राह्मण ३ १२ १२८ से डा रधवीर प्रकाशक इटरेनेशनल एवेमी आफ एन्डियन कल्चर नागपुर १९५४

२ मन्वानर बर्णन इंडियन आफ नेम्स एण्ड सन्डकल्स भाग २ प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास

कहत है। यहाँ च्यवन उह एक उपाय बतात है कि 'कुम्भेन म देवलोग गिरहीन यन से यजन कर रह हैं। दधीचि उस गिर के रहस्य का जानत हैं। आप लोग दधीचि के पास जाइए। व आपको जो बतायेंगे उसमें आप सामपायी बन जायेंगे। व दाना जात हैं, किन्तु व न पहले ही दधीचि से कह लिया है कि उहने यदि यह रहस्य किसी का बताया ता वह उनका गिर काट दगा। अश्विनीकुमार दधीचि के वास्तविक गिर के स्थान पर अश्व का गिर लगा त्त हैं और उमक वात् समस्त रहस्य (मधुविद्या) उनमें जान लत हैं। इन्द्र का जब यह बात मालूम हानी ह ता अपनी प्रतिजानुमार वह दधीचि का अश्व गिर काट देता है। अश्वगिर के कटन पर अश्विनीकुमार वास्तविक गिर पुन दधीचि के लगा देने हैं। इस प्रकार इन्द्र की प्रतिज्ञा भी पूरी हो जाना है और रहस्य विद्या भी वे दधीचि से सीख लत हैं।

इसके पश्चात् व उन याजका के पास जात हैं जो अपूण यन करने के कारण किसी वाञ्छित फल का प्राप्त करने में असमर्थ हैं। याजका के अनुरोध में उनके यन का व पूण कर दत हैं और बदले में उनको 'मोमनायी' बना दिया जाता है।

जमिनीय ब्राह्मण की इस कथा में वस्तुतः दो कथाएँ—च्यवन-मुक्या की कथा और अश्विनीकुमारा की दधीचि से मधुविद्या की प्राप्ति की कथा एक साथ मिला दी गयी हैं। इसीलिए यज्ञ का यह कथा कुछ विस्तृत हा गयी है। जैसे गाना के बीच में अश्विनि कही छिन नहा जान पायी है अतः पृथक्-पृथक् प्रतीत नहीं हानी है।

यहा च्यवन ऋषि ने यौवन प्राप्त करने के उद्देश में स्वयं किसी एम यन का आया जन ता नहीं किया ह जिसमें सबके साथ वन दाना दवताओं को भी सामपाय का अधिकार दिनाया ह। इस कथा में उहने उनको उपाय मान बताकर अनन्यता प्राप्त कर ली है।

जमिनीय ब्राह्मण की कथा में भी राजा गयात के निज मनुष्या की आत्मा से च्यवन ऋषि का जा कष्ट दिया गया है उसमें मुक्या का कई भाग नहीं ह। ऋषि की प्रवृद्ध लालसा के कारण ही राजा को मुक्या उह अपित करनी पड़ी है। यहा भी ऋषि के अथ हात या क्रिय जान का कही उरनेख नहीं ह। यहा सतपथ ब्राह्मण की कथा में ऋषि के वृष्याल्प का भी कथा संकेत नहीं है। यहाँ और 'गन्पथ' ब्राह्मण की कथा में कुमारा गोपालो और अविपालो के च्यवन ऋषि के प्रति क्रिय गय व्यवहार का चित्रण बहुत स्वाभाविक हुआ ह। उहने ना कुछ किया है वह बालसुलभता और उत्सुकतावग क्रिया है। आज भी एसा व्यवहार दस्ता जाना है। हा इसके विपरीत ऋषि से अधिक उदारता की आशा की जा सकती थी। कुमारा के अपराध का दण्ड बेचारी राजक्या को क्या भोगना पडा, इस बात की भंगति एक विचारवान व्यक्ति के मस्तिष्क में नहीं बँठनी। बहुत सम्भव है कि इस असंगति का परिहार करने के लिए ही गन्पथ और जमिनीय ब्राह्मणों के पश्चात् कथा का जो रूप विकसित हुआ उसमें मुक्या को ही ऋषि के मुख्य अपराधी की श्रेणी में लाकर खडा कर दिया गया और उसके सुकुमार हाथा से ऋषि को अघा बनवाकर कथा का रूप ही परिवर्तित कर दिया। क्याकि गन्पथ ब्राह्मण की कथा में कुमारा के अपराध के बन्धन में ऋषि के बिना भागे ही स्वयं गयात का मुक्या को भेंट देना तथा जमिनीय ब्राह्मण में कुमारा गोपालो और अविपालो के सम्मिलित अपराध के दण्डस्वरूप, ऋषि का

गर्वात से गुनगुना देने के लिए आग्रह करता कुछ युक्तिसंगत-भा प्रतीत नहीं होता है। यह असंगति क्या कहनेवाले और सुननवान दाना को ही गटारी हाथी सम्भवत इमीतिा इसका अधिक युक्तियुक्त परिहार करने के लिए गुनगुना ता ही मुख्य कारणों की नाटि म रख दिया गया है।

क्षतपथ और जमिनीय ब्राह्मणों की कथा का उत्तर भाग भी कुछ गटारता है। अश्विनी कुमारों द्वारा इतना महान उपहार किये जान पर भी ऋषि की वृत्तता का रूप उमरा हुआ नहीं है। वहाँ के सोमपायी बन सक्न का कथा उपाय बननाकर अपन कत य से सन्तुष्ट हो गये हैं। कथा का यह अंश भी वाचक या धाता के मन में गटारता है। उसके विचार में ऋषि की वृत्तता उपाय बतलाने मात्र से पूरा नहीं होती है। सम्भवत इसीलिए उत्तरकाल के कथाकारों ने च्यवन ऋषि से ही एक ऐसा यज्ञ की योजना तयार करायी जिगमे इन्द्र के विरोध करने पर भी उनसे प्रयत्न से अश्विनीकुमारों को सोमपान का अधिकार दिलाया गया। ऐसा करने से च्यवन ऋषि की अपने उपहारों के प्रति वृत्तता और प्रत्युपकार की भावना को विशेष बल मिला है। यहाँ के उपाय चरित्र बान बन गये हैं। मूल कथा में इन दोनों परिवर्तनों ने उसे युक्त और सुन्दर बना दिया है।

ऐतरेय ब्राह्मण^१

ऐतरेय ब्राह्मण में भी च्यवन ऋषि की कथा का कुछ सवंत मिलता है। यहाँ यह महा भिषेक विधि के प्रसंग में आया है। इससे केवल इतना ही पता होता है कि भगुपुत्र च्यवन ने मनुपुत्र शर्यात का अभिषेक किया। इसके अनंतर शर्यात ने समस्त पृथ्वी को जीतकर अश्वमेध यज्ञ किया और देवों के सत्र में भी वह गृहपति बना—

ऐन्द्रेण महामिषेकेण च्यवनो भागव शर्यात मानवमभिषिषेच। तस्माद् शर्यातो मानव समत सवत पथ्वी जयत परीयायाश्वेन च मेध्यनेजे देवाना ह्यापि सने गृहपति रास।

इस पर भाष्यकार आचार्य सायण ने लिखा है—

भगो पुत्र च्यवन नामसो महर्षि मनुवशात्पुत्र शर्यातनामक राजान अभिषिषेच। तस्मात् फल पूर्वकत। किं च देवाना सम्बन्धिनि सनेऽपि शर्यातो गृहपतिरभूत्।

इस उल्लेख में राजा का नाम शर्यातमानव है। मानव से अभिषेक 'मनु का पुत्र और 'मनु गोत्र में उत्पन्न सत्तान' दोनों ही सम्भव हैं। शर्यात शर्यात का पुत्र भी हो सकता है। शर्यात का शर्यात भी लखक की भूल से सम्भव है। आचार्य सायण ने शर्यात का स्पष्टीकरण तो नहीं किया किन्तु मानव का मनुवशात्पुत्र किया है। भागव च्यवन का सम्भव मनुपुत्र शर्यात से क्षतपथ और जमिनीय ब्राह्मणों की कथा से स्थापित हो चुका है। जमिनीय ब्राह्मण^२ में शर्यात से एक सहस्र भुनाए लेकर च्यवन ऋषि के एक यज्ञ का

१ ऐतरेय ब्राह्मण भाग ४ स सत्यवत सामथ्यमी एमियाटिक सोसायटी काकस्ता १९०६ पृ २५७
(८४७)

२ डॉ० रघुवीरसम्पात्ति नागपुर १९५४ (३१२८) पृ ४७

उन्नेत्र है।

अथ ह च्यवना भागव पुनयुवा भूत्वागच्छच्छयात मानवम् । त प्राच्या स्वल्पाम्
अयाजयत् । तद् अम्म सहस्रम् अन्नात् । तनायजत् । एतद् वै तच्च्यवनो भागव एतन्
माग्ना स्तुवा पुनर्युवाभवत् कुमारी जायाम अविशत् सहस्रेणायजत् ।

इस स श्यात मानव का यजमान बनाकर भागव च्यवन का यज्ञ कराना स्पष्ट है।
अत अधिक् सम्भव यही प्रतीत होता है कि भूल से 'श्यात ही यहा गायान बन गया है।

निरुक्त^१

आचार्य यास्क के निरुक्त में भी च्यवन और मुक्त्या की कथा का कुछ संकेत मिलता
है। यह 'च्यवन ऋषि' की निरुक्ति के सम्बन्ध में आया है—

'च्यवन ऋषिभवति । च्यावयिता स्तोमानाम् । च्यवानमित्यप्यस्य निगमा भवन्ति ।
इस पर प्रसिद्ध टीकाकार दुर्गाचार्य लिखते हैं— "च्यवानम् ऋषि एव रूपेण अपि अस्य ऋषे
भगुपुत्रस्य मुक्त्या भक्तु छदमि निगमा भवन्ति ।'

निरुक्त के प्रसिद्ध टीकाकार दुर्गाचार्य च्यवन और मुक्त्या की कथा में परिचित हैं
यह उनकी व्याख्या में स्पष्ट है। आग ऋग्वेद^२ के एक मंत्र की व्याख्या के अंत में दुर्गाचार्य
लिखते हैं—

एवमतस्मिन् मन्त्रे च्यवान ऋग्देन च्यवन एव ऋषिरुक्त स हि श्रूयत सीतय
आख्यान पीण सन् अश्विम्पा पुनयुवा वृत्त इति तस्माद् उपपद्यते एतत् ।

आचार्य यास्क ने जिस मंत्र का उल्लेखण के रूप में प्रस्तुत किया है, उनमें च्यवान
शब्द है च्यवन नहीं। परंतु लाक में 'च्यवने' नाम ही प्रसिद्ध है। इसीलिए दाना को यहा
स्पष्टीकरण देने की आवश्यकता पड़ी और इस प्रसंग में मुक्त्या से च्यवन के सम्बन्ध तथा
कथा का भा उल्लेख हो गया है।

नोति मज्जरी

अस्य मन्त्रिना वा ऋचाया पर आधारित नातिमज्जरी^३ का द्विवद का वदित ग्रथ है।
इसमें उल्लेखण के रूप में संवत् ही लेखक ने ऋग्वेद के मन्त्र का ही उद्धृत किया है। डा०
ए० वा० कीच ने का द्विवद का समय पचत्पा गनादी माना है।^४

जराजय कथा का निर्देश करत हुए का द्विवद ने महर्षि च्यवन की जरा और
अश्विनोक्तुमारा की कृपा में पुनर्जय की प्राप्ति का उल्लेख किया है—

सर्वेषामेव जन्तूना सर्वदुःखाधिक्यं जरा ।

च्यवनोऽप्यश्विनो स्तुवाययारोऽमृत पुनयुवा ॥

१ निरुक्त ४ १६ स मुक्त्या का निगम माग प्रम बर्ष १६३ प १८७-१८८

२ ऋग्वेद १० ३६ ४

माग्ना० सीताराम जयराम जाशी हरिहर मण्डल काठभंग काशी १६३३

४ द्विवद का सन्तुलित निरुक्त आनन्दशास्त्र प्रम १६२८ पृ० २ ६

कोई विषय घनतर नहीं है। यही कारण है कि यही कथा का गाना-बाना सुना गया है। महाभारत घटनाओं का भी मैं इस में मगन किया गया है।

महाभारत की कथा में महर्षि व्यास के पुत्र बाले का समाचार राजा द्रुपद की धरती राजधानी में ही मिल जाता है। समाचार प्राप्त करने के उपरांत ही वह मितने के लिए घास में जाता है। यही की कथा में यही का समाचार प्राप्त करने के लिए राजा पहुँचा है और यही घास में गूँड़ खाए के श्याम पर गुप्त के अन्तर घास कथा के भाग पर गूँड़ कर लेता है। यागस्तिका मानस ही पर हविष होता है और हविष के प्रसार के अनुसार एक सामयक कर के आयोजन करता है।

एक सामयक में धर्मिणीकुमार के सामग्य का विरोध करके हुए महर्षि का मारने के लिए द्रुपद के यज्ञ उपास पर उगरी बाहु का यही भाँति के अन्तर्गत किया है किन्तु द्रुपद का मारने के लिए महाभारत की कथा में त्रिगुण्या का उपास है यह यही नहीं है। वादुम्भसन के पदवात् ही यही द्रुपद धर्मिणीकुमार के भाँति सामग्य का धर्मिणर के लिए सहमत हो जाता है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में प्रहृति के पुत्र पुनामा के विनाश की चर्चा करके हुए महर्षि मारण्येय ने जो कथा सुनायी है उगम महर्षि भृगु से पुनामा का विशाल उगम कुछ समय के पदवात् उनकी अनुपस्थिति में समान नाम धाम एक राक्षस द्वारा पुनामा के बन्धु हरण निय जान के प्रयत्न तथा उगी समय मय से उगम गम का पता गम से बाहर धाय उग नव जान किन्तु व्यवन के दान माय से माँ के अपहरण करके या उग राक्षस का सम्भावण होना धर्मिणर घनतर वर्णित है।

यही यह कथा धर्मिणर से ले के कही गयी है। महर्षि व्यवन के जन्म की कथा का विस्तृत रूप महाभारत के धर्मिणर के नाम और पृष्ठ अध्याय में मिलता है। यही राक्षस द्वारा पुनामा के अपहरण निय जान के कारण भृगु का धर्मिणर को क्षण धर्मिणर का निरक्षण विस्तार से दिया है।

महर्षि व्यवन के जन्म की कथा से आलाच्य नाटक का कथावस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं है अतः इसका विवचन में जान की आवश्यकता नहीं है। नाटक के नायक से सम्बन्ध होने के कारण यही इसका निर्देश मात्र कर लिया है।

ब्रह्मपुराण^१

ब्रह्मपुराण में मानुसीय के वणन के प्रसंग में एक राजा शर्मिणि और उसके पुरोहित मधुच्छंदा अश्वमित्र की कथा का वणन आया है। यह मिन प्रकार की कथा है। इसका आलाच्य नाटक की कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है अतः इसका विवचन नहीं किया गया।

१ विष्णुधर्मोत्तर पुराण अ. १६६ ११५

२ गरुडपर्वत प्रथमान्त प्रकाशन कलकत्ता (मनसुखराय मार) १९५४ अ. १३०

इसमें केवल ग्याति नाम का ही सादृश्य है और कुछ नहीं।

पदमपुराण^१

महर्षि च्यवन और मुक्या की कथा पदमपुराण में विस्तार से एक सौ अठारह श्लोको में कही गयी है। महाराज राम के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर निम्बिजय के निमित्त मन्त्री सुमति के साथ शत्रुघ्न निकले हैं। एक स्थल पर अत्यन्त मनोहर और सुशान्त आश्रम का दृश्यकर उमना इतिहास जानने के लिए प्रश्न करने पर सुमति ने तत्सम्बन्धिनी सभस्त कथा सुनायी है। यहाँ जो कथा सुनायी गयी है वह महर्षि च्यवन के जन्म से लेकर महाराज ग्याति के उम यज्ञ तक है जिसमें अश्विनीकुमारों को सोमरायी बनाया गया है।

यहाँ महर्षि च्यवन के जन्म की जो कथा दी हुई है उसमें तथा महाभारत (आदि पर्व अ० ५६) और विष्णुधर्मोत्तर पुराण (अ० १८) में वर्णित कथा में कुछ अन्तर है। इन दोनों कथाओं की कथा में पुनामा के जन्म, गणेश और विवाह आदि का भी विवरण है। वहाँ राक्षसहृन्त पुनामा के अपहरण का भी एक विवरण द्युत दिया है जिसका सम्प्रथम पुनामा के गणेश की एक घटना में है। यहाँ उसका कोई उल्लेख नहीं है। जिस राक्षस ने यहाँ भगुपत्नी का अपहरण किया है वह तो मयविनाशक है। च्यवन की उत्पत्ति राक्षस का विनाश और अग्नि को भगु के गणेश आदि की घटनाएँ समान हैं।

यही च्यवन युवा हान पर अपने कुछ गिप्या के साथ रेवा नदी के किनारे पर आश्रम बनाकर अति वृद्ध रूप धारण करत हैं। उन्हें अपने शरीर की भी सुध-बुध नहीं रहती। उनकी अखण्ड समाधि की अवस्था में घोटिया उनके शरीर पर वाम्बी बना देती हैं और पत्नी घोल बना लेते हैं। एम ही समय में मनुपुत्र शयानि वहाँ अपने म्लवन के साथ पहुँचता है।

आनाथ्य नाटक की कथा के साथ सीधा सम्बन्ध रखने वाली यहाँ की कथा का भाग, कथा की मुख्य घटनाओं में समानता रखते हुए भी घटानाम में विवरण में कहीं-कहीं भिन्न है। इसकी मुख्य विषयवस्तुएँ इस प्रकार हैं—

- १ मुक्या के द्वारा ऋषि की दृष्टि नष्ट कर लिया जाय पर जा परिणाम हुआ है कि भिन्न प्रकार के हैं। जन्म (१) भूतान आना (२) उल्कापात जाना, (३) ममस्त निष्ठाया का घूर्णन में आच्छादित जाना (४) मूय का परिवर्द्धित जाना (५) राजा के घोड़ा का नष्ट जाना (६) हस्तिना का मरना (७) रत्नानि धन का नष्ट जाना और आपस में बन्दह उत्पन्न जाना।

अन्तिम परिणाम का छान्दस और विभी का अर्थ उक्त नहीं है। जमिनीय ब्राह्मण की कथा में भी पारस्परिक बलह का उक्त है।

- २ महर्षि च्यवन को शयानि द्वारा मुक्या के दृष्टि जान पर उमका अपने वृद्ध एवं अशक्त पति के साथ जा व्यवहार है उमका चित्रण यहाँ कुछ विस्तार से है—

१ पानान पृष्ठ, प० १४ के अन्त २६ से अ १६ के अन्त २४ तक।

सा मानयो त परमात्मनो वीर्येण हीनं तस्मात्परीक्षकम् ।
 गिरिवर एव हरिभोग्योऽसौ निजैःशरीरैः कुपदेवतां यथा ॥
 परस्यो गवने तासो गवयः शतवर्षिताः ।
 राजपुत्री मुखरीणी पद्मपुत्रीश्चरणात् ॥^१

शक्तिनी कुमार उमा । पूजा में ही मन्त्रुण्डा उमाए पर माँगा के लिए कहते हैं ।
 मुन्नाया भी परा माँ के लिए प्रेरितियाँ हैं । अपनी पार में माँ के लिए प्रार्थना
 करा गया है ।

३ मुन्नाया व धनन प्रति भी अनुमति में जा कर माँगा है उमाए प्रति का गौरव भी
 परा उमाए लिए दृष्टि माँगी है—

पद्मभिप्रायस्थाने यत्तामुवाच पुष्यमन्त्रा ।
 इहा मे चक्षयो पद्मपुरि सुखी सुखी गुरो ॥^२

परन्तु शक्तिनीकुमार । मुन्नाया भी दक्षिण पूज करने में पूज कर जा गया है कि
 यदि उमाए प्रति चरन माँ उमाए पर माँ माँ का भाग लिया का शक्तिनी बताते
 ता व उमाए प्रति ता दृष्टि गौर कर रहे—

स्वल्पतिथिदि दधानां भाग यतो दद्यात्पतो ।
 प्रायधोरपुना कुपुष्पाणो स्फुटद्वारम ॥
 ध्ययनोऽप्योमिति प्राह भागदाते शरीरगतो ॥^३

मुन्नाया न ता गवयः प्रति भी दृष्टि ही माँगा भी लिए उमाए दृष्टि व माद-माद
 च्यवन महर्षि का स्वल्पमाँ धीन माँ प्रदान किया ।

४ महर्षि च्यवन दृष्टि और योरा मित्त व पाँ शक्तिनीकुमार का भी माँगाता का
 अधिकार लिया व लिए शिमी या का भाषाज्ञानी करते हैं । उमा प्रान्त जाता है
 कि राजपुत्री व गाय अथ नन्दीवन व शिवाग म व प्र-पुत्रार की उम धान व भूत
 म जाते हैं । मुन्नाया व गाय च्यवन व शिवाग का वणन यो विचार म किया गया
 है और अन्त म उठा गया है कि व सो वष तर उमा करत रहे—

एव तथा श्रीद्विमान सद्यः धरणीतले ।
 नातुध्यत गतानन्दान शतमल्पपरिमितान ॥^४

इतना समय बीतने पर भी श्री उनीकुमार का लिय गय अन्त वरन का मुनि को ध्यान
 नहीं आया । राजा शक्तिनी का ही यज्ञ करत भी दक्षिण दृष्टि और च्यवन महर्षि को
 बुतान के लिए उमाए निमन्त्रण भजा । व मुन्नाया व गाय यो पढ़े—

यदाक्षिदथ शर्मनिदष्टुमच्छत देवता ।
 तदा च्यवनमानेतु श्रेययामास सेवकान ॥

१ पद्मपुराण पातान घण्ट म १५ श्लो २ ४
 २ पद्मपुराण पातान घण्ट म १५ श्लो ११
 ३ पद्मपुराण पातान घण्ट म १५ श्लो १ १५
 ४ पद्मपुराण (पा घ) म० १६, श्लो १

तराहतो द्विजवरस्तदा गच्छन् महातपा ।

सुक् यया धमपत्या स्वाचारपरिच्छया ॥

- ५ यहा भी क्या म एक बात स्वकनी है वह यह कि इतनी बड़ी घटना घटित हो जाने और उसके पश्चात इतना दीर्घ समय बीत जाने पर भी राजा शर्वाति का यह विधि क्या नहीं हो सता कि उनका जामाना का पुनर्दृष्टि और जीवन प्राप्त हो चुका है । यह तो एक ऐसा सवाद था जो समस्त दंग म विद्युत के समान तुरन्त फन जाना चाहिए था । पुराण कथाकारों का इस अनुपपत्ति की आर क्या ध्यान नहीं गया यह आश्चर्य की बात है ।
- ६ इस कथा की अन्तिम और मुख्य घटना राजा शर्वाति के इसी यत्न म महर्षि च्यवन द्वारा इंद्र के प्रदल विरोध करने पर भी अश्विनीकुमारा का सामपान का अधिकारी बनाना है । यहा च्यवन ऋषि का मारन के लिए इंद्र के वज्र उठाने पर उसके हाथ के स्तम्भन मात्र का बणन है । इसी से वह महर्षि के प्रभाव से परिचित होकर उनके आग भुक् जाता है उसे अधिक भयभीत करन के लिए किसी 'कृत्या का उत्पन करन की यहाँ आवश्यकता नहीं पडी है ।

देवीभागवत पराण'

देवीभागवत पुराण म च्यवा और सुक् या की यह कथा बडे विस्तार से बणित है । सप्तम स्वर्ग के द्वितीय अध्याय से लेकर सप्तम अध्याय पयन्त तीन सौ बत्तीस श्लोक म इसका विस्तार है । यहा का कथाकार शीघ्रता म नहीं है । उसके श्रोता भी निश्चित होकर सुनने के लिए बडे हैं । कथा की प्रत्येक घटना का विवरण यहा दिया हुआ है ।

यहा की कथा की कुछ विशेष बातें निम्नलिखित हैं—

- १ जब सुक् या बल्मीक म लीन महर्षि च्यवन के चमकत हुए दा नया का देखकर—यह क्या है ? इस प्रकार के वीनुत्र के कारण तीक्ष्ण जाटा लेकर उनकी आग बढ़ती है तो च्यवन उसे मना करत है किंतु वह नहीं सुनती ।^१ नियति की विवगता—कटक श्रांखा म चुमत ही मुनि के नया से रक्त की घाग वह निकलती है । साथ ही पीटा भरी कराह भी मुन पडती है । वस्तुस्थिति का मान जान पर उम घटा पश्चानाप भी होता है ।

१ देवीभागवत पराण स्वर्ग ७ अ० २-७

२ ता वीग्य मुन्ता तत्र क्षामकठस्तपानिधि ।

तामभापत बल्याणा विमनदिनि भागव ॥

दूर गच्छ विशालादि तापनाद् वरान्त ।

मा भिन्स्वाद्य बल्माक कटकेन वृशोर्षि ॥

तन्द प्राभ्यमानादि ता चास्य न श्रणाति व ।

किमु मल्लिन्दियक्त्वा निविमन्स्य ताचने ॥

द्वयन पीरिता भित्वा जगाम नृपराजरा ।

श्रीकृती परमाना सा रि दृगु भवति ॥

- ३ राजा के नामों चरना शक्ति पर मया के लिए मुक्तिया का सा का प्रस्ताव करता है तो राजा नितातुर हा जाता है और कथा के पौराणिक विचार का हृदय भाग निर्याय पर पहुँचना है कि इसका जो भी परिणाम होगा वह मया । किन्तु मुक्ति कथा का वृद्ध और शक्ति का न । सा । प्रस्ताव और गोम का सम्बन्ध और उगत परिणाम का विचार भा उगत चरना का सा का मया सा है—

यौवनं दुजय कामो विवेचनं मुक्तयया ।
 धात्मतुल्यं पतिं प्राप्य विमुक्तं विवेचनम् ॥
 गौतमं तापसं प्राप्य शयं यौवनामयुता ।
 धृष्ट्या यासवनां नृपं यमितां धर्मयणिनी ॥
 गन्तां च पतिं यथाज्ञात्वा धम विषययम् ।
 तस्माद् भवतु मे दुःखं न बढामि मुक्तययाम् ॥

—श्रीभागवत १०. ७. २. २२

परंतु मुक्तिया महर्षि की पत्नी बनकर उतना मया करने के लिए धारा धारणा प्रस्तुत कर देती है । उसका स्थिर स्थिति के धारा राजा का धारणा विचार बनना पता है और उपर मुनि मुक्तिया के साथ राजा की धार म स्थिति जान यात किमी भी धार उगत का स्वीकार नहीं करते हैं—

प्रतिगह्य मुनि कथा प्रसन्नो भागवो भवत् ।
 पारिवह न जघाह दीयमान नपेण ह ॥

—श्री भा० ७. २. ५२

प्रागे की कथा जहाँ-तहाँ सामान्य अन्तर के साथ बनी ही है । जमी कि पक्ष पुराण म है । अन्तर बणन का है । यहा के बणन नये युग हैं । मुक्तिया धारने तप और गीत के प्रभाव के अश्विनीकुमारा की प्रस्ताव करके धर्मभाव की भी सम्भव बनाकर लिखा गती है ।

विवेचन

उपयुक्त बर्दि एव बर्दिकोत्तर साहित्य म च्यवन और मुक्तिया की कथा के विवेचन से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि यह कथा बहुत प्राचीन युग से चली आ रही है । बर्दि साहित्य म सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद संहिता है । इसम च्यवन के विविध उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि जिन मन्त्रों म च्यवन का उल्लेख हुआ है उन सब मन्त्रों से सम्बद्ध ऋषि च्यवन की कथा से परिचित थे । ऋग्वेद संहिता के मन्त्रद्रष्टा ऋषिया म भागव च्यवन का भी नाम है । बहुत सम्भव है य भागव च्यवन ही आलोच्य कथा के नायक रहे हा । यदि ऐसा न भी हो तो भी यह तो निश्चित है कि उस युग के जनसमाज म च्यवन के पुनर्जीवन प्राप्ति की कथा प्रसिद्ध थी ।

ऋग्वेद संहिता के पश्चात् यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण^१, एवं सामवेद के जमिनीय ब्राह्मण^२ में च्यवन और मुक्या की कथा का पूरा विवरण मिलता है। अंतर केवल इतना ही है, कि यहा मुक्या के पिता का नाम गयान पाया जाना है। ऋग्वेद संहिता में भी एक शयान का उल्लेख है।^३ किंतु यह कहना कठिन है कि यह शयान और उपयुक्त ब्राह्मणों की कथा का शयान, दोना एव ही हैं या भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं परंतु उक्त ब्राह्मणों का शर्थात् मानव शयात है, अर्थात् मनु का पुत्र या गानीय। सम्भव है ऋग्वेद संहिता का उक्त शर्थात् भी मानव ही रहा हो।

१ ऋग्वेद के एतरेय ब्राह्मण^४ में यह कथा तो नहीं है किंतु इसका संकेत अवश्य मिलता है। वसे, मायणाचाय ने सम्बद्ध स्थल क अपने भाष्य में कथा क उस रूप को भी स्पष्ट कर दिया है। इसक पश्चात् निरक्त और नीति भजरी के विवरणों से भी कथा की प्राचीनता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

उत्तरवर्तिक युग क साहित्य, महाभारत तथा बहूत स पुराणों में कथा की सुव्यवस्थित एवं अविच्छिन्न परम्परा मिलता है। स्पष्टतः उस परम्परा की पृष्ठभूमि में वैदिक साहित्य को ही स्वीकार करना होगा। पूर्व वैदिक या वर्तिक युग की आर्याण परम्परा को अविनाश में पुराणों में सुरक्षित रखा है। यह बात और है कि समय के साथ उसके मूल रूप में परिवर्तन हुआ गया है।

च्यवन और मुक्या की कथा अति प्राचीन है। इन तीनों नाटकों के लखना न अपने अपने नाटकों की कथावस्तु का आधार दहीभागवत और पद्म पुराण में वर्णित कथा को बनाया है। दहीभागवत और पद्म पुराण की कथा में थोड़ा ही अंतर है। पद्म पुराण की अपेक्षा दहीभागवत की कथा का विस्तार अधिक है। इन पुराणों में वर्णित कथाओं को नाटककारों ने उसी रूप में नहीं गहात किया है नाटकीय परिस्थिति क अनुसार उसके रूप को अनुकूल रूप देकर, युग क अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया है।

सगर-विजय

सगर विजय नाटक हिन्दी क यगन्धा कवि एवं नाटककार श्री उदयगकर भट्ट की रचना है। भारतीय पुराण साहित्य के सूयवगा राजाओं में सम्राट सगर का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा है। इस सगर विजय नाटक की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

- १ शतपथ ब्राह्मण ४ १ ५ ६
- २ जमिनीय ब्राह्मण १२० १२३
- ३ ऋग्वेद १ ११२ १७
- ४ एतरेय ब्राह्मण ८ २१

वस, नाटक सगर विजय दत्तनी ही कथा के साथ समाप्त हो जाता है। पौराणिक साहित्य में सगर, जिन कार्यों के लिए विशेष प्रसिद्ध है उनका विवरण कथा के आगे के भाग में मिलता है। सम्राट सगर के अवधमेध की कथा के साथ ही इस पृथ्वी पर गंगा के अवतरण की कथा भी जुड़ी हुई है। यद्यपि, इनमें सगर का साक्षात् सम्बन्ध नहीं है तथापि उसके उत्तराधिकारियों के तप और अविरत अयवमाय की कथा भी सगर की कथा के सूत्र में ही जुड़ गयी है। यह भारत के अनीत की निश्चित ही एक अति महत्त्वपूर्ण घटना रही होगी जिसका विवरण केवल पौराणिक साहित्य में ही उपलब्ध होता है।

आधार

सगर विजय नाटक सम्राट सगर की कथा के जिस अंश पर आधारित है वह लघु हाते हुए भी अति महत्त्वपूर्ण है। पुराणा के विवरणों से इसा प्रतीत होता है कि सगर के जन्म में पूर्व का समय कुछ ऐसा था कि जिसमें सूर्यवशी राजाग्रा का प्रताप मूल कुछ मंद पड़ गया था। हैहय राजाग्रा के अतिरिक्त कुछ और भी राजा थे जिन्होंने या तो हैहया के साथ मिलकर या स्वतंत्र रूप से सूर्यवशी राजाग्रा का विरोध किया था। इन राजाग्रा का उल्लेख सगर की दिग्विजय के प्रसंग में, इस नाटक में भी है और कई पुराणों में भी मिलता है।

सगर विजय का कथावस्तु सगर की कथा के जिस भाग पर आधारित है उसका उल्लेख एवं विवरण विष्णुपुराण^१, हरिवंश पुराण^२, भागवत^३, ब्रह्मपुराण^४, ब्रह्माण्ड पुराण^५, पद्म पुराण^६ एवं विष्णुधर्मोत्तर पुराण^७ में मिलता है। विष्णु पुराण में यह कथानक मूल रूप में प्रसिद्ध राजा माधवाना की सन्तति और वंश के वर्णन प्रसंग में आया है। कथानक का रूप अति सभ्य है। वह इस प्रकार है—

विष्णु पुराण

हरिश्चन्द्र ने रोहिताश्व रोहिताश्व से हरित, हरित से चतु चतु स विजय, विजय से रुद्र रुद्र से वृक, वृक से बाहु नाम का पुत्र हुआ। यह हैहय और तालजघ आदि क्षत्रिया से परास्त अपनी गमवती पटरानी महिषी के साथ वन में चला गया। रानी की भयवती ने उसके गम का रोक्न के लिए उसे विप दे लिया। उस विप के प्रभाव से गम

१ विष्णुपुराण अंश ४ अ० ३

२ हरिवंशपुराण अ० १४ १५

३ भागवत, स्कन्ध ६ ८ २६

४ ब्रह्मपुराण अ० ८ ३३ ५१

५ ब्रह्माण्डपुराण म भा उपा० भा० अ० ४७ ७४ ८८

६ पद्मपुराण (वन) पर्व ५ अंश ७४ ६५ प० ७२ गानपाठ वाराणसी

७ विष्णुधर्मोत्तर पुराण अ १७ ७ १७

८ बाहु से पूर्व के राजाग्रा का उल्लेख, अम का विसा प्रसिद्ध राजा के साथ जन्म के लिए ही किया गया है।

राज्ञी का बन्दी बनाना या मार म्मन का प्रयत्न किया हा या उमके मनिन बाहु स मिल गय हा ।

बाहु की दूसरी राज्ञी बहि द्वारा अपनी गभवनी सपनी का, गम क रतम्भन क उद्देश्य स विष दन का ता उत्तेग है, किन्तु बाहु के मर जान पत्र मां, उसके पुत्र सगर का ही मवथा नष्ट करन के उमके किसी प्रयत्न का निर्देग मूत्र ग्राम्यान म नही है । सीतिया डाह के उग्र रूप का चित्रित करन के निए ही नाटककार न इमका विस्तार किया है ।

राजा बाहु के मरन क उपरान्त पुराण क ग्राम्यान क अनुमार सगर का जम, पानन पालन तथा शिक्षा-शिक्षा मत्र-बुछ महर्षि श्रीव क आश्रम म ही होनी ह । पूण रूप म गिभित तथा वयस्व हाकर वह वहा स निरन्तर अपन दायित्व का निवाह करता है परन्तु सगर विजय नाटक म, नाटककार न मगर का जम ता आन क आश्रम म ही लिखाया है किन्तु इमके पदचान कुछ वर्षों तर गिगु सगर का पानन वमिष्ठ का पत्नी ग्राम्यती न किया है । उमकी राजकुमाराचित शिक्षा शैक्षा कहा हइ इसका वादे उत्रय नही है । अयाया की प्रजा बुदम क दूर गामन के विरुद्ध विद्राह करती है और इम विद्रोह का मतत्व स्वय महर्षि वसिष्ठ करन है । इमका भी मूल ग्राम्यान म उत्रय नही है । इम प्रकार नाटककार न इसम मून घटनाआ का पदचान तथा युग का भावना क अनुसूप नयी नयी उद्भावनाआ का सजन यत्र-नत्र बहुत किया है ।

हरिवंश पुराण

हरिवंश पुराण म सगर क ग्राम्यान का यह भाग, कुछ वाता का छाडकर प्राय विष्णु पुराण क ग्राम्यान म मिनता है ।^१ इमकी कुछ विषय बाणें य ह—

१—यहाँ कहा गया ह कि अयाया का राजा बाहु वमयुग म अनि धार्मिक नही था, इसी निए हृदय आदि राजाआ क आक्रमण म उसकी पराजय हुई—

शक्यवन-काम्बोज पारद पल्लव सह ।

हैहयास्तालजघाञ्च निरस्पर्ति स्म त नयम ।

नारयण धार्मिकस्तान स हि धमयुगेऽभवत् ॥^२

आग इम पराजय का एक कारण यह भी बताया गया है कि राजा बाहु व्यसनी था । व्यसन म लिप्त रहन के कारण ही सम्भवत वह राज्य के सगठन पर ठीक प्रकार स ध्यान नही दे सका—

बाहोव्यसनिनस्तात् हृत राज्यममूत किल ।

हैहय तालजघञ्च शक साध विशाम्पते ॥^३

इमक माथ ही यका पारद, काम्बोज पल्लव और राम—इन पात्र गणा न भी हृदय राजाआ का साथ लिया है—

१ हरिवंश पुराण अ० १३ १४ व ५ भीतात्र म गोरखपुर ।

२ वही अ० १३ श्लोक १० ३१ प० ५०

३ हरिवंश पुराण अ० १४ ३

ययता पारदात्तय काम्योज्ञा पद्मवा गता ।

एत ह्यपि गता पय हृत्पाथ पराक्रमता ॥^१

२—इस आख्यान में राजा बाहु की राजा मगर का भाग का नाम बताया गया है। सम्भवतः यह पुरुवर्ग की कथा रही होगी—

पत्नी तु यादयो तस्य सगर्भा वृष्टजोन्वगतः^३

भागवत पुराण

भागवत पुराण^३ में मगर के आख्यान का यह रूप प्रतिपादित है। यहाँ यह आख्यान बसल छ श्लोकों में है। यहाँ के अन्त में यह आख्यान में बाहु का नाम बताया गया है। अन्त में कहा है कि महर्षि श्रौत की अन्त में बताया है पराक्रमी कि राजा मगधका है। उगता गतना न उम भोजन के साथ विष के अन्त में बताया किन्तु वातन मगध नहीं।

ब्रह्म पुराण

ब्रह्म पुराण^४ में मगर के आख्यान का यह रूप हरिवंश के आख्यान के रूप में मगध में ही है। अन्त में मगध के अन्त में कहा है कि मगर द्वारा मगध कि अन्त में राजाधा का नामावलि में यहाँ कुछ नाम और उक्त रूप है—

गता ययता काम्योज्ञा पारदात्त विजोतमा ।

कोणिसर्पा भाट्टियका दर्शान्विता सखरसा ॥^५

यह अविशय है मुख्य कथा के साथ मगध का अन्त में मगध नहीं है।

ब्रह्माण्ड पुराण

ब्रह्माण्ड पुराण में मगवान् पद्मपुराण के चरित्र का वर्णन बड़े विस्तार में किया गया है।^६ इसी प्रसंग में सब विजयी अन्त में विजयी राजा वानधीय के साथ उनका युद्ध एवं उसके सहार का भी विवरण वर्णन है। वानधीय के वंशज न ही मगधका के राजा बाहु को परास्त किया था। यह पराजय भाँ पीरगणित युग के इतिहास का एक अन्त में महत्त्वपूर्ण घटना बन गयी है। क्योंकि इस घटना के पश्चात् ही राजनीति जगत् में मगर के उदय के साथ एक नये युग का आरम्भ होता है अन्त में आगामी युग की भूमिका के रूप में इस घटना को भी पुराणों में महत्त्व मिल गया है। ब्रह्माण्ड पुराण में मगर के चरित्र का भी बड़ा विस्तार है।^७ इसी प्रसंग में उसका नाम की भी कथा है।

१ हरिवंशपुराण अ० १४ ४

२ वही अ० १४ ६

३ भागवत पुराण अ० ६ अ० ८ श्लोक २६

४ ब्रह्म पुराण अ० ८, श्लोक ३ ५१

५ ब्रह्म पुराण अ० ८ श्लोक ५०

६ ब्रह्माण्ड पुराण अ० ११ अ० २१ ४७

७ ब्रह्माण्ड पुराण अ० ११ अ० ४८ ५६

यहा बताया गया है, कि सम्राट् कातवीय का पंचम पुत्र जयव्रज था। उमका पुत्र तालजघ था। इन तालजघ व मौ पुत्र थे, व समा सामाय रूप से तालजघ ही कह जात थे। उनमें सबसे बड़ा वीनिहात्र था। भगवान् परगुराम न कातवीय का मारन के बाद उसकी सन्तति का भी या ता मार डाला था या वह हिमालय की आर भाग गयी थी। वीनिहोत्र न किसी प्रकार अपने पिता तालजघ की रक्षा की। क्षत्रिय हूया स विरत हाकर एव समस्त पथ्वी काश्यप का दत्त परगुराम व तप करन व निए हिमानय पर चन जान पर तालजघ न पुन अपने ध्वम्न राज्य का उद्धार किया। क्षीणशक्ति बाहु तालजघ व आक्रमण का प्रतिरोध नहीं कर सका। वह अपनी गभवती रानी व साथ वन में भाग गया और बाद का वहीं मर गया।

राजा के मरन व उपरांत चन्द्रवर्ती के नश्वणा न समवित्त सगर का जन्म और पालन पोषण तथा गिप्ता गीप्ता महर्षि और के आश्रम में ही सम्पन्न हानी है। इसके पश्चात् ब्रह्माण्ड पुराण में सगर के त्रिभुजय का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें हैहयवर्गीय तालजघ एव उमका महायक राजाघा व सहार का विवाद विवरण है।^१ सगर विजय नाटक में, सगर की दिग्विजय व प्रमग में सगर द्वारा परास्त जिन राजाघा व नामा का उल्लेख हुआ है, यहा विस्तार में प्रत्येक राजा की पराजय और उसके साथ सगर के व्यवहार का वर्णन प्राप्त होता है।

पद्म पुराण (जन्म)

आचार्य रविषेण भूरि व जन्म पद्म पुराण में भी अथाध्या व एन चन्द्रवर्ती राजा सगर की कथा का वर्णन है।^२ परन्तु यहा की कथा का साम्प्रदायिक स्वरूप प्रदान करन व निए परिवर्तित कर दिया गया है। प्राय एसा होता आया है कि एक ही मूल कथा भिन्न भिन्न सम्प्रदाया के आचार्यों के हाथों में पडकर तन-तन सम्प्रदाय के अनुरूप रूप प्राप्त कर लेनी है। वनिक युग अथवा उसके उत्तर युग व अनेक आश्रयान पश्चात् युग में लिखे गये जन और बौद्ध साहित्य में एक भिन्न ही रूप से दखने में आत है। सगर के आश्रयान के साथ ही यहा बात जन्म पद्म पुराण में देखन का भिन्नती है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण

विष्णुधर्मोत्तर पुराण का आश्रयान भी विस्तृत नहीं है।^३ इसका रूप में सामाय-मा अन्तर है। सगर व पिता बाहु का यहा बहुत यत्नना बताया गया है। वह मरिचा, स्त्री, मृगया एव द्यूत व व्यसनना में आसक्त था। इन व्यसनना में आसक्ति व कारण ही शत्रुघ्नान आनमण किया और इन से उसके राज्य का अपहरण कर लिया।^४

१ ब्रह्माण्ड पुराण उ पा अ ६० १२ ४६

२ जन्म पद्म पुराण पत्र ५ अ ७८ ६५ पृ० ७२ नागराज संस्करण

विष्णु धर्मोत्तर पुराण प्रथम अंश अ १७ पृ० ७ १७ अक्टूबर ६५

४ विष्णु धर्मोत्तर पुराण, अ० अ०, अ० १७ ८ ६

यहाँ के ग्राम्याण की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि राजा की गभिणी रानी न बन का जात हुए राजा का अनुसरण किया। उसकी मगनी न उन पुत्र ही दिए द दिया था। बन म जाकर रानी न सगर का ज म किया। पुत्र उ तन हाता व परधान बन म राजा की मृत्यु हो गयी। धर्मप्रिय रानी उसके माथ ही मनी हा गयी। गिणु सगर व समस्त सस्कार महर्षि च्यवन न कराये और उस गम्भ विद्या म धनि निगुण बना दिया। युवावस्था प्राप्त हान पर च्यवन की कृपा स अकन एव पदन सगर न हैहय और तालजघा का विनाग कर दिया। इसके पश्चात ग्रयाण्या म जाकर उसन निगुणटा राज्य किया।^१

अन्तर

अथ पुराणा म जहाँ कही भा सगर व इस ग्राम्याण भाग व, बगन ग्रया है मन्त्र ही मगर का जम राज। गहु व मरा व उरगत बनाया है। मर्षि और द्वारा पनि व साथ सनी हो रही रानी का, गभवनी हान व कारण वजिन करन का उन्ध भा प्राय सभी ग्रारयाना म प्राप्त हाना है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण का हा एक गमा ग्राम्याण है जिमम सगर का जम पिता व जावन वान म बनाया है तथा जनापरान राजा की मृत्यु व माथ रानी का सती हाना भी। म्भ अतिरिक्त इस ग्राम्याण म रानी का पनि व साथ मरन स रोहन बाल एव सगर का गिणा दन वान महर्षि और का बाद उन्ध नही है। और व स्थान पर यहा च्यवन का नाम है। यहा मगर पन् तनवार बांधे अरता ही हैहय और तालजघा का सहार करता है। यह भा इनी ग्राम्याण की विशेषता है। इस प्रकार स विष्णु धर्मोत्तर पुराण का ग्राम्याण अथ ग्राम्याणा एव नाटक की कथा स सर्वाधिक अग म भिन है।

रामायण एव महाभारत

बाल्मीकीय रामायण म राजा सगर की कथा विस्तार मे कही गयी है।^२ किन्तु इसम सगर की कथा का वह भाग नहीं आता जिम पर उन्धशकर भट्ट का यह सगर विजय नाटक आधारित है। रामायण म सगर की कथा जहाँ से आरम्भ हाती है नाटक की कथा वस्तु की आधारभूत कथा उससे पूव ही समाप्त हा जाती है। इस सगर विजय नाटक की कथा सगर व ज म से पूव उसके पिता बाहु की हैहयवर्गीय राजा दुदम द्वारा पराजय स आरम्भ होनी है जबकि वह अपनी गभवनी रानी विशाला री के साथ अयोया छोडकर बन की और भाग जाना है और बुमार सगर व दिग्विजय करके लौटन पर समाप्त हो जाती है। रामायण का कथा का आरम्भ सगर व सम्राट बनने के कुछ समय के पश्चात—

अयोध्याधिपतिर्वरं पूवमासीत नराधिप ।

सगरौ नाम धर्मात्मा प्रजाकाम स चाप्रज ॥^३

१ विष्णुधर्मोत्तर पुराण प्र ध अ १० १ १०

२ बाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड सर्ग ३० ५१

३ रामायण बालकाण्ड सर्ग ० श्लोक २

उन शब्दा में होता है। गर्जसिंहामन पर बछन के कुछ वर्षों के पश्चात् ही, सम्भवतः अपनी आयु को कुछ दहत नन्दनर मगर को मत्तति का अभाव बना हागा और उस अभाव का दूर करने के लिए विद्वान पुराहिता के निर्दिष्ट भाग का अनुमरण किया हागा क्याकि आख्यान के आगे के विवरण में सतान प्राप्ति के प्रयत्न का ही चित्रण है। सतान प्राप्ति के अनन्तर अश्वमेध यज्ञ और उसके पश्चात् भूमि पर गंगा जान के प्रयत्न की एक विस्तृत कथा है। सगर विजय की कथावस्तु मगर के और उसके पिता क जिम वृत्त से सम्बद्ध है, रामायण में उसे सवथा छान दिया गया है।

महाभारत में मगर की जा कथा आती है^१ उसनी भी यही स्थिति है। यहाँ की कथा भी सगर के राजा बनने के उपरान्त आरम्भ हाती है कथा क पूर भाग का चित्रण नहीं है। बवन शांतिपर्व में एक स्थल पर, सगर का बाहु के पुत्र के रूप में उल्लेखमात्र हुआ है।^२

विवेचन

मट्टजी की मिद्ध लेखनी से प्रसूत यह एक परिमार्जित एक सुन्दर रचना है। यह उस युग की रचना है जब भारत में राष्ट्रीय जागरण का आन्दोलन अपने जीवन पर था। फलतः प्रस्तुत नाटक युग की भावना में पूर्णतया प्रमार्जित है। दगावासिया में राष्ट्रीय भावना को जागत तथा उद्दीप्त करने की क्षमता इसमें भरपूर है।

जसा कि स्पष्ट है इस मगर विजय नाटक में मट्टजी ने मगर की सम्पूर्ण कथा को न लकर उसके आरम्भिक भाग का ही लिया है। इसमें राजनिलय के पूर्व तक की कथा को ही आधार बनाया गया है। पुराण साहित्य में सगर के सम्राट बनने के पश्चात् की कथा का जितना अल्प विस्तार है उतना पूर्व की कथा का नहीं है। जहाँ कही यह पूर्व भाग की कथा मिलती है वहाँ इसका रूप मरिप्त ही है। सम्भवतः इसीलिए नाटककार को अपने नाटक की कथावस्तु का आधार मगर की कथा का बनाते हुए अपनी कल्पनाशक्ति का प्रयोग अधिक करना पडा है। सम्पूर्ण नाटक में छापी भी कथा का प्रसार के लिए यह आवश्यक भी था।

जा कुछ भी हो मट्टजी ने युग की भावना का रंग देने हुए इस छोटे से आख्यान का पूर पल्लवन दिया है। बाहु सगर, बसिष्ठ अर्घती श्रीव—इन पात्रों का छाडकर गोप क या ता नाम प्रयोग हुए हैं या सवथा काल्पनिक हैं। नाटक की भाषा गली ता परिमार्जित है ही इसका सवाय विशेष रूप से प्रभावापात्रक है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कथा का माधारण रूप प्रस्तुत नाटक में खूब निखरकर आया है।

१ महाभारत वनपर्व अ० १०६१७

२ महाभारत शांतिपर्व अ ५७ श्लोक ८

कथा इस नाटक का आधार है किन्तु पुगणा में विभिन्न स्थानों पर इसका विभिन्न रूप मिलता है जो निम्नलिखित हैं—

माकण्डेय पुराण

माकण्डेय पुराण^१ में कथा उस स्थान में प्रारम्भ होती है जब महिषासुर के उपद्रवों में समस्त स्वर्ग में त्राहि त्राहि मची हुई थी। देवताओं का जीवन भर महिषासुर स्वयं इन्द्र बन बसा था। देवताओं ने अपनी विपत्ति का वणन विष्णु के सम्मुख जाकर किया तो विष्णु प्रति क्रुद्ध हुए। उनके साथ ही शम्भु तथा सूर्य चन्द्र इत्यादि अथ्य ऋषयों भी क्रोध में लाल हो गये। तब उन सबके तब स एक नागी का जन्म हुआ। इसी स्त्री के द्वारा महिषासुर का अन्त हुआ।

महिषासुर का श्वेताश्वी से युद्ध चिंतु मनापति द्वारा सहायता देवी के द्वारा महिषासुर का वध इत्यादि प्रथम माकण्डेय पुराण में है किन्तु अन्य घटनाएँ यथा महिषासुर के द्वारा श्रद्धा का आराधना तथा वर याचना इत्यादि का कोई उल्लेख नहीं है।

इन्द्र की रक्षा के लिए यहाँ बहस्पति तथा काश्याप भी परस्पर परामर्श करते नतीक्षित पड़ते। देवी-जन्म के उपरान्त यहाँ युद्ध वणन ही प्रमुख है।

वामन पुराण

वामन पुराण में महिषासुर की उत्पत्ति का विवरण है। इस कथा का रूप बड़ा इस प्रकार है—

महिषासुर रम्भासुर का पुत्र था। रम्भासुर और करम्भासुर दोनों भाद थे। अपुत्र होने का स्थिति में दोनों ने भयंकर तप किया। करम्भ जल में तप कर रहा था और रम्भासुर पंचाग्नि तप रहा था। इन्द्र ने ग्राह उनका करम्भ का पर त्वांच लिया। करम्भ की मृत्यु के उपरान्त तब विह्वल हो रम्भ ने अपनी मदन वाटनी चाही किन्तु अग्नि देवता के गहन से वह रुन गया। दमन अग्नि में भी अधिक् प्रचण्ड तजवान पुत्र प्राप्ति का वर मागा किमका अग्नि ने दना स्वीकार कर लिया। किन्तु इस पुत्र की उत्पत्ति माना महिषा के पति के साथ चिन्ता में जनन पर हुई—

ततो निमध्यादुत्तस्यौ पुरुषो रौद्र दशन ॥^३

नाटक में महिषासुर की माता महिषी पति के साथ जनन की इच्छा प्रकट करती है, किन्तु मन्त्री द्वारा रोक ली जाती है। कुछ समय उपरान्त वह महिषासुर को जन्म देती है। महिषासुर के देवी के साथ भयंकर युद्ध का विवरण भी वामन पुराण में प्राप्त है।

नाटक की रूप घटनाएँ वामन पुगणा में नहीं मिलती।

१ माकण्डेय पुराण अध्याय ८३ प १ ३

२ वामन पुराण अध्याय २

३ वामन पुराण अध्याय १७, श्लोक ६६

देवीभागवत पुराण

देवीभागवत पुराण^१ में महिषासुर की कथा अति विस्तार में वर्णित है। महिषासुर की उत्पत्ति यहाँ भी महिषी के चिंता में प्रवेश करने के उपरान्त अग्नि से होती है—

वायमानाऽपि यज्ञ सा प्राधिवेन हृताग्नम ।

ज्वालमालाकुल साध्वा पतिमादाय घत्तभम ॥

महिषस्तु क्षितामध्यात्समुत्तास्थी महाबल ।

रभोप्ययद्वपु कृत्वा निमृत पुत्रवत्सल ॥^२

महिषासुर के वध की कथा का रूप भी यहाँ नाटक की कथा से भिन्न है। यहाँ महिषासुर का वध देवी के त्रिशूल से न होकर चन्द्र (रघोद्गनेन) के द्वारा होता है—

इत्युक्त्वा दारुण चन्द्रमुमुक्षु जगदम्बिका । गिरशिक्षितं रघोर्गतेन दानवस्य तदा रणे ।^३
नाटक की कथा के समान देवताओं के गुरु ब्रह्मपति यहाँ इन्द्र व परामर्शदाता हैं ।

वाराह पुराण

वाराह पुराण^४ में महिषासुर की उत्पत्ति का विवरण नाटक तथा अन्य पुराणों से एकत्र भिन्न है।

एक दिन माहिष्मती दत्तपुत्री अपनी सखियों के साथ मन्दराचल की घाटी में विचरण कर रही थी। वहाँ एक महा तजस्वी मुनि तपस्या कर रहे थे। महिषी रूप बदलन की कला में पारंगत थी। अतः उमन रूप परिवर्तित कर मुनि को डराया और इस हेतु उसने महिषी का रूप धारण कर लिया। मुनि ने अपने योगबल से सब कुछ जान लिया और कथा की आप लिया कि तुमने मुझे जिस रूप से डराने का प्रयत्न किया है तुम नहीं हो जाओगी। महिषी बनने के भय से माहिष्मती मुनि के चरणा पर गिर पड़ी और तब कष्टनाद हो मुनि ने अपने आप का रूप परिवर्तित कर लिया कहा—

अनेनैव स्वल्पेण पुत्रमेक प्रसूय वे ।

ज्ञाया तो भविता भद्रे मदवाक्ये न मृषा भवत ॥^५

ऐस प्रकार आपमुक्त होकर माहिष्मती नमत्वा के तट पर पहुँची जहाँ सिंधु द्वीप नाम के एक महातपस्वी तपस्या कर रहे थे। वहाँ एक अन्य सुरा कथा इन्दुमती नाम की थी। मुनि जल में उस विवस्त्र दम्बर स्वयं का वगम न रख सका। इन्हीं के द्वारा महिषासुर की उत्पत्ति हुई।

देवी के साथ महिषासुर का युद्ध भी यहाँ एक विचित्र ढंग से होता है —

१ देवीभागवत पुराण (पश्चिम पन्नाकाव्य काशी) सन् १९५६ पृष्ठ २०० पृ २१०

२ देवीभागवत पुराण पृष्ठ २१५ पृ २ पृष्ठ ५६ ५७

३ देवीभागवत पुराण पृष्ठ २०५ पृ २ पृष्ठ ६५

४ वाराह पुराण अध्याय ९५ श्लोक १७ ७२

५ वाराह पुराण अध्याय ९५ श्लोक १६

। महिषासुर देवी के पास विवाह का सन्देश भेजता है किन्तु देवी स्वीकार नहीं करती और अपनी सेना को लेकर महिषासुर के साथ दश सहस्र वर्ष पयत्त युद्ध करती रहती है और अन्ततः देवी के त्रिशूल से ही महिषासुर की मृत्यु होती है—

पदम्यामाक्रम्य शूलेन त्रिहतो दत्य नायक ।

शिरदिचच्छेद खडगेन तत्र चात स्थित पुमान् ॥^१

नाटक की शेष घटनाएँ यहाँ भी वर्णित नहीं हैं ।

पदमपुराण

पद्मपुराण^२ में महिषासुर की जो कथा आई है, उसका स्वरूप बहुत कुछ वाराहपुराण के ही सदृश है—

। नारद द्वारा देवी के अनुलित सौंदर्य का वर्णन सुनकर, महिषासुर उसकी प्राप्ति के लिए लालायित हो उठा । अपने आठों मंत्रियों से उसने इस सम्बन्ध में मन्त्रणा की । प्रथम नाम वाल मन्त्री ने कहा कि 'उस देवी का निर्माण देवताओं के कर्मों के लिए किया गया है । वह परमशक्ति, तजस्विनी, लोकधारिणी तथा महासती है अतएव तुम्हें उसकी प्राप्ति की कामना भूलकर भी नहीं करनी चाहिए' किन्तु विषस नाम के मन्त्री का मत था कि देवी के पास दूत का भजकर स्वयं देवताओं पर आक्रमण करना उचित है जिससे देवी प्रभावित होकर महिषासुर को ही (विजयी होकर इन्द्र बन जाने पर) करे ।

दूत विद्युत्प्रभ न देवी के पास जाकर महिषासुर की उत्पत्ति का विस्तृत विवरण देते हुए बताया उसका जन्म सिन्धु द्वीप महातपस्वी के शुक से हुआ है । महिष्मती उसकी माता है । यहाँ का विवरण ठीक वाराहपुराण के सदृश है । जिस कथा को विवस्त्र देखकर मुनि आश्चर्यचकित हुए थे केवल उसका नाम यहाँ विद्युमती है वाराहपुराण सदृश इन्द्रमती नहीं । अतः दूत ने देवी से इतना महान प्रभावशाली एक पराक्रमी दानवराज से विवाह कर लेने की प्रार्थना की किन्तु देवी यह सुनकर कुछ नहीं बोली केवल हँस दी । तब उसकी जया नाम की प्रतिहारिणी ने दूत से कहा 'यह असम्भव है ।'

उधर नारद ने देवी से महिषासुर के द्वारा देवा पर आक्रमण की चर्चा करके स्वयं युद्ध करने का आग्रह किया तब वह देवी धार रूप धारण कर महिषासुर के साथ विकराल युद्ध करने लगी ।^३

स्कन्द पुराण (ब्रह्मखण्ड)^४

महिषासुर की उत्पत्ति का स्कन्द पुराण में निम्न रूप है—

१ वाराहपुराण अध्याय ६५ श्लोक ५५-५६

२ पद्मपुराण (गुरुमण्डल कलकत्ता) स. २०१ १६५७ (सप्तखण्ड) अध्याय ३५

३ पद्मपुराण, (गुरुमण्डल कलकत्ता) स. २ १३ ६५ १६५७ (सप्तखण्ड) अ. २५ श्लोक १५५-१५६

४ स्कन्दपुराण (गु. मं. प्र.) (ब्रह्मखण्ड) स. २०१८ मंत्र १६६१ अ. ६

एक बार जब त्रिनि का सामना पुत्र मुनिगुरु मुद्ग से मान गद गा त्रिनि ने बताया पुत्रों का वहा रि, तुम एक एक पुत्र का विना तपस्या करो जो 'व्याप्या का तप कर तप ।' त्रिनि की पुत्री का भयंकर तप से प्रगन हुआ मुनिगुरु मुनि ने घर लिया कि 'मै तुम्हारी तपस्या से प्रगन हूँ तितु क्वाकि तुम इ महिष की धारिनि धारण करके तप किया है इय लिए तुम्हें महिष की धारिनि का ही एक अनुन बनानी पुत्र प्राप्ति शाना ।

यही पुत्र महिषागुरु कहलाया । अगुन का सामना इ तब महिषागुरु से प्रार्थना की कि विष्णु ने हमारी जिम धरती से हम बरिण कर लिया है उगना पुत्र प्राप्ति का तुम उपाय करो । महिषागुरु ने तब श्वाभा का साथ ही तप तपना मुद्ग किया जिमसे अगस्या गुर मारे गय ।

महिषागुरु का विना पराजय से दु गी हा श्वाभा ब्रह्मा और विष्णु का पाय गय और कहा कि महिषागुरु ने हम मरना धरती पर मरना श्वाभा पर अधिचार कर लिया है । यह मुनिक ब्रह्मा विष्णु चन्द्र, गूय सय श्वाभा प्रोध से भर गय और तब उनका तप से एक नारी की उत्पत्ति हुई जो दुमा बनायी । श्वाभा अगने अग से उद्भूत उग नारी की अगन भाभूषण तथा वस्त्र त्रिय ।

देवी सब भाभूषणा तथा वस्त्रा से सुमज्जित हाकर महिषागुरु से मुद्ग करने पहुँची । देवा न भी देवी का अनुपमन किया । इन प्रकार देवा का नाश से अगुन तथा महिषागुरु के साथ मयकर मुद्ग हुआ और तब देवी द्वारा ब्रह्म प्रयत्ना का उपरांत महिषागुरु का यय हुआ ।

स्कन्द पुराण (माहेश्वर खण्ड)

स्कन्द पुराण के माहेश्वर खण्ड में महिषागुरु के यय का यणन इस प्रकार है—

समस्त देवताया ने जब देवी से जानकर महिषागुरु के अत्याचारा का यणन किया तो देवी ने महिषागुरु का युक्तिपूर्वक मारने का निश्चय किया । देवताया के जाने पर उमने मोहिनी रूप धारण कर लिया और एक सुरम्य यन से बठकर तपस्या करने लगी । इस यन की रक्षा चार बटुक कर रहे थे । महिषागुरु का सगिण श्मी यन से मृगया हेतु आ पहुँच और बटुको से सुरमित यन को दम्नने के लिए प्रति उत्सुक हा उठ तितु बटुका ने प्रवेग पर प्रतिबध लगा लिया अतएव महिषागुरु का सगिण पतिया रा रूप धारण कर भीतर प्रवेग कर गय ।

तप धरती हुई उस मुद्गर बाता को देवतर के अत्यन्त विस्मित हुए और महिषागुरु को समीप पहुँचकर उहाने उस बाला के अनुपम सौन्दर्य का यणन किया । इस पर महिषा गुरु बृद्ध रूप धारण कर वही पहुँचा और उस बाला की तपस्या का कारण उमकी सतिया से पूछा । उहाने जब यह बताया कि इसकी तपस्या का उद्देश्य मुयाग्य कर प्राप्ति है तो महिषागुरु ने स्वयं को ही समर्पित कर दिया ।

देवी ने कहा कि 'मै बलवान् पति चाहती हूँ । तुम अपना गीय प्रदर्शित करो ।' देवी

ते दनीप्यमान स्वरूप को देखकर स्वयं भी महिषासुर ने अपना बड़ा विकट स्वरूप दिखलाया तो देवी को समस्त देवताओं ने अपने अपने अस्त्र तथा आभूषणों से युक्त कर दिया और देवी ने दुर्गा का भीषण रूप धारण कर लिया, जिस देखकर महिषासुर भयभीत होकर भाग गया।

अब देवी ने एक अथय युक्ति निकाली। उसने देवताओं के गुरु का वानर रूप प्रदान कर महिषासुर के पास सदेव ले जान के लिए कहा। सन्ध्या में देवी ने महिषासुर को अपना दुष्टता से विरत होने के लिए कहलाया जिसे सुनकर महिषासुर प्रति कुपित हुआ और अपनी सेना सहित चढ़ आया। देवी ने भी अपने प्रत्येक अंग से अपने गंगा का उत्पन्न किया, जिन्होंने महिषासुर के सत्र सनिका को मार डाला और अन्ततः देवी के द्वारा महिषासुर का वध किया गया।

स्कन्द पुराण (प्रभास खण्ड)

प्रभास खण्ड^१ में कथा का आरम्भ देवी की उत्पत्ति से होता है। यहाँ कथा का रूप भी अथय पुराणा की अपेक्षा थोड़ा भिन्न है—

ब्रह्मा ने एक अप्रतिम सौंदर्य से युक्त कथा का निमग्न किया। उस कथा ने धीरे धीरे प्रारम्भ किया। नारद ने जब उस कथा को देखा तो विस्मय विमुग्ध रह गया।

उन्होंने महिषासुर के पास जाकर कथा के अतुलित सौंदर्य का बयान किया। महिषासुर स्वयं कामातुर हा प्रभासस्थित उस कथा के पास पहुँचा और अपनी भार्या बनने की प्रार्थना की।^२ देवी यह सुनकर हँसी और उसकी श्वास से तब शस्त्रों को हाथों में थामे हुए भयानक स्त्रियाँ उत्पन्न हो गयीं। उनके द्वारा उस दुर्गम महिषासुर की सेना मारी गयी। तब देवी ने महिषासुर के मीमांसा को पकड़कर अपने त्रिशूल से उसका वध कर दिया।

इस प्रकार इन विभिन्न कथाओं में महिषासुर तथा देवी की जन्मोत्पत्ति तथा महिषासुर का वध ही प्रमुख है। इन्हीं कथाओं के आधार पर अपनी कल्पना का आवरण चढ़ाकर लखन ने इन नाटक का रचा है। नाटक की कथा में दानवी, कात्यायन इत्यादि पात्रों का समावेश, लेखक ने अपनी कल्पना में किया है। दानवी तथा असुर सनापति चि नुर का प्रणय इन्द्र की कुटिलता देवताओं का बर्ण होना इत्यादि सभी घटनाएँ कल्पित हैं। इन सब कथाओं में मुख्य तथ्य जो दृश्य है वह यह है कि महिषासुर की तपस्या के सम्बन्ध में वहाँ कोई संकेत नहीं मिलता। हाँ महिषासुर का शीघ्र अनुपमेय है, इसमें सब एक मत हैं।

विवेचन

उपयुक्त सभी ग्रंथों में महिषासुर का सबत्र एक पराक्रमी, किन्तु कामी अत्याचारी एवं अविश्वेकी असुर के रूप में ही चित्रित किया गया है। नाटककार ने इसके विपरीत अपनी दृष्टि में महिषासुर के चरित्र पर एक नूतन दृष्टि से विचार किया है।

वस्तुतः इस नाटक की कथा मूल कथा से इसी दृष्टि से भिन्न है कि असुरों के

१ स्कन्द पुराण (प्रभास खण्ड) अध्याय ८२

२ स्कन्द पुराण (प्रभास खण्ड) अध्याय ८२, श्लोक १५

प्रति अब तक चली आती हुई धारणा को समझ न सके जाने का प्रयास किया है और वह इसमें सफल हुआ है। अपनी जानि के गौरव एवं स्वाभिमान की रक्षा करने वाला व्यक्ति हीन माना भी नहीं जा सकता। समझ का समतल्य 'ग' शिवा में दर्शाया है—

‘बगाल में दुर्गा पूजा बहुत प्रसिद्ध है। मैंने जब जब यह पूजा की तो तब-तब यही भावना मेरे मस्तिष्क को उद्बोधित करती रही कि यह महिषासुर विनाश गतिगामी होगा जिसने देवी ग टक्कर ली।—मैंने अपने जीवन का अध्ययन किया। महिषासुर के सम्बंध में अनेक लेख व अनेक रचनाएँ पढ़ीं। इनमें महिषासुर को एक उद्धत असुर का रूप में ही चित्रित किया गया है। किन्तु मैंने अपने महिषासुर को दूसरे रूप में देखा। उपयुक्त ग्रंथों के महिषासुर से गतिपूजा का महिषासुर अपना अलग महत्त्व रखा है। अवश्य यह एक पौराणिक कथा है। हो सकता है आप यह कहें—आपका स्वतंत्रता का काम लेने का क्या अर्थ है? तो मैं इतना ही कहूँगा कि क्या को विद्वान् न कहें हुए किसी के चरित्र में कोई खूबी हो तो उस नई स्याही में चित्रित करने की स्वतंत्रता तो लेखक को होनी ही चाहिए। असुरों का प्रति घृणा की भावना बड़े प्रचारित है। किन्तु मैंने घृणा के स्थान पर सम्मान और श्रद्धा को ही प्राप्त किया है। मैंने अपने महिषासुर को एक महान् शक्तिशाली रूप में चित्रित किया। देवताओं की सप गति से भी वह टक्कर लेता है। उसकी बीरता देखकर भगवती दुर्गा भी दग रह जाती है।’

इस प्रकार का कथानक पौराणिक होत हुए भी प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से आधुनिक युग का बहूत समाप है। पुरानी असुरगत प्रतीत होने वाली मायतामा को ताड़ कर चलना ही आधुनिक युग का वाग्विषय है। लखन न भाव प्रतिपादन तथा गली प्रति पादन दोनों में नूतनता बरती है। अतएव कल्पना का प्रचुर अंग भी नाटक में विद्यमान है। नाटककार न अपनी कल्पना से न केवल नाटक को एक रोचक एवं मनोहारी रूप ही प्रदान किया है अपितु पुराण प्रसिद्ध बहूत में अमंगल प्रसंगा का रूप परिवर्तित करके रचना को अति लोकसंगत एवं स्वाभाविक बना दिया है।

संक्षेप में, परम्परा से चले आते हुए एक पौराणिक आख्यान को लेखक ने एक नूतन एवं बुद्धिसंगत रूप दिया है। विविध परिवर्तन तथा परिवर्धना के साथ नाटकीय विधा में प्रस्तुत इस पौराणिक कथा के सौंदर्य में इसने मूल रूप से निश्चित ही पर्याप्त वृद्धि हुई है।

नाटक अति रोचक एवं परिष्कृत है।

देवहूति

श्रीराजाराम शास्त्री का देवहूति^१ एक पौराणिक कथा पर आधारित लघु नाटक है। शास्त्रीजी ने इसे मुख्यतः रेडियो के लिए लिखा है। इसमें अब तक छह हैं किन्तु

१ नाटक का प्रारम्भिक संस्करण।

२ प्रकाशक सत्यहोत्री प्रकाशन जवाहरनगर दिल्ली १९५५

य दृश्य-स्थानीय से हैं। और इनका पृथक् दृश्या म विभाजन नहीं किया गया है। इस नाटक की संक्षिप्त कथा म प्रकार है—

देवर्षि नारद के कहने में मनु अपनी पुत्री देवहूति का विवाह कदम ऋषि से करना चाहत हैं। ऋषि की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए व अपना दूत आश्रम में भेजते हैं। इधर देवहूति ऋषि से अपने सम्बन्ध की बात जानकर अपना राजसी वेग त्यागकर आश्रम का-सा जीवन बिताने लगती है। देवहूति के इस प्रकार के जीवन से उसकी दोना मन्दिता बुभुक्षुप्रिया और चचना बहुत दुखी होती है और उसका निश्चय को बदलने का प्रयत्न करती है। उधर निवाण भाग में स्त्री बाधक है ऐसा कहकर कदम सम्प्रभ का अस्वीकार कर देते हैं। इससे देवहूति का प्रबल आघात लगता है। वह कदम के आश्रम में रहकर तप करने भर की स्वीकृति चाहती है। मनु का दूत पुन आश्रम में जाता है। उसे अनुमति मिल जाती है। देवहूति के पिता महाराज मनु और माता गतरूपा दोनों उसे ऋषि के आश्रम में छोड़ आते हैं।

देवहूति के सौंदर्य और व्यवहार से मुनि का मन विचरित हो जाता है। वे उम अपनी पत्नी बनाते हैं और गृहस्थ जीवन बिताने लगते हैं। नौ कन्याओं के पिता बनने के उपरान्त उन्हें पुन वराम्य उपान होना है और वे सबको छोड़कर तप करने के लिए चल देते हैं। कई दिन तक प्रयत्न करने पर भी उनके मन का जब शांति नहीं मिलती तो पुन देवहूति के पास लौट आते हैं और अपने कर्तव्य का पालन करते हैं।

आघात

देवहूति और महर्षि कदम की कथा श्रीमद्भागवतपुराण^१ में आयी है, परन्तु नाटककार ने इस मूल कथा में पर्याप्त अंतर कर दिया है। यहाँ कथावस्तु का जो रूप प्रस्तुत किया गया है वह निम्नलिखित है—

भागवत पुराण में देवहूति और कदम का प्रसंग दो स्थानों पर आया है—प्रथम तो द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय में भगवान् के लीलावतारों की कथा के प्रसंग में द्वितीय ब्रह्मा द्वारा विविध प्रकार की सृष्टि रचना के प्रसंग में तृतीय स्कन्ध के अध्याय चत्वीस से चौबीस तक।

प्रथम स्थान में ता केवल कन्या उत्पन्न हुआ है कि कदम के घर में देवहूति के गम में नौ कन्याओं के साथ भगवान् ने कपिल के रूप में जन्म लिया। ब्रह्मा की सृष्टि रचना के क्रम में कहा गया है कि ब्रह्माजी ने दूसरा शरीर धारण करके सृष्टि की रचना में मनायोग लिया क्योंकि वे दक्ष चुक चुके थे कि शक्तिशाली ऋषियों द्वारा भी सृष्टि का प्रसार विरोध नहीं हुआ। विचार करते-करते उनके शरीर के दा-भाग हुए। उन दोनों भागों में स्त्री और पुरुष का एक मिश्रण उत्पन्न हुआ। उनमें जो पुरुष था वह सावर्णीम सम्राट् स्वायम्भुव मनु हुए और जो स्त्री थी वह उनकी महारानी गतरूपा हुई। तब से मिश्रण धर्म में प्रजा की वृद्धि होने लगी। स्वायम्भुव मनु ने गतरूपा से पाच सन्तानें

उत्पन्न की। उनमें प्रियव्रत और उत्तानपाद का पुत्र और द्रव्यूति और प्रमूति तीन ब्याएँ थी। मनु ने बड़ी ब्या रचि को दी मध्यमा कदम का और प्रमूति दश को। इनकी सन्तति से समस्त जगत भर गया।

इस प्रकार से यह धोना मा विवरण आवश्यक हान से द्रव्यूति के जन्म के सम्बन्ध में लिया गया है। देवदूति के पिता सम्राट् स्वायम्भुव मनु और उसकी माता गतन्त्या प्रथम युगल माने गये हैं। इन्हीं से आर्य मथुना सष्टि का जन्म बना। इनमें पूर्व प्रजापति ब्रह्मा ने जो भी रचना की, वह धर्मधुनी ही थी। इसलिए सष्टि के जन्म में प्रथम मनु स्वायम्भुव का महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्वायम्भू-ब्रह्मा से उत्पन्न हान के यागण ही इनका नाम स्वायम्भुव पडा। इनकी तीनों ब्यायाएँ एव दाना पुत्रा का भी सष्टि के विनाम जन्म में प्रमुन स्थान माना गया है। इसीलिए भागवत में 'यत्त आपूर्गित जगत्' एगा कहा गया है।

जसा कि उपर कहा गया है स्वायम्भुव मनु की मध्यमा पुत्री का विवाह कदम ऋषि से हुआ। भागवत में महर्षि कदम का प्रजापति कन्म कहा गया है।^१

द्वितीय ब्रह्माजी के आत्मज्ञान से सन्तति उत्पन्न करने के लिए सरम्बनी नगी के विनार पर विदुसर तीथ में अनुरूप पत्नी प्राप्त करना के लिए बहुत वर्षों तक भगवान् विष्णु की आराधना की।^२ प्रजापति कदम की पत्नी प्राप्ति के लिए तीथ तपस्या से प्रगन्न होकर उन्हांन कहा—

जिसके लिए तुमने आत्मनयमानि से भगी आराधना की है तुम्हारे हृत्प के उस भाव को जानकर मैंने पृथ्वी से ही उसकी व्यवस्था कर दा है। प्रसिद्ध यास्वी सम्राट् स्वायम्भुव मनु ब्रह्मावर्ण में रहकर सात समुद्रा वाली समस्त पृथ्वी का शासन करने है। वे परम धर्म महाराज महारानी शारुपा के साथ तुममें मिलने के लिए परसा आएँगे। वे एक रूप-शौवन शील और गुणा से सम्पन्न पति को खोज करती हुई ब्या को तुम्हें देंगे। तुम्हीं उसके लिए अनुरूप हो। बहुत वर्षों से तुम्हारा चित्त जसी भार्या के लिए समाहित रहा है अब गीघ्र ही वह राजक्या तुम्हारी वसी ही पत्नी होकर यथच्छ सेवा करेगी। तुम्हारे अश से उसके गम से पहले नौ ब्याएँ हागी और अन्त में मैं भी तुम्हारी पत्नी द्रव्यूति के गम में कपिल रूप में अवतीर्ण होकर साख्यगास्त्र की रचना करूँगा।^३

विदुसर तीथ से जहा प्रजापति कदम तप कर रहे थे भगवान् के चने जाने पर वे निदिष्ट समय की प्रतीक्षा करत हुए विदु सरावर पर ही रहे। उधर मनु अपनी महारानी और पुत्री के साथ स्वर्णजडित रथ पर सवार हो, पृथ्वी पर विचरत हुए उसी दिन कदम मुनि के आश्रम पर पहुँचे। उन्हांन देखा कि मुनि कदम अग्निहोत्र से निवृत्त होकर बडे है। आतिथ्य-समापण के उपरांत महाराज मनु ने कहा कि 'यह मेरी ब्या द्रव्यूति प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहन है और अवस्था शीत गुण आत्नि में अपने योग्य पति को प्राप्त करना चाहती है। जबस इमने नारदजी के मुख से आपके शील विद्या रूप आयु और

१ भागवत पुराण २१ ३

२ भागवत पुराण ३ २१ ६

३ भागवतपुराण ३ २१ २१ ३२

गुणा का वर्णन सुना है, तभी से यह आपको अपना पति बनाने का निश्चय कर चुकी है।^१ मैं सुना है कि आप विवाह के लिए उद्यत हैं। मैं यह क्या आपको देता हूँ, आप स्वीकार करें।^२ इसके पदचान कदम ऋषि ने यह कहकर कि 'ठीक है, मैं विवाह करना चाहता हूँ और आपकी पुत्री भी भद्रता है, इसलिए हम दाता का ब्राह्म विधि से विवाह होना चाहिए।'^३ देवहूति को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया। इसके पदचान उनका नौ ब्यापें हुए और अतः म साम्यशास्त्र के कर्ता कपिल मुनि का जन्म हुआ। महर्षि कदम न ब्रह्मा के आदेश से अपनी सभी ब्याप्रा का विवाह करके अतः म सयास ग्रहण किया। कपिल न बड़े हावर अपन तत्वज्ञान के उपदेश में माता देवहूति का सासारिक बचन से मुक्त करके परमपत्नी की अधिनारिणी बना दिया।

भागवत पुराण म देवहूति और कदम का यह क्या बड़े विस्तार म वर्णित है। यहाँ उमका सन्निप्त रूप, तुलनात्मक दृष्टि से विवचना करन क उद्देश्य में लिया गया है। नाटककार न भागवत की मूलकथा म जा परिवर्तन किय ह उनम स कुछ इस प्रकार हैं—

सबप्रथम एव सबसे महत्वपूर्ण अंतर ता यही है, कि नाटककार ने नाटक के नायक महर्षि कदम के रूप को ही यहाँ भिन रूप म चित्रित किया है। आरम्भ म नाटककार न उह ब्रह्मलीन तपस्वी, ब्रह्मचारी एव मया विषयविरक्त मिद्ध के रूप म चित्रित किया है। व, सम्राट मनु के दूत को, जा कि देवहूति के साथ विवाह का प्रस्ताव लेकर उनके पास भेजा जाता है यह कहकर लौटा देत हैं कि स्त्री साधना भाग म विघ्न है, अतः व विवाह करना नहीं चाहत। परंतु मूलकथा म अनुरूप पत्नी की प्राप्ति के लिए ही तप करते दिवाये गय है। यहा वाञ्छित पत्नी प्राप्त करके सष्टि का विस्तार करना ही उनकी साधना का उद्देश्य बताया गया है। मुदीघ तपस्या के उपरांत जब देवहूति उनका प्राप्त होती है, ता उम व महर्ष पत्नी के रूप म स्वीकार करत हैं। विवाहापगत भागवत में उनके जिस गार्हस्थ्य का चित्रण है वह बड़े ही एदबय एव विभूति-भम्पन जीवन की भलक दिखाता है। सक्डा वर्षों तक व अपन परम समद्ध गृहस्थ जीवन का सुवोपभोग करते हैं। अतः म सयास भी लेते हैं किन्तु समग्र दायित्वा से मुक्त होकर।

इसके विपरीत नाटककार के महर्षि कदम नौ ब्याप्रा का जन्म देने के उपरान्त उनकी माता देवहूति समन राते बिलखत छाडकर, तप करने क लिए चल जात हैं परन्तु तपावन म उनका जन्मानसिवागति नहीं भिनती तो पुन अपनी पत्नी क पास ही लौटकर आते हैं और अपनी सन्तान के प्रति अपने कतव्य का निर्वाह करते हैं। नाटक के कदम बीतराग तो एक सीमा तक है, किन्तु उनम कत्त-रनिष्ठा एव अपेक्षित दूरदर्शिता नहीं है। किन्तु भागवत के कदम, प्रजापति कदम हैं। प्रजा के लिए ही वे विवाह करते हैं

१ भागवत पुराण ५ २२ १

२ वही ३ २२ १४

३ वही ३ २२ १५

४ वही ३ २४ २२ २४ कला मरीचि को अनमूया अग्नि को यडा अगिरा को हविभू पुलन्य को गनि पुलह का किया ऋनु को ध्यानि भृगु को अर्धाधी वनिष्ठ को और शान्ति भयवर्षा को विवाह म प्रगन को।

श्रीर अपनी प्रजा, सत्तान तथा प्रजोत्पत्ति का साधन, पत्नी के साथ अपने वत्तव्य का पूर्ण रूप से पालन करते हैं, अतः जो रूप उनका यहाँ चित्रित हुआ है वह बड़ा ही उदात्त है। नाटक में उह सिद्ध रूप में चित्रित तो किया गया है, किन्तु वे पूर्ण रूप से इन्द्रियविजयी नहीं हैं। देवहूति के अनुपम सौन्दर्य को देखते ही वे अपने साधन पथ में विचलित हो जाते हैं। जिस नारी को वे अपनी साधना में विघ्न मानते थे वही उनकी आराध्य बन जाती है परन्तु भागवत के प्रजापति कदम की साधना देवहूति के साथ विवाह के उपरांत चलती रहती है। देवहूति न माता पिता के चले जाने पर, पति के सकेना को समझकर पावतीजी के समान पति की प्रेमपूर्वक सेवा की। उसने कामवासना दम्भ, द्वेष लोभ पाप और मद का त्याग कर बड़ी लगन के साथ सेवा में रहकर पवित्रता, गौरव सयम, मुश्रूपा प्रम और मधुर भाषणादि गुणा से अपने तेजस्वी पति को सन्तुष्ट कर लिया—

पितृभ्या प्रसिष्यते साध्वी पतिर्निमित्तं काविका ।

नित्य पयचरत प्रीत्या भवानीव भव प्रभुम् ॥^१

इस प्रकार यहाँ उनका जो रूप है, उसमें सिद्धत्व और प्रजापतित्व दोनों में युक्त होकर समत्व याग उच्यते^२ का वे यथाथ उदाहरण प्रतीत होते हैं। नाटककार ने देवहूति और कदम के पुत्र महर्षि कपिल के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं दिया है जबकि भागवत की कथा का यह एक प्रधान अंग है।

नाटक में देवहूति का मनु की पुत्री कहा गया है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं बताया गया है कि किस मनु की पुत्री है। पुराणा में मन्वन्तरा का वंशनाम प्रायः मिलता है। यह उनका एक मुख्य अंग है।^३ इन मन्वन्तरा के विविध मनुओं का वंशनाम भी अनेक पुराणा में मिलता है। वही-वही ये वंशनाम बड़े ही रोचक एवं ज्ञानापयोगी सामग्री से सम्पन्न हैं।

भागवत पुराण के अतिरिक्त, अन्य पुराणा में भी यन्त्र-तन्त्र स्वायम्भुव मनु शतरूपा एवं उनकी सन्तति के सम्बन्ध में उल्लेख मिलते हैं। इन उल्लेखा का प्रस्तुत नाटक की कथा के साथ सम्बन्ध प्रायः अत्यल्प है फिर भी इन प्रसंगों पर विचार कर लेना कथा के स्रोत रूप की समझने में सहायक होगा।

कूर्म पुराण

कूर्म पुराण में सृष्टि के विकास के क्रम में ही स्वायम्भुव मनु की एवं उनकी पत्नी शतरूपा की उत्पत्ति का प्रकार बताया गया है। इन दोनों की सन्तति के सम्बन्ध में यहाँ श्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्रों एवं प्रसूति और आकूति दो कन्याओं का उल्लेख है। प्रसूति का विवाह दश के साथ और आकूति का प्रजापति रुचि के साथ हुआ। इन चार

१ भागवत ३।२३।१

२ श्रीमद्भगवद्गीता अ. २।४८

३ सप्तम्व प्रतिसप्तम्व दशो मन्वन्तराणिक ।

वशानुचरिता चरि पुराण पञ्चमपणम् । कूर्म १।१।१२ बाराह २।४ मत्स्य ५३।६५ वायु ४।

१।१ भावित्य १।२।४५

सन्ताना के अतिरिक्त यहा इस युगन की किसी अन्य पुत्री या पुत्र का उल्लेख नहीं है।^१ यहा मथुरी मृष्टि व प्रथम म सत्त्वादि गुणा व उद्रेक और अमिमव का जिस रूप म निर्देश किया है वह साम्यगास्त्रीय सरणि का अनुकारी है।

देवीभागवत पुराण

देवीभागवत पुराण म मन्वन्तरा की चर्चा के प्रसंग म स्वायम्भुव मनु और उनकी सन्तति का उल्लेख हुआ है।^२ यहाँ स्वायम्भुव मनु का ब्रह्मा का अर्धपुत्र कहा गया है।^३ इनकी पत्नी का नाम एक अन्य अध्याय म (८१-१६) गतरूपा ही बताया गया है। यहाँ हा दाना से ७ पुत्र और तीन पुत्रिया का उल्लेख है। पुत्रा के नाम प्रियव्रत और उत्तानपाद ही हैं। क्याएँ अमग आकूति, देवहूति और प्रमूति बताया गयी हैं। आकूति का रचि के साथ, देवहूति का वदम के साथ और प्रमूति का दश के साथ विवाह हुआ है। यहा पर देवहूति और वदम से उत्पन्न साम्याचार्य कपिल का विशेष रूप स उल्लेख किया गया है।^४ देवीभागवत का यह विवरण अति सभ्रिप्त है। फिर भी इससे इतना तो स्पष्ट ही हा जाता है कि स्वायम्भुव मनु और गतरूपा की पुत्री देवहूति का विवाह वदम स हुआ था और साम्य गास्त्र के प्रणेता कपिल इन्ही के पुत्र थे और इन्ही कपिल के उपदेश स माता देवहूति को तत्त्व ज्ञान प्राप्त हुआ।^५ देवहूति और वदम की अन्य पुराण-स्रोता से प्रसिद्ध नौ क्याआ का यहाँ कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

ब्रह्मपुराण

स्वायम्भुव मनु और उनकी सन्तति विषयक ब्रह्मपुराण का विवरण कुछ भिन्न प्रकार का है। मनु और गतरूपा का पुत्र वीर हुआ और वीर के काम्या से प्रियव्रत और उत्तानपाद उत्पन्न हुए। यह वीर की पत्नी काम्या प्रजापति वदम की पुत्री बताया गयी है। अन्य पुराणा (भागवत ३ १३ ८६ ५६, ब्रूम ८, १-१२ एव देवीभागवत ८ ३, १ १८) म प्रियव्रत और उत्तानपाद स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी गतरूपा के ही पुत्र कहे गये हैं, परन्तु महा वे पौत्र बताये गए हैं। अथवा वदम प्रजापति स्वायम्भुव मनु

१ ब्रूम पुराण वैकटश्वर प्रम म० घ० ८ १ १२

२ देवीभागवत पुराण पण्डित पुस्तकालय काशी १२५६ ८ ३ ११५

३ मनु स्वायम्भुवस्तस्याय पद्मपुत्र प्रजापवान् ।

गतरूपापति धीमान सव मन्वन्तराधिप ॥ ८ अ १ १६

४ देवहूत्या च कपिनाम्नी च कम्मात ।

साम्याचार्य सवनाने विन्यास कपिली विष ॥ ८ ३ १३ १५

५ कपिनापि महायागी भववान् स्वाश्रमे स्थित ।

देवहूत्य पर ज्ञान सर्वाविद्यानिबन्धकम् ॥

शविशय ध्यानयोगमध्यात्मज्ञाननिश्चयम् ।

कपिल शास्त्रमाम्यास सर्वाज्ञान विनाशनम् ॥ ८ ३ १० १८

भागवत ३ २५ १ ५४ म भी देवहूति की धन पुत्र कपिल से ही तत्त्वज्ञान की प्राप्ति बताया गयी है ।

के जामाता मान गये हैं जबकि यहाँ पुत्र के दम्भुर।^१ देवहूति का यहाँ मनु की सतान का रूप मया अथवा कोई उल्लेख नहीं है।

ब्रह्माण्ड पुराण

ब्रह्माण्ड पुराण में स्वायम्भुव मनु गतरूपा और इन दाना की सन्तति का उल्लेख है। यह ब्रह्मपुराण से कुछ अलग मभि न प्रकार का है।^२ स्वायम्भुव मनु और गतरूपा दानो ही ब्रह्मा के तप प्रधान विधानकृत गरोर से उत्पन्न हुए हैं किन्तु स्वायम्भुव मनु को पति के रूप में प्राप्त करन के लिए गतरूपा को सुदीर्घकाल पयन्ततपस्या करनी पड़ी है।^३ स्वायम्भुव मनु का यहाँ विराट ब्रह्मा से उपन हान के कारण बराज मनु भी कहा गया है।^४ गतरूपा से उनके दो पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपात् तथा दो ब्याहें आकूति और प्रभूति उत्पन्न हुईं। आकूति का ब्याह प्रजापति ऋचि से तथा प्रभूति का दश से हुआ। दोनों ब्याहा की मृष्टि का विपुन विस्तार हुआ। स्वायम्भुव मनु की तनीय पुत्री देवहूति का यहाँ उल्लेख नहीं हुआ है।

मत्स्य पुराण

मत्स्य पुराण में स्वायम्भुव मनु की पत्नी का नाम शतरूपा नहीं आती है।^५ इसी से मनु के प्रियव्रत और उत्तानपात् दो पुत्रों की उत्पत्ति बनायी गयी है। इस प्रसंग में मनु की तिसा भी ब्याह का उल्लेख यहाँ नहीं हुआ है।

अथ पुराणा में जिस गतरूपा से स्वायम्भुव मनु की पत्नी प्रतिपादित किया गया है उस यथा प्रथम तो ब्रह्मा की पुत्री ही बनाया गया है। और उमके दस गतरूपा नाम के अतिरिक्त सरस्वती गायत्री और ब्रह्माणा नाम भी बताया गते हैं। अपनी परम सुन्दरी पुत्री का दम्भुर प्रजापति के मन में काम का अङ्कुर जागृत होता है।^६

ब्रह्मा के अनुमत्त हान का कारण भी उनके इस नतिक पतन को बनाया गया है। इतना ही नहीं अथ तब का समस्त अजित तप भी इसी कारण नष्ट हो जाता है—

१ ब्रह्मपुराण प्रकाशक मनमुक्तराय भार वल्लभता से १९५६ प्रथम भाग अध्याय १ २१ २२ तथा अध्याय त्रितीय।

२ ब्रह्माण्ड पुराण भाष्ये श्वर प्रथम बम्बई म० १ ९ १४ २६ पुन २४२
वहा सा देवा नियन्त तपसा तप परमदुष्करम्।

भर्तार शल्पयशस पुत्र्य प्रत्यारपन्।

म ये स्वायम्भुव पव पुण्या मनश्च्यव ॥ १ ९ ५ ३६

४ विराटममत्रद् ब्रह्मा सोभवन पुण्या विराट्।

मम्राट् स शतरूपानु के रात्रस्तु मन स्वतः।

स वरात्र प्रजापय मयत्र पुत्रा मनः।—ब्रह्माण्ड पुराण १ ९ ३९ ६

५ धा पञ्चानन तरुण्य मन्त्रानि ब्रह्माणा नाम प्रथ कवचना गणाः १-१२

६ स्वायम्भुवा मन त्रिभान शरमन्त्रा मुदुश्चरम।

पन्नावशार ऋशशपन्ना नाम नामः ॥ मत्स्यपुराण ४ ३३

७ मत्स्य पुराण ३ ३१ ३४

सष्टयथ यत कृत तेन तप परमदारुणम् ।
तत सब नाशमयमत स्वमुतोपगमनेच्छया ॥^१

माकण्डेय पुराण

माकण्डेय पुराण म स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी गतरुपा की उत्पत्ति एव उनकी सत्तति का जा वणन दिया गया है, वह ब्रह्माण्ड पुराण के समान ही है। इसके विवरण म कोई निम्नता नहीं है।^२

लिंग पुराण^३

माकण्डेय पुराण क समान लिंग पुराण का विवरण भी इस मन्त्र ध म ब्रह्माण्ड म मिलता जुनता है। यह कहना यठिन है कि इनम प्राचीन कौन सा है।

वाराह पुराण^४

वाराह पुराण म स्वायम्भुव मनु एव उनके दो पुत्रा का उल्लेख है। यहाँ उनका पत्नी क नाम और किसी कथा का उल्लेख नहीं है।

वायु पुराण^५

वायु पुराण का समस्त विवरण ब्रह्माण्ड पुराण के विवरण के समान ही है। कोई विषय अन्तर नहीं है।^६ यहाँ भी मनु की कथाया म देवहूति का नाम नहीं है।

विष्णु पुराण^७

यहाँ का विवरण ब्रह्माण्ड तथा वायु पुराण आदि क समान ही है।^८

हरिवंश पुराण^९

यहाँ स्वायम्भुव मनु का सत्तति का नामत निर्देश नहीं किया गया है।^९

१ मत्स्य पुराण ४

२ मार्कण्डेय पुराण २१ बेंकटस्वर प्र म बम्बई मत्सरण ४७ ६ १६

३ मूक मण्ण प्रथमाश प्रकाशन मनगुन्धराय मोर ५ कनाइव रो कलकता १

४ श्री बेंकटस्वर प्र म बम्बई मत्सरण २ ५५ ५६

५ श्री बेंकटस्वर प्र म बम्बई मत्सरण ।

६ वायु पुराण प्र० १०, प्लो० ७ १३ ।

७ गीताप्र स गारुडार अनुष मत्सरण स २०१४ वि०

८ विष्णु पुराण १ प्र० ७ १ १६

९ गीताप्र स वीरशुन ।

१० हरिवंश पुराण प्र० १ ५० ५३

विवेचन

प्रस्तुत नाटक देवदूति की भाषा प्राञ्जल है सवाङ्ग उपयुक्त है किन्तु वातावरण को सुगमिन् बनने की दृष्टि से अधिक सफल नहीं बन पाया है। हाँ चारित्रिक मनाद्वन्द्वों का स्पष्ट करने में य पूरकपूर्ण सफल है।

कल्पना क अतिशय प्रयोग ने नाटक की कथावस्तु का मूल कथा से कुछ पृथक् मल ही कर दिया है। तथापि पाठक क लिए रोचक सामग्री इसमें पर्याप्त है।

महाभारतधारा

चतुर्थ अध्याय

१ जनमेजय का नागयज्ञ

महाभारत भारतीय सस्कृति का एक अति विनाल आकर ग्रंथ है। यह इतिहास है काव्य है, स्मृति है आचार शास्त्र है, धर्मशास्त्र है और जो कुछ भी 'शाम्भू' नाम की परिधि में आसक्तता है वह सब कुछ इसमें समाविष्ट है। महाभारत में आचार, धर्म और शास्त्र के गहन विषयों का स्पष्ट रूप में समझाने के लिए लोक में प्रचलित आख्याना का आश्रय लिया गया है। इन आख्याना में कुछ तो देने महत्वपूर्ण हैं कि उन्होंने अपनी गरिमा से प्रभूत मात्रा में समाज और साहित्य का प्रभावित किया है। नलोपाख्यान सावित्रीपाख्यान। शाकुंतलोपाख्यान ययात्युपाख्यान आदि महाभारत के महत्वपूर्ण आख्यान हैं। इनका छात्रय लेकर हिंदी में अनेक नाटकों की रचना की गयी है। एक ही कथा के आधार पर विभिन्न युगों में अनेक नाटककारों ने बहुत से नाटकों का निमाण किया है। इस प्रकार के नाटकों की रचना में काल का व्यवधान होने पर भी वस्तु की समानता को दृष्टि में रखते हुए इनके मूल स्रोत का विवेचन पुराणधारा के समान एक ही धारा में और एक ही स्थान पर किया जाएगा।

महाभारत के उपाख्यानों के आधार पर रचित विविध नाटकों के अतिरिक्त इसकी प्रधान कथा, कौरव-पाण्डव कथा के 'विधि' अंगों का आश्रय लेकर भी हिंदी में अनेक नाटकों की रचना हुई है। नाटकीय विधान, चरित्र चित्रण, भाषा आदि की दृष्टि से इन नाटकों में बहुत कम नाटक ऐसे होंगे जिन्हें परिष्कृत नाटकों की प्रथम श्रेणी में स्थापित किया जा सके। स्वर्गीय जयशंकरप्रसाद का जनमेजय का नागयज्ञ महाभारत की प्रधान कथा के अतिम भाग के एक अंग पर आधारित हिंदी का एक उत्कृष्ट मौलिक नाटक है। यद्यपि प्रसाद से पूर्व भी महाभारत की प्रधान कथा अथवा उसके किसी उपाख्यान का आधार

बनाकर हिन्दी में नाटकों की रचना होती रही है तथापि हिन्दी के नाट्यकारों में प्रगाथी का एक विशिष्ट स्थान है और इस धारा के नाटकों में उनके जनमेजय का नागयज्ञ का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए भाग के पृष्ठा में इस नाटक के मूल स्रोतों का विस्तार से विचार किया जाएगा। इसके परचात् अग्रिम अध्याय में इस धारा के अन्य नाटकों के मूल-स्रोतों का विचार होगा।

जनमेजय का नागयज्ञ

जनमेजय का नागयज्ञ नाटक हिन्दी के लघुप्रतिष्ठ एक मूक नाटककार श्रीजयानकर प्रसाद की रचना है।^१ इसकी गणना उनके उत्कृष्ट नाटकों में की जाती है। इसकी संपिप्त कथा इस प्रकार है—

सरमा (बुबुर वग की यात्री) तथा मनसा (जस्वारु की स्त्री तथा वासुकि की बहन) दोनों के वानालाप से नाटक का प्रारम्भ होता है। सरमा यात्री कृष्ण की (यात्री वश की) प्रशंसा करती है जबकि मनसा नागराय की प्रशंसा पर तुनी स्थिती है। यात्री की बबरता के प्रमाणस्वरूप मनसा अपनी शक्ति से उस दृश्य को प्रस्तुत करती है जब श्रीकृष्ण के उपदेश में अनुनन न खाण्डन वन का दहन किया था और नाग जाति का जल कर भस्म कर दिया था। मनसा बतलाती है इसी प्रतिशोध के फलस्वरूप नागा न आसींग से मिलकर यात्रियों का अपहरण किया और नागराज तथा नै शृंगी शक्ति से मिलकर परीक्षित का सहार किया। मनसा ने यह भी बताया कि नागजाति के कल्याण के लिए ही उसने अपना जीवन बद्ध तपस्वी जस्वारु को समर्पित कर दिया है। यह सब कुछ सुनकर सरमा नागा से अपना सम्बन्ध जोड़े जाने पर पश्चात्तप करती है और मनसा के वाग्वाणी से अभय हो अपने पुत्र माणवक के साथ वहाँ से चली जाती है। वासुकि लौटकर आने पर अपनी बहन मनसा की श्म प्रसार के व्यवहार के लिए, सहानुभूति करता है और कहना है कि नागजाति के आयजाति से भय करने के अवसर पर उन सरमा को ब्रुद्ध कदापि नहीं करना चाहिए था।

इसके उपरांत गुरु वेद के आश्रम में उत्तक के दान हाते है। गुरुपत्नी दामिनी शिष्य उत्तक को आकर्षित करना चाहती है किन्तु उत्तक वग में नहीं आता। दामिनी के लिए वह गुरुपत्नी की इच्छानुसार जनमेजय की रानी वपुष्टमा से मणिबुण्डल लेने के लिए आता है वही जनमेजय के ऐद्रमहाभिषेक के सम्बन्ध में विदित होता है जिसका परिणाम युद्ध में विजयप्राप्ति जाना है। गुरु राजा जनमेजय का अभिषेक करवाता है क्योंकि कुल पुराहित वास्यप इस अभिषेक के विशुद्ध हैं। वास्यप को प्रसन्न करने के हेतु गुरु वास्यप को

ही शिक्षणा दिलवाना है। सरमा राजदरवार म ही उमी समय 'याय की याचना के लिए पहुचती है कथावि जनमेजय के भादया ने उसके पुत्रा का अवारण पीटा है। जनमजय उसे दस्युमहिना कहकर 'याय कर्न सं इतार कर दता है। सरमा क्रुद्ध हातर तथा वाश्यप को बुरा मना कहकर, समामवन स चली जानी है, कथावि वाश्यप न भी उसका 'याय न किय जान का समथन किया है। उधर सरमा का पुत्र माणवक माँ को इस प्रकार अपमान महन करने पर बहुत अिकारता है और अपमान का प्रतिगाध लेने के लिए त्रल पडना है।

आमामी दृश्य म तक्षक उत्तक को दखनर मणियुग्गन के कारण उसे मारना चाहता है किन्तु सरमा उमी समय अकस्मान प्रविष्ट हातर उनर की रक्षा करती है। तथर के द्वाग सरमा पर भी आग्रमण किय जान पर, वासुकि उमनी रक्षा करता है। अगनी घट नाग्रा म जनमेजय भ्रमवग जरत्वार को अपन बाण का लक्ष्य रनाता है। जरत्वार यह कहकर कि मेरा पुत्र आस्तीन समस्त ज्वालाध्रा का गात करेगा, अपन प्राण छोड देता है।

उधर वेर की पनी दामिनी उत्तक स प्रतिगाध लन के लिए आश्रम से चल पडती है और तक्षक के पास पहुचती है। वहाँ तथक के दुराचारी पुत्र स वह तिरस्त्रुत की जाती है और वहाँ से भागकर माणवक (सरमा के पुत्र) द्वारा ही पति वेद के पास लायी जाती है जो उसे पुन अपना लेता ह।

इधर उत्तक, जनमजय के समीप जानर तथर के अपराधा और नूरताआ का वणन करता है, फलस्वरुप नागयन प्रारम्भ होता है और नागजाति को हर स्थिति तथा हर स्थल म कष्ट पहुचाया जाना है। सरमा, कलिका नाम से वपुष्टमा की गमी बन जाती है। इम दृश्य म मृपि व्यास के भी दगन हात ह। पदच्युत वाश्यप तक्षक से जा मिलता है और जनमजय के यज्ञ का घोडातथा उसनी महारानी दाना का पकड लेन की सम्मति देता है। सरमा जा वपुष्टमा की गसी है उमकी रक्षा करती है। मनसा अपने बुद्ध्या के कारण कि उसने नागा का कथा उत्तेजित किया अपने पुत्र आस्तीक को, जो आर्यों से मेन कर लेने के पथ म है कथा मला बुरा बहा इत्यादि विचारकर इस स्थल पर बडा पश्चात्ताप करती है।

। अतिम दृश्य म बडी तथक मणिमाला (तक्षक की पुत्री), जनमेजय, गीनक उत्तक सोमश्रवा और चणभगव, जनमजय का सेनापति सभी दीख पडते हैं। आस्तीक अपने पिता की मृत्यु के प्रायश्चित्तस्वरुप जनमेजय स यही कहता है कि नागा के साथ मेल कर लो, उहं नष्ट न करो। जनमजय यन राक दता है। अत म जनमजय का विवाह तक्षककुमारी मणिमाला स हा जाता ह और इस प्रकार दो बडी जातिया का मेल हो जाता है।

आधार ।

इस नाटक की कथा के सूत्र महामारत^१ एव हरिवंश पुराण^२ मे मिलत है। इनके

१ महामारत—(धादिपव) अ २ ८१ १८८ (आस्तीक पव) अ १३ ५८ (गाति पव) अ० १५० १५२

२ हरिवंशपुराण—(भविष्यपव), अ १६ पृ० ७५६ ७६५ (गीतापत गोरखपुर)

आय नाग सघप का आरम्भ

मनसा और सरमा

प्रसादजी न इस नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में आय और नागों के बीच सघप से सम्बद्ध भासा और सरमा की बातचीत में आरंभ पटनाम्ना की आरंभ सतत किया है। मनसा, नागसरादर वामुक्ति की बहन एवं धायावरण के प्रपन्न महर्षि जरत्कार की पत्नी है। इसमें नागों के कल्याण का ही उद्देश्य बनाने के बृद्ध जरत्कार से परिणत किया है। आयों के प्रति इसके हृदय में प्रबल विद्वेष है। जिस उपाय से भी हो, यह आयों के ऊपर नागों का विजय चाहती है और इसी लिए सतत प्रयत्नशील है। सरमा यादवा की कुतुर गायिका सम्बद्ध है। इसी स्वेच्छा से यादवा के पारम्परिक सघप के समय—जब नाग और आभीरा का सम्मिलित आक्रमण हुआ था तथा यादव कन्यायाग का अपहरण किया गया था—नाग सरदार वामुक्ति का पति रूप में बरण किया। इस बरण में आयों और अनायों की बन्ती हुई कटुता को दूर करना भी उसका एक उद्देश्य रहा है। वह श्रीकृष्ण की समझौते के रूप में अति प्रशंसा करती है परन्तु मनसा उन्हीं का नागों का शत्रु मानती है। वह अपनी धान की पुष्टि के लिए श्रीकृष्ण के कर्णों से अन्न द्वारा दग्ध खाण्डव वन का उदाहरण प्रस्तुत करती है। आयों ने प्रथम तो सरस्वती के तट पर कुतुर के मदानी में ममृड नागों का खाण्डव वन की ओर जाने के लिए विवश किया। पुनः वहाँ भी उसमें आग लगाकर उन्हें जीवित ही भस्म करने का प्रयत्न किया। कुछ प्रमुख नागों तथा वामुक्ति अश्वत्थान आदि उत्तर के दुर्गम पवन प्रदेशों से भागने के बाद प्रवेश में बस गये परन्तु आयों के प्रति विद्वेष की धधकती हुई आग अपने हृदय में साथ लत भय और एतद्वत्तर की तलाश में रहने लगे जब आयों द्वारा अपने साथ की गई क्रूरताओं का प्रतिपादक बत सब। परिणामस्वरूप नागों के राजा तथाक न अश्वत्थान मिलते ही श्रुती ऋषि से मिलकर अजुन के पौत्र एवं सम्राट जनमेजय के पिता महाराज परीक्षित की हत्या की। मनसा और सरमा, दोनों की बातचीत से यहाँ यह भी संकेत मिलता है कि अतीत युग में नागों का इतिहास बड़ा ही उज्ज्वल रहा है। उनका विशाल एवं बलवत्सम्पन्न साम्राज्य था। उनका प्रचण्ड प्रताप दूर दूर तक व्याप्त था।

प्रसादजी ने प्रथम दृश्य में परीक्षितपुत्र जनमेजय के राजसिंहासन पर आरूढ़ होने से पूर्व की विवश सघपमय परिस्थिति की ओर संकेत किया है। इस नाटक में आगे चलकर जिस घटना चक्र का प्रयोग हुआ है एक प्रकार से सूक्ष्म रूप में हम उसका आभास यहाँ मिल जाता है। सम्राट परीक्षित की हत्या कोई सामान्य घटना नहीं। यह आयों साम्राज्य के विरुद्ध नागों के संगठित षडयंत्र का परिणाम थी जिसमें उन्होंने कुछ ब्राह्मणों का भी अपने साथ मिला लिया था। यदि स्वतंत्र रूप में नागों का ही विद्रोह होता तो सम्भवतः पांडवों की आयों सम्राट के लिए उन्हें कुचन देना बठिन बाय न होता।

नाटक में प्रसादजी ने यादवर महर्षि जरत्कार की पत्नी एवं नाग सरदार वामुक्ति

की बहन का नाम मनमा लिया है। मरन्तु महाभारत एव हरिवंश की कथा में कामुकि की बहन, जिमना विवाह जरत्कार के साथ हुना है, उसका नाम भी जरत्कार ही दिया है।^१ जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक में इस बात का महत्ता ता मिलता है कि मनमा का एक बलिपत नाम जरत्कार भी उताक सम्बन्धियों न किमी विशेष प्रयाजन की सिद्धि के लिए रख दिया था।^२ किन्तु नाटक में मवत्र ही उसे मनमा नाम में ही अभिहित किया गया है। यद्यपि महाभारत में जरत्कार ऋषि की धार में विवाह की गर्नों में एक गत यह है कि कथा का नाम भी जरत्कार ही होना चाहिए।^३ तथापि प्रसास्जी न अपन नाटक में, ऋषि की पत्नी का सनाम्नी नहीं रखा है।

भरमा की प्रसास्जी न यादवा की कुकुर नामा में सम्बद्ध माना है। पुराणा में इस नामा के सम्बन्ध में कई स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। कुकुर, यादवा की ही सावन नामा का एक प्रमुख व्यक्ति हुआ है। इस नामा के प्रसिद्ध वीर पुरुष, अध्वर का ज्येष्ठ पुत्र कुकुर था। इस कुकुर की ही सन्तति परम्परा में आहुक राजा हुआ है जिमके देवक और उपमेन दा पुत्र तथा मान कथाएँ हुईं। इन सब कथाओं का विवाह वसुदेव के माय हुआ। इन कथाओं में एक श्रीकृष्ण की जननी देवकी भी हैं।^४ कुकुरत्व का हाने के कारण ही उपमेन को कुकुराधिप भी कहा गया है।^५ मत्स्य पुराण में कक की पुत्री से उत्पन्न चार पुत्रा में से एक का नाम कुकुर रनाया गया है और इसे वणि का पिता कहा गया है,^६ किन्तु भागवत में कुकुर को बह्नि का पिता माना गया है।^७ वायु पुराण में सत्यक और वासिराज की पुत्री से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र का नाम कुकुर नहीं, वकुद है।^८ परन्तु ये दाना नाम कुकुर और वकुद एक ही व्यक्ति के जान पड़ते हैं क्योंकि वकुद के अर्थ तीन भास्या के नाम जा वायु पुराण में आये हैं वे अर्थ पुराणा में मिलते-जुलते हैं। यहाँ सत्यक की अपन्ना अध्वर पाठ अधिवृत्तिपुत्र है। अर्थ पुराणा में भी कुकुर का अध्वर का ज्येष्ठ पुत्र माना गया है।

महाभारत के समापन में दा स्थानों पर कुकुरा का उल्लेख हुआ है। एक स्थान पर

१ महाभारत धर्मपर्व ४७ ८

२ नाटक अध्वर १ दस्य १ प १७

३ महाभारत—

सनाम्नी या भविता मे लिखिता च वन्धुभिः ।

भयवतामह कथामुपसृत्य विधानत ॥ म भा० धार्मि० १३ २६

सनाम्ना यद्यह कन्यामपसृत्ये कथावन ।

भविष्यति च या वाचिद् भद्रयवत् स्वयमद्यता ॥ म भा० धार्मि० ४७ ८

वामुकिस्त्वब्रवीद् वाक्य जरत्कारमपि तदा ।

मनाम्नीं तव कथेय स्वमा मे तपसाविता ॥ म० भा० आदि० ४८ १

४ विशु ४ १४ १२ १६

५ महाभारत समापन २८

६ मत्स्य सुहमण्डल प्र० बलकत्ता ६४ ६१ ७६

७ भागवतपुराण धीनार्थे म नाम्बपुर स्व० ६ अध्याय २४ श्लो० १६ २३

८ वायु पुराण, उत्तरार्द्ध अध्वर ३४ श्लोक १११

कुतुर और अधम दा गारागणें पृथक् कही गयी हैं।^१ एक अधम स्थान पर उग्रगन का ही आहुत माना गया है और कुतुराधिप कहा गया है।^२

पुराणा में याज्ञवल्क्य व वृषणन में सरमा का उल्लेख नहीं मिलता।^३ परन्तु बणिग्र या एव महाभारत में इस गुनी कहा गया है। सम्भव है गुनी से ही प्रमाजी न इस यादवा की कुतुरागना में सम्बद्ध करके कुतुरी बना लिया हो।

इसके अनिश्चित एक सरमा ऋषि म इंद्र की दूती के रूप में भी प्रसिद्ध है। वहाँ इसकी सहायता से ही इंद्र पणिया के गुप्त रहस्य को जानने में समय जाता है।^४ महाभारत में पौष्यपव में भी सरमा का उल्लेख देवगुनी विगणन के साथ मिलता है—

जनमेजय एधमुक्तो देवगुया सरमया भूग सम्भ्रातो विपण्णचासीत् ॥^५

यह कहना कठिन है कि ऋषि की इंद्रदूती सरमा, महाभारत में सरमा (विगणन रहित) और देवगुनी सरमा (विगणन युक्त) तथा नाटक में विचित्र कुतुरी सरमा (कुतुरवर्गीय) एक ही है अथवा भिन्न भिन्न। इसकी विगिष्ट विवचना वस्तुतः इतिहास का विषय है। यहाँ इस सम्बन्ध में अधिक विस्तार में जाना अनुपयुक्त होगा।

खाण्डव वन का दाह और कुछ अवशिष्ट नागों का पलायन

नाटक के प्रथम दृश्य में मनमा द्वारा खाण्डव वन के भयंकर दाह का उल्लेख किया गया है। महाभारत में खाण्डव वन के जलने की कथा बड़े विस्तार से आग्निपव (खाण्डव दाहपव) में कही गयी है।^६ इस वृषणन के अनुसार वस्तुतः यह दाह बड़ा निदय एवं भयंकर था। दाह की यह त्रिया अविरत गति से पाँच दिशाओं में चलती रही—

तदवन पावको धीमान दिनानि दश पच च ।

वदाह कृष्णपार्श्वीभ्या रक्षित पाकशासनात् ॥^७

इस महाभयंकर दाह से बचकर निकलना अश्वत्थ (तथक्पुत्र) मय और चार शाङ्ग का को छोड़कर किसी के लिए भी सम्भव नहीं हो सका। नागराज तथक् दाह से पूर्व ही निकलकर कुरक्षेत्र की ओर चला गया था—

१ महाभारत सभापव अ ३८

२ वही—सभापव अ० ३८

३ भागवतपुराण ५ २४ ३ —वहाँ ऋषि की दूती के रूप में सरमा का उल्लेख है।

४ ऋग्वेद १ १०८

५ महाभारत आग्निपव (पौष्य) अ ३ पद्यसं० १

६ वही आग्नि खाण्डवदाहपव अ २२१ से २२७ तक

७ वही आदि अ २२७ श्लोक ४६

तक्षकस्तु न तत्रासीत् नागराजो महाबल ।

दह्यमाने धने तस्मिन् कुरुक्षेत्रे गतो हि स ॥^१

इस खाडबदाह में सबसे अधिक संहार नागा का हुआ क्याकि कुरुक्षेत्र के प्रदेश से हटने के लिए बाध्य किये जान पर उहाने खाण्डवनन में ही आश्रय लिया था। एक प्रकार से नागा को समूल नष्ट करने के लिए ही सम्भवत यह महान प्रयत्न किया गया था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि केवल तक्षक ही नहीं, कुछ और भी प्रधान नाग उसक साथ ही वहा से निकल भागने में समर्थ हो गए थे। वे कुरुक्षेत्र में रुके नहीं पवतीय मार्गों से पश्चिमात्तर की ओर बढते गये और वाघार प्रदेश में जाकर, वतमान तक्षशिला के पास पुन आवाद हो गये। इन प्रकार महाकविशाली अर्जुन के प्रभाव से उस समय ता नागशक्ति क्षीण सी हा गयी। परन्तु उसक पश्चात् उहाने पुन अपने सगठन को इकट्ठ किया और परिणामस्वरूप तक्षक ने परीक्षित की हत्या कर दी। यही से नागा का अयोध्या के साथ पुन संध्य आरम्भ होता है। प्रसादजी के इस 'जनमेजय का नागयज्ञ' नामक की कथा का आरम्भ भी इन दोना जातिया के पारस्परिक तनाव विद्वेष, विद्रोह पडयान एक दमन से होता है। नागा की राजनीतिक शक्ति यद्यपि उस समय क्षीणप्राय प्रतीत होती है, किन्तु वे किसी भी उपाय से अपनी पूब प्रतिष्ठा को पुन प्राप्त करने के लिए प्रयत्नगीत विगत हैं। मनसा उह गौरव पूण स्थान प्राप्त कराने के लिए उत्तेजित करता है।

आचार्य वेद, पत्नी दामिनी और शिष्य उत्तक

प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में विशेष घटनाएँ नहीं हैं। आचार्य वेद के भुक्तुन का दृश्य है। आचार्य अपने पीछे अग्निगाला की परिचया एक घर की लम्बाल का काय अपने प्रधान शिष्य उत्तक पर छाडकर कई महीना से गुस्कुल से बाहर गये हैं। आचार्य की पत्नी दामिनी उत्तक को अपनी ओर आकर्षित करना चाहती है किन्तु उत्तक की दडता के कारण वह सफल नहीं हो पाती। आचार्य के लौटने पर पता चलता है कि जनमेजय का अभिषेक होने वाला है। शिक्षा समाप्त हो जाने के कारण आचार्य उत्तक को घर जाने का आदेश देते हैं। गुस्लपिणा के लिए उत्तक के आग्रह पर, आचार्य पत्नी गनी के मणिकुण्डल लाने के लिए कहती हैं।

आचार्य वेद आचार्य आथान्धीम्य के प्रमुख तीन गिप्या में से एक हैं। अन्य दो के नाम आरणि और उपमयु हैं।^२ आचार्य वेद के भी तीन गिप्य वे, एसा महाभारत में उल्लेख

१ महाभारत अन्तिम खाण्डवननाहपव ध २२६ श्लोक ४

२ अथिषद् अथि धीम्या नामापान्त तस्य गिप्या तयो बभूव —उपमय आरणि वेदशक्ति—महाभारत, अन्तिम पव ३ ३१

है' किन्तु इनका प्रधान गिप्य उक्तक ही था। नाटक म आचाय के अपने घर से कुछ मास के लिए बाहर जान एव उनके पीछे उनकी पत्नी का उक्तक की ओर आकृष्ट होने का जो चित्रण है, उसका आधार महाभारत का पौष्यपर्व है, यद्यपि यहाँ इसका रूप कुछ भिन्न है—

“अथ कस्मिंश्चित् काले वेद ब्राह्मण जाभेय पौष्यश्च क्षत्रियानुषेय वरधित्वो पायाय चक्रन् । स वदाक्षित याज्यकार्येषामिप्रस्थित उक्तवन्नामान सिष्य नियोजयामास ।
 भो, यन् सिचिन्मदगह परिहीयते तदिच्छाम्यहमपरिहीयमान भवता क्रियमाणमिति' स एव प्रति सदिस्यातक वेद प्रवास जगाम । अयोत्तक गुथूपुगुरुनिषोगमनुतिष्ठमाना गुफ्तुले वसति स्म । म तत्र वसमान उपाध्यायस्त्रीमि सहिताभिराहूयोकन् उपाध्यायानी त ऋतुमती, उपाध्यायश्चोपितोऽस्या मयायमुत्तुवन्व्यो न भवति तथा क्रियतामेपाविपीदतीति । स एवमुक्त्वा स्त्रिय प्रत्युवाच न मया स्त्रीणा वचनात्स्मिन्काय करणीयम् । न ह्यहमुपाध्यायन सन्तिष्ठोऽ कायमपि त्वया कायमिति ।”^१

प्रसादजी न प्रथमांक के द्वितीय दृश्य म आचाय के पत्नी का उनके शिष्य उक्तक व प्रति जा आमक्ति का चित्रण किया है उसका मुख्य आधार महाभारत का यह स्थल ही है, किन्तु उहाँने इसका रूप कुछ अधिक स्फुट करके प्रस्तुत किया है।

इस दृश्य की दूसरी महत्वपूर्ण बात, तथागिता विजय व पश्चात जनमेजय के अभिषेक की सूचना है। साथ ही यह भी कि कुलपुराहित काश्यप इसमें विरह हैं।^२

जनमेजय के तथागिता विजय के लिए अभियान और उत्तम विजय का उत्तर भी महाभारत^३ म है। परन्तु काश्यप पुराहित द्वारा जनमेजय के अभिषेक व विराघ का निर्णय यहाँ नहीं है।

इस दृश्य की तीसरी महत्वपूर्ण बात है उक्तक की गुरुशिष्या। आचाय व उक्तक स सम्बन्धवहार व कारण ही प्रस्तान हैं। य उमस कुछ नहीं चाहत। किन्तु गुरुशिष्या के लिए उसका अप्रह करने पर उमस कह दत हैं कि वह अपनी गुरुपत्नी स ही पूछ ल। आचाय की पत्नी गुरुशिष्या के रूप म रानी व मणिगुच्छन लानर देने के लिए आत्मा दता है। यद्यपि आचाय को पत्नी के रस आने स धाम हाना है किन्तु व प्रतिवात् नहा करत। उत्तर द्वारा मणिगुच्छन प्राप्त करके गुणपत्नी का दन का विवरण इसी घन क ततीय एवं चतुथ दृश्या म किया गया है। इसका आधार का विवचना भाग की जाणी।

जनमेजय का ऐन्द्रमहाभिषेक

इस नाटक का प्रथम घन व तृताय दृश्य म मकर पष्ट दृश्यपयन्त की घटनाएँ एव

१ महाभारत भाग ३ पृ ८१

२ महाभारत भाग ० ३ पृ ८३

३ जनमेजय का काश्यप पृ १ दृश्य २ पृष्ठ २०

४ महाभारत भाग ० पृ ३ पृष्ठ २

दुगर मे कुछ मरिना गी हैं । इनकी प्रधान घटनाएँ एक उाके शान निम्नलिखित हैं—

तर्गिला विजय क पदान्ता जाभजय का अमिपेक (ऐन्द्रमहामिपेक) महर्षि सुर वावपेय द्वारा मध्यन कराया जाता है किन्तु य इस काय की र्शिता म्यय न तेरय कुन पुरोहित कायप की ही म्निाने हैं ।

जनमेजय की तर्गिला विजय का उन्नेय महामारत म मिलना १—

“स तथा भ्रातन सन्दिद्य तर्गिला प्रत्यभिप्रतम्भे त च दग वा र्वापयामाग ।”^१ और
पुरा तर्गिलासस्य त्रिभृतमपराजितम् ।
मम्यम विजयिा दृष्टवा गमनान मन्त्रिभिन तम् ॥^२

इन घना उद्धरणा स जनमेजय के तर्गिला विजय की घटना की पुष्टि हो जानी है । इस विजय के पदचान सुर वावपेय द्वारा उसने अमिपेक का उन्नेय ऐरय ब्राह्मण म मिना है—

‘एतन ह वा एन्द्रण महामिपेकेण सुर वावपेया जनमेजय पारिातम् अमिपिपेच तस्माद उ जनमजय पारिात गमत मवत पृदिवी जयन परीयाय अवेन न मध्येनजे ।’^३

महामारत म सुर वावपेय का उन्नेय न होन पर भी ऐरय ब्राह्मण के इस प्रवरण से यह सिद्ध है, कि जामेजय का एन्द्रमहामिपेक इहान ही कराया था । प्रमाजी न महीं सुर का उन्नेय एक अनिहासिक तथ्य क आधार पर बिया है ।

काश्यप पुरोहित

इमी तृतीय दृश्य म प्रगादजी न एक लामी काश्यप पुरोहित का चरित्र चित्रण किया है । महामारत म मुख्य रूप स दो स्थला पर दा काश्यप का उल्लेख हुआ है । पुरोहित काश्यप क रूप म जिस व्यक्ति का उल्लेख ह वह आदिपव के एर दाशिताय पाठ म है—

तत पाण्डु त्रिया सर्वा पाण्डवानामकारयत ।
गर्भाधानादिदृश्यानि चीलोपनयनानि च ॥
काश्यप कृतवान मवमुपाकम च भारत ।
चीलापनयनाद्बुध्वमयभाक्षा यगस्विन ।
यदिकाध्ययन सर्वे समपद्य त पारगा ॥^४

काश्यप पुरोहित का द्वितीय उल्लेख महाराज पाण्डु क अन्तिम सस्वार क सम्बन्ध

१ महामारत भाति पव अ० ३ खण्ड २

२ वही भाति पव अ० ३ खण्ड १७२

३ एतरेय ८ २१

४ महामारत भाति पव अ० ३ खण्ड २०

म हुआ है—

अश्वमेधाग्निमाहुत्य यथायाप समतत ।

काश्यप कारयामास पाण्डो प्रेतस्य तां क्रियाम ॥^१

इसके प्रतिरिक्त शृंगी ऋषि के शाप से सप्तम त्ति तशक द्वारा डग जानवान महाराज परीक्षित को जीवित करने के उद्देश्य से राजा के पास आनवान पर विज्ञान काश्यप का भी उल्लेख है—

प्राप्ते च दिवसे तस्मिन् सप्तमे द्विजसत्तम ।

काश्यपोऽन्यागमद विद्रास्त राजान चिकित्सितुम ॥

यह समाचार सुनकर कि सातवें दिन तशक राजा परीक्षित को डसगा, काश्यप चिकित्सा करने के लिए चल पडता है। उस माग म ही तशक मिल जाता है। मोना की बातचीत होती है। तशक उसको परीक्षा रता है। वह अपने विप से एक हरे वृा को दग्ध कर देता है। काश्यप अपनी चिकित्सा से उम वृक्ष को पुन हरा कर देता है। चिकित्सन काश्यप क इस प्रभाव को देखकर तशक के मन म अपनी सफलता के प्रति आनका जागत हो जाती है अत वह नहीं चाहता कि काश्यप परीक्षित क पास तक पहुँचे। बातचीत स उस पता चल जाता है कि काश्यप परीक्षित क पास बहुत-सा धन प्राप्त करने के उद्देश्य से ही जा रहा है। राजा के प्रति उसके मन म सौहाद तथा कल्याण की भावना नहीं है। तशक उसकी लोभवृत्ति से लाभ उठाकर उसे बहुत सा धन दे देता है। काश्यप तशक स प्राप्त धन स सन्तुष्ट होकर माग से ही लौट जाता है।^२

इस नाटक मे प्रसादजी ने जिस काश्यप पुराहित का चित्रण किया है वह भी अति लोभी है। आचाय तुर कावपेय द्वारा जनमजय का एद्रमहामिपेक सम्पन हो जाने पर वह राजा और तुर को बुरा कहता है किन्तु पूण दक्षिणा प्राप्त कर लेने पर सन्तुष्ट हा जाता है। जनमेजय का नागयन नाटक म प्रसादजी न ऊपर निर्दिष्ट महाभारत क दोनो काश्यपा को एक कर दिया है।

उत्त क की गुरुदक्षिणा

इस दृश्य की दूसरी घटना आचाय वेद क गिप्य तवस्नातक उत्तक का गुरुदक्षिणा क लिए जनमजय की रानी वपुष्टमा स उसके मणिदुण्डलो की याचना करना है। रानी दैनी है किन्तु ब्रह्मचारी को सावधानी क साथ उह ले जाने का आदेश भी देती है कि कही माग म तशक उका हरण न कर ले। वस्तुत य मणिदुण्डत परास्त नामराज से ही जनमजय ने प्राप्त किमे थे और पश्चात उहे उसने अपनी रानी को उपहार के रूप म दिया था। तशक

१ महाभारत आश्विर्व घ १२४, श्लोक ३१ दाक्षिणात्य पाठ

२ महाभारत आश्विर्व अध्याय ४३ श्लोक १३ २१

का अपनी भूयवान बन्धु वं हाथ में नितान्त जान का दुःख था और वह उठ पूरा प्राप्त कर लेने के प्रयत्न में था। इसीलिए यहाँ रानी कपुष्पमा ने उत्तक को सावधान किया है। यहाँ वाश्यम पुरोहित ने मणिमुण्डल-दान का विरोध किया है। उसके इस विरोध का ताटीय घटनाक्रम की दृष्टि से स्वतन्त्र महत्व है।

आचार्य वं धर्म्य में गुणपत्नी को मनुष्य बनने वं लिए उत्तक द्वारा कुण्डल प्राप्त करने एवं उठ गुणपत्नी को दान की कथा का विसृत विवरण महाभारत के पौष्य पर्व में दिया हुआ है।^१ किन्तु नाटक की कथा का आधार महाभारत हाथ हुए भी, इसमें कुछ भिन्नता है। ऊपर निर्दिष्ट कथानुसार नाटक में कुण्डल प्राप्त करने वं लिए उत्तक राजा जनमेजय वं पान जाता है। परन्तु महाभारत में वह राजा पौष्य वं पान जाता है। आचार्य वं की पत्नी भी उस इम काय वं लिए पौष्य वं पान ही भोजनी है—

'मन्वन्वन्नापाव्यापानी तमुत्तकं प्रयुवाच 'गच्छ पौष्य प्रति राजानं मुण्डलं मिहितु तस्य क्षत्रियथा विन्दे। तं ज्ञानयस्व चतुष्वं ग्रहीन् पुष्यं भविता ताभ्याम् प्रायश्चाप्या गोमं माना ब्राह्मणान् परिवप्टुमिच्छामि। ता सम्पादयस्व एवं ब्रुवत श्रेया भविता।'^२

महाभारत में राजा पौष्य का उल्लेख धर्म्यिव वं तृतीय अध्याय में है।^३ यहाँ वर्णित राजा पौष्य ने उत्तक वं शुक आचार्य वं दान का प्रस्ताव पुराहित बनाया है।^४ महाभारत में पौष्य और जनमेजय दान का पृथक्-पृथक् उल्लेख है, विशेषण विनैष्य भाव नहीं है। अतः यहाँ वं वचन से स्पष्टतः ताना पृथक् है। सम्भवतः कथानायक वं साथ उत्तक का सम्बन्ध ज्ञान के लिए ही प्रसादनी न पौष्य के स्थान पर जनमेजय की कल्पना की है। आग चतुर नालक में, जनमेजय वं नाशयत करने में मून प्रेरणा उत्तक से ही मिलती है। वही तथक के प्रति जनमेजय वं हृदय में प्रतिज्ञा की अग्नि सुलगाता है।

महाभारत में राजा पौष्य की रानी भी कुण्डल ल जान हुए उत्तक को सावधान करती है कि नागराज तथक इन कुण्डला का पान वं लिए अति प्रयत्नशील है, अतः सावधान हाथ इन्हें ले जाना चाहिए—

'सा प्रीता तन तस्य सद्भावने पात्रमयमनितिप्रमणीयश्चेति मत्वा तं कुण्डले अथ मुच्यास्म प्रायच्छन्वाह तथका नागराजं सुभूतं प्राधयत्यप्रमत्ता नेतुमहसीनि।'^५

नाटक में, जसा कि ऊपर उल्लेख हुआ है जनमेजय की रानी कपुष्पमा भी उत्तक का तथक की ओर में सावधान रहने वं लिए कहती है।

१ महाभारत भा. ३ अ. २३ ने १७ तक

२ महा. भा. ३ अ. ६६

३ वहा. भा. ३ अ. ११७

४ अथ वस्मिन्विक्तं वाचं केन्द्राण जनमेजय पौष्यस्य क्षत्रियावपत्नोपाध्याय चक्रतु।

५ महाभारत भा. ३ अ. १११

जनमेजय से 'याय' के लिए सरमा की प्रार्थना

प्रथमार्ध के तृतीय दृश्य में एक प्रसंग सरमा का राजा जनमेजय के दरबार में जाकर 'याय' के लिए प्रार्थना करना भी है। सरमा, जसा कि ऊपर बताया जा चुका है यादवा की ही एक कुटुंबशाखा में उत्पन्न हुई महिला है। किंतु उसने अपना विवाह स्वेच्छा से नागवंश के प्रसिद्ध सरदार वामुक्ति से किया है। इस प्रकार जनमेजय से सरमा यादवी आयवंग की है किंतु परिणय-सम्बन्ध से वह नाग है। उसका एक पुत्र है जिसका नाम नाटक में माणवक है। महाभारत में इस नाम का उल्लेख नहीं है वहाँ उसे सारमय कहकर निर्दिष्ट किया गया है। सरमा के इस पुत्र को जनमेजय के भाइया ने पीटा है। इसका न्याय कराने के लिए ही वह राजा के दरबार में जाती है और राजा के भाइया के विरुद्ध अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है किंतु नागपरिणीता हान के कारण, राजा उसके अभियोग पर ध्यान नहीं देता। इतना ही नहीं उस अपमानित एक लालछिन भी किया जाता है। उसी को अपराधी घोषित करके दुल्हार दिया जाता है। उसका इतना ही दोष है कि आय ललना होकर नागजाति के पुरुष से विवाह क्या किया। नाटक का यह प्रसंग महत्वपूर्ण है। अतः इसका कुछ अंग नीचे उद्धृत है—

जनमेजय—तुम्हारा नाम क्या है ? तुम क्या यहाँ आयी हो ?

सरमा—मैं यादवी हूँ। मैंने अपनी इच्छा से नाग परिणय किया था पर उसकी कुश्लिता न सह सकी। कारण यह कि वे दिन रात आयों से अपना प्रतिशोध लेने की चिन्ता में रहते थे। यह मुझसे सहन नहीं होता इसीलिए मैं उनका राज्य छोड़कर चली आयी।

वपुष्टमा—छि ! आय ललना होकर नाग जाति के पुरुष से विवाह किया है ! तभी तो यह लालछना भोगनी पड़नी है।

सरमा—सम्प्रानी मैं तो एक मनुष्य जाति देरती हूँ—न दस्यु और न आय ! 'याय' की सबसे पूजा चाहती हूँ—चाहे वह राजमन्दिर में हो या दरिद्र कुटीर में। सम्प्रान्त 'याय' कीजिए।

जनमेजय—दस्यु महिला के लिए काइ आय 'यायाधिकरण' में नहीं बुलाया जायगा। तुमने व्यर्थ इतना प्रयास किया।

सरमा—सम्प्रान्त मनुष्यता की भयंदा भी क्या सबके लिए मिन मिन है ? क्या आयों के लिए अपराध भी धर्म हो जायगा ?

जनमेजय—चप रहो। पतिता स्त्रिया को श्रेष्ठ और पवित्र आयों पर अपराध लगाने का काइ अधिकार नहीं है।

सरमा—किन्तु पतिता पर अपराध करने का आयों को अधिकार है ? राजाधिराज, अधिकार का मद पान न कीजिए 'याय' कीजिए।

जनमेजय—असभ्या म मनुष्यता क्वा । उनके साथ ता वैसा ही व्यवहार होना चाहिए ।

जाओ मरमा । तुमको लज्जित होना चाहिए ।

सरमा—रतनी घणा । एश्वय का इतना धमण्ट । प्रभुत्व और अधिकार का इतना अपव्यय ।
मनुष्यता इसे नहीं सहन करेगी । सन्नट सावधान ।

काश्यप—जा जा, चली जा—बक-बक करती है ।

सरमा—काश्यप, मैं जाती हूँ । निन्तु स्मरण रखना दुखिता, अनाया रमणी का अपमान,
पीडिता की मम-यया कृत्या होकर राजकुल पर अपनी कराल छाया डालेगी ।

उम समय तुम्हारे जैसे लोलुप पुरोहित उससे राजकुल की रक्षा न कर सकेंगे ।^१

ऊपर के वयापनयन म प्रसादजी न उस युग की भावना का मार्मिक चित्र अंकित किया है । आयत्व का इतना गव । और आयतरो के प्रति इतनी घणा । वायकर्ता एव प्रजारदाक के राजसिंहासन पर बैठकर भी दम्भ के वशीभूत होकर जनमेजय ने वाय की मिश्रुक नारी का दुत्कारा उस अपमानित एव लाच्छित किया । सरमा का अमिताप व्यथ नहीं गया । जनमेजय की नाग जाति की महिला से उत्पन्न, श्रुतश्रवा के पुत्र सोमश्रवा को अपना पुराहित बनाना पडा और नागी के ही पुत्र आम्नीन के आगे झुकना पडा ।

जनमेजय के पास वाय क लिए सरमा की पुकार और न मिलन पर राजा के प्रति उसके अमिताप का विवरण महाभारत म भी है ।^२ किन्तु नाटक स यहा विवरण म कुछ भिन्नता है । यहा जिस समय सरमा वाय के लिए राजा के पास पहुँचती है उस समय राजा कुरशेत्र म अपने माइया सहित दीघसत्र यन म दीक्षित है—

तच्छ्रुत्वा तस्य माता सरमा पुत्र-दुखाता तत सत्रमुपागच्छत यत्र स जनमेजय सह भ्रान्ति दीघसत्रमुपास्ते ।^३

किन्तु राजा जनमेजय और उसके भाई कोई भी, सरमा को कुछ उत्तर नहीं देता है । वह क्रुद्ध होकर राजा को शाप देती है, यह मरा पुत्र अनपराधी था तो भी इस पीटा गया है, अत तुम्हारे ऊपर अदृष्ट सकट उपस्थित होगा—

न किंचिदुक्तव तस्त सा तानुवाच यस्मादयममिहतोऽनपकारी तस्माददृष्ट त्वा मयमा गमिष्यतीति ।^४

प्रसादजी न महाभारत के विवरण क आधार पर ही नाटक म यह प्रसंग प्रस्तुत किया है । परन्तु इसके रूप का उहान कुछ भिन्न बना दिया है । महाभारत के विवरण म जनमेजय की रानी वपुष्टमा और पुराहित काश्यप का भी कही उल्लेख नहीं है । नाटक में य दोना उस समय उपस्थित रहने हैं ।

चतुर्थ दृश्य म सरमा का पुत्र उल्लिखित अपमान से दुखी होकर प्रतिशोध लेने के लिए, गुप्त रूप से अपमानकता की हत्या करना चाहता है किन्तु माता उसे रोक देती है—

१ जनमेजय का नागयत धक १ दृश्य ३ पृ० ३१ ३२

२ महाभारत आण्डिपव ३ १ ६

३ वही आण्डिपव ३ ७

४ वही आण्डिपव ३ ६

हत्या^१ तू गरमा का पुत्र हारर गुप्त रूप से हत्या करना चाहता था, पर यह कलन में नहीं सह सकता थी। तू उनमें लम्बर वही मर जाना या उन्मत्त मार गलता, यह मुझे स्वीकार था। परन्तु उसका लिए तू भ्रमा त्रिबुल बच्चा है।^१

सरमा इतन उच्च चरित्र की नारी है कि हत्या छल-नपट, विश्वामघात आदि की वह कल्पना भी नहीं कर सकती उसका आचरण तो दूर की वस्तु है। परन्तु इसने साथ ही वह स्वामिमान रहित नहीं है। वह अपमान का बर्तना चाहती है किन्तु यह स्वयं भी, वि-सहायता के लिए न तो नागा का आग हाथ पसारना पड़े और न हस्तिनापुर के शासन के आगे दीन बनना पड़े। आगे चलकर नाटक में यह अपन उन्मत्त हत्या का समा ही बर्तना लती है कि जनमेजय का मस्त्र उसके आग भुक्त जाता है बुराई का बर्तना अच्छाई से—मकट में वपुष्टमा के प्राणा का रक्षा करवे।

इस दृश्य के अवनम वतमान युग की स्थिति का वास्तविक चित्र लगित होता है। माणविक सरमा से कहता है—

‘नहीं मा बड़ी भूख लग रही है। पेट की ज्वाला ही बड़वाग्नि है जो कभी नहीं बुझती। उसे सब लोग नहीं अनुभव कर सकते। जो उत्तम पदार्थों को पर से ठुकरा दत है जिन्हें अरुचि की डरार सदा आती रहती है, व इस क्या जानेंगे। माँ, इसी के लिए एस कम हा जाते हैं जिन्हें लोग अपराध कहते हैं।^२

एक आर भुख की विवट ज्वाला है उस शांत करने के लिए जी तोड़ परिश्रम करने के उपरान्त भी इतना नहीं मिल पाता कि पर्याप्त हो। दूसरी ओर उत्तमोत्तम पदार्थों का इतना आधिक्य है कि अरुचि के कारण माग की वास्तविक इच्छा ही जागृत नहीं हो पाती। यह सामाजिक विपत्ता महाभारतकाल में भी थी प्रसादजी के युग में भी थी और आज भी देखी जा सकता है।

तक्षक का पडयंत्र

प्रथमाक के पंचम दृश्य में नागा का राजा तक्षक, अपने अपहृत प्रदण और वभ्रव की, गोमन अशोभन किसी भी उपाय से पुन प्राप्त कर लेना चाहता है। वह कहता है—

मैं अपने गजुआ को सुत्तासन पर बठे साम्राज्य का खेन खेलते, देग रहा हूँ। और स्वयं दस्युआ के समान अपनी ही धरणी पर पर रखते हुए भी काप रहा हूँ। प्रत्य की ज्वाला एस धरती में धधक उठती है। प्रतिहिसे तू बलि चाहती है तो ले मैं दूंगा। छल प्रवचना कपट अत्याचार सब तरे सहायक हांग। हाहाकार श्रद्धन और पीडा तरी सहलिया वनेंगी। रक्तरजित हाया से तरा अभिपेक होगा। शून्य गगन शव गंध पूरित धूम से भरकर तरी

१ जनमेजय का नागयज्ञ—धृक १ दृश्य ४ पृ० ३३

२ जनमेजय का नागयज्ञ—धृक १ दृश्य ४ पृ० ३२ ३३

धूपदानां वनेगा । १

अपन प्रयोजन की सिद्धि के लिए तक्षक, राजकुल में असतुष्ट राजपुराहित काश्यप को अपनी ओर मिलाना चाहता है। काश्यप उसकी सहायता करने के लिए स्वयं उपस्थित होता है। उसे यह भी दुःख है, कि मणिकुण्डल किसी अन्य ब्राह्मण को क्या मिले, यदि उनका दान दना ही था, तो वह उस ही मिलने चाहिए थे। तक्षक भी यही चाहता है कि उत्तक से छीन भपटकर वह उन्हें लाभी काश्यप को देकर बदले में उससे राजकुल का सम्बन्ध रहस्य जान लें। सयांग से, उत्तक भी वन में अपने गतव्य स्थान की ओर जाता हुआ वही आ निकलता है और थककर वहाँ सो जाता है। तक्षक चारी से कुण्डल लेने का प्रयत्न करता है, पर उत्तक जाग जाता है। तक्षक उस पर प्रहार करने को उत्प्रत हाता है कि वही मैं सरमा आकर उसका हाथ पकड़ लेती है। पुन वह सरमा पर हाथ उठाना ही चाहता है कि वासुकि आकर रोक देता है। उत्तक मुक्त होकर कुण्डल लिये चला जाता है।

राजकुल से प्रतिशोध देने के लिए राजपुराहित काश्यप को अपनी ओर मिलाने के लिए तक्षक के प्रयत्न का महाभारत में कहीं उल्लेख नहीं है। वहाँ केवल एक ही बार परीक्षित को उसने के लिए जात हुए तक्षक ने, माग में मिले एक चिकित्सक काश्यप को प्रभूत धन देकर लौटाया है इमका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त, किसी अन्य अभिसंधि में भी काश्यप का हाथ यदि रहा हो तो उसका स्पष्टतः वही भी उल्लेख नहीं मिलता है। संभवतः, काश्यप पुरोहिता के स्थान पर नये पुराहिता की नियुक्ति से इस प्रकार का कल्पना को बल मिला है।

दूसरी घटना, राजा पौष्य के यहाँ से कुण्डल लेकर जात हुए उत्तक से माग में, तक्षक कपट रूप धारण करके, कुण्डला का हरण कर लेता है। प्रथम तो वह नग्न क्षपणक का रूप बनाकर उत्तक का अनुसरण करता है और माग में एक जलाशय के किनारे पर कुण्डल रख कर ज्यों ही स्नानादि करने के लिए उत्तक पानी में उतरता है कि इतने में ही वह क्षपणक बड़ी पीछताप से वहाँ आता है और कुण्डल लेकर चम्पत हो जाता है। उत्तक जलाशय से बाहर निकलकर उसका पीछा करके उसे पकड़ लेता है किन्तु वह क्षपणक रूप को छोड़कर अपने तक्षक रूप का पुन धारण करके पृथ्वी के एक बहुत बड़े विवर में घुस जाता है।^१

अब उत्तक पौष्य की रानी की चेतावनी का स्मरण करत ही तक्षक का अनुसरण करता है। आरम्भ में उसे कुछ बठिनाई होती है किन्तु द्रुप की सहायता से वह तक्षक के पीछे-पीछे नागलोक पहुँचने में समर्थ हो जाता है। वहाँ एक अज्ञात पुत्र्य की सहायता से वह कुण्डल पुन प्राप्त कर लेता है तथा उसी के कहने से एक घाटे पर चढ़कर कुछ ही समय की

१ जनमेजय का नागयज्ञ—अध्याय १ अरण्य ५ पृ० ३५

२ उत्तकस्ते कुण्डले गृहीत्वा सोपमय्यथ पथि नग्न क्षपणकमागच्छन्त मुहुर्मुहुर्दृश्यमानमभ्यमान च । प्रथोत्तकस्ते कुण्डले स यस्य भूमावदराय प्रचक्षय । एतस्मिन् नन्दरे स क्षपणकस्त्वरमाथ उपमृत्य ते कुण्डल गृह्णावा प्रयवन् । तस्मिन्तस्मात्सिन्धुव कुत्साराय शुकि प्रपत्ता नमो त्रेवेभ्यो मरुत्पञ्च कृत्वा मत्ना जवेत् समन्वयात् । तस्य न त्रिो दुर्गमागत न न जयात् । गतीतमात्र न तद्रूप विनाय तपक्स्वरूप कृत्वा मह्या धरण्या विवत महावित्र प्रविशत् ।

नियत अवधि में अपनी गुरुपत्नी को कुण्डल समर्पित कर देता है।^१

महाभारत में उत्तक द्वारा कुण्डल लाने की कथा का विवरण विस्तार से दिया गया है। किन्तु प्रसादजी ने महाभारत के विवरण का उसी रूप में अनुसरण नहीं किया है। उन्होंने इसकी भित्ति पर कथा का जो रूप प्रस्तुत किया है, उसमें तपन और उत्तक के अनिर्दिष्ट राजपुरोहित काश्यप, वामुकि और सरमा यात्री को भी सम्मिलित कर लिया है। नाटक की कथा में नागराज तक्षक उत्तक से कुण्डल अपहृत करने में सफल नहीं हो पाता है। सरमा और वामुकि की उपस्थिति उसकी वाञ्छित काय सिद्धि में बाधक बन जाती है। उत्तक कुण्डल लेकर उसके क्षेत्र की सीमा से निर्बाध बाहर निकलने में सफल हो जाता है। परन्तु महाभारत की कथा में कुण्डल एक बार तपक द्वारा अपहृत कर लिए जान पर उह पुन प्राप्त करने में उत्तक को बड़ा सफल करना पड़ता है। उसकी सफलता में सबसे बड़ा सहायक बनता है आचाय वेद का मित्र देवराज इंद्र।^२

दामिनी का कुविचार

प्रथमान के पण्ड दृश्य को दो अंशों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम अंश में आचाय वेद के कुछ ब्रह्मचारियों का वातालाप है। यह स्वतंत्र एक मुक्त वातावरण में है और यह अगमभीर है। इसको जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है उससे ऐसा ही प्रतीत होता है कि भार डालन वाली घटनाओं से बोझिल मस्तिष्क को मनोरंजन से कुछ विश्राम दिया जाय, जिससे कि वह आग घटित होने वाली गम्भीर घटनाओं के लिए प्रस्तुत हो सके।

इस दृश्य के द्वितीय अंश में उत्तक अपनी गुरुपत्नी दामिनी को मणिकुण्डल भेंट करता है। परन्तु दामिनी का हृदय पूव से ही शुद्ध नहीं है। वह उत्तक के आने से पूव सोचती है—

उत्तक नहीं आया। मेरी कामना के लक्ष्य उत्तक। पुण्यक के बहाने मैंने तुम्हें बुलाया है। एक बार और परीक्षा करूँगी।^३ उत्तक द्वारा मणिकुण्डला का उपहार दिए जाने पर वह उहे अपने हाथों से ही बाना में पहना देने के लिए कहती है। पूवपरीक्षा के समान उत्तक इस परीक्षा में भी सफल होता है। वह क्षमायाचना पूवक अपनी असमर्थता प्रकट करता है 'तुम गुरुपत्नी हो मेरी माता के तुल्य हो। उसका कृत्य और विवेक जागत हा जाते हैं।

प्रसादजी ने आचाय वेद की पत्नी दामिनी का उत्तक के प्रति आकर्षण प्रथम दृश्य में

१ महाभारत आण्डिक ३ १३० १५८

२ वहा आण्डिक—

म हि भववानिन्ने मय सखा स्वन्नकाशाण्डिमनग्रह

हनवान् सरमात् कुण्डले गरीत्वा पुनरागताणि ॥ आण्डिक ३ १६६

३ जनमत्रय का नागपण १ ६, प ४२

भी चित्रित किया है। उसका कुछ आधार जैसा कि पूव में बताया जा चुका है महाभारत में मिल जाता है।^१ परंतु कुण्डल आनयन के समस्त प्रसंग को ध्यानपूर्वक पढ़ जाने के पश्चात् महाभारत की सम्बद्ध पक्तियां में वही उगा प्रतीत नहीं होता है कि पुण्यक के बहाने स अपने पास बुलाने का प्रयत्न किया गया हो। महाभारत में कुण्डल आनयन के प्रसंग में, आरम्भ और अंत दो ही स्थला पर गुप्तली का उल्लेख है। आरम्भ में उत्तक गुरु से गुरु दक्षिणा मागने के लिए आग्रह करता है। पर गुरु कहत है—

वस उत्तक, तुम मुझमें बार बार कहत हा कि मैं क्या गुणदक्षिणा भेंट करूँ ? तो जाग्रो घर के भीतर अपनी गुरुपत्नी से पूछ लो कि मैं क्या गुणदक्षिणा भेंट करूँ।' गुरु के आदेश के अनुसार उत्तक गुप्तली के पास जाता है और उसे आदेश मिलता है—

राजा पौष्य के यहां उसकी क्षत्राणी ने जो कुण्डल पहन रखे हैं उन्हे मागने के लिए तुम जाग्रो। उन कुण्डल को ले आग्रो। आज से चौथे दिन पुण्यक व्रत होने वाला है। उम दिन मैं उन्हे पहनकर ब्राह्मणा को भोजन परामना चाहती हू। तुम यह मनोरथ पूरा करो। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा।^२

अतः के स्थान में गुरुपत्नी उत्तक की प्रतीक्षा कर रही है। देरी के कारण उसे शाप देने के लिए विचार करती है कि इसी बीच उत्तक आकर उसे कुण्डल दे देता है। वह कहती है 'तुम ठीक समय पर आ गए। अच्छा हुआ बिना अपराध के तुम्हें मैंने शाप नहीं दिया। तुम्हारा कल्याण उपस्थित है। तुम सिद्धि प्राप्त करो।'^३ महाभारत के इस स्थल पर वही भी ऐसा भासित नहीं होता है कि आचार्य वेद का पानी का आकषण उत्तक की ओर है। पुण्यक का उल्लेख आरम्भ के अंश में अवश्य है, परंतु उसमें यह ध्वनित नहीं होता है कि इसके बहाने स उत्तक को अपने पास बुलाने का प्रयत्न किया गया हो।^४ यहाँ ता यहाँ कहा जा सकता है कि प्रमादजी ने नाटकीय उद्देश्य की सिद्धि के लिए आचार्य वेद की पत्नी के चरित्र चित्रण में महाभारत की अपर्या अपनी कल्पना का महारा अधिक किया है। नाम के साथ उसका स्वरूप का चित्रण भी अधिकांश में कल्पित है।

जरत्कारु की हत्या

प्रथम अंक के सप्तम एवं अंतिम दृश्य में मृगया खेलते हुए राजा जनमेजय के वाण

१ महाभारत—आदि० ३ ८५ ८७

२ गच्छ पौष्य प्रति राजान् काले भिष्यन्तु नश्य क्षत्रियया विनश्ये। ते आनयस्व। चतुर्थे धृष्टनि पुण्यक भविता नाम्नामाबद्धाम्यां शोभमाना ब्राह्मणान् परिवेष्टुमिच्छामि। तत् सम्पादयस्व। एव हि कुवतु, धया भविता।

—महाभारत आदि० ३ ९६

३ उत्तक ऋण कालं व्यागतः। स्वागतं ते वलम्। त्वमनागमि मया न शक्तः। न्य त्वकोपस्थितं मिद्धिमाप्नुहि।

४ जनमेजय का नाणयन—१ ६ पृष्ठ ४२

—महाभारत आदि ३ १५६

से हिरण के भ्रम से जख्खर शक्ति की हत्या कियायी गयी है। महानारत में, स्पष्ट १११ म वही पर भी जख्खर की हत्या का उल्लेख नहीं है, परन्तु इस बात का तो स्पष्ट बयन है कि परीक्षित के पुत्र राजा जनमेजय से अनजाने में एक ब्रह्महत्या हो गयी थी—

आसीव राजा महावीर्य पारीक्षितजनमेजय ।

अबुद्धिपूर्वमागच्छद ब्रह्महत्या महीपति ॥^१

इसी प्रसंग में राजा जनमेजय को ब्राह्मण की मृत्यु का कारण मी कहा गया है—

ब्रह्ममत्युरशुद्धात्मा पापमेवानुचिन्तयन् ।^२

ब्रह्महत्या के कारण ही राजा जनमेजय को पुरोहित सहित सब ब्राह्मणों ने त्याग दिया था। इस दुःख के कारण दिन रात जलता हुआ वह वन में चला गया था। उसकी प्रार्थना ने भी उसको त्याग दिया था। दुःख से दग्ध होत हुए उसने बड़ा तप किया और समस्त पृथ्वी पर विचरण करते हुए उसने स्थान-स्थान पर ब्राह्मणों से प्राप्त ब्रह्महत्या का दूर करने का उपाय पूछा—

ब्राह्मण सद्य एवते तत्पञ्च सपुरोहिता ।

स जगाम धन राजा दह्यमानो दिवानिगम ॥

प्रजाभि परित्यक्तश्चकार कुशल महत ।

अतिवैत तपस्तपे दह्यमान स मयुता ॥

ब्रह्महत्यापनोदायमपृच्छद ब्राह्मणान बहून् ।

पयटन पृथ्वीं कृत्स्ना देशे देशे नराधिप ॥^३

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि पारीक्षित जनमेजय से कोई ब्रह्महत्या हो गयी थी। इसी ब्रह्महत्या के कारण महर्षि इन्द्रो न शौनक ने उनके पास जाने पर जनमेजय का अति बड़ोर गाना में तिरस्कार किया है—

सारे शरीर से रक्त की-सी गंध आ रही है। तरा दशन शव के सदृश है तरा रूप ऊपर से भाय प्रतीत होता है, किन्तु है अकल्याणमय। वास्तव में तरा मरण तो हो चुका है अब तो तू यू ही जावित की माति घूम रहा है—

रधिरस्येव ते गंध शवस्यैव च दशनम ।

अशिव शिवसकाशो मतो जीवन्निवाप्सि ॥^४

यदि सब बातों से जनमेजय की ब्रह्महत्या तो सिद्ध हो जाती है, किन्तु इस प्रसंग में यह वही पर स्पष्ट नहीं किया गया कि जनमेजय द्वारा किस ब्राह्मण की हत्या हुई। जिसकी हत्या हुई उसका नाम यहाँ नहीं दिया गया है। प्रसादजी ने जनमेजय द्वारा महर्षि जख्खर की हत्या का चित्रण किया है। किसी नात प्रमाण के अभाव में यह कहना बठिन है कि इसके लिए प्रसादजी का आधार क्या रहा होगा।

१ महाभारत शान्ति १५ ३।

२ वही शान्ति १५० १२

वना शान्ति १५ ४६

४ वही शान्ति ३ १ २०

आस्तीक, मणिमाला और शीला

इस नाटक के द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य का आरम्भ आस्तीक और मणिमाला की बातचीत से होता है। आस्तीक यायावर महर्षि जरत्कार एव नागराज वामुनि की बहन मनमा का पुत्र है और मणिमाला, नागा के अधिपति तत्रक की पुत्री है। इसका हृदय अति कामल एव व्यवहार अति गिष्टतापूर्ण है। आस्तीक महर्षि च्यवन के गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त कर रहा है। वह अपनी माता मनमा के उपश्रापण व्यग्रहार से विनत है। मणिमाला उसे सार्वना दती है। इसी समय सम्राट जनमेजय आ जाता है। मणिमाला अपना और आस्तीक का उसे परिचय दती है। सम्राट सोमश्रवा को जो वि नामगुल की माता और सायकृपि श्रुतश्रवा का पुत्र है अपना पुरोहित बनाने के लिए प्रयत्नशील है। सोमश्रवा के पिता ऋषि श्रुतश्रवा से अनुमति प्राप्त करने के लिए उनका आश्रम की ओर जा रहा है। यहाँ मणिमाला के साथ एक ब्राह्मण कुमारी शीला की बातचीत से यह पता चल जाता है कि सोमश्रवा का जनमेजय का पुरोहित बनना भी निश्चित हो चुका है और शीला का भावी पुरोहित के साथ विवाह भी।

यहाँ इस दृश्य में मणिमाला और शीला दोनों पात्र काल्पनिक हैं। महाभारत अथवा हरित्रय में इनका कहीं उल्लेख नहीं है। आस्तीक वस्तुतः एक महत्त्वपूर्ण पात्र है। महाभारत में जनमेजय के नागयज्ञ का जा वणन है उसमें आस्तीक की भूमिका एक प्रमुख स्थान रखती है। महाभारत के आदिपर्व के अध्याय तेरह से लेकर अट्ठावन तक के डियालिस अध्याय के खण्ड को आस्तीकपर्व नाम दिया गया है। इसमें नागा से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः सभी कथाओं का वणन है। प्रसिद्ध यायावर महर्षि जरत्कार उनका ब्रह्मचर्य, तपस्या उनके विनाह न करने से, सन्तति विच्छेद के भय से अपने पितरों को दुरवस्था देखकर, कुछ गर्तों के साथ विवाह करने का निश्चय आस्तीक का जन्म आदि सब प्रकार की कथाओं का विस्तार वणन यहाँ मिलता है।

नाटक में आस्तीक को महर्षि च्यवन का गिष्य बताया गया है। महाभारत में भी ऐसा ही उल्लेख है—

वबुधे स तु तत्रव नागराजनिवेशने ।

वेदाश्चाधिजगे सागान भागवादाद्यवनामुने ॥^१

इस दृश्य में सोमश्रवा के जनमेजय का पुरोहित बनने के सम्बन्ध में जो उल्लेख किया गया है उसका आधार भी महाभारत ही है। ऊपर राजा जनमेजय के दरबार से याय न मिलने पर राजा के प्रति सरमा यादवी के शाप का उल्लेख हुआ है। इस शाप के पश्चात् राजा को उसके प्रतिशर की विन्ता होनी है। सब प्रकार के अनिष्टों के निवारण में समय विद्वान् पुरोहित के अन्वेषण के लिए वह निकल पड़ता है।^२ पिता राजा का आशवासन लाता है कि उसका पुत्र समस्त सम्भावित अनिष्टों का निराकरण करने में समर्थ है। परंतु साथ ही

१ महाभारत आदि ४० १८

२ महाभारत आदि ४ १३ २०

यह भी यथा स्यात् है कि मेरे पुत्र या यह विद्वय है कि यदि कोई ब्राह्मण स्वयं पाप धारण करेगा तो मैं उसे उगारी घनाष्ट कर्णु घनय स्यात् । यदि तुम उगारोगे पूरा इसका स्वयंकार या गहन कर गता ता इग त जाया—

‘समर्थोऽप्य भवति सया पापघृणा क्षमयितुम् । क्षम्य स्वयमुक्तानुयत मया कर्मिन्द् ब्राह्मण कनिष्ठमभियानन् स तस्म स्यात् क्षमम् । यद्यत्कृतमत्रम तथा तपस्वनिर्मिति ।’

एसा प्रतीत होता है कि काश्यप पुराणियों ने काम क यगीभूत हास्य राजस्य क साथ विद्वान्मघान किया । शत्रुघना स मिलकर उम क्षमय्य करने का प्रयत्न किया । घा पुराहिता की नयी ध्यन्या करती क लित राजा का शपथ हास पना । नागव्रग की मात घोर श्राय पिता स उत्पन्न परम तपस्वी एव विद्वान् सामन्तवा का राजपुराणिया बनात म भी सम्भवत कोई राजनानित उद्देश्य रहा हा ।

दामिनी का प्रतिशोध

आचार्य यत् का पत्नी दामिनी उत्तर क सामने अपनी मनारय सिद्धि म अगहन हासर अत्र उमम प्रतिशोध ता क त्रिण नागराज ता क की शरण ली है । मात्वी मरमा का पुत्र माणवक उम सावधान करता है कि प्रतिगाथ लन की भावना मनुष्य का अज्ञान बना दती है—

दामिनी—हाँ-हाँ स्मरण आया—प्रतिगाथ । मुझ प्रतिगाथ लना है ।

माणवक—किससे ? क्या उम लनर तुम रग सनागी ? वह जहाँ रहेगा जनाया करगा डर मारा करेगा और तडफाया करगा । उस तुम सनाल नहीं सनागी । और जिस तुम धारण नहीं कर सक्ता, उस तुम लनर क्या करोगी ? छोडो उमन पीछे न पडा देवि इसी म तुम्हारा बल्याण होगा । एव मैं ही शमरा प्रत्येक उगहरण हूँ । चारा और मारा मारा फिर रहा हूँ ।^१

परतु दामिनी प्रतिशोध के मयकर माग से पीछे नहीं हटती है । वह तगर के पास जाकर उसे विश्वास िलाती है कि यदि वह उत्तक को उसने अधीन कर दे तो वह उस मणिकुण्डल देने के लिए तयार है और साथ ही उसे सावधान भी करती है कि यदि उसने इस काय म गीघ्रता न की, ता वह स्वय उत्तक द्वारा रच बुचक्र की बलि बन जायगा । वह कहती है—

वह तुमस बन्ला लेन क लिए जनमजय क यहाँ गया है । बहुत गीघ्र तुम उसके बुचक्र मे पडोगे ।^२

द्वितीय अक के इस द्वितीय दृश्य म दामिनी को जिस रूप म प्रस्तुत किया गया है

१ महाभारत प्राणि ३ १७-१८

२ जनमेजय का नागयज्ञ २ २ पृ ५३

३ वही २ २ प ५४

वह रूप महाभारत या अथत्र नहीं मिलता। सम्भवतः नारी भावना का चित्रित करने के लिए प्रसादजी ने उसे यहाँ प्रस्तुत किया है। शत्रु का शत्रु अपना मित्र होता है। उत्तक तक्षक को अपना शत्रु मानता है, इसीलिए उत्तक को नीचा दिखाने के लिए दामिनी तक्षक की सहायता चाहती है। तक्षक और उत्तक के विरोध का आधार महाभारत है। द्वितीय अंक के तृतीय दृश्य में इसी बात को प्रमुखता दी गयी है।

नागयज्ञ की प्रेरणा

द्वितीय अंक के तृतीय दृश्य में, आचार्य वेद का शिष्य उत्तक स्नातक वनन के उपगन्त सम्राट जनमेजय के पास जाकर शासन के विरुद्ध राज्य में चल रहे एक भीषण कुचक्र के दमन के लिए उसे उत्साहित करता है। गुस्पत्नी के लिए मणिकुण्डल ले जाते समय भाग में तक्षक ने उत्तक को अपमानित होना पड़ा था। अक्सर मिलन पर अब वह उसी का प्रतिहार करना चाहता है। अनजान में हुई जख्माय की हत्या के कारण भी जनमेजय को ब्राह्मण वग के प्रबल विराध का सामना करना पड़ रहा है। सारी स्थिति पर विजय प्राप्त करने शासन के विरुद्ध उपाय सुझाता है ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होने के लिए अश्वमेध और के लिए उत्तक कुचक्र का कुचलने के लिए नाग दमन। दाना का यह समापण बड़ा महत्वपूर्ण है— जनमेजय—आपकी यह बात तो मुझे जँच गयी है और मैं ऐसा ही कहूँगा भी कि तुम यह कुचक्र भीषण रूप धारण करता जा रहा है।

उत्तक—मैं सब सुन चुका हूँ और जानता हूँ कि कुछ दुबुद्धियाँ ने यादवी सरमा तक्षक तथा आपने पुरोहित वास्यप के साथ मिलकर एक षडयंत्र रचा है कि तुम आपको इससे भयभीत नहीं होना चाहिए।

जनमेजय—मगवन यह तो ठीक है पर मुझमें अनजान में जो ब्रह्महत्या हो गयी, उससे मैं और भी खिन्न हूँ। वास्यप मुझ पर अभियोग लगाते हैं कि मैंने जान-बूझकर हत्या की, ब्राह्मणवग और आरभ्यव मण्डल भी इससे कुछ असन्तुष्ट हो गया है। पौर जनपद आदि सब लोग मैं यह आतंक फैलाया जा रहा है कि राजा जीवन मरने से स्वच्छाचारी हो गया है। वह किसी की नहीं मरता। इधर जब मैं आपसे तक्षक द्वारा अपने पिता के निधन का गुप्त रहस्य सुनता हूँ तो शोक से मरी घम नियाँ विजली की तरह तड़पन लगती हैं परन्तु मैं क्या करूँ? परिपद भी अथ मनस्क है और कमचारी भी इस आतंक से डरे हुए हैं।

उत्तक—लकड़हारा तो आप सुन ही चुके कि इसी वास्यप ने तक्षक से मिनकर राजनिधन कराया है और यही लोनूप वास्यप फिर ऐसा नुमात्रणाग्रा में लिप्त हो तो क्या आश्चर्य!

जनमेजय—होगा तो फिर मैं क्या करूँ?

उत्तक—सम्राट को विवतव्यविमूह होना गोमा नहा देना। मनोबल सर्वनित्र कीजिए।

हृदयप्रतिग हृदय व गामन स गज विपत्त रम दूर हा जायेंग । मज्ज हाया म दण्ण ग्रहण कीजिए । दुरासारी वार्द क्या भी न हा दण्ण म गुण न र्ण । सम्राट्, अपन पिता का प्रतिपाद्य लीजिए, जिसम दम ब्रह्मचारी की प्रतिभा भी पूरी हा । दन टुट स तागा का दमन कीजिए ।

जनमेजय—किन्तु मनुष्य प्रवृत्ति का अनुसर और निपत्ति का दाग है । क्या वह शम करे म स्वयम्भू है ?

उत्तर—अपना पला व लिए रान स क्या वह छूट जायगा ? उगव र्ण म गुणम करे हाग । सम्राट् मनुष्य जव ता यह रस्स्य गही जानता तभी ता यह निपत्ति का दाग बना र्हता है । यदि ब्रह्महत्या पाप है ता अश्वमेध उत्तरा प्रायश्चित्त भी ता है । अपन तीना वीर सहोत्तरा का तीन णिगामा म विजयापार सान व लिए भजिए और आप स्वय दन नागा का दमन करे के लिए तर्पिता की ओर प्रस्थान कीजिए । अश्वमेध व करी होइए । सम्राट् जय तज मरी शोषाग्नि म दुःख त नाग जन कर भस्म न हाग तज तज मुझे गाति न मिलगी । बल मद स मत्त चाट पोर् गाति हो ब्राह्मण की अश्वजा करे उमना पन अश्वय भागगी । बनलाइए आप नियति द्वारा आरोपित बलव का प्रनिरार अपा गुणों स नियामन बनकर करना चाहत हैं या नही ? और मरी प्रतिभा भी पूरी करना चाहत हैं या नही ?

जनमेजय—आय उत्तव, पीरव जनमेजय प्रतिज्ञा करता है कि अश्वमेध पीछे होगा पहन नागयज होगा ।

उत्तर—सत्पुट्ट हुआ । सम्राट मेरा आशीर्वात् है नि जीवन की समस्त बाधाया को हटा कर आपका गातिमय राज्य बने । अज शीघ्रता कीजिए । मैं जाता हूँ ।^१

ऊपर उद्धृत जनमेजय और उत्तव के इस सभाषण म उन वाता की चचा की गई है जो कि इस नाटक के लिए मूलभूत है और जिनका आधार मुख्यत महाभारत है । ये बातें हैं—

१ आय शासन व विरुद्ध नाग प्रभृति आयेंतर लोग का विद्रोह ।

२ सम्राट जनमेजय स हुई ब्रह्महत्या और उसका प्रभाव ।

३ ब्राह्मण वग का विरोध ।

४ परीक्षित की हत्या का रहस्य ।

५ अश्वमेध और नागदमन का प्रस्ताव ।

६ अश्वमेध से पूव नागयज्ञ करने की जनमेजय की प्रतिज्ञा ।

१—आय और आयेंतर जातिया का सघप बधिक युग स ही चलता रहा है । बधिक सहिताएँ ब्राह्मण आरण्यक सूत्र रामायण महाभारत अष्टाध्यायी, महाभाष्य और अष्टादश पुराण इस सघप की साभी प्रस्तुत करत हैं । देवासुर सभ्राम तो भारतीय साहित्य एव लोक जीवन की सुपरिचित बहानी है । जनमेजय व साथ नागा के प्रबल विरोध की घटना भी महाभारत की महत्वपूर्ण वस्तु है ।^२

१ जनमेजय का नागयज्ञ—२ ३ ५ १५ ५७

२ महाभारत भाषि० अ० ५० ५६

२—सघाट जनमेजय म हृद्द ब्रह्महत्या वा उल्लेख महामारत के शांतिपत्र मे हुआ है।^१ यहाँ इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि पुरोहिता महिन मय ब्राह्मणा न तथा प्रजा न भी राजा का त्याग दिया था—

ब्राह्मण सव एवते तत्पञ्च सपुरोहिता ।

स जयाम धन राजा बह्यमानो दिवानिगम ।

प्रजाभि स परित्यक्तश्चकार कुगल महत ॥^२

शांतिपत्र क इन मवद्ध अध्याया मे ऐसा प्रतीत हुना है कि इस ब्रह्महत्या क कारण जनमेजय को अत्यधिक सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पडा ।

३—शांतिपत्र स ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्महत्या हान से पूव भी जनमेजय और ब्राह्मणा का विरोध चलता रहा है । इन्द्रोत सौनक राजा से स्पष्ट रूप म यह प्रतिभा करत है कि वह भविष्यत म कभी भी ब्राह्मणा मे द्राह नहीं करेगा—

धया ते मत्कृते क्षेम सभते ते तथा कुष ।

प्रतिजानीहि चाद्रोह ब्राह्मणाना नराधिप ॥^३

और राजा जनमेजय यह प्रतिभा करता है कि मे आपके दोना चरण ठूकर गपयपूवक बहता है कि मन, वाणी और क्रिया द्वारा कभी ब्राह्मणा मे द्राह नहीं करूँगा—

नय वाचा न मनसा पुनजातु न कनणा ।

द्रोधास्मि ब्राह्मणान विप्र घरणावपि ते स्पृगे ॥^४

ब्राह्मणा के प्रति राजा जनमेजय के क्रोध का उल्लेख अथशास्त्र म कौटिल्य ने भी किया है—

कोपाज्जनमेजयो ब्राह्मणेषु विश्रान्त ।^५

अश्वमेध यन म विघ्न पडन पर ता जनमेजय के क्रोध का प्रमाण हरिकण म भी मिल जाता है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जरतकार मुनि की हत्या स पूव भी, जनमेजय के स्वभाव की उग्रता के कारण ब्राह्मणवन के साथ उसका विरोध रहा हागा, जिसका कुछ संकेत शांतिपत्र म भी उपलब्ध है । इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है ।

६—नाटक म जनमेजय को अपने पिता परीक्षित की हत्या का रहस्य सबप्रथम उत्तक स ही विदित हाता है । उत्तक स मुनन के पश्चात राजा अपने मंत्रिया स भी इस सम्बन्ध मे पूछता है और क यथावृत्त समस्त विवरण उस सुनात है।^६ उत्तक एव जनमेजय की बातचीत का वणन पीप्यपत्र म है।^७ निष्ठा समाप्त करन पर गुल्फिनिणा दन के उपरान्त उत्तक भीष्मा हस्तिनापुर म जनमेजय क पास जाता है और राजा का उमके पिता की हत्या

१ महाभारत शांतिपत्र अ० १५ व २

२ वही शांतिपत्र १५ व ४

३ वही शांतिपत्र १५ व २१

४ वही शांतिपत्र १५ व २२

५ अथशास्त्र तृतीय प्रकरण

६ महाभारत शान्ति० अ ४६ व

७ वही शान्ति० अ ३ व १७० व १८६

का समाचार सुनावकर प्रतिशोध के लिए उस तयार करना है—

स उपाध्यायेनानुभातो भगवानुत्तमं ब्रुव तथैव प्रतिविचीयमाणो हस्मिन्नापुर प्रनम्य ।

स हस्तिनापुरं प्राप्नोति नचिराव विप्रसत्तम ।

समागच्छत राजानमुत्तमो जनमेजयम् ॥^१

वहाँ जाकर उसने राजा से कहा कि तुम और कामा में ही लग हो जा करणीय है उग नहीं कर रहे हो—

अयस्मिन् करणीये तु कार्ये पार्थिवसत्तम ।

वात्पादिवायदेव त्वं क्रुदये ऽपसत्तम ॥^२

राजा ने पूछा कि बताइए, आज भरे करने योग्य कौनसा कार्य उपस्थित है जिगने कारण आप यहाँ पधारे हैं—

ब्रूहि मे किं करणीयमद्य येनासि कार्येण समागतस्तयम् ।

इसके पश्चात् उत्तर में तब द्वारा जनमेजय ने पिता की हत्या का समस्त वृत्तान्त तथापि म सुनाया है और राजा से अनुरोध किया है कि वह सपथ का अनुष्ठान करके उसकी प्रज्वलित अग्नि में उस तथाक पापी को क्षीघ्र ही जला दे—

होतुमहसि तं पापं ज्वलिते हृष्यवाहने ।

सपसथे महाराज त्वरितं तद विधीयताम् ॥^३

और कहा कि ऐसा करके आप अपने पिता की मृत्यु का बदला चुका सकेंगे और मर्यादा भी पूरा हो जाएगी । महाराज, तथाक बड़ा दुरात्मा है । मैं गुस्से के लिए एक कार्य करने जा रहा था जिसमें उस दुष्ट ने बड़ा विघ्न डाला—

एयं पितुश्चापचितिं कृतवास्त्व भविष्यति ।

मम प्रियं च मुमहतं कृतं राजन भविष्यति ॥

कमलं पृथिवीपालं मम येन दुरात्मना ।

विघ्नं कृतो महाराज गुणव्यं चरतोऽनघ ॥^४

इस प्रकार से उत्तर राजा जनमेजय को पितृहत्या का प्रतिशोध लेने के लिए सपथ आरम्भ करने को उद्यत कर लेता है । महामारुत का यही भाग द्वितीय अथवा तृतीय दृश्य की कथा का आधार है । यहाँ पर राजा की ब्रह्महत्या एक उसे दूर करने के साधनभूत अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख नहीं है ।

दामिनी का अपमान

द्वितीय अंक के चतुर्थ दृश्य में आचार्य वेद की पत्नी दामिनी उत्तक से प्रतिशोध लेने

१ २ महाभारत भा० ३ १७० १८५

३ महाभारत भा० ३ १८३

४ वही भा० ३ १८४ तथा १८५

के लिए सहायता व उद्देश्य से तत्काल के घर में जाती है और वहाँ उमका पुत्र अश्वसेन उसे धर्मपति करना ही चाहता है कि उसकी बहन मणिमाला के बहन आ जान से उमकी रक्षा हो जाती है।

महाभारत में खाण्डववन व दाह के प्रसंग में नागराज तथक के पुत्र अश्वसेन का भी उल्लेख है। यह इन्द्र की सहायता से बड़ी कठिनाई से खाण्डव वन की उस प्रदीप्त अग्नि से निकल सजने में समर्थ हो सका था—

अश्वसेनोऽभवत्तत्र तक्षकस्य सुतो बली ।
स यत्नमकरोत् तीव्र मोक्षाय जातवेदस ॥
त मुमोक्षपिपुबन्धो वातवर्षेण पाण्डवम् ।
मोहयामास तत्कालमश्वसेनस्त्वमुच्यते ॥^१

अश्वसेन के अतिरिक्त इस दृश्य की शेष घटना कल्पित है।

जनमेजय के विरुद्ध पडयत्र

द्वितीय अंक के पथम दृश्य में तथक, वास्यप सरमा, वेद कुछ नाग तथा कुछ ब्राह्मण एक साथ बँठे मंत्रणा कर रहे हैं। तथक ब्राह्मणा का आशवासन देता है कि पौरवा का नाग होना पर वह परिपद की दामनसत्ता ब्राह्मणा के हाथों में सौंप देगा। राजा जनमेजय का राजपुरोहित काश्यप तथक के साथ मिन चुका है किन्तु अथ ब्राह्मण तथक पर अभी विद्वान्तास नहीं करते हैं यद्यपि जनमेजय के शासन से वे भी असन्तुष्ट प्रतीत होते हैं, परन्तु यादवी सरमा तथक और काश्यप का विरोध करती है। वह कहती है—

एक दम्बुदल का उमका स्थानापन्न बनाया बुद्धिमत्ता नहीं है। धर्म का दाग करके एक निर्दोष आय सन्नाट का अपन चशुल में फँसाकर उमके पतित होने की व्यवस्था देना, जिममें वह राजच्युत कर दिया जाय, क्या उचित है? सा भी यही तर्क नहीं, उसके कुल-धर्म की आयपद से इस प्रकार वचित कर देने की कुमंत्रणा कहा तर्क अशुभ होगी।^{१,२} सरमा आग कहती है—

मैं यादवी हूँ अपमान का बदला पडयत्र करके नहीं लूँगी। यदि मेरे पुत्र का बाहुधरो में बल होगा, तो वह स्वयं प्रतिशोध ले लगा।^३

सरमा यादवी वामुकि नाग की पत्नी होकर भी आर्यों के विरुद्ध नागों के पडयत्र में सम्मिलित नहीं हानी है। यहाँ उसका चरित्र बड़ा उच्चाल चित्रित किया गया है। इस कुमंत्रणा के बीच में ही वामुकि की बहन धीर जरत्कार मुनि का पत्नी मनमा सूचना

१ महाभारत भा० २२६ ५ और ६

२ जनमेजय का नागपत्र २ ५ ५० ६२

३ बही २ ५ ६३

देती है कि जनमेजय की सेना ने पुनः तक्षशिला पर भयंकर आक्रमण किया है। इस बार जो लोग बची हुई हैं उन्हें अग्निबुद्ध में जला दिया जाना है। नाग जाति के विरुद्ध आर्यों की प्रतिहिंसा जाग उठी है। यहाँ यहाँ भी पता चलता है कि नागा ने जनमेजय के पिता परीक्षित को आग से जलाकर ही मारा था अतः वह नागा को आग में भस्म करके अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध ले रहा है।

जनमेजय व तक्षशिला के अभियान का पौष्यपर्व में उल्लेख है—

स तथा भ्रातृन् सदृश्य तक्षशिला प्रत्यभिप्रतस्थे त च देश वशे स्यापयामास ।^१

दूसरा उल्लेख इसी अर्थात्—

पुरा तक्षशिलासु य निवृत्तमपराजिनम् ।

सम्यग विजयिन दष्ट्वा समतामित्रिभिव तम् ॥^२

तक्षशिला विजय करके जीतने से सम्बन्धित है। ऊपर निर्दिष्ट यह अभियान सम्भवतः दूसरा है जिसमें नागा का जीवित अवस्था में ही पकड़ पकड़कर अग्नि में डाल दिया जाता था।

द्वितीय अर्थात् छठे दृश्य में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं है। सामथ्र्या गीला मणिमाला और महर्षि च्यवन—इनका कुछ सम्बन्ध है। इससे सूचना मिलती है कि तक्षशिला में भीमसेन हत्याकाण्ड चल रहा है। राजा जनमेजय के पुरोहित वन जान पर च्यवन सोमथ्र्या की वतस्य पालन के प्रति सचेत करत हैं—

वस एमा काम करना जिसमें दुरामा वाश्यप न ब्राह्मणा की जो विडम्बना की है वह सब धुन जाय और सत्र पर ब्राह्मणा की सच्ची महत्ता प्रकट हो जाय। त्याग का महत्त्व जो हम ब्राह्मणा का गौरव है सदैव स्मरण रहे। धर्म कमी धन के लिए आचरित न हो वह श्रेय के लिए हो प्रवृत्ति व कर्मण के लिए हो और धर्म के लिए हो। वही धर्म हम तपोधनों का परम धर्म है।^३

इस दृश्य व सामथ्र्या और महर्षि च्यवन दोनों का महाभारत में उल्लेख हुआ है। जनमेजय द्वारा पुरोहित पद के लिए सोमथ्र्या के वरुण का महाभारत में जो उल्लेख है उसे ऊपर बताया जा चुका है।

सपथका का आरम्भ

द्वितीय अर्थात् सप्तम दृश्य से आगे होता है कि राजा जनमेजय के सत्र पर राजा एव बची हुई नागा को अग्नि में जीवित जतान का भीमसेन काय निर्वाध रूप से कर रहे हैं। प्रतिशोध की भावना का इतना उग्र रूप। इतनी नागहत्या ॥

इस अर्थात् अष्टम दृश्य में भी कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं है। आचार्य वेद की पत्नी दामिनी जीत आती है। आचार्य उस क्षमा करके पुनः आश्रय देत है।

१ मनुस्मृतिका भाग ० ३ २०

२ वन भाग ३ १०२

३ जनमेजय का नापवर्ण २ ६ १० ६८

वेदव्यास और जनमेजय

तृतीय अक्ष के प्रथम दृश्य का आरम्भ राजा जनमेजय के दरबार में महर्षि व्यास के आगमन से होता है। महर्षि जनमेजय की समस्त जिज्ञासाओं का समाधान करते हैं। जनमेजय का मुख्य प्रश्न यह है कि उनके एव भीष्मजी के रहत हुए समस्त वीरों का सहाय करनेवाला महाभारत युद्ध हुआ ही क्या? उन्होंने रोका क्या नहीं? महर्षि उत्तर देते हैं—

“आयुष्मान् तुम्हारे पितामहा ने मुझसे पूछकर कोई काम नहीं किया था और न विना पूछे मैं उनसे कुछ कहने ही गया था क्योंकि वह नियति थी। दम्भ और अहंकार से पूण मनुष्य अदृष्ट शक्ति के क्रीडाबन्धु है। अथ नियति कत त्वम” से मत्त मनुष्यों की कम शक्ति को अनुचरी बनाकर अपना काम करती है और ऐसी ही भाँति के समय विराट का वर्गीकरण होता है। यह एकदलीय विचार नहीं है। इसमें व्यक्तित्व की मर्यादा का ध्यान नहीं रहता, सबभूतहित की कामना पर ही लक्ष्य होता है।

‘× × पीरव, स्मरण रखो, पाप का फल दुःख नहीं, किन्तु एक दूसरा पाप है। जिन कारणों से भारत युद्ध हुआ था, वे कारण या पाप बहुत दिनों से संचित हो रहे थे। वह व्यक्तिगत दुष्कर्म नहीं था।’^१

जनमेजय महर्षि से अपना भविष्य भी जानना चाहता है। किन्तु वह बत्स यह कुतूहल अच्छा नहीं। जो हाँ रहा है उसे होने दो। अतःगत्मा को प्रवृत्तिस्थित कराने का उद्योग करा। कहकर उस शांत करना चाहते हैं किन्तु उसके आग्रह करने पर वे कहते हैं—

‘जनमेजय तुम्हारा भविष्य भी बहुत रहस्यपूर्ण है। तुम्हारा जीवन श्रीकृष्ण के किये हुए एक आरम्भ की इति करण के लिए है। × × नियति केवल नियति जनमेजय और कुछ नहीं। ब्राह्मणा की उत्तजना से तुमने अदबमेध करने का जो दृढ मङ्गल किया है उसमें कुछ विघ्न होगा और घम के नाम पर आज तक जा बहुत सी हिंसा होती आयी है, वह बहुत दिनों तक के लिए रुक जाने का है।’

जनमेजय कुछ आश्चर्यित सा होना है—‘यदि कोई एसी बात हो तो प्रभु मैं यन् न कहूँ?’ किन्तु महर्षि उसे रोकते नहीं। वे कहते हैं—‘बत्स, तुमका घन करना ही पडेगा। तुम्हारे सिर पर ब्रह्महत्या और इतनी नागहत्या का अपराध है। इसी यज्ञ की आज्ञा से ब्राह्मण समाज ने अभी तक तुम्हें पतित नहीं ठहराया है। घम का शासन तुम्हें मानना ही पडेगा। तुम्हारी आत्मा इतनी स्वच्छन्द नहीं कि तुम प्रचलित परम्परा का उल्लंघन कर सको। अभी तुम्हारे स्वच्छन्द होने में विलम्ब है। तुम्हें तो यह त्रियापूर्ण यज्ञ करना ही पडेगा, फल चाहे जा हो।’^२

मानव नियति के हाथों का एक खिलौनामात्र है। वह सोचता कुछ है और होता कुछ और है। महानागत का युद्ध नियति के विधान का ही एक परिणाम था। जनमेजय

१ जनमेजय का नागयज्ञ ३ १ प० ७३-७४

२ वही ३ १ प० ७५

के जीवन की घटनाएँ भी पूर्व निर्धारित नियति के किसी सत्त्व के अनु रूप घटित-सी हो रही हैं। ऊपर के उद्धृत अंश में महर्षि व्यास ने इसी बात का स्पष्टीकरण किया है। यह अंग तृतीय अंक में घटने वाली घटनाओं की भूमिका प्रस्तुत करता है, यह महत्त्वपूर्ण है इसीलिए यहाँ उद्धृत किया गया है।

तृतीय अंक के प्रथम दृश्य में महर्षि व्यास और जनमेजय के इस वयोपक्रम का आधार मुख्य रूप से हरिवंश है।^१ वैसे महाभारत में भी जनमेजय के अश्वमेध यज्ञ में अपने शिष्यमण्डल सहित महर्षि व्यास के आगमन, महाभारत की क्या सुनने के लिए जनमेजय की जिज्ञासा एवं महर्षि के आदेश से वैशम्पायन द्वारा कथा के प्रवचन आदि का वर्णन है।^२

हरिवंश में नागयज्ञ के पश्चात् जनमेजय द्वारा अश्वमेध यज्ञ का निश्चय कर लेने पर महर्षि व्यास का आगमन होता है—

तस्मिन् सत्रे समाप्तेऽथ राजा पारोक्षितस्तदा ।

यष्टु स वाजिमेधेन सम्भारानुपचक्रमे ॥

ऋत्विक् पुरोहिताचार्यानाहूपेदमुवाच ह ।

यक्ष्येऽह वाजिमेधेन ह्य उत्सज्यतामिति ।

ततोऽस्य विज्ञाय चिकीर्षित तदा,

कृष्णो महात्मा सहसाऽऽजगाम ।

पारोक्षित द्रष्टुमदीनसत्त्व

द्विपायन सवपरावरज ॥^३

महाभारत में जनमेजय की समाधि में महर्षि व्यास के आगमन का उल्लेख इस प्रकार है—

जनमेजयस्य राजर्षे स महात्मा सदस्तदा ।

विवेक सहित निष्यवेद वेदागपारग ॥^४

महर्षि के आगमन और स्वागत के पश्चात् हरिवंश पुराण में राजा जनमेजय महाराज युधिष्ठिर द्वारा किया गया राजसूय यज्ञ को ही कुहूना के विनाश का कारण मानते हुए व्यास जी से कहता है कि आप तो अतीत अनागत का जानते थे। आप जस नेता के रहते हुए यह घनघ कस सम्भव हुआ—

भयानपि च सर्वेषां पूर्वेषां न पितामह ।

अतीतनागतज्ञश्च नापश्चादिकरश्च न ॥

ते कथं भवता नेत्रा बुद्धिमन्तश्च्युता मयात ।

अनायास ह्यपराध्यन्ते कुनेतारश्च मानवा ॥^५

व्यासजी न उत्तर दिया तुम्हारे पितामह काल की प्रेरणा से निपरीत अवस्था का प्राप्त हो गया था। व मुझमें अविष्य नहीं पूछना था और मैं जिना पूर्व जिना को कुछ बताना नहीं है।

१ अश्वमेध अष्टादश १२

२ पारोक्षिक अ १० ११

३ हरिवंश अश्वमेध २ २०

४ महाभारत पारोक्षिक अ १० ७

५ हरिवंश अश्वमेध २ २२ २५

भविष्य को पाट दन की शक्ति में किसी म नहीं दगता हूँ क्याकि वान ने जिस गति का विधान किया है उसका परिहार असम्भव है—

कालेन विपरीतास्ते तव पूवपितामहा ।
न मा भविष्य पच्छति न चापूष्टो ब्रवीम्यहम् ॥
सामथ्य न च पश्यामि भविष्यस्य निवतने ।
परिहृतु न शक्या हि कालेन विहिता गति ॥^१

दस प्रकार इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि प्रसादजी ने हरिवंश को आधार बनाकर ही इस नाटक के तृतीय अंक के आरम्भ के दृश्य की रचना की है। यहाँ राजा जनमेजय के अपने भविष्य के सम्बन्ध में नाटक में पूछे गये प्रश्न और उत्तर का भी विवरण दिया हुआ है—

त्वया त्विदमहं पूष्टो वक्ष्याम्यागतु भावि यत ।
अतश्च बलवान् कालं भ्रुत्वापि न करिष्यसि ॥
न सररभात न चारम्भान न व स्यास्यसि पौरुष ।
लेखा हि काललिखिता सबन्धा दुरतिभ्रमा ॥
अश्वमेधं भ्रतुश्चष्ट क्षत्रियाणां परिश्रुत ।
तेन भावन ते यज्ञं वासवो घपयिष्यति ॥^२

नाटक में जनमेजय और महर्षि व्यास के समापण में जिस नियति के विधान की चर्चा पुनः पुनः हुई है उसका विनाश वधन हम यहाँ मिल जाते हैं। नाटक में महर्षि से इतना ही कहा गया है कि ब्राह्मणों की उत्पत्ति से तुमने अश्वमेध करने का जो दण्ड स्वरूप किया है उसमें कुछ विघ्न होगा और घम के नाम पर आगे तब जो बहुत सी हिंसा होनी आयी है वह बहुत दिनों तक के लिए रक जायेगा है। यहाँ विघ्न के स्वरूप का स्पष्टीकरण नहीं है, परन्तु हरिवंश में तब यम वामदेव घपयिष्यति कहकर उसे स्पष्ट कर दिया गया है। जनमेजय द्वारा किये गए अश्वमेध के पदचक्र कोई क्षत्रिय श्रेणी नहीं करेगा अथवा भविष्य में अश्वमेध यज्ञ समाप्त हो जायेगा और इस प्रकार उनमें हानि वाली हिंसा का अन्त हो जायगा। इस बात का भी निर्देश यहाँ है—

त्वया वृत्तं भ्रतुश्च वाजिमेघ परतप ।
क्षत्रिया नाहरिष्यति यावद भूमिघरिष्यति ॥^३

इस प्रकार जनमेजय की जिनामा का समाधान करके महर्षि व्यास विदा लेकर जनमेजय की परिपद से चले जाते हैं—

सन्स्थान सोऽभ्यनुत्ताय कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।

पुनर्ब्रूयाम इत्पुत्रत्वा जगाम भगवानूपि ॥^४

परन्तु नाटक में भगवान् व्यास जनमेजय के पास नहीं जाते हैं अपितु वही उनके पास आता

१ हरिवंश पुराण भविष्यपर्व २ २६ एवं २७

२ वही भविष्यपर्व २ २६ २८

३ वही भविष्यपर्व २ ३५

४ वही भविष्यपर्व ५ ५

है। इसीलिए बात समाप्त हो। पर जामेजय के चले जाते। पर ये धर्मो आश्रम में ध्यानस्थ हो जाते हैं और इसमें पश्चात् उनका दशासक विष्णु आयुष्मान् गामथ्रवा गीता आश्रम और मणिमाला—सब महर्षि को ध्यानस्थ देगतर कुछ दूर दृष्टार उग यन्मयी का जो वणा भरते हैं उससे भी एसा प्रतीत होता है कि वह स्थल उचित आश्रम है। य कहते हैं— नीला—आयुष्य अभी तो भगवात् ध्यानस्थ हैं।

सोमथ्रवा—तब तर आधो, हम लोग इस मनमुग्ध पातशाभा का दण्डें। तपा मात् रमणीयता का साथ एसी पाति कही और भा दगता में आयी है ?

आस्तीक—आयावत का समस्त प्राणा स इसमें कुछ विगपता है। भावना की प्राप्ति और कल्पना के प्रत्यक्ष की यह समस्यली हृत्पय में कुछ प्रनियानीय प्राणा कुछ विगपण उल्लास उत्पन्न कर देती है। द्वेष यहाँ तब पहुँचते-पहुँचते धक्कर माग में ही कही सो गया है। कृष्णा आतिथ्य का लिएवननाभी की भाँति प्राणता का स्वागत कर रती है। सो इस कानन के पत्ता पर सरलनापूण जीवा का सच्चा चित्र उमट्टन हो जाता है।

मणिमाला—भई मुझे तो इस दृश्य जगत् में क्षणभर स्थिर होने का लिए अपनी समस्त वक्तिया के साथ मुद्ध करना पड़ रहा है। वह कर्णा की कल्पना जो मुझे जगमीन बनाय रखती थी यहाँ आने पर गान्ति में परिवर्तित हो गयी है। मानव जीवन को जो कुछ प्राप्त हो सक्ता है वह सब जस मिल गया है।^१

ऊपर सोमथ्रवा, आस्तीक और मणिमाला की अनुभूतिया के चित्रण से स्पष्ट है कि यह स्थल एक आश्रम ही सम्भव हो सक्ता है। महर्षि का जामेजय के जान पर ध्यानस्थ होना भी आश्रम में ही युक्त है। यहाँ पर जा लोग व्यासजी के दर्शना का लिए आय हैं उनमें और सबका परिचय तो पहले आ चुका है, आस्तीक नया है। वह प्रथम बार लिखायी दिया है। आस्तीक यायावर महर्षि जरत्कारु एवं नागकाया वामुनि की बहन मनसा का पुत्र है। इसका नाटक में बड़ा महत्त्वपूर्ण याग रहा है। इसने द्वारा नाटककार न नागा एवं आर्यों में मेल कराने का काम सम्पन्न कराया है। महर्षि यास भी यहाँ उससे ऐसा ही काय करने के लिए कहते हैं। आस्तीक के साथ सोमथ्रवा को—

वत्स सोमथ्रवा तुम राजा के पुरोहित हुए यह अच्छा ही हुआ। पर देखो धर्म का शासन विगडने न पाये। और इसके बाद तपक की पुत्री मणिमाला से—

“नागराजकुमारी अदृष्ट गति न तुम्हारे लिए भी एक बड़ा भारी कर्तव्य रख छोड़ा है जो इस आय और अनाय ही नहीं, किन्तु समस्त मानव जाति के इतिहास में एक नया युग उत्पन्न करेगा। विश्वात्मा तुम्हें उसमें सफलता दे। एसा कहलाकर प्रसादजी ने भविष्य की घटनाओं की एक पृष्ठभूमि-सा प्रस्तुत की है।

महर्षि यासजी से आस्तीक सोमथ्रवा प्रभृति पण्डितों का मिलन की घटना का महामारत या हरिवंश में कही उल्लेख नहीं है यह सब कल्पित है।

अश्वमेध यज्ञ में कुलपति शौनक का आचायत्व

तृतीय ध्रुव के द्वितीय दशक में, दो नयी सूचनाएँ प्राप्त होनी हैं। प्रथम तो यह, कि याज्ञवी मरमा, किमी विनाय उद्देश्य की सिद्धि के लिए जनमेजय की रानी वपुष्टमा के अत-पुर में वग परिवर्तित करके परिचारिका बन जाती है। दूसरी सूचना यह है कि राजा जनमेजय की ब्रह्महत्या को दूर करने के लिए अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया जा रहा है, जिसमें कुलपति शौनक आचाय बनेंगे। प्रथम का नाटकीय महत्त्व होत हुए भी ऐतिहासिक महत्त्व नहीं है क्योंकि उसका आधार लेखक की कल्पना मात्र है। दूसरी, जिसमें जनमेजय का अश्वमेध में शौनक के आचाय बनना का उल्लेख है अग्नि महत्त्वपूर्ण एवं ठोस प्रमाणा में पुष्ट चिरविश्रुत सत्य है, जिसका उल्लेख महाभारत के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों में भी मिलता है।^१

जब जनमेजय में अनजाने में ब्रह्महत्या हाँ गयी तो सब ब्राह्मणों ने उसका बहिष्कार कर लिया। दुःखी होकर वह इन्द्रोत्त शौनक के पास गया और उनके चरणों में गिरा। अग्नि शौनक ने पहले तो राजा का बड़ा निरस्कार किया—

दह्यमान पापकृत्या जगाम जनमेजय ।
धरिष्यमाण इन्द्रोत्त शौनक सशितग्रतम ॥
समासाद्योपजग्राह पादयो परिपीडयन् ।
ऋषिदंष्ट्रया नप तत्र जगहँ सुमृग तदा ॥^२

परन्तु जब जनमेजय ने ऋषि से विश्वास दिलाया कि मैं पाप के कारण दुःखी हूँ आप मुझ पर कृपा करें, आग कभी धम की उपेक्षा नहीं करेगा—

अनुत्पये च पापेन न च धम विलोपये ।
बुभ्रूपु भजमान च प्रीतिमान भव शौनक ॥
नव चाचा न मनसा पुनर्जातु न कर्मणा ।
द्रोष्ठास्मि ब्राह्मणान विप्र चरणवपि ते स्पृगे ॥^३

इसके पश्चात् राजा ने ऋषि शौनक को जब यह विश्वास दिलाया कि वह कभी भी ब्राह्मणों के साथ द्रोह नहीं करेगा, तब उन्होंने उसके अश्वमेधयज्ञ का होता बनना स्वीकार किया और यज्ञ कराया—

एवमुक्त्वा तु राजानमिन्द्रोत्तो जनमेजयम् ।
याजयामास विधिवद वाग्निमेधेन शौनक ॥^४

अश्वमेधयज्ञ का पूरण रूप से सम्पन्न हो जान पर राजा के सम्पूर्ण पाप दूर हो गए। उसने अग्नि के समान ईश्वरीयमान रूप प्राप्त किया और नमामण्डल में चन्द्रमा के समान उसने अपने

१ महाभारत शान्तिपर्व १५० १५१ १५२

२ वगी शान्तिपर्व १५० ७८

३ वगी शान्तिपर्व १५१ १५ और २२

४ वही शान्तिपर्व १५१ ३८

राज्य में प्रवेश किया—

तत स राजा व्यपनीतकल्मष
श्रयोवत्त प्रज्वलितानिरूपयान ।
विवेश राज्य स्वममित्रकर्मण
यथादिक् पूणवपुर्निगाकर ॥^१

इस प्रकार शांतिपर्व के इस वचन से यह स्पष्ट है कि ऋषि इन्द्रोत्त शौनक ने जनमेजय का अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कराया था। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि शान्तिपर्व में ऋषि इन्द्रोत्त शौनक द्वारा कराये गये इस यज्ञ में किसी प्रकार के विघ्न का उल्लेख नहीं हुआ है।

आस्तीक का माता द्वारा त्याग

तृतीय अंक के तृतीय दृश्य में समाचार मिलता है कि तम्बशिला की और जनमेजय के अश्वमेध का अश्व आने वाला है। मनसा सब नागों को प्रतिशोध के लिए तयार करती है कि उसका पुत्र आस्तीक विग्रह का अनावश्यक समझता है किन्तु माता उसके शांतिविचार से सहमत नहीं होती है और विगोधी विचारधारा को अपनाने के कारण उसका त्याग कर देती है। परन्तु आस्तीक नागा और आर्षों में शान्ति कराने के अपने विचार पर दृढ़ रहता है।

उधर मनसा की उत्तेजना से अश्व का प्रतिरोध करते हुए बहुत से नाग हताहत हो रहे हैं। शवा का देखकर और आहतों के ज्वलन को सुनकर मनसा का हृदय द्रविण हो उठता है। वह पश्चात्ताप करती है कि उसी के उक्सान से इतनी प्राणहानि हुई है।

इस दृश्य में जहाँ तक जनमेजय के अश्वमेध यज्ञ और उसके अश्व का सम्बन्ध है उसका आधार तो महाभारत है किन्तु गेय बातें कल्पित हैं। महाभारत में आस्तीक की माता पुत्र का परित्याग नहीं करती है। वह तो उस जनमेजय के यज्ञ में दग्ध हो रहे सर्पों की रक्षा करने के लिए आदान देती है—

तत आहूय पुत्र स्व जरत्कारुभु जगमा ।
वासुकेर्नागराजस्य वचनादिदमब्रवीत् ॥
अह तव पितु पुत्र भ्रात्रा वत्ता निमित्तत ।
काल स चाय सम्प्राप्त तत कुरुष्व यथाकथम ॥^२

इसके पश्चात् वामुकि प्रमत्त नागा की रक्षा का आश्वासन देकर आस्तीक जनमेजय के नाग यज्ञ की ओर जाता है। यहाँ प्रमादजी ने महाभारत की घटनाओं के रूप में कुछ परिवर्तन कर दिया है।

१ महाभारत शान्तिपर्व १५२ ३८ और ३९

२ महाभारत प्राणि० ५४ १२

काश्यप का पड्यत्र और हत्या

ततीय अश्व के चतुर्थ और पचम दृश्या म जनमेजय का पदच्युत पुरोहित काश्यप, नागराज तक्षक स मिनकर राजा म प्रतिशोध लेने के लिए एक पड्यत्र रचता है। राजा जनमेजय ने अश्वमेध यज्ञ कराने के लिए उसका वरण न करके शौनक का किया है। इसीलिए यज्ञ म मिलने वाली भूरि दक्षिणा से भी वह वंचित कर लिया गया है। इसी कारण वह क्रुद्ध है और चाहता है कि राजा व यज्ञ मे एसा विघ्न उपस्थित कर दिया जाय, जिससे वह यज्ञ सम्पन्न हो ही न सके। वह यज्ञीय अश्व एव सम्राज्ञी वपुष्टमा के अपहरण की याजना बनाता है। अश्वपूजन के समय रात्रि का यज्ञाला से सम्राज्ञी का नाग द्वारा अचेत करके अपहरण कर लिया जाता है। परन्तु कुछ समय पश्चात् सरमा की सावधानी ने उसकी रक्षा हो जाती है। अश्व के अपहरण के प्रयत्न म तक्षक, आय सनिको द्वारा बन्दी बना लिया जाता है। एक नाग द्वारा काश्यप की हत्या कर दी जाती है। रानी वपुष्टमा, सरमा आदि के साथ महर्षि व्यास के आश्रम म पहुँचा दी जाती है।

राजा जनमेजय के अश्वमेध यज्ञ म विघ्न पडने की भविष्यवाणी तो महर्षि व्यास पहले ही कर चुके हैं। हरिवंश म जनमेजय के यज्ञ म विघ्न का उल्लेख है किन्तु वहा का विघ्न कुछ मिन प्रकार का है। वहाँ न ता रानी का अपहरण हाता है और न अश्व का। वहा शास्त्रीय विधि के अनुसार आलमन किए हुए अश्व के पास रानी बठी। उस सर्वांग सुन्दरी को पान के लिए इन्द्र का मन लालायित हो गया। वह अश्व म प्रविष्ट होकर वपुष्टमा स मिलने म समर्थ हो गया। इन्द्र द्वारा किये इस अनर्थ का ज्ञान जब राजा को हुआ ता उसने इन्द्र को शाप दिया—

यद्यस्ति मे यज्ञफल तपो वा रक्षत प्रजा ।

फलेनानेन सर्वेण ब्रवीमि श्रूयतामिदम ॥

अथ प्रमृति देवेन्द्रमजितेन्द्रियमस्थिरम ।

क्षत्रिया धाजिमेघनेन न यक्ष्यतीति शौनक ॥^१

नाटकीय उद्देश्य की सिद्धि के लिए, मूल घटनाचक्र को नाटक म कुछ मिन रूप म प्रस्तुत किया गया है। मुख्य आधार इसका हरिवंश ही है।

पष्ठ और सप्तम दृश्या म कोई उल्लेखनीय घटना नहीं है।

नागयज्ञ की पूर्णाहुति

ततीय अश्व का अष्टम एव अन्तिम दृश्य अति महत्वपूर्ण है। राजा जनमेजय व अश्व मेघ यज्ञ म विघ्न हो जाने से उस बडा क्षोभ और शोध होता है। वह पुरोहिता पर भी

अत्यधिक स्पष्ट होता है। पहले वह उन सबको ही अग्निपुत्र म जलाने का आदेश देता है, किन्तु पुरोहित सोमश्रवा से सावधान किए जाने पर वह मन्त्रों के द्वारा देवनिवाला दे देता है। इसके उपरान्त वह आचार्य उत्तक की सहायता से नागा की अग्निपुत्र म जलाने का कार्य आरम्भ करता है। बहुत से नागा की आहुतियाँ दे दी जाती हैं। अन्त में पूर्णाहुति के लिए तन्त्र और वामुक्ति को लाया जाता है। इसी समय भगवान् व्यास के साथ आस्तीक सरमा आदि आ जाते हैं। महर्षि व्यास के आदेश से आहुति रोने दी जाती है। आस्तीक भाग बढ़ कर अपने पिता की हत्या की क्षतिपूर्ति चाहता है। जनमेजय के वचन देने पर वह कहता है— मुझे दो जातियाँ म शांति चाहिए। सम्राट् शांति की घोषणा करने वाली नागराज को छोड़ दीजिए। यही मेरे लिए यथेष्ट प्रतिफल होगा। और तन्त्र छोड़ दिया जाता है। उसकी पुत्री मणिमाला का विवाह जनमेजय के साथ कर दिया जाता है। महर्षि व्यास द्वारा पवित्रता की साक्षी देने पर सम्मोजी वपुष्टमा को भी राजा पुनः स्वीकार कर लेता है। मारा स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाने पर राजा ब्राह्मणों से क्षमा माचना करता है। दो प्रबल जातियों के मेल के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

महाभारत में राजा जनमेजय के नागयज्ञ का वणन अति विस्तार से किया गया है।^१ जसा कि नाटक में भी वर्णित है यहाँ आचार्य वेद के शिष्य नवस्नातक उत्तक ने राजा को इस कार्य के लिए उकसाया है। वह अपने मंत्रियों से परामर्श करता है। उनका अनुमोदन प्राप्त होने पर राजा इस कार्य के करने का दृढ़ संकल्प कर लेता है—

एवमुक्त्वा ततः श्रीमान्मन्त्रिभिश्चानुमोदितः ।

आहरोह प्रतिज्ञां स सप्तसत्राय पाथिव ॥^२

तत्पश्चात् वह विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाकर उनकी सम्मति जानने के लिए कहता है कि जिस दुरात्मा तन्त्र ने मेरे पिता की हत्या की उसे मैं बंधुव्राता सहित दहकती अग्नि में डालना चाहता हूँ आप लोग इस विषय में अपनी सम्मति दीजिए—

यो मे हिंसितवास्तात् तक्षक स दुरात्मवान् ।

प्रतिकुर्यात्तथा तस्य तद् भवतो ब्रुवन्तु मे ॥

अपि तत्त कम विदित भवता येन पनगम् ।

तक्षक सम्प्रदीप्तेऽनौ प्रक्षिपेय सवायवम् ॥^३

सब ब्राह्मण राजा के विचारा का अनुमोदन करते हुए^४ नागयज्ञ के लिए उस दी गे देते हैं परन्तु उसी समय उस यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने वाले एक कारण की सूचना सूत देता है—

यस्मिन् देशे च काले च मन्थनेय प्रवर्तिता ।

ब्राह्मण कारण कृत्वा नाय सत्थास्थिते त्रुतु ॥

१ महाभारत आग्निपत्र अध० ५१ ५६

२ वही आग्निपत्र अध० ५१ १

३ वही आग्निपत्र अध० ५१ ५

४ महाभारत आग्निपत्र अध० ५१ १६

यह ब्राह्मण और कोई नहीं आस्तीक हो है, जो जनमेजय के नागयज्ञ को हकवाने में समर्थ होना है। महाभारत में सप्तत्रय प्रमादजी के नागयज्ञ को सप्तसत्र के नाम से अभिहित किया गया है। प्रमादजी भी महाभारत के इस सप्तसत्र नाम से अभिहित थे, किन्तु फिर भी उन्होंने नागयज्ञ नाम एक विशेष प्रयाजन से रखा है। सप्तसत्र से स्पष्टतः उस युग की प्रसिद्ध नागयज्ञ की प्रतीति नहीं हो पाती है। यह नागयज्ञ कोई सपनों का भेद नहीं था, यह तो आर्यों के समान ही अनाय वग की एक बलगाली जानि थी।

जिन नागों का इस यज्ञ में भस्म किया गया उनमें से कौनसे तो बहुत बड़े हैं किन्तु मुख्य रूप से यहाँ अन्तिम आहुतियों के लिए बागुकि और तक्षक का उल्लेख किया गया है। यहाँ के इस सप्तसत्र के आरम्भिक वर्णन से स्पष्ट है कि राजा जनमेजय का मुख्य प्राथमिक पात्र तो तक्षक ही रहा है। इस यज्ञ के प्रत्येक आचार्य उत्तम का कोषभाजन भी वही रहा है—

उत्तमस्य प्रियकृतुमात्मनश्च महत् प्रियम ।

भवतां चैव सर्वेषां गच्छाम्यपचितिं पितु ॥

तक्षक सम्प्रदीप्तेऽग्नीं प्रक्षिपेय सर्वाध्वम ॥^१

परन्तु गह्वेरा के साथ धुन भी पिसत हैं सेनापति को मारने का अवसर प्राप्त होता है तब ही गह्वेरा सनिक युद्ध में काम आ जाते हैं। यहाँ पर भी सप्तसत्र आरम्भ होने पर जो ज्यो ज्यो ऋत्विज लोग आहुतियाँ डालते त्याग्यो घोर सप आकार गिरते जाते—

जुह्वत्स्वत्विक्ष्वय तदा सप्तसत्रे महाप्रतौ ।

अह्य प्राप्तस्तत्र घोरा प्राणिभयावहा ॥^२

इधर तक्षक ने जब सुना कि जनमेजय ने सप्तसत्र आरम्भ किया है तो वह डरकर इन्द्र के घर में छिप गया—

तक्षकस्तु स नामेद्र पुरवरनिवेशनम् ।

गत श्रुत्वैव राजान दीक्षित जनमेजयम् ॥^३

१ महाभारत आदि प्र० ५१ १६—

१ सप्तसत्रमिति स्थान पुराण च परिगम्यते । १ ५१ ६

२ राजान दीक्षामाप्तानु सप्तसत्रात्तय तथा ।

इत् चामीत तत्र पूव सप्तसत्र भविष्यति ॥ १ ५१ १३

३ नत कम प्रववत सप्तसत्रविधानत ॥ १ ५२ १

४ सप्तसत्र तथा रात पाण्डवे यस्य धीमत् । १ ५१

५ के मन्स्या वप्रवश्व सप्तसत्र मुनाम् । १ ५३ २

६ सप्तसत्रविधानज्ञविनया न च मूर्खे । १ ५३ ३

७ जुह्वत्स्वत्विक्ष्वय तथा मानस महाप्रतौ । १ ५४ ११

८ भय नागस्य तस्माद् व सप्तसत्रात् कृत्वात् । १ ५३ १६

९ म सर्पा सप्तसत्रात्स्मिन् पतिता ह्यवाम् । १ ५७ १

२ महाभारत आदि १ ५७ ११६ में प्रधान प्रधान भागों के नाम गिनाये गये हैं। नवी सख्या बहुत है।

महाभारत आदि ५ ५४ ५१ ५

४ बहा आदि ५ ११

५ वही आदि ५३ १६

तक्षक इंद्र का मित्र है। इसीलिए अपनी रक्षा के लिए वह यहाँ उसके पास गया है। अजुन द्वारा छाण्डव वन के बहन के समय भी तक्षक की रक्षा के लिए इंद्र वहाँ स्वयं उपस्थित हुआ था और यथाशक्ति अग्नि को ब्रह्मिष्ठ द्वारा शांत करने का प्रयत्न किया था।^१ यहाँ पर भी, इंद्र ने भयत्रस्त मित्र को पूरी तरह से आश्वस्त कर दिया—

तमिन्द्र प्राह मुप्रोतो न तवास्तीह तक्षक ।

भय नागेन्द्र तस्माद् ध सपसत्रात् वदाचन ॥^२

तक्षक को इंद्र के यहाँ शरण मिल जाने पर वासुकि को विनोय भय लगन लगा—

अजस्र निपतत्स्वग्नी नागेषु भृशदु खित ।

अल्पश्लेषपरीवारो वासुकि पयतप्यत ॥^३

वासुकि ने अपनी बहन से कहा और उसने अपने पुत्र आस्तीक से मामा का दुःख दूर करने के लिए कहा। आस्तीक भयत्रस्त वासुकि को आश्वासन देकर जनमेजय के सपसत्र में उपस्थित होता है। वह वहाँ यज्ञ, राजा और ऋत्विजों की भूरि भूरि प्रशंसा करता है। राजा उसे बर देने को उद्यत होता है कि इतने में हाता धोल उठता है कि अभी तक तक्षक तो उपस्थित हुआ ही नहीं। जनमेजय की प्रेरणा से होता ने इंद्र सहित तक्षक का आवाहन किया। इंद्र अपने विमान पर आरूढ़ होकर आकाश में चल पड़ा। तक्षक भी उनके साथ ही वस्त्रा में छिपा बठा था। जनमेजय ने हाता से कहा कि यदि तक्षक इंद्र के घर में छिपा बठा है तो इंद्र के साथ ही उस अग्नि में गिरा दो—

इन्द्रस्य भवने विप्रा यदि नाग स तक्षक ।

तमिद्रेणव सहित पातपध्व विभावसो ॥^४

वस फिर क्या था ज्यो ही होता ने तदर्थ मन्त्रों का उच्चारण किया कि इंद्र मयभीत होकर तक्षक को छोड़कर अपने घर चला गया। ऋत्विज तक्षक को अग्नि में डालने के लिए मन्त्र का उच्चारण करनेवाले ही थे कि आस्तीक ने इंगी अक्षरों को उचित जानकर राजा से कहा कि यदि आप मुझे बर देना चाहते हैं, तो मैं आपसे यह बर मांगता हूँ कि आपका यह यज्ञ यही समाप्त हो जाय, अब इसमें सप न गिरने पायें—

धर ददासि चेमह्य वणोमि जनमेजय ।

सत्र ते विरमत्वेतन पतेयुरिहोरगा ॥^५

राजा जनमेजय ने आस्तीक से अति अनुनय किया कि वह कोई अथ बर माग ले, इस यज्ञ का पूण हो जान दे परंतु आस्तीक अपनी वान पर स्थिर रहा—

सुवण रजत गाद्वच न त्वा राजत वणोम्यहम् ।

सत्र ते विरमत्वेतत स्वस्ति मातकुलस्य न ॥^६

१ महाभारत आर्नि० घ २२५

२ वटा आर्नि० २३ १६

३ वटी आर्नि० ५३ १६

४ वनी आर्नि० ५६ ११

५ वटा आर्नि० ५६ २१

६ वटा आर्नि० ५६ २३ २४ २७

जब आस्तीक अथ कोइ बर लेन के निए राजी नही हुआ ता यन म ब्राह्मणा न नी राजा से कहा कि प्रनिश्रुत बर ब्राह्मणो का भिनना ही चाहिए—

ततो बढविदस्तात सदस्या सब एव तम ।

राजानमूचु सहिता लभता ब्राह्मणी वरम ॥^१

इस प्रकार ऋत्विजा की अनुज्ञा पर जनमेजय ने आस्तीक की प्राथता स्वीकार की और वहाँ पर सप्तम्र की समाप्ति की घोषणा कर दी ।

यह है महाभारत मे वर्णित सप्तम्र की एक मशहूर भाकी । नाटक एव महाभारत दाना म ही नागयन या सप्तम्र की समाप्ति आस्तीक क प्रयन म हाती है । महाभारत म आस्तीक की स्तुति से प्रसन होकर जनमेजय स्वय आस्तीक को बर माँगने के लिए कहता है । नाटक म आस्तीक अपने पिता की हत्या की क्षतिपूर्ति के निए राजा स कहता है । राजा के प्रनिश्रुत होने पर नागयन की समाप्ति ही माँगता है—

‘मुभ दो जानिया म गान्ति चाहिए । सम्राट गान्ति की घोषणा करके बन्दी नाग राज को छोड दीजिए । यही मरे लिए ययेप् प्रतिफन होया ।^२

इस प्रकार अन्तिम फन के रूप में दाना म समानता है । अन्तिम फन स पूव की अन्तर घटनाआ म जहाँ भिनना है या नाटक म नये कल्पित रूप म प्रस्तुत की गयी हैं उनका नाटकीय महत्व है । इमक अनिरिकन एक वान यह भी है कि इस नाटक म अन्तिम भाग की रचना म प्रमाटजी न हरिवन के भविष्यपव के आरम्भ अघ्याआ के वर्णना एव महाभारत के आदिपव क सप्तम्र क वर्णन क सहित गान्तिपव क सम्बद्ध वर्णना का एक साथ भिना लिया है । महाभारत क आदिपव म कवल सप्तम्र का ही वर्णन है । गान्तिपव म जनमेजय की ब्रह्महत्या एव उसक दूर करने क उपाय के रूप म इद्रात गौतक द्वारा कराय गान अश्वमेध यन का ही वर्णन है । इमम किमी प्रकार क विघ्न का उल्लेख नही है । हरिवन के भविष्यपव म अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है । इसम इद्र द्वारा विघ्न उपस्थित किया गया है । इसीनिग श्रुद्ध जनमेजय न यहाँ उम गाप दिया है कि आगे कभी कोई क्षत्रिय अश्वमेध यन नही करेगा ।

नाटक म नागयन और अश्वमेध यन दाना कुछ-कुछ भिन म गय हैं । फिर भी नाटकीय प्रधान घटनाआ का आधार हरिवन और महाभारत म वर्णित सम्बद्ध प्रसंग हैं जिनका स्पष्टीकरण उपर किया जा चुका है ।

विवेचन

उपर प्रमाटजी क जनमेजय का नागयन की क्यावस्तु क मूल आधार का विवेचन किया गया है । इस नाटक का केन्द्र पात्र सम्राट जनमेजय है जो कि राजा परीक्षित का पुत्र है । यह परीक्षितपुत्र पारीक्षित जनमेजय बडा प्रतापी राजा हुआ है । वह ब्राह्मण अथा और अत भूना म कम (पारीक्षित जनमेजय का) अश्वमेध यन के करने वान क रूप म

१ महाभारत आ० १६ ०३ २४ २७]

२ जनमेजय का नागयन ३ ८ ५ ४१

स्मरण किया गया है।^१ परन्तु क्षत्रपक्ष और एतरेय मन्त्र गजा जामदग्य की मात्रपाना ग्राम-तीर्थान नगर बनाया गया है।^२ इसमें मन्त्र उगमिन्व होता है कि नाग्य का पाप अजून प्रपीत, अमिमन्तु पीत्र एव परीक्षितपुत्र जामदग्य ब्राह्मण म उन्निता जामदग्य म वही भिन्न तो गही है। क्षत्रपक्ष ब्राह्मण म पारीक्षित जनमजय म अश्वमेध यज्ञ रागमन करने वाले पुराहित का नाम इन्द्रो दवापगोनक है।^३ परन्तु एतरेय ब्राह्मण म तुत्र वाक्यय है।^४ और सोना ही ब्राह्मण के सम्बद्ध स्वना म जनमजय का उगम पारीक्षित है। महा भारत के शांतिपर्व म भी एन पारीक्षित जनमजय का उगम है।^५ और राजा का ब्रह्म हत्या लगे पर उस पवित्र करने के लिए अश्वमेध यज्ञ कराने का पुराहित का नाम इन्द्रो गोनक है। क्षत्रपक्ष ब्राह्मण व इन्द्रो दवाप गोनक स इतना ही अन्तर है कि यही नाम म दवाप महा है बवल इन्द्रो गोनक है। यही तीन प्लाना म इन्द्रो गोनक है।^६ तीर म केवल गोनक है।^७ एन म केवल ऋषि कहकर उनका उल्लेख हुआ है।^८ और एन म मुनि कहकर।^९ राजा के नाम का उल्लेख तो प्रारंभ हुआ है। यही एन बार ता पारीक्षितजनमजय और चार बार केवल जनमजय कहकर।^{१०}

इस प्रकार क्षत्रपक्ष ब्राह्मण एव शांतिपर्व म पारीक्षित जनमजय व अश्वमेध यज्ञ पुराहिता के नाम म पूर्णरूपण एकरूपता नहीं है। एतरेय ब्राह्मण म राजा व नाम व सम्बन्ध म एकरूपता हात हुए भी पुरोहित का नाम तुत्र वाक्यय मवधा भिन्न है। हरिवंश के भविष्यपर्व म पारीक्षित जनमजय व अश्वमेध यज्ञ का जा यणन है उसका सम्बन्ध करने वाले पुराहितो म भी सम्भवत प्रधान का नाम गोनक है।^{११} यहाँ मात्र के नाम स ही उल्लेख है यज्ञितगत नाम से नहीं है।

इन उल्लेखों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि किसी पारीक्षित जनमजय राजा को, गुनग गोनक व किसी शौनक ऋषि ने, अश्वमेध यज्ञ कराया था। यह गोनक

१ क्षत्रपक्ष ब्रा० १३। ५। ४। १३ एतरेय ब्रा ७। ५। ८। ११। २१ भाग्यवत धीनसूत्र १६। ८। २७

२ क्षत्रपक्ष ब्रा ११ ५ ४ २ एतरेय ब्रा० ८ २१

३ यही—१२ ५ ४ १ एतेन एतेतो दवाप गोनक जनमजय पारिक्षितयाजयावहार

४ एतरेय ब्राह्मण—४ २७ ७ ३४

५ महाभारत—शांतिपर्व अ० १५० १५२

६ वही शांतिपर्व १५० २ ८ १५२ ३८

७ वही शांतिपर्व १५१ ४ ६ १५

८ वही शांतिपर्व १५०, ६

९ वही शांतिपर्व १५१ १

१० पामीर राजा महावीर्य परोक्ष-जनमेध ।

११ अश्वमेध पूर्वभाग-छठ ब्रह्महत्या महीपति ॥ महाभारत (शांतिपर्व), १५ ३ केवल जनमजय १५ २ ७

१५१ १ १५२ ४ ८ ३८ शांतिपर्व (महाभारत)

११ अद्यप्रमति देवेद्रमजितोद्वयमस्मिन्निहम् ।

सतिया वाजिमेषन न यथ्य-गिनि शौनक ॥

चाहे 'इन्द्रोत्त दवाप' रहा हो, 'इन्द्रोत्त' रहा हो या कोई और, वह शौनक था, इसमें सन्देह नहीं है। इन्द्रोत्त सम्भव है कि तीना प्रयाग में उल्लिखित, ये तीना नाम किसी एक ही व्यक्ति के हैं अर्थात् यन् वरान वाते पुरोहित का पूरा नाम 'इन्द्रोत्त दवाप शौनक' ही है। जहाँ 'इन्द्रोत्त' शब्द का अर्थ है। शान्तिपथ की कथा में 'दवाप' छोड़ दिया गया है और हरिवंश में केवल शौनक नाम से ही उल्लेख किया है। परन्तु यह सम्भावना तभी ठीक होगी सन्तानी है 'य पारीशित जनमेजय व एवत्य का निश्चय ही जाय।

महामारत एक पुराणा की राजवशावर्तिनी देखने से विदित होता है कि जनक वंश में जनमेजय नाम के अनेक राजा हुए हैं।

महाभारत में जनमेजय

महाभारत में भी जनमेजया का विविध स्थला पर उल्लेख हुआ है। इन सत्र में सर्वाधिक प्रसिद्ध एक जिनकी महामारत में अधिक चर्चा हुई है वह है महारथी अर्जुन का प्रपौत्र वीर अर्जुन का पौत्र एक परीशित का पुत्र जनमेजय। परीशित का पुत्र होने से इस पारीशित जनमेजय भी कहा गया है।^१ इसकी माता का नाम भद्रवती था। इसके श्वसन, उग्रसेन और भीमसेन तीन भाई थे।^२ इसकी पत्नी काशिराज की पुत्री वसुपुत्रा थी।^३ सानाक और शकुन्तल इसके दो पुत्र थे।^४

इस जनमेजय व अतिरिक्त, पुरुवंश में ही कुछ और जनमेजया का भी उल्लेख मिलता है। पुरुवंश व प्रवन्त, मयातिपुत्र, सम्राट पुरु के भी एक जनमेजय नाम के पुत्र का उल्लेख है जिनमें तीन अक्षयमंथ मय एक एक विश्वजित यज्ञ किया था।^५ तृतीय जनमेजय राजा कुरु का पौत्र और उसके पुत्र परीशित का पुत्र यह कुरु पुरुवंश का विद्यान राजा हुआ है। इसका नाम से ही पुरुवंश कुरुवंश कहा गया और इसके वंशज कौरव। कुरुवंश का भी इसी व नाम से प्रसिद्धि मिली है।^६ य सभी पौरव वंश व हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और जनमेजया का उल्लेख महाभारत में हुआ है। उनमें एक जनमेजय तो नीप वंश का राजा था।^७ दूसरा श्रीधरवंश नामक मण के राजाओं में भी एक जनमेजय नाम का राजा हुआ है,^८ तीसरा, शान्तिपथ के एक उपाग्याय के प्रसंग में, एक राजा जनमेजय का उल्लेख है। इसे यहाँ परीशित जनमेजय भी कहा गया है।^९ यह कथा पाण्डव राजा युधिष्ठिर व एक प्रश्न

१ महाभारत आदि अ १५ १७

२ वन आदि अ १

३ वन आदि ७ २

४ महाभारत आदिपत्र — पुरोहित भाषा की मत्स्या नाम। मत्स्या मत्स्य जन जनमेजया नाम। यमू वान अक्षयमेधां अक्षय्य विवर्जिता वृष्टवा वन विवेक।

५ महाभारत आदि, ६५ ४१

६ वन आदि ६४ ४६ ५

७ वहा उपागपथ १७५ १३

८ वहा, आदि ६७ ५६ ६२

९ महाभारत शान्तिपर्व १५० २ ३

२१४ / हिन्दी के पौराणिक पात्रों के मूल-ग्रन्थ

के उत्तर में भीष्मजी ने मुतापी है ।

पुराणों में जनमेजय

पुराणों में जनमेजयों का उल्लेख है । यही मूल विस्तार एवं विवरण में न जाकर, बस चन्द्र (पीरव) का जनमेजयों का ही विस्तार करना उपयुक्त होगा, तत्पश्चात् विवेच्य नाटक का नायक जनमेजय इनमें से कौन सा है यह निश्चित किया जायगा ।

जनमेजय प्रथम

पुत्रवश में दो पुराणित और तीन जनमेजयों का उल्लेख हुआ है । इनमें प्रथम जनमेजय, ययातिपुत्र सम्राट् पुर का पुत्र था ।^१ इस जनमेजय का उल्लेख धर्मरत्न पुष्पाण्डव महाभारत में मिलता है ।^२

जनमेजय द्वितीय

पुत्रवश में प्रसिद्ध राजा कुरु का पुत्र परीक्षित का पुत्र है । यह बड़ा ही प्रतापी है । मग नाम के किसी ऋषि का पुत्र को मार देने के कारण इस ब्रह्महत्या लगे जातो है और परम्परा से चला आता हुआ ययाति का किया हुआ दण्ड का बहू रथ भी मग का माय तण्ड हो जाता है ।^३ पीरजानपदा से इसका यहि विचार कर लिया जाता है । धर्म में यह गौतम की शरण में जाता है और व इस अश्वमेध कराकर पवित्र करत है ।^४

१ पुराण पुत्रो महावीर्यो राजा नाम जनमेजय । हरिवंश ३१ ५

२ विष्णु ५ १६ १ वायु उत्तर ३० ३७ ११६ मत्स्य ५६ १

३ ब्रह्मपुराण उपा ३ अ ६८ १७ १६ में कहा गया है कि ययाति से प्रमत्त होकर इस न उम एव अद्भुत रथ प्रदान किया था—

रथ तस्मै दत्तो यत्र प्रीत परम भाम्बरम् ।
अस्य वाचनं त्रिव्यमशपोष मह्युधी ॥
युक्त मनोजवररथं यत्तं कथां समुत्तवहन् ।
स तेन रथमुष्येन त्रिषाय सततं महीम् ॥
ययातिपुत्रिणं दुर्दंष्ट्रं देवगन्तव्यमानकैः ।

४ ब्रह्मपुराण १२ १ १५ में यह द्धम प्रकार है—

कुरो पुत्रस्य राज्ञः राजं पारिहितस्य ह ।
जयाम स रथा नास ज्ञानात् गगत्स्य धीमत् ॥
गगत्स्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजय ।
कालेन श्लेषामास ब्रह्महत्यामवाप स ॥
स लोहयज्ञो राजपि परिधावन्तस्ततः ।
पीरजानपन्त्यवना न लेभे शमं क्वचित् ॥
ततः स दुष्मन्तप्यो नासभनु सविं क्वचित् ।
विप्रं नन्द शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत ॥
याजयामास स ज्ञानो शौनको जनेजयम् ।
अश्वमेधेन राजानं पावनाय द्विजोत्तमा ॥

ब्रह्माण्ड पुराण

इन पुराण म राजा कुरु के पौत्र जनमेजय का जा उल्लेख है, उसम उस पारीक्षित कहा गया ह—

कुरो पौत्रस्य राजस्तु राज पारीक्षितस्य ह।^१

यहाँ भी राजा जनमेजय द्वारा गग के पुत्र की हिंसा और उसमे लगी ब्रह्महत्या, गग द्वारा राजा को गाय ययाति से लेकर कुल म चल आ रह दिव्य रथ का नाश, पीर-जानपना म राजा का परियाग उमका इद्रोत शौनक की शरण म जाना और अश्वमेध यज्ञ स उसना पावनीकरण आदि उन मन वाला का ही उल्लेख है जो ब्रह्मपुराण म हैं। यहाँ के वणन म एर विनोपना यह है कि यहाँ याजक ऋषि के गौनक इम गोत्र नाम के साथ उसना व्यक्ति नाम 'इद्रोत भी दिया हुआ है—

इद्रोतो नाम विष्पातो योऽसौ मुनिरुदारधी ।

याजयामास चेद्रोत गौनको जनमेजयम ।

अश्वमेधेन राजान पावनाय द्विजोत्तमा ॥^२

मत्स्यपुराण

मत्स्यपुराण म राजा कुरु के चार पुत्रा का उल्लेख है जिनम परीक्षित भी है—

कुरोस्तु दयिता पुत्रा सुधवा जह नुरव च ।

परीक्षित च महातेजा प्रजनश्चारिमदन ॥^३

भाग पुराण म कुरु के सुधवा और जह नुकी सतति का का वणन हुआ है कि तु परीक्षित और प्रजन की सतति का नहीं। अत अथ पुराणा म वर्णित परीक्षित के पुत्र जामेजय के सम्बन्ध की अथ वाता का भी यहाँ कोई उल्लेख नहीं है।

विष्णुपुराण

विष्णु पुराण म कुरु के पुत्र परीक्षित एव उसके पुत्र जनमेजय का उल्लेख हुआ ह।

सुधनुजह नु परीक्षितप्रमुखा कुरो पुत्रा बभूवु ।^४

इमके पदचान अग्रिम अयाय म—

परोभितो जनमेजय-श्रुतसेनाप्रसेन भीमसेनाश्चत्वार पुत्रा ।^५

इसके अनिरिक्त जनमेजय के सम्बन्ध की, अथ वाता का उल्लेख यहाँ नहीं ह।

१ ब्रह्माण्ड पुराण ३ ६८ २१

२ ब्रह्मपुराण ३ ६८ २५ २६

३ मत्स्य पुराण ५० २३

४ विष्णु पुराण ४ १६ ७८

५ विष्णु पुराण ४, २० १

वायुपुराण

वायु पुराण म मी, कुद क पीत्र एव परीणित क पुत्र क रूप म जनमेजय का उत्तम मात्र हुमा है—

कुरोस्तु दपिना पुत्रा सुपथा जहनुरेय च ।
परीक्षितो मश्राज पुत्रश्श्वारिमदन ॥^१

कुछ अरा छोडकर आगे—

परीक्षितस्य वायादो ध्रुव जनमेजय ।^२

इसके सम्बन्ध म और विनाय विवरण यही म्नी मिलता है ।

लिंगपुराण

लिंग पुराण म जनमेजय द्वितीय का जा उत्तम मित्रता ह वह ब्रह्म एव ब्रह्माण्ड स मिलता जुलता है । अन्तर बचन इस बात म है कि यही ब्रह्महत्या नगन क परवान् अश्वमेध यज्ञ स राजा को पूत करन बाल ऋषि पुराहित का नाम इद्रोत नही, इद्रति है । मात्र का नाम शीनक यही भी है—

जगाम शीनकमृषि शरण्य ध्ययितस्तदा ।
इद्र तिनमि विख्यातो योऽसौ मुनिश्चदारधी ॥
याजयामास चेद्रोतिस्त नप जनमेजयम ।
अश्वमेधन राजान पावनाय द्विजोत्तमा ॥
स तोहगंधान्निमुक्त एतसा च महायशा ॥^३

इद्रात का इद्रति बन जाने का प्रमुख कारण ता यह हो सकता है कि पुराण युगा तक सूता एव कथावाचका क कण्ठ की ही वस्तु रह है, ब लिखित रूप म ता बहुत बाद को आय है और मुद्रित रूप ता आधुनिक युग का देन है । दूसरा कारण प्राणैव पाठभेद भी हो सकता है ।

एक बात और ब्रह्म ब्रह्माण्ड, लिंग प्रभृति कई पुराणा म कुरपीत्र राजा जामेजय को ब्रह्महत्या लगने के पश्चात् लोहगंधी कहा गया है, जिसका अर्थ ह जिसका शरीर स रक्त की दुग्ध आती हो । ब्रह्महत्या का पाप और लोहगंध देना की निवृत्ति अश्वमेध स ही बतायी गयी है । महाभारत के गातिपव क विवरण म भी जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है रक्त की गंध का उल्लेख है । वहाँ शीनक कहत है—

रुधिरस्येव ते गंध श्वस्येव च दग्धनम् ।
अशिव शिवसकाणो मृतो जीवन्निवाटसि ॥^४

१ वायु पुराण उत्त अ० ३७ २१२ १३

२ वायु पुराण उत्त अ ३७ २२४

३ लिंग पुराण ६६ ७१ ७७

४ महाभारत शान्तिपर्व १५ ११

जनमेजय द्वितीय का जो वधन पुराणा में है उसकी तुलना यदि हम गान्तिपर्व के वधन में करें, तो देखेंगे कि प्रायः सभी मुख्य बातें में सादृश्य है।

जनमेजय तृतीय

जनमेजय तृतीय का उल्लेख भी कई पुराणों में आया है। विष्णु पुराण में पाण्डुपुत्र अर्जुन के पौत्र एवं अग्निमयु के पुत्र परीक्षित का वनमान काल के क्षामक के रूप में चित्रित किया गया है।^१ इससे पूर्व क राणाभा का उल्लेख भूतकान्त में एवं परीक्षित के पुत्र जनमेजय का भी भावी राजा के रूप में ही निर्देश है।^२ इस जनमेजय का भी यहाँ उल्लेख मात्र ही है। इस सम्बन्ध का विशेष विवरण यहाँ अप्राप्त है। ब्रह्मपुराण में भी निर्देश मात्र है—

पाण्डोधनजय पुत्र सौमद्रस्तस्य चात्मज ।

अग्निमयो परीक्षितुः पिता पारोक्षितस्य ह ॥^३

यहाँ परीक्षित के पुत्र जनमेजय का उल्लेख जनमेजय नाम से नहीं अर्जितुः पारोक्षित रूप से हुआ है। परन्तु नाम का भी स्पष्टीकरण पारोक्षित की सतति के निर्देश में ही हो गया है—

पारोक्षितस्य काश्याया द्वौ पुत्रौः सम्बभूवतु ।

चद्रापीडस्तु नपति सूर्यापीडश्च मोक्षवित ।

चद्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमर्षयिनाम् ।

जानमेजयमित्येव क्षात्रं भुवि विश्रुतम् ॥^४

जनमेजय के पश्चात् वंश की मूर्तति जानमेजय इस नाम से ही विख्यात हुई, इससे परीक्षित के पुत्र का नाम और महत्त्व लीकित जाना है।

मस्य पुराण में अग्निमयु पौत्र जनमेजय का जो वधन है वह कुछ भिन्नता लिय हुआ है। इसका तीन बातें मुख्य हैं—

१ महर्षि वशम्पायन ने राजा का गाव दिया है।

२ इमने अश्वमेध यज्ञ का सम्पादन किया है।

३ ब्राह्मणों के साथ विवाह अधिक कर जान के कारण इने अपने पुत्र शतानीक को राज्य देकर वन जाना पना है।^५

१ याज्ञ साम्प्रतमनदभूमन्ममर्षितायतिप्रमेय पात्रयतानि ।

—विष्णुपुराण ४ २० ५१

२ अत पर भवि-यानह भूवातान नीनविष्यामि । याज्ञ साम्प्रतम् अवनपति परात्तु तस्यापि जनमेजय अतमन अग्रसन भामोनाशचत्वार पुत्रा भविष्यति ।

—४ २१ १२

३ ब्रह्मपुराण १२ १२२

४ वना १३ १२४ २५

५ अग्निमय्या परिशितुः पुत्र परपुरजय ।
जनमेजय परिशित पुत्र परमधामिक ॥
ब्रह्मण कल्पयामास स क वाजमनेयकम् ।
स वशम्पायनन क श्वेव किल महर्षिणा ॥

×

×

महर्षि वशम्पायन के नाप का कारण यह बताया गया है कि राजा न धात्रुजनय मुनि का अपना पुरोहित बनाया है। ब्राह्मणों के साथ राजा के विरोध विवाह और अभिगाथ की बात का उल्लेख इन जनमेजय के साथ किसी अन्य पुराणों में नहीं मिलता है। इनके समान इसका पुत्र शतानीक में भी अश्वमेध का किया है।^१

भागवत पुराण में, तपस्व के इसी संपरीक्षित का मृत्यु हुआ जान पर पिता की मृत्यु का प्रतिकार तप के लिए, उसका पुत्र जनमेजय द्वारा नागा का भस्म करने के लिए सप्तसत्र किया जान का उल्लेख है। यहाँ भी महाभारत के ब्याख्या के समान यम में गिराव जान के समय से तपस्व के दूध की कारण मजान एव राजा के आत्मों से दूध सहित तपस्व का अग्नि में डालने के लिए मन्त्रों से आह्वान किया जान पर विवाह होकर तपस्व सहित दूध के धान पर आवाय वहस्पति के अनुरोध से राजा जनमेजय सप्तसत्र करने के लिए और इस प्रकार से दूध और तपस्व की रक्षा हो जाती है।^२ महाभारत के आश्रयण में महर्षि जस्तराज के पुत्र आस्तीक के बीच में पड़ने से जनमेजय का सप्तसत्र रक्ता है। भागवत पुराण के ब्याख्या में आस्तीक का काय वहस्पति न किया है। यही दाना की ब्याख्या में मुख्य अन्तर है। इस महाभारत में ब्याख्या का विस्तार बहुत अधिक है जबकि भागवत में यह कुछ बारह श्लोकों में ही पूरा कर दी गयी है।

देवी भागवत

भागवत पुराण के समान देवी भागवत पुराण में भी जनमेजय के नागधन की ब्याख्या मिलती है।^३ भागवत पुराण की अथवा देवी भागवत में ब्याख्या का विस्तार अधिक है। लगभग चार बड़े बड़े अध्यायों में यहाँ यह ब्याख्या कही गयी है। कुछ भागों का छोड़कर महाभारत के आदिपर्व की ब्याख्या के साथ इसका सादृश्य अधिक है। यहाँ की ब्याख्या की कुछ विशेषताएँ ये हैं—

१ यहाँ की ब्याख्या में महाभारत के वाश्यप का बश्यप कहा गया है और इसे मात्र वित विद्वान् तथा मुनिसत्तम बताया गया है।^४ महाभारत के समान, यहाँ का बश्यप चिकित्सक नहीं अपितु एक तार्त्रिक मन्त्रवित है। वह बड़े ब्राह्मण रूप में परीक्षित की ओर जाते हुए तपस्व से कहता है—

परिक्षितं तु त्वं सोऽथ पौरुषो जनमेजय ।

त्रिरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयक

प्रकृतयित्वा तं सर्वमपि वाजसनेयकम् ।

विवाहो ब्राह्मणं सार्धंमभिशप्ता वनं यद्वी ॥ मत्स्य ४ ५७ ६५

×

×

×

१ अश्वमेधमेधेन तत्र शतानीकस्य वायवान् ।

जज्ञर्षधं सोमदृष्णाद्यं साम्प्रतं यो महायथा ॥ मत्स्य ५ ६६

२ भागवतपुराण १२ ६ १६ २८

३ देवी भागवत २ ८ ११

४ बही बश्यपो मन्त्रविद् विद्वान् धनार्थो मुनिसत्तम । २ ६ ५१

मन्त्रोऽस्ति मम विप्रद्र विपनाशकः किल ।

जावधिष्याम्यह त ध जीवितव्येऽधुना किल ॥^१

दूसरी बात यह कि कश्यप की परीक्षा क त्रिए, तथा न धपन त्रिप स यप्रोध के त्रिम वश को जलाया है वह भस्म मात्र रह गया है। यहाँ उमी भस्म का एत्रत्र कक कश्यप त मन्त्रोच्चारण पूर्वक जलसिंचन करके पुन वश को पून रूप म परिवर्तित कर दिया है—

दष्टवा भस्मोऽमृत चक्ष पन्नगन विषान्विता ।

सत्र भस्म समाहृत्य कश्यपा वावधिमद्रवीत ॥

पश्य मन्त्रवत् मेऽद्य यप्रोध पन्नगोत्तम ।

जीवयाम्यद्य वृक्षा व पश्यत ते महाविषा ॥

इत्युक्त्वा जलमाग्राय कश्यपो मन्त्रवित्तम ।

सिपच्च भस्मराशिं त मन्त्रितेनैव धारिणा ॥

तदवारि सेचनाज जातो यप्रोध पूजकच्छुभ ॥^२

कश्यप की गविन को देखकर, तथाक प्रभून धा देकर उम पटा लता है और उसका धर लीगा दना है ।

२ महाभारत क समान यहा की कथा म त्रुट्टहारे का उत्तरव नहीं ह ।

३ यहा जनमजय का रागयन गगा के त्रिनार किया गया है महामारत के समान तगणिला म नहीं—

आहूय मन्त्रिण सर्वान राजा वचनमद्रवीत ।

कुवतु धत्तसमार यथाह मन्त्रिसत्तमा

गगातारे शुभा भूमि भाषयित्वा द्विजोत्तम ॥

कुवतु मडप स्वस्या शनस्तभ मनोहरम ।

वेदो धत्तस्य कल्पया ममाद्य सचिवा खलु ॥

तद्गत्वे विधेयो व सपसत्र सुविस्तर ।

तभक्न्तु पशुस्तज्ञ होतोत्तको मुनि ॥^३

४ यहा क इस कथानक की एत्र अय विगपता यह ह कि तथाक क इद्र की शरण म जाने पर भी जव रथा सम्भव न हो सकी तो उमन घास्ताक का स्मरण किया है । उसके शान पर ही वह वच सका है—

उत्तकोह्वयदुदविग्न सेद्र कत्वा निमन्त्रणम ।

स्मत्तस्तदा तक्षकेण धापावरकुलोदभव ॥

आस्ताका नाम धर्मात्मा जगत्कारमुतो मुनि ॥^४

चद्रवग (पुर् गाखा-पीरववश) क उपरिनिदिष्ट इन जनमजय के अतिरिक्त ययाति

१ देवा भागवत २ १० ५

२ वही २ १ ११ १४

३ वही २ ११ ४६ ५२

४ वही २ ११ १ ५७-५८

महर्षि वैशम्पायन के शाप का कारण यह बताया गया है कि राजा न वाजसनेय मुनि के अपना पुरोहित बनाया है। ब्राह्मणों के साथ राजा के विरोध विवाद और अभिशाप की बात का उल्लेख इन जनमेजय के साथ किसी अन्य पुराणों में नहीं मिलता है। इसका समान एक पुत्र सतापीत न भी अश्वमेध मन किया है।^१

भागवत पुराण में तपस्व के तपों से परीक्षित की मृत्यु हो जाने पर पिता की मृत्यु का प्रतिकार लेने के लिए उसके पुत्र जनमेजय द्वारा नागा को मरम करने के लिए सपसन्न बन जाने का उल्लेख है। यहाँ भी महाभारत के ब्याहृष के समान मन में गिराव जान के मन से तपस्व के इंद्र की गरण मजान एवं राजा के आदेश से इंद्र सहित तपस्व की अग्नि में डालने के लिए मात्रा से आह्वान किये जाने पर, विवश होकर तपस्व सहित इंद्र के आने पर प्राचाय बहस्पति के अनुरोध से राजा जनमेजय सपसन्न बंद कर देता है और इस प्रकार से इंद्र और तपस्व की रक्षा हो जाती है।^२ महाभारत के आर्यायन में महर्षि जरत्कार के पुत्र प्रास्तीक के बीच में पड़ने से जनमेजय का सपसन्न रक्ता है। भागवत पुराण के ब्याहृष में प्रास्तांत का काय बहस्पति न किया है। यही दाना की ब्याहृष में मुख्य अन्तर है। वैसे महाभारत में ब्याहृष का विस्तार बहुत अधिक है जबकि भागवत में यह कुल बारह श्लोकों में ही समाप्त कर दी गयी है।

देवी भागवत

भागवत पुराण के समान देवी भागवत पुराण में भी जनमेजय के नागयज्ञ की ब्याहृष मिलती है।^३ भागवत पुराण की अपेक्षा देवी भागवत में ब्याहृष का विस्तार अधिक है। लगभग चार बड़े बड़े अध्यायों में यहाँ यह ब्याहृष कही गयी है। कुछ बातों का छोड़कर महाभारत के आर्यायन की ब्याहृष के साथ इसका सादृश्य अधिक है। यहाँ की ब्याहृष की कुछ विशेषताएँ ये हैं—

१ यहाँ की ब्याहृष में महाभारत के ब्याहृष की ब्याहृष कहा गया है और इस मात्रा वित्त विद्वान तथा मुनिसत्तम बताया गया है।^४ महाभारत के समान यहाँ का ब्याहृष चिकित्सक नहीं अपितु एक तार्त्रिक मात्रावित्त है। वह बृद्ध ब्राह्मण वेप में परीक्षित की ओर जात हुए तपस्व में कहता है—

परिहित मुनि साधु पौरवा जनमेजय ।

द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजिनतपः

प्रकटापिका त मन्वन्ति वाजगनयनम् ।

विवासा ब्राह्मण गात्रमभिगन्ता वन ययो ॥ मन्वन् ५० ५३-५४

×

×

×

१ अथाश्वमेधेन तपः शतानावन्वन् वापवान् ।

जत्रर्षेः साधुवृणाच्छ माग्नेयं वा महायज्ञः ॥ मन्वन् ५० ५५

२ भागवतपुराण १२ ६ ११ २८

३ देवी भागवत २ ८ ११

४ वही कारण मात्रावित्त विद्वान् अनाथों मतिवधम । २ ६ ५१

मन्त्रोऽस्ति मम विप्रे इ विपनाग्वर किल ।

जीवपिप्याम्यह त व जोरितद्येऽपुना किल ॥^१

दूसरी बात यह कि कश्यप की परीक्षा के लिए तभीक न अपन विप स यप्रोध व जिस वक्ष को जलाया है वह भस्म मात्र रह गया है । यहा उमी भस्म री एकत्र करके कश्यप ने मन्त्राच्चारण पूर्वक जर्नसिचन करके पुन वक्ष का पूव रूप म परिवर्तित कर दिया है—

दष्ट्वा भस्मीकृत वक्ष पानगेन विपाम्निना ।

सव भस्म समाहृत्य कश्यपा वाक्यमश्रवीत ॥

पश्य मन्त्रज्ञ मेघ यप्रोध पानगोत्तम ।

जीवपाम्यद्य यक्षा य पश्यत ते महाविषा ॥

इत्युक्त्वा जतमानाय कश्यपो मन्त्रवित्तम ।

सिपद्य भस्मशशि त मन्त्रितेनव धारिणा ॥

तद्वारि सेचनाज जातो यप्रोध पूववच्छुभ १^२

कश्यप की शक्ति को देखकर तभीक प्रभूत धन दत्त उमे पटा जाता है और उसको घर चीना देता है ।

२ महाभारत के समान यहाँ की कथा म लभ्यहृत्कार का उल्लेख नहीं है ।

३ यहाँ जनमेजय का नागपत्न गणा के विनाश किया गया है, महाभारत के समान तथागिला म नहीं—

आहूय मत्रिण सर्वान राजा यच्चनमश्रवीत ।

कुचतु यज्ञसंगार यथाह मन्त्रिसत्तमा

गगतीरे शुभा भूमि मापयित्वा द्विजोत्तम ॥

कुचतु मठप स्वस्या गनस्तम मनोहरम ।

वेदी यज्ञस्य क्तव्या ममाद्य सचिवा खलु ॥

तदगत्वे विश्वेयो व सपसत्र सुविस्तर ।

तभक्स्तु पशुस्तज होतोत्तको मुनि ॥^३

४ यहा व इम कथानव की एक अन्य विरोधता यह है कि तभीक न इन्द्र का शरण म जान पर भी जब रक्षा सम्भव न हो सकी ता उसन आस्ताव का स्मरण किया है । उमक भान पर ही वह वच सवा है—

उत्तरोहृद्यदुदविग्न मे इ क्त्वा निमन्त्रणम ।

स्मृतस्तदा तक्षकेण धापावरकुलोदभव ॥

आस्तीनो नाम धर्मात्मा जरत्काहमुतो मुनि ५

च द्रवण (पुत्र शाखा पीरववदा) व उपरिनिर्दिष्ट दन जनमेजया के अनिश्चित यथाति

१ देवा भागवत २ १० ५

२ वहा २ १ ११ १५

३ वही २ ११ ४६ ५२

४ वही २ ११ ५७ ५८

महर्षि वाम्प्यायन के शाप का कारण यह बताया गया है कि राजा ने वाजसनेय मुनि को अपमान पुरोहित बनाया है। ब्राह्मणों के साथ राजा के विरोध विधान और अभिसार की बात का उल्लेख इस जनमेजय के साथ, किमी अन्य पुराणों में नहीं मिलता है। इसके समान इसके पुत्र शतानाक में भी अश्वमेध यज्ञ किया है।^१

भागवत पुराण में तक्षक के उसी संपरीक्षित की मृत्यु हो जाने पर, पिता की मृत्यु का प्रतिकार लेने के लिए उसके पुत्र जनमेजय द्वारा नागा को भस्म करने के लिए सपसत्र क्रिय जान का उल्लेख है। यहाँ भी महाभारत के कथारूप के समान यज्ञ में गिराए जाने के भय से तक्षक के इंद्र की शरण में जान एवं राजा के आदेश से इंद्र सहित तक्षक की अग्नि में डालने के लिए मंत्रों से आह्वान क्रिय जान पर, विवश होकर तक्षक सहित इंद्र के आन पर आचार्य वहस्पति के अनुरोध से राजा जनमेजय सपसत्र बंद कर देता है और इस प्रकार से इंद्र और तक्षक की रक्षा हो जाती है।^२ महाभारत के आश्रम में महर्षि जरत्कार के पुत्र आस्तीक के बीच में पड़ने से जनमेजय का सपसत्र रुकता है। भागवत पुराण के कथा रूप में आस्तीक का काय वहस्पति ने किया है। यही दाना की कथा में मुख्य अंतर है। वस महाभारत में कथा का विस्तार बहुत अधिक है जबकि भागवत में यह कुल बारह श्लोकों में ही पूरा कर दी गयी है।

देवी भागवत

भागवत पुराण के समान देवी भागवत पुराण में भी जनमेजय के नाशयन की कथा मिलती है।^३ भागवत पुराण की अप्रथा देवी भागवत में कथा का विस्तार अधिक है। लगभग चार बड़े बड़े अध्यायों में यहाँ यह कथा कही गयी है। कुछ बातों को छोड़कर महाभारत के आदिपर्व की कथा के साथ इसका सादृश्य अधिक है। यहाँ की कथा की कुछ विशेषताएँ य हैं—

१ यहाँ की कथा में महाभारत के काश्यप का वश्यप कहा गया है और इस मंत्र विद्वान तथा मुनिसत्तम बताया गया है।^४ महाभारत के समान यहाँ का वश्यप चित्रित्सक नहीं अपितु एक तांत्रिक मन्त्रवित है। वह बड़े ब्राह्मण रूप में परीक्षित की ओर जाते हुए तक्षक से कर्त्ता है—

परिहितं मुनिं मां यः पौरवा जनमत्रयः ।
 निरपवमप्रमाहृत्य महाशत्रुजनयक
 प्रवभविवा तं मयमपि वाजसनेयकम् ।
 विवासे ब्राह्मणं माधमभिगन्ता वन मयो ॥ मन्व ५ ५०६६

× × ×

१ अथाश्वमेधेन ततः शतानाकस्य बाधवान् ।
 अत्रर्षिं माधहृत्पाश्र्य माश्रयं वा महायज्ञा ॥ मन्व ० ५ ९९

२ भागवतपुराण १२ ६ १६ २८

३ देवी भागवत २ ८ ११

४ बह्म कथना मन्त्रविद् विद्वान् धनार्थी मदिमलम १ २ ६ २१

मन्त्रोऽस्ति मम विप्रेन्द्र विपनाशकर किल ।

जीवयिष्याम्यहं तं व जीवितघ्नेऽपुना किल ॥^१

दूसरी बात यह कि कश्यप की परीक्षा के लिए, तपन न अपना नियम स 'यप्रोध के जिस वक्ष को जलाया है वह भस्म मात्र रह गया है । यहा उमी भस्म का एकत्र करके कश्यप ने मन्त्रोच्चारण पूर्वक जन्मिचन करके पुन वष का पूव रूप म परिवर्तित कर दिया है—

दष्ट्वा भस्मीकृत वक्ष पानगेन विपाग्निना ।

स न भस्म समाहृत्य कश्यपा वाक्यमत्रवीत ॥

पथ मन्त्रबल मेघ यप्रोध पन्नगोत्तम ।

जीवयाम्यद्य वक्षा व पश्यत ते महाविषा ॥

इत्युक्त्वा जलमात्माय कश्यपो मन्त्रवित्तम ।

मिषच भस्मराशिं त मन्त्रितेनव धारिणा ॥

तदधारि सेचनाज जातो यप्रोध पूत्रवच्छुभ ॥^२

कश्यप की शक्ति का देखकर तपक प्रभून धन दरर उम पटा नता है और उमको घर लीना देता है ।

२ महामारत क समान, यहाँ की कथा म 'नरडहार का उल्लेख नहा है ।

३ यहा जनमेजय न नागयन गमा क किनार किया गया है महामारत क समान तथासिला म नहा—

आहूय मन्त्रिण सर्वान राजा वचनमब्रवीत् ।

कुवतु यज्ञसगार ययाह मन्त्रिसत्तमा

गगातीरे शुभा भूमि मापयित्वा द्विजोत्तम ॥

कुवतु मडप स्वस्या गनस्तभ मनोहरम ।

वेदी यज्ञस्य क्तव्या ममाद्य सच्चिवा खलु ॥

तदगत्वे विधेयो थ सपसत्र सुविस्तर ।

तक्षकस्तु पशुस्तज्ञ होतोत्तको मुनि ॥^३

४ यहा क हम कथानक की एन अण विपेपता यह है कि त तपक इन्द्र की शरण म जान पर भी जब रक्षा सम्भव न हा सकी तो उसन आस्ताव का स्मरण किया है । उसके ध्यान पर ही वह वच सका है—

उत्तरोह्वयदुदविन्न सेन्द्र क्त्वा निमन्त्रणम ।

स्मृतस्तदा तक्षकेण पापावरकुलोदभय ॥

आस्तोत्रो नाम धर्मात्मा जरत्कारमुतो मुनि ॥^४

चन्द्रवण (पुन शाखा-पौरववण) क उपरिनिदिष्ट इन जनमजया के अनिर्दिक्त ययाति

१ दवा भागवन २ १० ५

२ वही २ १ ११ १४

३ वही २ ११ ४६ ५२

४ वही २।११।५७-५८

के चतुर्थ पुत्र अश्विनी के नाम से ही पौराणिक नाटकों के मूल स्रोत का नाम रखा गया है। इसका विष्णु, वायु तथा मत्स्य पुराण में उल्लेख है।^१ विष्णुपुराण में अश्विनी सप्तम, समानल स कालानल, कालानल से सजय, सजय में पुरजय और पुरजय से जनमेजय—इस क्रम से नाम हैं। वायु पुराण में भी विष्णुपुराण का ही क्रम है। मत्स्यपुराण के तीन नामों में अक्षर है। यहाँ अश्विनी का सप्तम, सप्तम का चौथाहन का चौथाहन का सजय सजय का पुरजय और पुरजय का जनमेजय। इस जनमेजय के नाम के साथ, अश्विनी की किसी महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख नहीं किया गया है।

ब्रह्मपुराण और हरिवंश इसी जनमेजय को पुत्रशाखा में कथेयु म छोटी पीढ़ी में रखते हैं।^२ किन्तु कथेयु का छाड़कर रोष नाम समान है। अथ पुराणा के नाम के समान इस जनमेजय के पुत्र का नाम यहाँ भी महानल है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि प्रमात् के कारण अश्विनी के स्थान पर कथेयु नाम जुड़ गया है। वस्तुतः यह कथेयु कथिनी है कि विष्णु वायु और मत्स्य पुराणा का विवरण विश्वसनीय है अथवा हरिवंश और ब्रह्मपुराण का। वस्तुस्थिति कुछ भी हो, इस विचार के निष्पत्ति के लिए विस्मय में जान की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस जनमेजय के साथ पारोक्षिक उपपद नहीं जुड़ा है। हमारे विवेचन का विषय, वस्तुतः पारोक्षिक जनमेजय ही है।

नाटक का नायक जनमेजय

इससे पूर्व महाभारत पुराण एवं बर्णित अथवा म चित्रित विविध जनमेजयों की चर्चा की गयी है। यह सब इतिहास किया गया है कि सत्ये स्वरूपा को दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत नाटक में कथानायक को पहचाना जा सके। हमारे नाटक का नायक राजा जनमेजय पारोक्षिक अर्थात् परीक्षित का पुत्र ही है, वह महाभारत के युद्ध के महारथी अजन के पुत्र और अग्निमयु का पौत्र ही नहीं रहे गया है जिससे महाभारत में सप्तम का अनुष्ठान किया है अपितु उसमें एक अथ जनमेजय का भी चरित्र मिलकर एकीभूत हो गया है। संयोग से यह दूसरा जनमेजय भी परीक्षित का ही पुत्र होने से पारोक्षिक जनमेजय नाम से ही महाभारत में, पुराणा में तथा कुछ शास्त्रग्रन्थों में अतिरिक्त हुआ है।

ऊपर के पद्यों में महाभारत के शांतिपर्व के एक उपनिषत्त में बर्णित एवं परीक्षित पुत्र जनमेजय का उल्लेख किया गया है।^३ यहाँ का यह आशयान मन में यह संदेह अवश्य जगाता है कि महाराज युधिष्ठिर के पुत्रों पर पितामह श्रीधर्म भूतकाल की क्रियाओं का प्रयोग करते हुए किस जनमेजय को कथा सुना रहे है।^४ सम्पूर्ण महाभारत का प्रधान रूप

१ विष्णु पुराण ४। १०। १२ वायुपुराण उत्तर ३७ २४२ २९ मत्स्य पुराण ४०। १२ १३

२ ब्रह्मपुराण १३ १६ १७ हरिवंश पुराण १ २

३ भागीरथ राजा महाकाय परीक्षित जनमेजय।

४ ब्रह्मविष्णुवायु—ब्रह्मविष्णु वत् पाप कृपाद् भयतततम्।

५ युधिष्ठिर उवाच—ब्रह्मविष्णु वत् पाप कृपाद् भयतततम्।

६ भागीरथ उवाच—भद्र त वणविष्णुमि पुराणमपि वस्तुतम्।

७ भागीरथ उवाच—भद्र त वणविष्णुमि पुराणमपि वस्तुतम्।

८ भागीरथ उवाच—भद्र त वणविष्णुमि पुराणमपि वस्तुतम्।

से जिनके साथ सम्बन्ध बताया जाता है वह जनमेजय ता अग्निमयू का पौत्र और परीक्षित का पुत्र है, जिसने अपने पिता परीक्षित की नागराज द्वारा की गई हत्या का बदला लेने के लिए समस्त नागा को ही पृथ्वी पर से नष्ट करने के हेतु इतिहास प्रसिद्ध सप्तसत्र का समारम्भ किया था। जिन समय भीष्म ने महाराज युधिष्ठिर को शांतिपत्र में वर्णित यह आश्वयान मुनाया है, उस समय ता इस जनमेजय के पिता परीक्षित का जन्म भी नहीं हुआ था फिर यहा उसका वर्णन, वह भी भूतनाम की त्रियाद्यो के साथ किन प्रकार सम्भव है ?

यदि यह वर्णन, पुराणा के अनेक वर्णना के समान भविष्यत् काल में होता, तब सम्भवतः शका को इतना अवकाश न मिलता। परन्तु मन में उठी शका का समाधान शांतिपत्र के इस आश्वयान से नहीं होना है। यहा जनमेजय के सम्बन्ध में, जिन वाता की चर्चा हुई है उनका आदिपत्र में जहाँ जनमेजय के सप्तसत्र का विस्तार से वर्णन है, कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इसलिए यह मान्य स्वाभाविक है कि यहा यह चर्चा किस जनमेजय की की गयी है।

प्रमाञ्जी ने इस नाटक के आरम्भ के प्राक्ख्यान में इस नाटक की कथा के मुख्य आधार का संकेत दिया है। वे निम्न हैं—

कलियुग के प्रारम्भ में पाण्डवा के बाद परीक्षित के पुत्र जनमेजय एक स्मरणीय शासन हाँ गये हैं। भारत के शांतिपत्र अध्याय १५० में लिखा हुआ मिलता है, कि सम्राट जनमेजय से अवस्थात एक ब्रह्महत्या हाँ गयी जिस पर उन्हें प्रायश्चित्त स्वरूप अश्वमेधयन करना पडा।^१ शतपथ ब्राह्मण से पता चलता है, कि इन्द्रो देवाप शौनव उस अश्वमेध में आचाय थे और जनमेजय का अश्वमेध यन इहीन कराया था। महाभारत में भी इही आचाय का उल्लेख है। आदिपत्र, के पौष्यपत्र अध्याय २ में विदित होना है, कि जब जनमेजय पर क्रुत्या और विपत्ति आयी तब उन्होंने नागकथा से उत्पन्न सोमश्रवा को बड़ी प्रायता में अपना पुराहित बनाया और आमन नागविद्रोह तथा भीतरी पड्यत्रास बचन के लिए उन्हें अत्यन्त प्रयत्नशील होना पडा महाभारत युद्ध के बाद उन्स परीक्षित ने थ गी अपि का अपमान किया और तक्षक ने काश्यप आदि से मिलकर आय सम्राट परीक्षित की हत्या की।^२ उही के पुत्र जनमेजय के राज्य प्रारम्भकाल में आय जाति के

१ एसा प्रमाण होता है कि पुरुवंश के प्रथम परीक्षित के पुत्र निम्न जनमेजय से सम्बद्ध ब्रह्मपुराण १२ १० १५ ब्रह्मण ३ ६८ २ २६ मत्स्य ५ २ २३ विष्णु ०४ १६ ७८ वायु ० उक्त ३७ २१२ १२ लिंगपुराण ६६ ७१ ७७ शांति पुराण प्रमाञ्जी के दखन में गरी धारा के नाम तो इतिहास की अभिन मुद्रवस रखन बान प्रमाञ्जी की मृप उह यो स्पष्ट न करती एसा सम्भव नहा था। इतलिय शांतिपत्र के आधार पर ही उन्होंने जनमेजयवृत्त ब्रह्महत्या के सम्बन्ध में अनिश्चय बना रखने किया है। इन सम्बन्ध में पुराणा के विवरण का दखे बिना निश्चित निष्पत्ति कर सकना सम्भव नहा है।

२ प्रमाञ्जी ने यहा थ गी अपि का उल्लेख किया है। वस्तुतः थु गी के पिता शमीक ऋषि का परीक्षित द्वारा अपमान हुआ था—

परीक्षिताम राजामाद् ब्रह्मण कौरववधज
म कञ्चिन् मय विदवा बाणनामतापयथा ।
पञ्चजा धनुराणाय मत्तार गहन बने ॥

×

×

×

(अप पाण्डिण्या अगले पृ० पर)

मकन उत्तक ने बाह्य और आन्तरिक गुणों का समन करने के लिए जनमेजय का उन्नेजित किया। यम इन्हीं घटनाओं का आधार पर इस नाटक की रचना हुई है।^{११}

प्रसादजी का इस बक्तव्य से यह बात स्पष्ट है कि इस नाटक की कथा का नायक पाण्डव धनुष का प्रपौत्र, परीक्षित पुत्र जनमेजय है। और सम यह भी स्पष्ट है कि कुछ अन्य आधारों के साथ गतिपव गतिपव ब्राह्मण तथा हरिवंश नाटक की कथा के मुख्य आधार रहे हैं। यहाँ पर प्रसादजी ने यह मान लिया है कि गतिपव के अर्थात् १५०४२ में जनमेजय की जो कथा है वह धनुष का प्रपौत्र जनमेजय से ही सम्बंध रखती है। यहाँ की इस कथा की कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित हैं

- १ राजा जनमेजय द्वारा ब्रह्महत्या।
- २ प्रजाजना द्वारा राजा का परित्याग।
- ३ राजा का पश्चात्ताप और फिर ऋषि इंद्रोत गौतम की कारण जाना और
- ४ गौतम द्वारा अश्वमेध यज्ञ से राजा की पुनर्प्राप्ति।

महाभारत का अवधानपूर्वक अध्ययन करने पर देखा जा सकता है कि इन बातों में से किसी का भी अभिमान-पुत्री पारीक्षित जनमेजय के साथ सम्बंध नहीं है। इस कथानक (गतिपव) में निर्दिष्ट ब्रह्महत्या का अभिमान-पुत्री जनमेजय के साथ सम्बंध जाड़ने के लिए प्रसादजी का नाटक में, जनमेजय द्वारा आर्यों के पिता ब्रह्महत्या ऋषि की हत्या करानी पड़ी है। उस हत्या से मुक्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ का भी इंद्रोत गौतम द्वारा आयोजन कराना पड़ा है। महाभारत में कहीं पर भी इस जनमेजय के किसी अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख नहीं है। इसके जीवन की सबसे प्रमुख घटना सम्भवतः महाभारत में वर्णित सप्तत्रिंश ही रही है। इसी सप्तत्रिंश की समाप्ति पर महर्षि वेत्त्याग के आगमन पर जनमेजय के आग्रह और व्याम

परिग्रहण विषयमाद्य धामना मुनि वन ।
 मया बिद्धो मृगा नष्टं किञ्चित् दृष्टवानसि ।
 स भविस्तु तु नावाच किञ्चित् मोनत्रत स्थित ॥
 तस्य स्वध मन मप बद्धो राजा मया मजत ।
 समक्षिण्य धनुषकोट्या स धन समरात ॥
 तं तं नरणादूत क्षमाशीलो महामनि ।
 स्वधमनिरत भय समाक्षिण्योप्यधयत ॥
 तस्मिन्स्य पुत्रो मून् निगम राजा महानया ।
 शमी नाम मन्त्रोद्यो दुप्रता । महाव्रत ॥

-महाभारत भा. ४ १ २५

शमीयो नाम राजा बलन विषये तव ।
 ऋषि परमधर्मिणा दातुं शान्तो मया नया ।
 तस्य स्वया नरध्यान्न सप प्राणवियोजित ॥
 अश्वमेधना धनकोट्या स्वध मोनत्रितस्य च ।
 क्षान्तवान्भव तत्कम पुत्रस्तस्य न चाम ॥

महाभारत भा. ४२ १७ १६

जी के आदेशों से वाग्म्यायन द्वारा समस्त महामारत का प्रवचन किया गया है। यह सब तन्त्रशिला म हुआ है। वहाँ से लौटने के पश्चात् महामारत म तो नहीं हरिवंश म इस जनमेजय के भी एक अश्वमेध का उल्लेख है जिसकी समाप्ति निर्विघ्न सम्भव नहीं हो सकी है। इसमें ब्राह्मण विद्रोह का भी संकेत मिलता है।

परन्तु शान्तिपद म वर्णित, जनमेजय के अश्वमेध यज्ञ म, किसी विघ्न का उल्लेख नहीं है। वहाँ विधिवत् उसकी सम्पन्नता बताई गई है।^१ अतः स्पष्ट है कि यह प्रसंग इस जनमेजय का नहीं किसी और का ही है।

ऊपर दिखाय गए पुराणा म वर्णित जनमेजया के चित्रणा की, महामारत के जनमेजया से तुलना यह स्पष्ट करती है कि पुरुवंश में मुख्य रूप से तीन जनमेजया का उल्लेख हुआ है। इनमें दो जनमेजय एम हैं जिनके पितामह के नाम समान अर्थात् परीक्षित हैं। इनमें प्रथम जनमेजय, ययातिपुत्र सम्राट पुरु का पुत्र है। दूसरा, सम्राट कुरु के पुत्र परीक्षित का पुत्र है और तीसरा अग्निमयु के पुत्र परीक्षित का पुत्र है। कुरु के पौत्र जनमेजय का भी, परीक्षित का पुत्र होने से परीक्षित जनमेजय के रूप में पुराणा म एक ब्राह्मण-ग्रन्थों में उल्लेख हुआ है। शान्तिपर्व के अध्याय १/० ५२ के अध्याय म जिस जनमेजय की चर्चा है वह अग्निमयु का पौत्र नहीं जैसा कि प्रसादजी ने माना है अपितु कौरववंश के प्रवतक कुरु के पुत्र परीक्षित का पुत्र जनमेजय है।^२ गतपथ ब्राह्मण म परीक्षित जनमेजय के जिस अश्वमेध का उल्लेख है जिसे इन्द्रोत्तरीय शौनके ने सम्पन्न कराया है वह इसी कुरु पौत्र जनमेजय से सम्बद्ध है। पुराणा म इसमें सम्बद्ध जो वर्णन मिलते हैं उनमें इस जनमेजय को लगी ब्रह्महत्या का भी स्पष्टीकरण किया गया है। इसको दूर करने के लिए शौनके द्वारा सम्पन्न कराया गए अश्वमेध यज्ञ का भी यत्र-तत्र उल्लेख है। किसी आति के कारण सम्भवतः प्रसादजी ने इस द्वितीय जनमेजय को तृतीय समझकर उनके साथ एक कर लिया है। इसीलिए उन्हें नाटक म इस तृतीय जनमेजय से किसी ब्रह्महत्या का सम्बन्ध न होने हुए भी एक ऋषि की हत्या करानी पड़ी है क्योंकि ब्रह्महत्या का सम्बन्ध तृतीय जनमेजय से स्थापित किया बिना, गुड्डि के उद्देश्य से किस अश्वमेध यज्ञ और उसके साथ इन्द्रोत्तरीय का सम्बन्ध कम स्थापित किया जाता। और गतपथ ब्राह्मण म उल्लिखित परीक्षित जनमेजय के अश्वमेध और उसके याज्ञिक इन्द्रोत्तरीय शौनके म विभिन्न प्रकार एकत्व स्थापित किया जाता। यदि प्रसादजी द्वितीय जनमेजय अर्थात् कुरु के पुत्र परीक्षित के पुत्र जनमेजय से सम्बद्ध शान्तिपर्व की कथा का तृतीय जनमेजय अर्थात् अग्निमयु पुत्र परीक्षित के पुत्र के साथ न जोड़ते तो वे उन कथनाग्रा म बच जाते जा उन्हें करनी पड़ी है और जिनका आधार भ्रम एवं सन्देह से खूब नहीं है।

ऊपर निर्दिष्ट विवेचन के अनुसार अग्निमयु के पौत्र जनमेजय तृतीय के साथ सप्तम का सम्बन्ध मुख्य रूप से रहा है। पुरु वंश अथवा किसी भी वंश के किसी अन्य जनमेजय के साथ सप्तम का सम्बन्ध स्थापित नहीं किया गया। तृतीय जनमेजय के जीवन की सम्भवतः

१ हरिवंश पुराण भक्तिपर्व ५ १७ १६

२ महामारत शान्तिपर्व १५२ ३८

यह एक प्रमुख घटना कही जा सकती है। महाभारत व आस्तीक एवं म यह सपत्न्य की घटना जिस रूप में चित्रित हुई है, उगम भी प्रायः साम्राज्य के विराधी एवं वगैरे का ही संकेत मिलता है। मानव जाति व ही दो वर्गों का स्पष्ट रूप में भवत दन व लिए प्रमाणों ने नाटक का नाम 'जनमेजय का सपत्न्य न रत्नर' जनमेजय का नागपण रगा है यद्यपि महाभारत और भागवत में इस यण को सपत्न्य नाम ही दिया गया है।^१

प्राचीन समय में नाग जाति व नाग मा बड़े शक्तिशाली रत्न हैं। इनकी प्रवृद्ध शक्ति का दमन करने के लिए ही, श्रीकृष्णजी व परामर्श से अर्जुन ने श्यामश्विन का ही भस्म कर देने का प्रयत्न किया था।^२ परंतु फिर भी नाग निगम नहीं हटा सका। य वही म वचनर पश्चिमात्तर के पर्वतीय भाग से गांधार में जाकर बस गए। अपने नेता तथाकथी दूर्मणिना एवं सूभद्रुभ से वहाँ भी उलाने अपनी शक्ति बना ली और हस्तिनापुर व राजाश्रा म लाहा लने लगे। नागा व सम्बन्ध में डा० राजवलि पाण्ड्य लिखते हैं—

महाभारत युद्ध उसमें भयानक सहार हुआ और न विनाश रूप से उत्तर भारत व राज्या को दुःख बना दिया। पश्चिमोत्तर में नागवस ने तथागिला का अपने अधिनार में कर उधर के प्रदेशों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। उनका राजा तथाकथी न हस्तिनापुर व राजा द्वितीय परीक्षित को मार डाला। परीक्षित व पुत्र तृतीय जनमेजय व समय कुछ काल व लिए वीरवा की शक्ति पुन जीवित हो उठी। अपने पिता व वध से श्रुद्ध हाकर जनमेजय ने नागा पर आक्रमण कर, उनका घोर विनाश किया जिसकी कथा नाग-यन व रूप में दी हुई है। किंतु भारत के पर्वतीय इतिहास में नागा की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी।^३

नाग मानवजाति का ही एक शक्तिशाली वग था। इन्होंने दीपकाल तक शासन किया है। इनके सम्बन्ध राजाश्री और ऋषिया व साथ हानि रह है। महाभारत व आदि पत्र में बताया गया है कि महर्षि श्रुतश्रवा का विवाह एक नागकन्या से हुआ था जिससे उनका पुत्र सोमश्रवा हुआ। इस सोमश्रवा को जनमेजय तृतीय ने अपना पुरोहित बनाया है। यायावर ऋषि जलत्कार का विवाह भी इसी नाम की एक नागकन्या वामुनि की बहन से हुआ था। इससे उत्पन्न उनका पुत्र आस्तीक हुआ। इसी आस्तीक ने जनमेजय द्वारा किये जा रहे नाग विनाश को रकवाया है। नागा के राजा तथाकथी की पुत्री ज्वलना का विवाह राजा ऋचेयु के साथ हुआ है। नागा का राजाश्रा के रूप में भी विषय मिलता है।^४

उपयुक्त समस्त विवरण से स्पष्ट है कि इस नाटक में प्रमाणों की दृष्टि सबत्र ऐतिहासिक रही है। इतिहास व आधार पर ही जनमेजय तृतीय व नागपण से सम्बद्ध अबातर घटनाश्रा तथा प्रसंगा की युद्धमगत व्याख्या उलाने प्रस्तुत की है। फिर भी यह बात हम न भूलना चाहिए कि इतिहास की कथा पर जब कल्पना व रंग चढा दिए जाते हैं तो वह साहित्यिक कृति बन जाती है। जनमेजय का नागपण अतीत के इतिहास की भूमि पर, एक परिष्कृत साहित्यिक रचना है।

१ महाभारत आदिपर्व ५१५८

भागवत १२ ९ १६ २८

२ महाभारत आदिपर्व ५४

३ पुराणविषयानुसंधानी प्रस्तावना प्रथम भाग वाराणसी १९५७ # २७ २८

४ महा० आदि १३ १६ पाणि १ १५ परि २२ १ ब्रह्माण्ड ३ ५८ २१ २४

पचम अध्याय

- १ नल दमयन्ती-कथा (क) दमयन्ती स्वयंवर, (ख) नल दमयन्ती नाटक, (ग) अनघ नल चरित्र, (घ) द्यूत वा भूत अथवा नल चरित्र, (ङ) दमयन्ती स्वयंवर (च) नल दमयन्ती, (छ) नल दमयन्ती ।
- २ सावित्री-सत्यवान-कथा (क) सती प्रताप (ख) शील सावित्री (ग) सावित्री (दवराज), (घ) सावित्री (वाके विहारीलाल), (ङ) सावित्री सत्यवान (गगाप्रसाद), (च) सावित्री सत्यवान (वेनीप्रसाद श्रीमाली) ।
- ३ देवयानी-शर्मिष्ठा कथा (क) देवयानी (जमुनाप्रसाद मेहरा), (ख) दवी देवयानी, (ग) देवयानी, (घ) शर्मिष्ठा ।
- ४ राजतिलक अर्थात् किराताजुमयुद्ध
- ५ विद्रोहिणी अम्बा
- ६ भीष्म चरित (क) भीष्म, (ख) भीष्मव्रत, (ग) गगा वा वेटा
- ७ सुभद्रा-परिणय
- ८ चक्रव्यूह

नल दमयन्ती-कथा

नल दमयन्ती की कथा को आधार बनाकर हिन्दी में अनेक नाटकों की रचना हुई है। इस सम्बन्ध में हिन्दी में सात नाटक प्राप्त हुए हैं। उनका नाम है—

- १ दमयन्ती स्वयंवर नाटक—परमानन्द, उपनाम छिन्नीलाल
- २ नल दमयन्ती नाटक—महावीरसिंह वर्मा
- ३ अनघ नल चरित्र—मुन्नानाचाम गास्त्री
- ४ द्यूत का भूत अथवा नल दमयन्ती नाटक—ब्रह्मन्त गास्त्री
- ५ दमयन्ती स्वयंवर—शालकृष्ण भट्ट
- ६ नल दमयन्ती—दुर्गाप्रसाद गुप्त
- ७ नल दमयन्ती—लक्ष्मण स्वयंवर

दमयन्ती स्वयंवर नाटक

प्रकाशन के कालक्रम की दृष्टि से परमानन्द लिखित दमयन्ती स्वयंवर नाटक नल कथा पर आधारित सबसे पहला हिन्दी नाटक है। पाँच अंका का यह एक लघु नाटक है। वस्तुतः महाकवि श्रीहृषिकेश मधुसूदन नयपदीय चरित्र के स्वयंवर प्रकरण का यह एक रूपक मात्र है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण स्वयं लेखक ने नाटक की भूमिका में भी कर दिया है—

‘इस नाटक के पदनवाला का महाकवि श्रीहृषिकेश मधुसूदन नयपदीय की कवित्व चातुरी की बानगी, जसी उक्त कवि ने महाकाव्य नयपदीय में प्रगट की है सहज में मालम हो जाती है—संस्कृत की कविता की कारीगरी की टटोल केवल भाषा मात्र जानने वाला को सुलभ हो जाना, इस अलभ्य लाभ को न मानना।’

इसके अतिरिक्त नाटक के मुखपृष्ठ पर भी— ‘महाकवि श्रीहृषिकेश मधुसूदन नयपदीय काय में जिस तरह पर उक्त कवि ने कवित्वचातुरी प्रकट की है उसकी बानगी नाटक के आकार में दर्साई हुई अथवा श्रीमती दमयन्ती का पातिव्रत्य और राजा नल की उदारता आदि गुणों का परिचय यथावत् अंकित है। स्पष्ट है कि लेखक का उद्देश्य श्रीहृषिकेश मधुसूदन नयपदीय को नाटकीय रूप देकर अथवा हिन्दी जानने वाला को रसास्वादन कराना है। यह नाटक सामान्य श्रेणी का है।’

कथानक

नाटक के आरम्भ में राजा नल को दमयन्ती का एक चित्र मिल गया है। इस

देखकर उसकी सब सुष-बुध जाती रहती है। मन बहलाने के लिए वह वन म जाता है। हम को देखकर दमयती के पाम उसे दूत बनाकर भेजता है। नल का सन्देश पाकर दमयती का अनुराग राजा नल म बढ जाता है। इंद्र, वष्ण, अग्नि, यम इत्यादि देवगण उसे दूत बनाकर दमयती के पास भेजते हैं, जिसमे स्वयवर म दमयती उनको ही बरे। इसके उपरात स्वयवर म चारा देव नल रूप म उपस्थित होन हैं, किन्तु सरस्वती की प्रेरणा से दमयती नल को पहचान लेती है और उसे ही अपना पति चुनती है।

आधार

यहा लेखक न अपना नाटक की कथावस्तु का आधार महामारत के नलोपाख्यान को नहीं, अपितु महाकवि श्रीहप के नपधीयचरित को बनाया है। इसम नाटक के आरम्भ के उस अक्ष को छाडकर जिसम राजा नल दमयन्ती के चित्र को ही देखकर उमके सौदय पर आसक्त एव अधीर हो जाता है शेष सभी घटनाएँ नपधीय चरित के अनुसार हैं।

नल-दमयन्ती नाटक^१

प्रकाशनक्रम म दूसरा नाटक महावीरसिंह का नलदमयन्ती नाटक आता है।

कथानक

नाटक का आरम्भ उस स्थल से होता है जब महाराज नल दमयती स्वयवर के लगभग दस वष के पश्चात् एक दिन अपने छोटे भाई पुष्कर के साथ चूत म राजपाट सहित अपना सबस्व हार जात हैं। विजेता पुष्कर की ओर से उट राज्य की सीमा स बाहर चले जाने का आदेश दिया जाता है। रानी दमयती बड़ी कुशलता से पुत्र और पुत्री को अपने पिता के घर कुण्डिनपुर भेज देता है। महाराज के आग्रह करने पर भी स्वय पिता क घर जाने के लिए उद्यत नहीं हाती है। नल और दमयती केवल सामान्य वस्त्र पहन राज्य की सीमा से बाहर हो जाते हैं। इसके पश्चात् की कथा राजा और रानी के असाधारण कष्टों की कथा है।

आधार

इस नाटक की कथा का आधार महामारत का नलोपाख्यान है।

अंतर

अंतर बहुत नगण्य हैं—जसे यहाँ अयोध्या के राजा ऋतुपण को निर्धारित तिथि

तथा प्रसिद्ध अदृश्य होनी चाहिए। नायक राजपि होना चाहिए तथा नायिका भी राजसजानीय हानी चाहिए। यह सत्र नल-कथा में है। हम का सन्दर्भ नल और कर्णिक की कथा, दमयन्ती-नामुस भील की मृत्यु सायबाहू के डरे का नाग—ये कथाएँ नाटक में दिखानी कठिन हैं इससे इन कथाओं का मैंने नहीं लिखा। दमयन्ती का चन्दरी में प्रवेश अश्वपरीभा, ध्रुवोद्ध्या से कुण्डिनपुर का चलना तथा भाग में ऋतुपण में नल का सन्ध्यागास्त्र सीगना, कलिनल सवाद इत्यादि कई कथाएँ अधिक चमत्कारिणी नहीं हैं और स्थान का नकाच होने से इन कथाओं का भी मैंने छोड़ दिया है क्योंकि नाटक के दस अंक हैं और वे प्रधान प्रदर्शनीय कथाओं में ही समाप्त हो गए।

द्वितीयांक में नारदजी का आना मैंने कल्पना से चमत्कार के लिए लिखा है तथा इंद्र के पास से पना का आना, दौत्य के लिए नल के प्रलीमनाथ कल्पना किया है। तृतीयांक में इंद्रादि देवा की ओर में जो अप्सरा दमयन्ती के निकट आई हैं यह कथा दमयन्ती के पातिव्रत्य दृष्टना के जताने को कल्पना की है। पंचम में दमयन्ती स्वयंवर का गमाव लिखाया है। यद्यपि प्रधानका में स्वयंवर का स्थाना गास्त्र में निषिद्ध है तथापि गर्माक में निषिद्ध प्रतीत नहीं हाना—यद्यपि कुण्डिनपुर से निषध में जाकर नल ने पुष्कर से राज्य जीता है तथापि आग अरु बढाने की मयादा न होने से और उस कथा में अधिक चमत्कार न हाने से कुण्डिनपुर में ही पुष्कर से चूत में राज्य जीतन की कथा लिखी है और नल के माहात्म्य जताने को अन्त में इंद्र का आना भी लिखा है।

इस नाटक में यद्यपि समग्र पद्य भाषा का ही होना चाहिए था तथापि मैंने बहुतर सस्कृत पद्य लिखे हैं क्योंकि एक तो नवी रीति दरसन को आज तक भाषा और सस्कृत का मिश्रित नाटक काई न होगा और इस नाटक के पद्य में भाषावाला का भी रुचि होगी क्योंकि समग्र गद्य भाषा में है और सस्कृतवालों को भी रुचि होगी क्योंकि पद्य अधिकतर सस्कृत में है।'

—भूमिका, पृ० १८२०

आधार

नाटक की कथावस्तु का आधार महाभारत का नलापाख्यान ही है। इस नाटक में महाभारत की समस्त कथा को आद्यत तेन का प्रयत्न किया गया है अतः इसका विस्तार अधिक हो गया है। महाकवि श्रीहृषिकेश नपधीयचरित से भी लेखन प्रभावित हुआ है। जहाँ-तहाँ उसकी छाया स्पष्ट प्रतीत होती है।

विवेचन

लेखक ने कथा के जिन अंशों को रंगमंच पर नहीं दिखाया है उनका सूचना कथा के सूत्र को बनाए रखने के लिए अथवा पात्रों के कथोपकथन से दे दी है।

यह नाटक अति विस्तृत है। इसका अभिनय भी बड़ा कठिन रहेगा, क्योंकि बिना कर्ट छोट किए तीन या चार घण्टे के समय की अवधि में इसका अभिनय समाप्त करना कठिन है। इसमें पद्या की भाषा सस्कृत हान से भी इसके अभिनय में कठिनाई उपस्थित हो

सकती है। निःसंदेह मसूक्त के नाटकों में मसूक्त और प्राकृत भाषाओं का सम्मिश्रण रहता था, किन्तु जिस युग में वे नाटक लिखे गए हैं उसमें शिष्ट जनता दोनों भाषाओं को समझती थी। इसीलिए शास्त्रीय कथा में मिश्रित भाषा का विधान किया गया है। आज के युग में यह स्थिति नहीं है। हिंदी विद्वानों आज का शिष्ट समाज मसूक्त को भी समझने की क्षमता रखता हो, यह आवश्यक नहीं और भारत के सुदूर दक्षिण एवं पूर्व के मसूक्तविज्ञ हिंदी को अच्छी प्रकार समझते हैं। इसमें भी संदेह है। नाटक के क्षेत्र में एक नई पद्धति के चलाने के उद्देश्य से लेखक न इस नाटक के पद्यों की भाषा मसूक्त रखी है।

लेखक मसूक्त का विद्वान है अतः नाटक की भाषा परिमार्जित है। अभिनेयता की अपेक्षा इसमें पठनीयता अधिक है।

धूत का भूत

ब्रह्मदत्त शास्त्री का 'धूत का भूत' अथवा 'नल दमयन्ती नाटक' एक सुपरिष्कृत भाषा और शली का तीन अंकों का नाटक है। इसमें कथोपकथन भी रोचक है।

आधार

इस नाटक की कथा के आधार महाभारत का नलोपाख्यान और महाकवि हय का नपथीय चरित है। दमयन्ती स्वयंवर पद्य की समस्त कथा नपथीय चरित के आधार पर है एवं शेष कथा का आधार नलोपाख्यान है। यह नाटक पढ़ने में भी रोचक है।

दमयन्ती स्वयंवर

पण्डित बालकृष्ण भट्ट का दमयन्ती स्वयंवर परिमार्जित भाषा एवं शली का एक सुन्दर नाटक है। यह नाटक लिखा तो बहुत पहले गया था किन्तु ग्रन्थ रूप में इसका प्रकाशन हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने १९९९ वि० में कराया। यह नौ अंकों का बड़ा नाटक है। इस नाटक के लेखक श्री भट्टजी महाकवि श्रीहय के नपथीय चरित से प्रभावित हैं। इस नाटक के नाम को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें स्वयंवर तक की ही कथा होगी। किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। इसकी कथा परमानन्द लिखित दमयन्ती स्वयंवर नाटक के समान है। नल चरित की समस्त कथा इसमें आ गयी है।

१ प्रकाशक—प्रकाशनालय, सप्तम प्रयाग प्रथम सं० १९९९ वि० (१९२० ई.)

२ प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग प्रथम सं० १९९९ वि० (१९४२ ई.)

आधार

दमयन्ती के स्वयंवर पयन की क्या के लिए तो लेम्बक का आधार नपथीय चरित रहा है और इसके अनन्तर शेष के लिए महाभारत का नलोपान्धान है, क्योंकि नपथीय चरित स्वयंवर के उपरान्त दम्पती के बवाहिक जीवन की भन्नक दिखाकर समाप्त हो जाता है। स्वयंवर के नाटक भाग पर भाषा और भावा की दृष्टि से नपथीय चरित का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। अन्त स्वला पर तो एमा लगना है कि नपथीय चरित के सख्खन इलाका का हिन्दी में अनुवाद करके उन्हें नाटकीय रूप दे दिया है। उदाहरण के लिए, जिस समय नल हंस का पन्ड लना है उन समय हम राजा से कहता है—

यह वसुधा अब वमन योग्य नहीं है जिसके तुम एस अयायी राजा हो। हे नृप, तुम्हें धिक्कार है जिसका मन ताणा से ऐमा चचल हो रहा है कि तुम इस पथी के सान के पख पर लुमा उठे इन स्वण से तुम्हारी बिननी सम्पत्ति बड जाएगी? राजा, यह हंस तुम्हें पुण्यशलाक समझ तुम्हारे विश्वास पर था, इससे इसके बध भ वेवन जीवहिंसा ही का पाप नहीं है वरन विश्वासघात का पातक भी है। क्या तुम्हें बड़ी उद्वेगत योद्धा नहीं मिलत जिनके साथ तुम अपनी वारता का प्रकाण करो? मुनिया की मो वृत्ति धारण किय हुए पून सवार और वमन का नाल से अपना जीवन निवाह वग्नवाने इन पन्थिया पर भी तुम अपना अधिकार प्रकट करत हो? मा इनकी बुन्धिया है और हाल का प्रसूना हमिनी जो परम साध्वी और पतिव्रता है उन दाना का पालन पापण इसी के अधान है। हे निदयी विधाता, ऐसे पर भी प्रहार करत हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ?”^१

नपथीय चरित में सम्बद्ध प्रमगा के पद्या से इस गद्य भाग की तुलना करके दलने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाण्गा—

न वासपोण्या वसुधेद्युमोदगस्त्वमग यस्या पतिरजिभतस्थिति ।^१
 और— धिगस्तु तण्णातरल भवमन समाक्ष्य पन्थान मम हेमजमन ।
 तथाणवस्येव तुपारसीवरभवेदमीमि वमलोदय कियान ॥^२
 न केवल प्राणिवधो यधो मम त्वदीक्षणादग्निश्वसितातरात्मन ।
 विगहित धमघतनिबहण विणिण्य विश्वासजुषा द्वियामपि ॥^३
 पदे पदे सति भटा रणोद्भटा न तेषु हिसारस एष पूयते ।
 धिगीदश ते नपते कुबिन्म कृपाधये य कृपणे पतत्रिणि ॥^४
 फलेन मूलेन च वारिभूह्वा मुनेरिवेत्य मम यस्य वृत्तय ।
 त्वयाद्य तस्मिन्पि दण्डधारिणा कथं न पत्या धरणी हूणीयते ॥^५

१ दमयन्ती स्वयंवर वासवृष्ण मट्ट प ० ७ ८

२ नपथीय चरित १ १२८

३ बही १ १५

४ बही १ १३१

५ बही १ १३२

६ बही १ १३३

मदेक पुत्रा जन्तनी जरातुरा नवप्रसूतिवरटा तपस्विनी ।

गतिस्तपोरेय जमस्तमदयनहो विधे त्वां वरुणा रणद्धि नो ॥^१

‘राजा—पक्षिराज, तुम सुख से प्रयाण करो। मैं तुम्हारा रूप देख लिया, जिसलिए मैंने तुम्हें पकड़ा था।’^२

इत्यममु विलपतममुचछी नदयालुतयावनिपाल ।

रूपमदर्शितोऽसि यदथ गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय ॥^३

इन्द्र—राजन् तुम्हारी कुशल हो। तुम्हारा रूप और आकृति से बोध होता है कि जगत उजागर वीरसेनात्मज पुण्यश्लोक राजा नल तुम्हीं हो। तुम्हें पाय हम लोग अपना मनोरथ सिद्ध हुआ समझते हैं। यह नपथीयचरित के—

सबत कुशलवानसि कश्चित्तव स नपथ इति प्रतिभान ।

स्वासनाघमुद्बदस्त्वयि रेखा वीरसेन नपतरिव विदम ॥—५, ७४

इस श्लोक का भावानुवाद मात्र है। केवल दो तीन शब्दों का ही अन्तर है।

‘नल—क्या सत्कार में ऐसे भी पदाथ हैं जो दक्षताओं को भी दुःख हो और मैं इनके लिए सम्मान कर सकूँ। मैं क्याकर जानूँ कि इन सबों को कौन सी बात की चाह है, उस बिना मांगे ही पूरी कर दूँ क्या? कि इस दानी को धिक्कार है जो मांगने वाले के बाहरी आकार और मुद्रा से जान गया है कि वह अर्थी है फिर भी यही प्रतीक्षा कर रहा है कि मुह खोलकर मांगे उसे हम द।’

इस नाटक की इन पवित्रता की तुलना निम्नांकित नपथीयचरित की पवित्रता से की जा सकती है—

दुलभ दिग्धिप किममीभि

तादग कथमहो मदधीनम् ॥—५, ८०

मीयता कथमीप्सितमेया दीयता कथमपाचितमेव ।

त धिगस्तु कथयन्पि चाञ्छामर्यिवागवसर सहते य ॥—५, ८३

विवचन

यह सम्भव है कि भट्टजी ने नपथीय चरित को सामने रखकर नाटक के समापण न लिखे हों। किन्तु यह बात निर्विवाद है कि नपथीय चरित का अनेक बार पारायण करने से भट्टजी के मस्तिष्क और वाणी में वह आत्मसात हो गया है कि जाने अनजाने नाटक के सवाव नपथीय चरित की छाया में बनकर रह गए हैं।

भट्टजी के इस नाटक के सम्पन्न में दूसरी बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि एक उच्चकोटि के साहित्यकार होने हुए भी उन्होंने इसका सवाव और स्वगत प्रति विस्तृत कर लिए हैं जो दर्शाते हैं कि उनका मन वात बन गए हैं। इसलिए इस नाटक में अभिनयता की

१ नपथीयचरित १ १३५

२ वातवृत्त भट्ट नपथीय चरित प्र हिन्दी सा० सम्पन्न प्रकाशन सं० १९६६

३ नपथीय चरित १ १४३

अपक्षा पाठ्यरूपता अधिन है। ससृृत न जाननवाला व्यक्ति इसे पढ़कर इसकी सुपरिष्कृत भाषा और चमत्कृत मवादो से प्रभावित हुए मिना नही रह सकता।

नल दमयन्ती^१

दुगात्रसाद गुप्त का लिखा तीन अक्का का यह एन थियेट्रिकल शली का नाटक है परन्तु इसकी भाषा सामान्यतया कुछ सुधरी हुई है। इसकी कथा का आधार महाभारत की कथा है। इसमें मूल कथा की सभी घटनाएँ स्वयंवर में लेकर राजा नल के पुन जुगा खेलेकर पुष्कर से अपना राज्य प्राप्त कर लेने तक की, मच पर दिखाई गई है। कलि गौर द्वापर का भी मानवीय रूप में रगमच पर दिखाया गया है। य दोनों पुष्कर को प्रतीमन देकर नल क विन्द उक्सात हैं। इ ही के सम्मिलित प्रयत्न से नल का विविध कष्ट का सामना करना पड़ता है।

इस नाटक का एकमात्र उद्देश्य दर्शका का मनोरजन करना है, अत राचकता लाने के लिए महाभारत की मूलकथा में कहीं कहीं कुछ परिवर्तन भी क्रिय गये ह।

नल-दमयन्ती^२

डा० ऋमणस्वरूपजी का लिखा यह तीन अक्का का सबथा मौलिक नाटक है। हिन्दी में इस कथानक पर नस प्रकार का यह स्तुत्य प्रयत्न है।

आधार

कथानक का मुख्य आधार ता महाभारत का प्रसिद्ध नलापाख्यान ही है, किन्तु उसे आधुनिक एवं बुद्धियुक्त वज्ञानिक रूप देने के लिए लेखक ने भूमिका में इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

महाभारत में वर्णित ना दमयन्ती की कथा में कुछ ऐसी घटनाएँ हैं जो आजकल के गिणित समुदाय को खटकती हैं और उनको अप्राकृतिक या अस्वाभाविक प्रतीत होती हैं जैसे पक्षिराज हंस का नल और दमयन्ती के साथ ससृृत में बातलाप करना। इस नाटक में ऐसी घटनाओं को नहीं रखा गया। महाभारत में दूत का काय पक्षी करता है। अपन नाटक में दूत का काय मीन एवं व्यापारी द्वारा कराया है और महाभारत की कथा का अध्यास रहने देने के विचार से उस व्यापारी का नाम हम रख दिया है।

—लेखक की सूचना—पृ० ७

१ प्रकाशक—उपवास बहुर आश्रिम काशी तृतीय ससृरण।

२ प्रकाशक—एम० वाँद एण्ड कम्पनी दहना लाहौर।

इस बचानक पर इमने पूव, यदि प्रय काई नाटक हिंदी म लिखा भी गया होगा, तो अब प्राप्त नहीं है अत जब तक काई अब प्राचीनतर नाटक उपलब्ध न हा जाए, सती प्रताप की ही, हिन्दी का प्रथम नाटक स्वीकार करना चाहिए। इस नाटक की बधावस्तु इस प्रकार है—

कथान

नाटक का आरम्भ एक टीले पर बठी तीन अम्पराबाबु गान मे होना है। ये तीना तीन गीत गाती हैं। तीना गीता म पतिव्रता नारिया का स्मरण एक पातिव्रतधम की प्रगना की गयी है। अगता दृश्य तपावन का है। बुमार सत्यवान एक तनामण्य म ध्यान मग्न बठा है। इसी समय सावित्री अपनी तीन सखिया (सुरबाला, लवगी एउ मधुकरी) के साथ उस और आ निकलती है। सखिया के गान स सत्यवान का ध्यान टूट जाता ह। सावित्री और सत्यवान एक-दूसरे का देखनर परस्परानुरवन हो जान हैं। सखिया सत्यवान का परिचय प्राप्त करती हैं। सावित्री राजमहल म आकर अपन मनोबाछित बर, सत्यवान के स्तर पर अपन को रखने क लिए, जागिया बधा धारण कर लेती है। सावित्री की सखिया उसके माता पिता को दाना क परम्परानुराग की सूचना द देती हैं किन्तु व सत्यवान की स्थिति का जानकर उसम सावित्री का विवाह करन के लिए उत्सुक नहीं होत।

उधर वन म सत्यवान क पिता छुमत्सन कुठ ऋषिया से वानचीत करत हुए अपने धन-बन्धव क नष्ट हो जाने स दग्गिए दुखी हैं कि वे अब दूसरा की सहायता नहीं कर सकत एव धन के अभाव म ब-घुजना न उह त्याग लिया ह। गणव लाग क कथनानुसार पुत्र सत्यवान की अत्यायुष्य का भी उहें अति खेद है और इसीलिए वे सत्यवान का विवाह सावित्री से करने के लिए इच्छुक नहीं हैं। इसी बीच नारदजी आत हैं और उह सात्वना दसर कहत हैं आज हम तुमका एक अति शुभ सदेश देने आए हं। तुम्हारे पुत्र का विवाह-सम्बध हम अभी स्थिर किय आते हैं। सावित्री के पिता को भी समझा आय हैं कि उनकी ब्या सावित्री अपन उज्ज्वल पातिव्रत्य धम के प्रमाण से सब आपत्तिया का उत्तपन करके सुख पूवक कालयापन करेगी। नारदजी के बीच म पटने से दाना का विवाह हो जाता है।

इसक पश्चात एक दिन पिता क अग्निहोत्र के हतु लकड़ी काटन के लिए सत्यवान वन म जाता है। पीछे-पीछे सावित्री भी उसका अनुसरण करती है। वन म सत्यवान उसे अनेक अरुधा म मिलता है। यह सारी परिस्थिति समझ जाती है। यम के दून सत्यवान क प्राणो को सने के लिए आत है किन्तु सती के सतीत्व की दाहक परिधि को व तोड नहीं पात। विवश होकर व यमराज का परिस्थिति की सूचना दत हैं। यम स्वय ही घटना स्थल पर उपस्थित हान ह और सत्यवान के गरीर के पास जाकर उसके प्राणा का खींचने के लिए पास जाना चाहत है किन्तु आग्रह करने पर भी सावित्री उसके पास ने हटती नहीं है और उसके बहा से हटे पिता सत्यवान क गरीर को हाथ लगाने की गकिन यम म भी नहीं है। सत्यवान क अतिरिक्त और कुछ भी मागने के लिए वे उससे कहत है। सावित्री अपन वृद्ध सास ससुर की आँखा की नष्ट ज्यानि भाग लती है और दसने पश्चात यम के अनुरोध स वहाँ से हट जाती है। यमराज सत्यवान क प्राणवायु को लेकर चल देता है, किन्तु सावित्री

उसका अनुसरण करती जाती है। बहुत दूर चल जान पर अनुरोध करने पर भी जम सावित्री नहीं लौटती है तो सत्यवान के अतिरिक्त कुछ और माँगने के लिए एक बर यमराज और दत्त है। सावित्री, इस बार गन्धुमा द्वारा छीना हुआ अपन समुद्र का राय माँग लेती है परन्तु यम का अनुसरण वह अपन भी करती चली जाती है। यम पुन सत्यवान के अतिरिक्त कुछ और माँगने के लिए तीसरा बर देता है। इस बार सावित्री सत्यवान से सौ पुत्र माँगती है। यम वचनबद्ध होने के कारण और सावित्री की पतिनिष्ठा से प्रसन्न होकर सत्यवान का पुन जीवित कर देता है। देवपि नारद पधार कर, सावित्री की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं।

प्राधार तथा विवेचन

महाभारत के वनपर्व 'सावित्रीयुपाख्यान' में सावित्री और सत्यवान की कथा बड़े विस्तार से कही गयी है।^१ भारत-दुर्गी की नाटिका में महाभारत की कथा का सर्वांश में अनुसरण नहीं किया गया है। सतान प्राप्ति के लिए अश्वपति की तपस्या, सावित्री के बरदान के रूप में कथा सावित्री का जन्म युवती होने पर योग्य बर न मिलने के कारण पिता की चिन्ता और अपने लिए स्वयं ही बर सोजने के लिए पिता का आदेश आदि का विवरण महाभारत में है उनका यहाँ कोई उल्लेख नहीं किया गया है। इसी प्रकार सत्यवान के पिता राजा धुमत्सेन के राज्य एवं दृष्टि विनाश आदि का भी यहाँ कोई विवरण नहीं दिया गया है। इन सब विवरणों के अभाव का एक कारण तो यह प्रतीत होता है कि यह नाटक छोटा है। सम्भवतः किसी विशेष उद्देश्य को दृष्टि में रखकर इसकी रचना की गयी है अतः परम आवश्यक एवं अनिवार्य विवरणों का ही इसमें समावेश किया गया है। दूसरा कारण यह भी सम्भव है कि पूरी पुस्तक की रचना भारते-दुर्गी की लक्ष्मी से नहीं हुई है। इसका आधा भाग ही उनका रचा हुआ है। शेष आधा भाग वावू राधाकृष्ण दास ने वाग को पूरा किया है।^२ अतः उन घटनाओं एवं विवरणों को जान रखकर छोड़ दिया गया होगा जो अत्यंत आवश्यक प्रतीत न हुए हों। जो कुछ हो आज नाटिका जिस रूप में हमारे सामने है उसी को लेकर हम विचार करना है।

सती प्रताप में यम के तीन बरों का ही उल्लेख है। महाभारत की कथा में ये बर चार हैं। प्रथम से सावित्री अपने श्वशुर की आत्मा की नष्ट ज्योति माँग लेती है—

च्युत स्वराज्याद धनवासमाश्रितो विनष्ट-चक्षु इवशुरो ममाग्ने।

स लघ्वक्षुबलवान भवे नपस्तव प्रसादाज्जवलनाकस्निभ ॥^३

अपान मेरे श्वशुर अपन राज्य से भ्रष्ट होकर धन में रहत हैं। उनकी आँखें भी नष्ट हो गयी हैं। आपकी कृपा से उनकी आँखें मिल जाएँ और वे आपकी कृपा से बलवान एवं अग्नि और सूर्य के समान तजस्वी हो जाएँ।

१. महाभारत अध्याय २६३ से २६६ तक पं० १७७१-१७६७ गीताप्रेस गोरखपुर से०

२. भारत-दुर्गा नाटकावली प्रथम भाग प्रकाशक—रामनारायण लाल इलाहाबाद प्रथम संस्करण १९६२ वि० पृष्ठ ५६४

३. महाभारत वनपर्व अध्याय २६७ श्लोक २७

सती प्रताप म सावित्री प्रथम वर मे अपने बूले सास-समुर की दोना आखें मागती हैं—
“महाराज मेरे बूटे सास समुर की आँखें जाती रहीं हैं सो कृपा करके दें ।”

महाभारत की कथा मे केवल सत्यवान के पिता धुमत्सेन की ही आखो के नष्ट होन का उल्लेख है माता की आखों का नहीं ।^१ इसक अतिरिक्त सती प्रताप मे यम ने प्रथम वर सत्यवान के प्राण लेकर प्रस्थान से पूर्व ही सावित्री का उसके पास से हटाने के लिए दिया है । महाभारत की कथा मे, वरा का व्रम यम क पीछे पीछे जाती हुई सावित्री का लौटाने क लिए वाद का आरम्भ होता है ।

द्वितीय वर से सावित्री अपने स्वगुर का हूत राज्य मागती है । यह महाभारत की कथा के समान है । ततीय म अपन लिए सत्यवान से सौ पुत्र मागती है—

महाराज मेरे स्वगुर—कुल मे वश चलाने वाला कोई नहीं है ञसे मुझे यह वर वाजिए कि सत्यवान से मुझे एक सौ लडक हा ।”^२

परंतु महाभारत मे, ततीय वर से सावित्री अपने पिता के लिए सौ पुत्रो की वाचना करती है—

मानवत्य पथिवीपति पिता भवेत पितु पुत्रगत तथौरसम ।

कुलस्य सन्तानकर च यद भवेत ततीयमेतद वरयामि ते वरम ॥^३

अथान मेरे पिता महाराज अश्वपति सन्तानहीन हैं, उह सौ औरसपुत्र प्राप्त हा जा उनके कुल की परम्परा को चलाने वाले हा मैं आपस यही सीसरा वर मागती हूँ ।

सावित्री ने सती प्रताप म जो ‘ततीय वर’ मागा है, वह महाभारत के व्रम म चतुथ है । महाभारत के ततीय वर का उल्लेख सती प्रताप म यहाँ हुआ है ।

वरा क इस विवरण के अतिरिक्त सती प्रताप का शेष घटनाश्रा एव विवरणा का महाभारत की कथा के साथ वही विराध नहीं है ।

सावित्री और सत्यवान की यह कथा महाभारत क वनपर्व के अतिरिक्त निम्नलिखित स्थलो पर भी उपलब्ध होती है—

देवी भागवत पुराण^४ ब्रह्मवैवत पुराण^५ विष्णुधर्मोत्तर पुगण^६, तथा मत्स्य पुराण^७ ।

देवीभागवत और ब्रह्मवैवत पुराणा म कथा का विस्तार अधिक है । देवीभागवत म तेरह और ब्रह्मवैवत म बारह आयाया म कथा बही गयी है । श्लोक सख्या भी इन दोना की व्रमश नौ सौ बीस तथा नौ सौ पचास है । दाता के श्लोक भी लगभग समान ही हैं । देवी

१ भारत-कु नाटकावली प्रथम भाग पृष्ठ ६ ८

२ भासीच्छायेप धर्मस्था क्षत्रिय पथिवीपति ।

धुमत्सेन एति ध्यान पश्चात्तथा बभूव ह ॥—महाभारत वनपर्व २६४ ७

३ भारतेन्दु नाटकावली, प्रथम भाग पृष्ठ ६०६

४ महाभारत वनपर्व, अध्याय २६७ श्लोक ४८

५ देवीभागवत स्कंध ६ अ २६ ४८ वाराणसी १६५६ ई० (पंडित पुस्तकालय) पं० ६४१ ६७८

६ ब्रह्मवैवत प्रथम खण्ड (मानवधर्म) १६३५ अध्याय २३ ३४ पं० १६६ २०६

७ विष्णुधर्मोत्तर खण्ड २ अ ३६ ४१ पं० १६८ २ २ (श्रीवैदन्तश्वर प्रस) बम्बई सं० १६६६

८ मत्स्य पुराण अ २०८ २१४ पं० ६० ६१५ (गुप्तमण्डल प्रथमांश), कलकता १६५४

भाग्यवा म कथा का प्रारम्भ—

सुतस्युताभ्यान्मिर धत चात्रिगुणोपमम् ।
 तत सात्रिगुणाभ्यान् तामे ध्याभ्यानुमहृमि ॥
 पुरा येन समुद्रभूता सा धृता च धने प्रभू ।
 येन वा पूजिता सोऽहं प्रथमे कथ्य वा परे ॥

पत्निया के साथ तारापत्न ग तार के प्रत्यक्ष रूप किया गया है। कथनका पुराण में भी तारापत्न ग तार के प्रत्यक्ष रूप का—

सुतस्युताभ्यान्मिर धृतामीन गुणोपमम् ।
 यस्तु सात्रिगुणाभ्यान् तामे ध्याभ्यानुमहृमि ॥
 पुरा येन समुद्रभूता सा धृता च धनिप्रभू ।
 येन वा पूजिता देवी प्रथमे कथ्य वा परे ॥

इस पत्निया से कथा का प्रारम्भ किया गया है। दाता धृता के वना घोर प्रलय का ही है तथा दत्ता मा गमा है। कुछ ही गन्ता में साधारण-गता धार है। इस प्रारम्भ के अनुरोधों के बाद के जा दत्ता हैं। य भी प्राय मितत नुवत है। दाता पुराण में पुत्र की कामना ग राजा मावपति भगवती सावित्री का प्रमन करने के लिए पुराण तीव पर ग्य साग मावता का जप एव यज्ञ करता है। प्रमन होकर सावित्री राजा को प्रथम कथा प्राप्त करता का धर इसलिए दत्ता है कि राजा की पत्नी कथा चाहती है। मन्ति के विषय में नारी की धर्म लापा का एव नारी द्वारा पूण किया जाना स्वाभाविक है—

जानाम्यहं भट्टारान यस्ते मनसि धाँछितम् ।
 धाँछितं तव पत्न्यादच सव दास्यामि निश्चितम् ।
 साध्वीकथाभिलाष च करोति तव कामिनी ।
 त्व प्राययसि पुत्रं च भविष्यति क्रमेण च ॥
 इत्युक्त्वा सा तदा देवी ब्रह्मलोकं जगाम ह ।
 राजा जगाम स्वगहं सत्कथाऽऽप्ती यमूय ह ॥

—देवी भागवत ६ २७ ३५ व० ५० भाग १ २४ ३५

प्रजापति ब्रह्मस्वत मनु के पुत्रेति यत्र म परिणामविषयक इसीलिए जाना है कि उनकी पत्नी श्रद्धा कथा की कामना करती है। परंतु मत्स्य पुराण के आख्यान में कथा का वरदान देने में विनिष्ट हनु का उल्लेख नहीं है—

राजानं भक्तोऽसि मे नित्यं दास्यामि त्वां मुता सदा ।
 ता दत्ता मत्प्रसादेन पुत्रीं प्राप्स्यसि गोभनाम् ॥^१

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में प्रवृत्त कथा द्वारा भविष्य में बहुत स पुत्र प्राप्त कर लेने का आश्वासन दिया गया है—

१ भागवत स्वर्ग ६ अ० १ श्लो ११४२

२ मत्स्य पुराण अध्याय २ ७ ६

राजन भक्तोऽसि मे नित्य प्राप्स्यसे तनया शुभाम ।

मदृता यत्प्रसादाच्च पुत्रान प्राप्स्यसि शोभनान ॥^१

महाभारत की^२ कथा म तो राजा को कुछ भी बोलन का निषेध ही कर दिया गया है—

पूर्वमेव मया राजननिप्रायमिम तव ।
नात्वा पुत्रायमुक्त्वो व भगवास्ते पितामह ॥
प्रसादाच्चय तस्मात्ते स्वयम्भुविहिताद भुवि ।
कथा तेजस्विनी सौम्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥
उत्तर न च ते किञ्चिद व्याहृतव्य कथचन ।
पितामहनिर्गम्येण तुष्टा ह्येतव ब्रवीमि ते ॥

ब्रह्मवत और देवीभागवत पुराणा म सत्यवान क साथ सावित्री के विवाह के एक वष पश्चात भी उसकी वयस बारह वष बनायी गयी है—

कथा द्वादश वर्षीया वस्ते त्व वयसाऽधुना ।
ज्ञान ते सवविशुषा योगिना ज्ञानिना परम ॥^३

इन दोना पुराणा म आग के अध्याया म गुमानुभ कर्मों क विपाकस्वरूप मृत्यु के उपगत मनुष्य का मिलने वाले फल स्त्री पुत्रों के सामाजिक कृतव्या, एव अथ आध्यात्मिक तत्वों की जो चर्चा हुई है, वह समान है। दोना का पाठ भी प्राय समान है। ऐसा प्रतीत होता है कि देवीभागवत क रचयिता (सकलनकता) ऽ ब्रह्मवत पुराण म सावित्रियुपाख्या के कथामात्र को ज्या-ज्या-ज्या उठाकर रख दिया है क्यकि इन दोना पुराणा म सम्भवत काल क्रम की दृष्टि से ब्रह्मवत की रचना पहले हुई है।

इसी प्रकार मत्स्य एव विष्णुधर्मोत्तर पुराणा म सावित्री सत्यवान की कथा का जो रूप दिया हुआ है वह एक-दूसरे से मिलता-जुलता है। दोना की श्लोक सख्या भी समान है, केवल तीन श्लोक का अन्तर है। मत्स्य पुराण म एक सौ पचहत्तर श्लोक हैं और विष्णु धर्मोत्तर म एक सौ बहत्तर। मत्स्य पुराण की गणना अठारह प्रमुख पुराणा म की गयी है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण की गणना यद्यपि मुख्य अठारह पुराणा म नहीं की गयी है तथापि यह एक महत्त्वपूर्ण पुराण है, इसम सन्देह नहीं। इन दोना पुराणा म यद्यपि देवीभागवत और ब्रह्मवत पुराणा के समान कथा का अति विस्तार नहा है फिर भी कथा का कोई भी सम्बद्ध अंग छूटा नहीं है।

महाभारत म सावित्री की कथा एव विषय प्रसंग म आयी है।^४ जुए म हार जान पर पण के अनुसार अपने भाइया के साथ महाराज युधिष्ठिर को बनवास भोगना पड रहा है। वहाँ वे अपनी हीन दशा पर अति दुःखित हो जात है। ऐसे ही समय पर महर्षि मार्कण्डेय

१ विष्णुधर्मोत्तर पुराण खण्ड २ अ० ३६ ६

२ महाभारत वनपर्व अ० २६३ १६ १८

३ ब्रह्मवत भाग १ अ २६ २ देवी भागवत स्कंध ६ अ० २६ २

४ महाभारत वनपर्व अ० २६३ २६६

उह, उनस भी अधिक विपन्न महाराज नल और राम की कथा सुनानर, गीतमुक्त करने का प्रयत्न करत है। आश्वस्त हाकर महाराज युधिष्ठिर कहत है कि 'मुझे अपन लिए, अपन भाइयो के लिए तथा अपन छिन राज्य के लिए उतनी चिन्ता नही है, जितनी दस द्रुपद पुत्री के लिए है। क्या आपन किसी ऐसी सौभाग्यवती पतिव्रता स्त्री की पहल कभी दवा या मुना है जसी द्रापदी है ?

महाराज युधिष्ठिर के इस प्रश्न के पश्चात् महर्षि मार्कण्डेय ने पतिव्रताप्राप्त म अग्र गण्य सावित्री का पावन कथा पाण्डवा को सुनायी है—

धनु राजन कुलस्त्रीणा महाभाग्य युधिष्ठिर ।

सवमेतद यथाप्राप्त सावि या राजकथया ॥^१

इनके पश्चात् महाभारत में वर्णित जा कथा सुनायी गयी है वह भारत के हिन्दू मात्र के घर की वस्तु है। यहाँ की यह कथा वनपर्व के सात अध्यायों और तीन सौ दशश्लोकों में कही गयी है। इसका विस्तार मत्स्य एवं विष्णुधर्मोत्तर पुराणों में कथास्वरूप में अधिक है और ब्रह्मवैवर्त तथा देवीभागवत पुराणों के रूप में कम। यहाँ की कथा अतः के इन दोनों पुराणों की कथा की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित एवं प्रवाहयुक्त है। वहाँ उपदेश का विस्तार इतना अधिक हो गया है कि तथा कुछ अवरुद्ध भी प्रतीत होती है। महाभारत की कथा में मद्रदेवता के राजा अश्वपति ने सतान के लिए प्रतिदिन एक लाख गायत्री स हवन करके तिन के छोटे भाग में एगिमिल भोजन करत हुए अठारह वर्ष पयत कठोर तपस्या की। इसके बाद प्रसन्न हुई भगवती सौमित्री के वर मागने के लिए कहन पर राजा ने 'मरे बहुत स पुत्र हो प्रायना की। सावित्री ने कहा तुम्हारी इच्छा को जानकर मैं पहले ही ब्रह्माजी से पुत्र के लिए कहा था। उनकी कृपा से तुम्हें गीर्वाण ही एक तजस्विनी कथा प्राप्त होगी। तुम उत्तर में अग्र और कुछ न कहना। यहाँ अश्वपति के यहाँ इतनी कठोर तपस्या के उपरांत पुत्र की कामना करन पर भी ब्रह्मा की इच्छा से कथा ही प्राप्त होती है। जसा कि ऊपर सवेष्ट किया गया है ब्रह्मवैवर्त और देवीभागवत पुराणों में कथा की उत्पत्ति का कारण रानी की इच्छा को माना गया है। युवती होन पर सावित्री इतनी तजस्विनी थी, कि कोद राजकुमार उसके तज में अभिभूत हो उसके वरण नहीं कर सका—

ता तु पद्मपलाशाक्षीं ज्वलतीमिवत्तेजसा ।

न कश्चिद वरयाभास तेजसा प्रतिवारित ॥^२

इस श्लोक से एसा प्रतीत होता है कि महाभारत में स्वयं प्राप्त करन से पूर्व यह आशयान जिस प्रयोग में प्रचलित था वहाँ युवती द्वारा कथा के वरण की प्रथा रही होगी।^३ सावित्री के पिता अश्वपति बहुत समय तक इसी प्रतीति में रहते कि कोई राजकुमार स्वयं ही आकर उनका कथा का वरण करे। प्रचलित प्रथा के अनुसार जब एसा नहीं हुआ तो कथा के निखरत जीवन में पिता का चिन्ता में डाल दिया। विवश होकर उन्होंने पुत्री को स्वयं ही

१ महाभारत वनपर्व अध्याय २६३-१

२ वनपर्व २६-२७

३ उभरप्रयोग के उत्तरार्ध में अब भी यह प्रथा प्रचलित है।

पति खोजने के लिए आदेश दिया ।^१ और उसने सत्यवान को चुना । महामारत के समय मक्षत्रिय राजाओं में स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी । पिता क्षत्रिय युवका का विशेष समारोह में आमन्त्रित करता था और कन्या उनमें से वांछित वर का वरण करती थी । काशीराज एक द्रुपद ने ऐसा ही किया था । इसलिए यह स्पष्ट है कि इस आख्यान का मौलिक सम्बन्ध किमी प्रक्षत्र विशेष से रहा होगा । इसकी प्रामिद्धि और निहित आत्मा में आकृष्ट होकर संग्रहकार ने महामारत में इस एक विशिष्ट स्थान दिया है । महामारत में स्थान प्राप्त करने के उपरान्त, महामारत के साथ इसका साधमीय महत्त्व हो गया और कविता, लवको एक कलाकारों को इसने अपनी ओर आकृष्ट किया ।

इस आख्यान में सावित्री और यम का समापण बड़े महत्त्व का है । यम सत्यवान के जीव अगुष्ठमानपुत्र अर्थात् चतुस्रयुक्त सूत्रम शरीर को पागवद्ध करके दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ते हैं । दुस्वप्न सावित्री उनका अनुसरण करती है । यम सावित्री से दार दार लौट जाना के लिए आग्रह करत है किंतु वह लौटनी नहीं अपनी सूत्रिन समन्वित वाणी से यम का प्रभावित करती है । यम सत्यवान के जीवन के अतिरिक्त कुछ भी माग लेने के लिए चार वर देने हैं । सावित्री प्रथम से श्वशुर की आर्षे, द्वितीय से श्वशुर का हृत राज्य तृतीय से पिता के लिए सौ पुत्र और चतुर्थ से सत्यवान और अपने नयोग से सौ पराक्रमी पुत्र मांग लती है । वचनबद्ध यम उनका समी वरा को पूरा करते के साथ सत्यवान को भी पुत्र जीवन-दान दे देते है ।

महामारत के इस आख्यान में पाठक या श्रोता को, यम और सावित्री के कथोप-कथन में यम द्वारा वरदान के प्रसंग को पत्कर या सुनकर, कठोपनिषद के नचिबेता एक यम के सवाद और वरा का स्मरण आ जाता है । सम्भव है, इन दाना आख्याना का विकास, समान दान एक समान परम्पराओं में हुआ हो । डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने दोना आख्याना की मूल भूमि मत्स्य पञ्चांग को माना है ।^२

शील सावित्री^३

सावित्री के आख्यान पर रचित नाटका में प्रकाशन के क्रम से द्वितीय नाटक बाबू कटैयानाल का शील सावित्री नाटक है । इसकी रचना उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में हुई है । इसकी रचना सामाजिक सुधार विचारों की शिक्षा और उनके चरित्र के विकास

१ जीवनस्या तु सा दृष्टवा स्वा मुता देवपिणाम् ।

अथाभ्यमाना च वर नपनिदु श्रितोभवत् ॥ —वन०, २६३ ३१

२ भारत सावित्री पृष्ठ २१२ प्रकाशक सत्या माहिय मण्डल लिम्ब्ली प्र स १९५७

३ प्रकाशक—धर्मराज श्रीहृष्यगण आर्वेकर प्रेस बम्बई स० १९५४ सन् १९६७ ई०

को दृष्टि में रमनर की गयी है। नाट्यकार ने अपना नाटक की भूमिका में तप प्रस्तावना में अपनी रचना व उद्देश्य को अर्थात् स्पष्ट कर दिया है। प्रस्तुत नाटक सशेष में इस प्रकार है—

कथानक

नारद की सम्मति व अनुसार मद्र देश का राजा अश्वपति, अठारह वर्ष उमर में पुत्री सावित्री को प्राप्त करता है किन्तु उमर लिए पागप वर प्राप्त करने में रहता है। उधर राजा शुभला का गतिगाली मन्त्री एक नया राज्य स्थापित और राजा शुभला का नेत्र, राज्य और धन रहित करके राज्य की परिधि में बाहर देता है। सत्यवान की अनुपस्थिति में ही उमर लिए एका करता सम्भव हुआ था सत्यवान का गतिगाली एक प्रतापी राजकुमार था। सत्यवान धन में माता पिता निवाम करता हुआ सावित्री व द्वारा दगा जाकर प्रेम व प्रथम में पड़ जाना नाटक की शेष घटाएँ सती प्रताप नाटक व ही मन्त्र है कथन वर सम्बन्धी प्रथम अन्तर है यहाँ सावित्री चार वर माँगती है। अतिरिक्त वर में अपने पिता व लिए पुत्रा की कामना करती है।

आधार

यह नाटक सामान्यतया अपनी कथावस्तु व लिए महाभारत में वर्णित युपास्थान का ही अनुगमन करता है परन्तु सन्तान प्राप्ति के लिए मद्र देश व अश्वपति ने जो अठारह वष का तप किया है उसका एक भगवती सावित्री तथा ब्रह्मा का कही उल्लेख नहीं है जिनकी वृषा से राजा को परम पीलवती कथा प्राप्त है। युवती सावित्री पिता की आज्ञा से जिस समय पति खोजने के लिए निकलती समय नाटककार ने उस महर्षि गीतम प्रमति अनेक ऋषियाँ एवं मुनियों के आश्रमों में है। महाभारत की मूल कथा में केवल राजपिता के रम्य आश्रमों का सामान्य रूप से है—

सा हैम रथमास्थाय स्वविर सचिवव ता ।
तपोवनानि रम्याणि राजर्षीणा जगाम ह ॥^१

इसी प्रकार के और भी कुछ छोटे छोटे परिवर्तन हैं। परन्तु इनसे मुख्य कथा के प्र कोई प्रतिरोध उपस्थित नहीं हुआ है।

इस नाटक की भाषा परिष्कृत नहीं है।

१ नाटक के आरम्भ में लेखक की भूमिका प १

२ महाभारत, वनपर्व, २६३ ३६

सावित्री नाटक^१

प्रकाशन के भ्रम से इस कथा पर आधारित तृतीय नाटक, लाला देवराज का सावित्री नाटक है। लालाजी ने यह नाटक आयसमाजी एन मुधारक की दृष्टि से लिखा है अतः इस कथा पर लिखे गये अन्य नाटका की अपेक्षा इसमें कुछ भिन्नता दिखायी देती है।

कथानक

इस नाटक के कथानक में अन्य नाटका से अधिक भिन्नता न होने हुए भी नाटक के पात्र प्रस्तुतीकरण में पर्याप्त अंतर है। यहाँ सावित्री, सत्यवान और यम को एक भिन्न रूप में प्रस्तुत किया गया है। सत्यवान गुरु वाहन्य के आश्रम में परीक्षा के अवसर पर अपने शीशु से यम को परास्त कर देता है। इसके पश्चात् यम के हृदय में सत्यवान के लिए बर भाव चढपूल हो जाता है और वह प्रतिज्ञा करता है कि एक वर्ष के भीतर ही वह उसके प्राणा का हरण करेगा। सर्वप्रथम वह सत्यवान के पिता राजा द्युमत्सेन के राज्य बाह रण करता है। राजा अपनी पत्नी और पुत्र के साथ वन में आश्रय लेता है। सत्यवान का सावित्री से विवाह होता है। एक दिन अवनर पाकर यम, अपने कुछ साथियों की सहायता से सत्यवान को वन से उठवा ले जाता है और एक पर्वत पर तलवार से उमड़ी हत्या करने का प्रयत्न करता है। सावित्री अपने बुद्धिबौद्धि से सत्यवान के प्राणा की रक्षा करती है।

आधार और विवेचन

नाटक की कथा का मूल तो महाभारत का वनपर्व ही है किन्तु नाटककार ने अपनी कल्पना के योग से, कथा के रूप में पर्याप्त अंतर कर दिया है। महाभारत का यमराज यहाँ एक मानव के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उसके द्वारा सत्यवान के प्राणहरण के लिए भी हेतु की कल्पना की गयी है। पात्रों के नाम वही हैं किन्तु उनका स्वरूप तोड़ मोड़कर बुद्धिसंगत रूप में लाने का प्रयत्न किया गया है। यह सारा प्रयास, युगों से चली आ रही कथा की पौराणिकता को दूर करने के लिए किया गया है किन्तु कथा के सभी खण्डों का एक सूत्र में लाना कुछ कठिन हो गया है। पूर्ण निवाह नहीं हो पाया है। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि लालाजी ने सम्पूर्ण कथा को एक नयी दृष्टि से देखा है।

सावित्री नाटिका^२

इस नाम का चौथा नाटक बाबू बाकेबिहारी लाल की सावित्री नाटिका है। इसकी कथा का मूल स्रोत भी वही महाभारत का 'सावित्रीयुपाख्यान' है। मुख्य कथा में यद्यपि

१ प्रकाशक पंजाब इकानामीवल यन्त्रालय जल घर प्र० सं० १६० ई

२ प्रकाशक राजनाथ यन्त्रालय, पटना सिटी प्र सं० १६० ई

सावित्री सत्यवान^१

इस श्रम का पंचम नाटक बाबू गंगाप्रसाद अरोड़ा का 'सावित्री सत्यवान' है। लेखक ने नाटक लिखने का उद्देश्य प्रस्तावना में स्पष्ट कर दिया है—

'मूलधार—ठीक है आजकल के समय में ऐसे नाटकों की अधिक आवश्यकता है जिससे गलम स्कूल में ईसाई मेमा से गिरा पाने वाली लड़कियाँ विवाहित हान पर पति को मूल और मनुष्य जानि को स्वार्थी समझकर पतिसेवा से विमुक्त भारत रमणी पतिभक्ति की गति देखकर सावधान हो जाएँ और पश्चिमीय सभ्यता से पृथक् होकर पुनः आय महिता बनन की चेष्टा करें।'^२

कथानक

इस नाटक की कथावस्तु बाबू कटैयालाल लिखित शील सावित्री नाटक के सदृश है।

आधार तथा विवेचन

नाटक की कथावस्तु का आधार तो यद्यपि महामारत या सावित्रीयुगपरधान ही है किन्तु नाटककार ने अनेक स्थला पर मूल कथा में परिवर्तन किये हैं। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

१ भद्रन्ध का राजा अश्वपति सन्तान प्राप्ति के लिए यहाँ देवर्षि तारक की प्रेरणा से तप करने के लिए वन में जाता है। महामारत की कथा में इन प्रसंग में नारदजी का कोई उल्लेख नहीं है।

२ राजपुत्री सावित्री के युवती हो जाने पर माना पिता की आना में मगमे पहन पुराहित उसके लिए योग्य वस्त्र खोजने के लिए भेजा जाता है। नाटक में यह आधुनिकता की पुष्टि है। आधुनिक रीति में विनोयन ग्रामीण समाज में ऐसी ही प्रथा प्रचलित थी कि पहन पुरोहित ही जाकर सम्बन्ध को पक्का कर देता था। अत्र भी उत्तरप्रदेश के पूर्वोत्तर जिला के ग्रामीण हिन्दू परिवारों में यह रीति प्रचलित है। किन्तु महामारत की मूल कथा में वस्त्र की खोज के लिए पुरोहित को भेजने का संवत्त नहीं है। यहाँ तो राजपुत्रों द्वारा सावित्री के लिए प्राथमिकता करने मात्र का ही उल्लेख है।

३ नाटक की कथा में सत्यवान के पिता मालव देश के राजा द्युमत्सेन को अघात करना और उसके राज्य का अपहरण उसके एक पुराने मंत्री गजमदसिंह द्वारा बताया गया है। और यह भी कि सत्यवान उस समय तक अपनी शूरता एवं पराक्रम के लिए र्याति प्राप्त कर चुका है, परन्तु वह किसी प्रयोजन से अपने ननिहाल में चला जाता है। गजमद इसी अवसर को उपयुक्त समझकर अपने पुराने स्वामी राजा पर आक्रमण कर देता है।

१ प्रकाशक लक्ष्मी पुस्तकालय बनारस मिटी डि. सं० १९२५ वि० १९२६ ई०

२ नाटक गंगाप्रसाद अरोड़ा सावित्री सत्यवान् पृ० ४

अर्थात् राजा अपनी रानी और पुत्र के साथ वह भी मृत्यु की मृत्यु के साथ ही मर गई।
महाभारत की कथा में रामराज के पिता द्रुपद का मानव का नहीं पात्र का
राजा बताया गया है।

भ्राताच्छात्रेषु धर्मात्मा क्षत्रिय पृथिवीपति ।

द्रुपत्तेन इति ख्यात पञ्चाश्यापो बभूव ह ॥^१

इस श्लोक के 'पञ्चाश्यापो' बभूव और यात्र का अर्थ है गया, इनमें गया ही
प्रतीत होता है कि अपनी वृद्धावस्था में किसी पुराण में वह अर्थात् गया था।

द्रुपदान के साथ का अन्वयण किसी पंडानी 'गुरु' राजा द्वारा उम समय बताया गया
है जब राजा अर्थात् और पुत्र सत्यवान अभी यात्र था।

विनष्टक्षत्रपुस्तस्य भ्रातृपुत्रस्य धीमतः ।

सामोप्येन दूत राज्य छिन्देऽस्मिन् पूषधरिणा ॥^२

यहाँ पूषधरिणा से स्पष्ट है कि किसी पंडानी राजा के साथ द्रुपद का पुराण
कर चला आ रहा था। उसने उपयुक्त अवसर पर राज्य पर अधिपति कर लिया। यहाँ
राजा के किसी मंत्री या उसकी शत्रुता का उल्लेख नहीं है। पुत्र अभी 'गुरु' था अतः विना
होकर अर्थात् राजा का पत्नी और पुत्र के साथ वह भी अन्वयण बना पडा। यहाँ सत्यवान का
लालन-पालन हुआ।

साबालवत्सलतयासाध भार्याया प्रस्थितो वनम् ।

महारण्य गतवापि तपस्तेपे महाव्रत ।

तस्य पुत्र पुरे जात सवृद्धाच्च तपोवने ॥^३

मूल कथा में नाटककार ने जो परिवर्तन किया है उसका कोई हस्तु नहीं किया है। इसका
कोई अर्थ भी प्रतीत नहीं होता है। वस्तुतः यदि पिता के अन्वयण के समय सत्यवान
युवा और परम पराक्रमी था तो उसे अपने प्राणों को हथेली पर रखकर भी पिता के साथ
हुए व्यवहार का बदला लेना चाहिए था। यही सुपुत्र का धर्म है परंतु इस प्रकार के
सत्यवान द्वारा किया गए किसी प्रयत्न का नाटककार ने संकेत नहीं दिया है।

४ सत्यवान को लाने के लिए यमराज पहले अपने दूत भेजते हैं, किंतु दूत सती
के प्रताप से भुलसकर भाग जाते हैं और यम अपना पाग लेकर स्वयं उस स्थल पर उपस्थित
होते हैं, जहाँ सत्यवान सावित्री की गान्ध अर्थात् अपना सिर रखकर सोया पडा है। महाभारत के
आख्यान में प्रथम बार यम ही आते हैं अपने किसी दूत को नहीं भेजते। सावित्री यमराज से
पूछती भी है 'भगवान् मैंने सुना है कि मनुष्या को ले जाने के लिए आपके दूत आया करते
हैं। प्रभो आप स्वयं यहाँ कैसे चले आये ?

श्रूयते भगवान् दूतास्तवागच्छन्ति मानवान् ।

नेतुं किल भवान् कस्मादागतोऽसि स्वयं प्रभो ॥

—वनपर्व, २६७ १४

१ महाभारत वनपर्व २६४ ७

२ वही वनपर्व २६४ ८

इसका यम उत्तर देते हैं "यह सत्यवान धर्मात्मा, रूपवान और गुणों का सागर है। यह मेरे दाता द्वारा ले जाये जाये योग्य नहीं है। इसीलिए मैं स्वयं आया हूँ—

अथ च धमसयुक्तो रूपवान गुणसागर ।

नाहो यत्पुण्यनेतुमतोऽस्मि स्वयमागत ॥"

— वनपर्व, २६७, १६

५ इस नाटक में यमराज व पीछे-पीछे सावित्री को भी उड़ना हुआ दिखाया गया है। परन्तु महाभारत के आख्यान में इन प्रकार की अलौकिक घटना का उल्लेख नहीं है। वहा तो यम के सत्यवान के प्राणसमविन सूत्रम गरार के साथ दक्षिण दिशा की ओर जान मात्र का निर्देश है।^१

६ यहा सावित्री यम से चौथा घर अपनी बुधि स कुतवद्धक, निष्कलक सतान, नारदजी की प्रेरणा से मागती है। किन्तु महाभारत के आख्यान में नारदजी का इस प्रसंग में कही कोई उल्लेख नहीं है।

७ इस नाटक में मूल कथा में असम्बद्ध कुछ अतिरिजित घटनाएँ भी हैं, यथा, आवाश में स्वर्ग का आर जाते हुए यम के पीछे सावित्री का अनुसरण करना। सत्यवान की आत्मा का यमराज के पास स पकड़ा जाना, यमराज के द्वारा यह कथन कि 'सत्यवान के शरीर से इसका स्पृश कर देना, वह जीवित हो उठेगा' इत्यादि।

सावित्री सत्यवान*

सावि यपारपान के कथानक पर आधारित, इस नाम का एक नाटक कवीप्रताप श्रीमाली का 'सावित्री सत्यवान' है। इस नाटक की जा प्रति मिली है उस पर मस्करण एवं प्रकाशन सन का उल्लेख नहीं है अथ निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि यह किस समय का लिखा है। किन्तु इसकी शली और भाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह सन १९२० के आसपास का ही हो सकता है।

कथानक

इसकी प्रधान कथा का आधार महाभारत की कथा ही है किन्तु चमत्कार तथा रोचकता का समावेश करने के लिए अखक ने कुछ परिवर्द्धन भी यत्र-तत्र किये हैं। य निम्न-लिखित हैं—

१ सतान के लिए राजा अश्वपति के माथ उनकी रानी धमवती की तपस्या, इंद्र का अप्मरात्रा की भेजना।

१ महाभारत वनपर्व २६७ १६

२ प्रकाशक टाटुप्रसाद एण्ड बुकवेलर, राजा दरवाजा बनारस

२ सत्यवान अद्भुत चित्रकार है। स्वप्न में सावित्री को देखकर उसका चित्र खचित करता है।

३ नारद विष्णु और उनकी माया को, कई दृश्या में रंगमंच पर दिखाया गया है।

४ जहाँ भी जा कुछ घटित हो रहा है वह विष्णु भगवान की पूव निश्चित की हुई रूपरेखा के अनुसार ही है।

यह नाटक अति साधारण वाटि का है। इसकी भाषा भी सिधिल है।

देवयानी शमिष्ठा कथा

महाभारत की कथामात्रा के नाम में महाराज ययाति की कथा एक महत्त्वपूर्ण कथा है।

सम्राट ययाति प्राचीन भारतीय आख्यान साहित्य माना के एक उज्ज्वल मणि हैं। उनका आख्यान रामायण महाभारत तथा पुराणों में वर्णित है।^१ ऋग्वेद में भी आख्यान का संकेत मिलता है। देवयानी और शमिष्ठा ययाति की रानियाँ थीं अतः इनकी कथाएँ भी ययाति की कथा के साथ ही सम्बद्ध हो गयी हैं। परन्तु ययाति के परिचय से पूर्व भी इनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रहा है। असुर गुरु गुक्राचाय की एकमात्र सतीत उनकी पुत्री देवयानी अपने प्रभाव के लिए, सुर असुर दोनों में प्रसिद्ध रही हैं। सुरगुरु बटस्पति का पुत्र कच गुक्राचाय के साथ उनकी पुत्री देवयानी को भी अपनी सेवा में प्रमान करने के उपरांत ही सजीवनी विद्या प्राप्त करने में सफल हो सया था। कच और देवयानी का रागात्मक आक्षेपण भी कच की सफलता में कारण बना था। कच और देवयानी के सम्बन्ध के इस कथामात्रा का नकार तीन नाटक लिखे गये हैं। चतुर्थ नाटक शमिष्ठा के चरित्र से सम्बन्धित है। उपलब्ध नाटक तथा उनके रचयिताओं की तालिका इस प्रकार है—

- १ देवयानी जमुनादास मेहरा
- २ देवी देवयानी रामस्वरूप रूप चतुर्वेदी
- ३ देवयानी कुमारी तारा बाजपयी
- ४ गेमिन्ना श्रीमती गारणा मिश्र

१ ययाति रामायण सर्ग ५० ५६

महाभारत पार्लिक प ७१ तथा ७० ८६

पुराण—विष्णु पुराण अध्याय ४ सर्ग १ ब्रह्म पुराण अध्याय १ ब्रह्माण्ड उ० पा अध्याय ६० १२

१ ३ भागवत पुराण अध्याय १० १६ मत्स्य प २४ ६२ वायु पुराण अध्याय ६२

हरिवंश अध्याय ३ कम पुराण अध्याय २२ विष्णु पुराण अध्याय ६० पद्मपुराण सूक्त

अध्याय १४ ७२

देवयानी^१

प्रकाशन क्रम में प्रथम नाटक बाबू जमुनादास मेहरा का देवयानी है जिसकी कथावस्तु सभ्ये म इस प्रकार है—

कथानक

कच देव भस्म के सब मदस्या के परामश से सज्जीविनी विद्या सीखने के लिए भूलोक म शुक्राचार्य के पास जाता है। वह आचार्य को अपना परिचय देता है तथा सज्जीविनी विद्या सिखाने के लिए उनकी समस्त शक्तों को स्वीकार करने के लिए उद्यत है। शुक्राचार्य के पास कच के आने का उद्देश्य मालूम हात ही असुर उसे अवसर पाकर मार दत्त हैं। देवयानी की प्रार्थना पर शुक्राचार्य के द्वारा वह पुन जीवित कर दिया जाता है किन्तु असुर उसे द्वितीय बार फिर मार डालते हैं। आचार्य उसे जीवित कर इस बार सज्जीविनी विद्या सिखा देते हैं किन्तु निर्धारित अवधि पूरी न होने के कारण वह गुरु की सेवा म ही लगा रहता है। तीसरी बार वह पुन मार दिया जाता है, उसकी भस्म को सुरा मे मिलाकर असुर आचार्य को ही पिना दत्त हैं। आचार्य के आदेश से उनका उदर, फाड, बाहर आने पर तथा गुरु सेवा की अवधि पूरा होने पर, कच देवलोक का प्रस्थान करता है। यहा की कथा पुरु की राज्य प्राप्ति तक चलती है।

आधार

प्रस्तुत नाटक का मुख्य आधार महाभारत है।^२

अन्तर तथा विवेचन

नाटक की कथा म मूल कथा से कोई विरोध अन्तर नहा है। नाटकीय सत्व, भाषा, भाव, चरित्रचित्रण आदि सभी दृष्टिया से यह एक उत्तम रचना है।

देवी देवयानी^३

प्रकाशन क्रम से रामस्वरूप रूप चतुर्वेणी लिखित यह दूसरा नाटक है। महाभारत की कथा म लेखक ने कुछ परिवर्तन किये हैं, जा निम्नलिखित हैं—

१ इस नाटक का कच देवलोक की समस्त परिस्थिति को समझते हुए अपन पिता

१ प्रकाशक रिखवन्स बाहिना आर० डी० बाहिनी एण्ड का न० ४ चारबगल कलकत्ता प्र० स० सन् १९२२

२ महाभारत आदिपर्व अध्याय ७६

३ प्रकाशक उपयाम बहार प्रारित बनारस प्र० स० १९३४ ई०

सम्मान एवं देश की रक्षा के लिए अपनी इच्छा से भुजाचाय का निप्य बनकर सजीविनी वधा सीखन दत्यपुरी जाना है। वह यहाँ पहुँचकर अपना वास्तविक परिचय नहीं देना है। गुरु से भी आग्रह करता है कि वे इस सम्बन्ध में उससे कुछ न पूछें किन्तु उमरा यह भ्रूजाचाय के साथ वृषपर्वा की रागमत्ता में ही नारदजी के आ जाने से खुश हुआ है।

महाभारत तथा पुराणा की कथा में वही भी नारद का उत्कर्ष नहीं है। यहाँ नाटककार की यह अपनी कल्पना है। प्रथम तो कच का गुरु के समक्ष अपना ठीक-ठीक परिचय न देना ही अनुचित है। भेद की भाँति बीच में रखकर गुरु से परम ज्ञान की प्राप्ति की इच्छा ही अनुचित है और यदि भेद रखना ही इष्ट था तो नारद की भवनारणा करके इतने सीधे बोलने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि इससे विभीषण नाटकीय प्रयाजन की मिद्धि नहीं होती।

३ दत्या द्वारा दो बार कच के मार लिये जाने पर देवयानी के अनुरोध से भुजाचाय उसे जीवित कर देते हैं। तीसरी बार दत्य उसे मर्त्य कर जलाकर उसकी मर्त्य मुरा में भेलाकर, शर्मिष्ठा द्वारा आचाय की पिलवा दत्त है। कुछ ही समय पश्चान् उनका उदर में मयकर पीडा होती है। वे समस्त परिस्थिति जान लत हैं। यहाँ देवयानी पिता से स्वयं को मृत सजीविनी विद्या सिखा देने का अनुरोध करती है किन्तु आचाय पुत्री का अपनी विद्या की अधिकारिणी नहीं समझत; देवयानी की प्रार्थना पर उत्तरस्थ कच का सिखा देने से उद्दमय है कि असुरा का अहित हागा, किन्तु यहाँ देवयानी पिता को आश्वासन देती है कि सजीविनी विद्या सिखा देने के उपरान्त भी अपने प्रेमपात्र में वह कच को यही बाधे रहेगी।

महाभारत की कथा में भुजाचाय न तो कच के ऊपर किसी प्रकार का कोई सत्कृत्य करके दिया है और न अपने प्रेम वधन में बाँधकर रखे रहने का देवयानी ने ही कोई प्रादवासन दिया है। यहाँ पुत्री देवयानी ने आचाय से अपने को विद्या सिखा देने का भी आग्रह नहीं किया है और न उहाने उस अनधिकारिणी ही धापित किया है। हा देवराज इन्द्र को व अवश्य अपनी विद्या का रहस्य वहा नहीं बनाना चाहत। इसलिए कच को विद्या देने से पूर्व उहाने इतना अवश्य कहा है—

ससिद्धरूपोऽसि बहस्पते मुत
यत त्वा भक्त भजते देवयानी ।
विद्यामिमा प्राप्नुहि जीविनीं त्व
न चेदिद्र कच रूपी त्वमद्य ॥
न निवर्तेत पुनर्जीवन कश्चिद्वयो ममोदरात् ।
ब्राह्मण धजयित्क तस्माद विद्यामवाप्नुहि ॥

—आदिपर्व अ० ७६, ५८ ५९

‘बहस्पति के पुत्र कच अब तुम सिद्ध हो गए क्योंकि तुम देवयानी के भक्त हो और वह तुम्हें चाहती है। यदि कच के रूप में तुम इन्द्र नहीं हो तो मुझसे मृतसजीविनी विद्या ग्रहण करो। केवल एक ब्राह्मण को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है जो मेरे उदर से पुन जीवित निकल सके इसलिए तुम विद्या ग्रहण करो।

कच के ऊपर उहे विश्वास है। उसे व अपनी विद्या का सवधा अधिकारी समझते

हैं। इसीलिए उसे अपने उदर में ही मजीविनी विद्या का रहस्य सिखा दन है।¹

३ यहा इस नाटक में गुनाचाय के शाप के पश्चात अपने कनिष्ठ पुत्र पुरु का यौवन लेकर ययाति देवलोक जाकर युद्ध करके देवराज इंद्र को राजसिंहासन से हटाने का प्रयत्न करत हुए दिखाया गया है, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली है अतः उसे पुनः भूमि पर आना पडा है।

महामारत की कथा में सासारिक भागा में तपति पाने के उद्देश्य से ही वह पुरु से अपनी जरा के बदले में यौवन लेता है और बाद में भागा में ही रत हो जाता है किन्तु जब उसे तपति नहीं मिलती तो पुनः अपनी जरा लेकर, उम उमके यौवन के साथ अपना राज्य देकर, वन में तप के लिए चला जाता है।

४ यहा नाटक में भूमि पर गिरत हुए ययाति का देवयानी अपनी तपस्या का सहारा भी देती है। इस घटना की भी मूल कथा से पुष्टि नहीं हाती। किसी अथ पुराण की कथा में भी देवयानी का तपस्या करत नहीं दिखाया गया है। यह नाटककार की कल्पना मात्र है।

विवेचन

जिस युग में यह नाटक लिखा गया है वह युग महात्मा गांधी के चलाय अमहयोग आन्दोलन का युग था। विदेशी दामता में मुक्ति पाने की देश में एक तीव्र लहर चल रही थी। इस नाटक का लेखक भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा है। उसने महामारत की प्रसिद्ध कथा का आधार लेकर अपने युग की भावना के अनुरूप उस एक नया रूप दन का प्रयत्न किया है तभी तो उसका एक पात्र कहता है—

जन्मे भवन भवन मे, ऐसी ही पुत्रियाँ ।
 बन जायें देश ही की शृंगार युवतियाँ ॥
 काटेंगी जन्ममू का सक्ट वे स्त्रियाँ ।
 बन कर जो राजका हो देगदासियाँ ॥

इस नाटक के साथ भूमिका भी है। उसमें भी इसी प्रकार की भावना व्यक्त की गयी है— आज नाटक-साहित्य में पौराणिक नाटका की भरमार है परन्तु पौराणिक आधार पर वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाओं का चरित्र चित्रण करत हुए सामाजिक समस्याओं को हल करने वाले नाटकों का संख्या अभाव है। देवी देवयानी की रचना कर नाटककार ने नाट्य संसार की इस कमी को पूरा कर हिन्दी साहित्य का भी क्षेत्र बढ़ाया है।

इस नाटक के लेखक का सम्बन्ध 'गुजराती थियटर कम्पनी बम्बई से रहा है, अतः नाटक के गठन का स्तर उंचा नहीं हो पाया है। भाषा भी परिभाजित नहीं है। पात्रों के चरित्र चित्रण का स्तर भी परिष्कृत नहीं है। यह एक सामान्य श्रेणी का नाटक है।

देवयानी

इसी कथानक से सम्बन्धित तृतीय रचना पुमारी तारा राजपती की देवयानी है। उन्होंने महाभारत की कथा एवं युग की समाहित सभी परिस्थितियों पर विचार करके इस नाटक को एक नित्य रूप दिया है। आधारभूत आदर्शों को उन्होंने एक विंगण दृष्टि कोण से देखा है इसीलिए मूल कथानक में उह यत्न-तन्त्र धनक परिवर्तन करने पड़ है। कल्पना का भी पर्याप्त आश्रय लेना पड़ा है।

कथानक

उनके मत में अमुरा के गुरु गुनाचाय का अमुरा के पक्ष में जान का मुख्य कारण देवा द्वारा उनकी उपाय करने गुरुपद के लिए उनके सहाय्यायी आचार्य बहस्पति का वरण करना है। यदि ऐसा न हुआ होता तो अमुरा के पक्ष में व कभी न जान। अमुरा ने अन्वय से लाम उठाया। उनका राजा वपपर्वा उनकी शरण में गया और आचार्य ने शरणार्थी का रक्षा का वचन दिया। गुनाचाय अमुरा के मदाचार से प्रभावित नहीं थे, किन्तु वे उह वचन दे चुके थे। इसीलिए उसकी रक्षा के लिए बिना परिणाम की चिन्ता किये हुए वे दृष्टता से उसका पालन करते रहे। अमुरा के अपराधा को भी वे क्षमा करते रहे। गुनाचाय की प्रिय पुत्री देवयानी भी समस्या पर पुनर्विचार करने के लिए बार-बार आग्रह करती रही किन्तु वे हिमालय के समान अपने वचन पर अटल धन रहे। देवगुरु बहस्पति भी देवानुर संग्राम के सम्भावित परिणाम का विचार करते हुए युद्ध के मध्य में ही आचार्य गुण के पास जाकर उह देवपक्ष में जाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु वे अपने वचन और निश्चय पर दृढ़ रहते हैं और आचार्य बहस्पति को अमुरा पक्ष छोड़ने के अनिश्चित किसी भी अर्थ विषय में सहायता करने का आश्वासन देते हैं। उनके इस आश्वासन के फलस्वरूप ही बहस्पति के पुत्र कच को सब देवा के परामर्श से मतसजीविनी विद्या सीखने के लिए गुनाचाय की सेवा में प्रेषित किया जाता है।

आधार अंतर एवं विवेचन

इस नाटक का आधार भी महाभारत ही है। यह अवश्य है कि अपने विशिष्ट लक्ष्य की सिद्धि के लिए उह स्थान-स्थान पर इस कथा में परिवर्तन भी करने पड़े हैं। वह विंगण लक्ष्य है देवयानी के उदात्त चरित्र का प्रस्तुतीकरण इसीलिए यथासंभव विवाह हो जाने के उपरांत ललिका ने नाटक को समाप्त कर दिया है समभवत आगे की घटनाएँ देवयानी का वह सात्विक स्वरूप बनाए रहने में सहायक न होती।

गुनाचाय की देवयानी का चरित्र निश्चित ही ताराजी में एक नये रूप में चित्रित किया है। इस नाटक की देवयानी के समस्त सदाचार देवब्राह्मण रक्षा एवं शास्त्रमर्यादा

महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ हैं। कच के उद्देश्य की सिद्धि के पश्चात् उससे अपन विवाह व प्रस्ताव म भी देवयानी का लक्ष्य दा प्रमुख आचार्यों व कुन्ता को मिलाना है। दाना के मिलन से आय सस्कृति का रक्षा का भाग प्राप्त बन सक्ता है एसा उसका विचार है, पर कच आदशवादी तो अवश्य है, किन्तु देवयानी व समान दूरदर्शी नहीं। वह, अपन आदश पर स्वापित कुछ सिद्धांता के कारण देवयानी के प्रस्ताव का स्वाकार नहीं करता ह। उसकी इन मून न राष्ट्र की रक्षा, एकता और अम्युदय के स्वण अवमर का प्रयाग्यान कर लिया। कच के अदूरदर्शितापूर्ण निश्चय से देवयाना का एक आघात लगता है पर वह विवाह है।

गर्मिष्ठा और देवयानी के भगडे म भी देवयानी का व्यवहार शालीनता और शिष्टता की भीमा का अतिशान नही करता ह। अपमानित हार भी वह प्रत्यपमान नहीं करती ह। वह उदार एव महान् आचाय गुरु की पुत्री है इसीलिए उसकी आर से कोई अमद्र व्यवहार नहीं किया जाना। गर्मिष्ठा का अमुर सम्राट की पुत्री हान का बडा गव है इसीलिए वह स्वय को समय की सोमा म बाध नहीं पानी है। देवयानी अपन गौरव की रक्षा व लिए गर्मिष्ठा को अपना दासी बनान व लिए बाध्य करके भी उससे साथ लामी का-सा व्यवहार नहीं करती। उस वह अपनी मन्वी के समान ही ममभनी है और इसीलिए ययाति के साथ अपना विवाह हा जान पर गर्मिष्ठा के साथ भी आग्रहपूर्वक राजा का गाधव विवाह करा देनी है। नारी का देव-दुनम उदार चरित्र एव त्याग यहाँ पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है।

अपने विविष्ट लक्ष्य के सम्प्र ध म लेखिना का कथन है सम्प्रति देवयानी नाटक एक विशिष्ट दृष्टिकाण म लिखा गया ह। अत मूल कथा म कुछ भिन्न अवश्य प्रतीत हागा। इसम आचाय मुन ब्राह्मण हात हुए भी अपनी पतव सम्पत्ति—आय सस्कृति के प्रति विरक्ति प्रदर्शित करत हुए लिखाइ पडते हैं। वे एन एस धमसकट म पन जात हैं कि कतव्याकृतव्य का उह जान ही नहीं रहता। वे अमुरा का महायता देने का वचन देत हैं कयाकि गरणामन की रक्षा करना व अपना परम कत व ममभन है। अत उह बहुत से अवसरा पर अपनी इच्छा के प्रतिबल भी काय करना पडता है। अमुरा द्वारा दुव्यवहार किय जान पर भी वे अपनी प्रतिना नहा भूलत। स्वय देवगुरु बहुम्पति के प्राथना करन पर भी व अपनी प्रतिना पर मेरवत अचल रहत हैं। अपनी पुत्री देवयानी को प्राणा से अधिक प्यारी मानत हुए भी व उसके हठ और आग्रह करन पर भी, अमुरा का साथ नहीं छोडत। ऐसी म्विति म यह नाटक घात और प्रतिघाता के सघप से विशेष अभिनय हा जाना है।

इस नाटक म व्यक्ति और तत्त्व का सघप लिखाया गया ह। आचाय गुरु अपन व्यक्तित्व को महत्त्व देकर ममान को भूल जात हैं। देवयानी के शब्दों म कोई भी 'यक्ति समाज के विरुद्ध कोई प्रतिना कर ही नहीं सकना।' कोई भी हिन्दू अपनी नाति अपने धम और अपनी सस्कृति व प्रति एसा व्यवहार नहीं कर सकता जा किसी प्रकार से समाज का घातक हो। शुत्राचाय की प्रतिना एमी ही थी। देवामुर सम्राम म उहोत अनार्यों को सहायता देने का वचन लिया और अपनी 'यक्तिमन प्रतिना पर हन रहे। उह सिद्धांत एसा करना उचित नहीं था। व तत्त्व का भूलकर व्यक्ति को श्रेष्ठतम ममभन रहे। जब मनुष्य

तत्त्व की ओर से विरक्त होकर 'यकित्तत्व को महत्त्व देने लगता है तभी से 'अपनी अपनी रिगरी अपना अपना राग वाली कहावत चरिताथ होने लगती है और वह छिन भिन होने लगता है। अततोगत्वा, वह विनाश की ओर अग्रसर होना प्रारम्भ कर देता है।'^१

नाटक की लेखिका के उपयुक्त निवेदन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके नाटक की कथावस्तु का आधार महाभारत की कथा हाते हुए भी एक नयी दृष्टि देने के लिए उसमें उहाने आवश्यक परिवर्तन किये हैं। आचार्य शुक्र का जो रूप उहाने अपने नाटक में चित्रित किया है वह महाभारत की कथा से सबथा भिन्न है। यही बात अशत कच और देवयानी के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

देवयानी और ययाति के बर्वाहिक सम्बन्ध को एक सयोग न मानकर उहाने एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया सम्बन्ध माना है, पर इसका स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। वस्तुतः महाभारत की कथा के आधार पर तो इस सयोग ही कहना चाहिए। शमिष्ठा देवयानी के भ्रगडे में शमिष्ठा न देवयानी की एक सूखे कूप में धकल गिया और अपने भवन को चली गयी। आखेट करत हुए राजा ययाति सयोग से उसी दिशा में आ गय और प्यास से व्याकुल हो जल का अन्वेषण करते हुए उसी कूप में निकट पहुचे। उ होने हाथ पकडकर देवयानी को कूप से बाहर निकाला और देवयानी ने अपने रजक तजस्वी राजपि ययाति को आत्मसमर्पण कर दिया, इसे सयोग ही कहा जा सकता है। यह भी सम्भव है कि अमुरा के मध्य रहते रहत देवयानी के मन में, उनके प्रति एक वितृष्णा जागत हो गयी हो और आयों के सम्राट परम प्रतापी ययाति की अमुर संहार के लिए उपयुक्त यज्ञिन समझ कर उह अपने पति के रूप में चुन लिया हो। यह भी हा सनता है कि कच से तिरस्कृत हाकर वह उस दिशा दना चाहती हो कि उसका पति कच से ही नहीं दवा से भी अधिक गविनशाली है। जो भी हो लेखिका ने इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं डाला है।

शमिष्ठा^१

इस प्रसंग का चौथा नाटक 'श्रामती गारुड मिश्र का शमिष्ठा है। देवयानी शमिष्ठा और ययाति के सम्बन्ध कथा को आधार बनाकर लिखे गए सभी नाटकों से यह सबथा भिन्न है। कथा इस प्रकार है—

कथाकार

मुपारण्य एक अमुर यादा है जो अमुरा के वपपर्वा के पास सोट रहा है। शमिष्ठा से यह भिन्न जाना है। ययाति की गम्भति में कच की दृष्टि पर शान्तर शमिष्ठा अपने पिता के

१ नाटक की लेखिका पृष्ठ ५२

२ प्रकाशक हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी।

निए सदेग प्रेषित करती है क्याकि उसे डर है कही देवयानी उसके बच्चा तथा सदेग के सम्बन्ध में न जान ले। रोचना उसकी मामरी बहन है जा ययानि के विरुद्ध उममे कई बातें करती है पर शमित्रा मन्त्रा यथोचित उत्तर देती है। तमी इन्विषा (शमित्रा की धाय) ग्रानी है, जो कहती है कि तुयारथ का प्रतीशा करत बडी दर हो गयी है तीना पुनों को गीघ्र भेज दा। शेमित्रा ययाति की प्रतीशा म हैं। वह मगत क्षण म पुत्रा को विग नहा करना चाहती।

तमी ययाति यथापरान दवयानी क साथ आल ह। बच्चे भो यथागाला के बाहर खेलत हाते हैं। दवयानी उत्सुकता मे बच्चा स उनरी माता के सम्बन्ध म पूछती है और रहस्य जानकर अति क्रुद्ध हानी है। ययाति बडे चिन्तित हो जात हैं। दवयानी शेमित्रा को दण्डस्वरूप इद्रमद्र के द्वारा रचिन नवीन जनपद भेज देने के लिए कहती है जिसस शेमित्रा जीवन भर राजा ययानि का मुह न देख मके किंतु तमी महर्षि शुन प्रवण करत हैं। पिता के सममाने-बुमान से, दवयानी परिस्थितिया के साथ समभौता करन म ही अपना बन्धाण मानती है। इस प्रकार आयों और अमुरा का मेल हो जाना है और पुरु आयावत ना युवराज धापित कर दिया जाता है।

विवेचन तथा आधार

इस नाटक की रचना एक भिन प्रकार के दृष्टिकोण का केन्द्र बनाकर की गयी है। इस सम्बन्ध म लखिका का कथन है—

‘मसार क मानचित्र म आजकल जिम स्थान को मसापाटामिया का मदान कहा जाना है वहा ई० पूव तीसरी सहस्रादी म महान अमुर सस्कृति अपन विकाम पर थी। भारतीय सस्कृत पुराणा म जिह अमुर या राशस कहा जाना है वे वास्तव म मध्य एशिया की एक महान् मुमस्कृत जाति क मनुष्य थे। असीरी वेबीलोनी सम्यता के विषय म गविषणाग्रा द्वारा काफी प्रकाश डाला जा चुका हैं। अमुर आयों की अपेक्षा अधिक प्राचीन और सस्कृत थ। तुया (टाइग्रिस) और मद्रा (यूफ्रेटिस) नदिया की मध्यवर्ती भूमि पर उनका सक्ति गाली अमुर जनपद बसा हुआ था। उत्तर, निनवा बाबुल और अमुर असीरिया मे इनके नगर और गं थे। अमुर सम्य कूर और अच्छे यादा थे। लिखने की कला का विकास सबप्रथम उहने किया था। वे कच्ची मिट्टी की इटा पर कीला से खान्कर अपनी लिपि अंकित करत थ। वे दबी ओसस (उपा) अनलिल (अनिन) और (महान् अमुर वरण) अमुर मेघस अथवा अमुर मज्जाओ की पूना करत थ। शेमित्रा अमुर साम्राज्य के प्रतापी सम्राट वृषपवा की पुनी थी। वृषपवा स्वय गमीवण समेटिक का अमुर था। महाभारत और पुराणा म शेमित्रा का शमिष्ठा नाम दिया गया है जो किमी अमुरभाषीय गं का आयोजकरण मालूम पडता है। इसीलिए मैं इस नाम का बदलन ना साहस किया है — शेमित्रा अयात शमीवण की कथा।

जिसे आजकल फारस या ईरान कहत हैं, वह पहले पगु देग के नाम मे विख्यात था। पगु मे दो जन निवास करत थे — उत्तर म मद और दक्षिण म दवस। देवा के साथ अमुरा का निरन्तर युद्ध चलता था। पुराण वाड मय दवामुर मग्राम स भरा पडा है। पूव मे कम्बोज (साधुनिक अफगानिस्तान) और सप्तसिंधु (पंजाब) म आय जनपद बस रह थे। आयें

ऋषि और राजयोग्य युद्ध में बन्धी देना का साथ देना था, बन्धी अमुरा था। उनकी गति का प्रभाव सप्तसिंधु के अन्तिम छोर तक था। अमुराद्र वृषपर्वा में युद्ध में अपनी गति दृढ़ करने के लिए प्रचण्ड तजस्वी विद्यानिपुण भृगुवर्गी पुत्र (मर्त्य उपनम) को बुलाकर अपना पुरोहित बनाया। गुनाचाय की युवती बन्धी देवयानी उनका साथ गयी। उस अज्ञान आयत्व का वण का और भृगुवर्गी की पुत्री होने का गव था। दाना में अच्छी तरह पट न सकी। देवयानी ने अपने पिता को उत्तेजित किया और अमुरेद्र का पौराहित्य छाड़कर सप्तसिंधु जान का कहा। अंत में शोमित्रा की आज्ञा में दासा उनाकर, देवयानी का प्रतिगाथ शात हुआ। देवयानी का विवाह सोमवशी राजा ययाति में हुआ। शोमित्रा भी उसकी दाम्नी के रूप में आयकुल में आयी। ययाति ने उसका रूप और अभिजात्य से प्रभावित होकर उससे गुप्त परिणय कर लिया। पर उस भगवान शुक्र और देवयानी का भय था। शोमित्रा के प्रति उसके आकर्षण का कारण अमुरेद्र का विनाश राज्य भी था। शोमित्रा के तीन पुत्र द्रुह्यु, अनु और पुर हुए और देवयानी के यदु और तुवसु। तुवसु मध्य एशिया के उस स्थान में बस गया जो आजकल तुकिस्तान कहा जाता है। समवत वही तुक जाति का आदि पुरुष था।^१

ललितका के इस वक्तव्य से नाटक के विषय में उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। भागवत पुराण की मूल कथा में जो परिवर्तन उहने किए हैं उनके कारणों पर भी इससे प्रकाश पड़ता है। नाटक को पढ़ने और विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि इस कथा पर लेखिका ने मनन किया है। उनके अध्ययन की दृष्टि मुख्यतः ऐतिहासिक और भौगोलिक रही है पर तु यह घटना इतनी प्राचीन है (विक्रमीय संवत् के आरम्भ काल से भी सहस्रों वर्ष पुरानी है) कि उसके सम्बन्ध में निश्चित आधारों का निर्धारण करना कठिन है। अतः लेखिका का केवल मात्र यह कथन कि इस नाटक का आधार केवल भागवत पुराण है पर्याप्त नहीं है क्योंकि भागवत पुराण में कथा का यह रूप नहीं है।^२

इस नाटक में भागवत की कथा का आधार तो नाम मात्र का ही है सारा सव्यूहन मुख्यतः लेखिका की कल्पना पर ही आधारित है। मुख्य कथा के सूत्र को लेकर उहने उस पर अपनी उदभाविनी कल्पना का मुलम्मा बनाकर पल्लवित किया है। इस पल्लवन से एक नयी कथा का सजन हो गया है। यह कहना कठिन है कि लेखिका की इस कल्पना का आधार क्या है। अच्छा तो यह रहता कि अपने आमुख में अपनी कल्पना के आधारभूत स्रोतों का वे निर्देश कर देती जिस उहने अपने नाटक की कथावस्तु का आधार माना है। भागवत पुराण में तो इस प्रकार का कोई संकेत नहीं है।

देवयानी और शोमित्रा (शोमिष्ठा) का यहा जो रूप चित्रित किया गया है वह अत्यन्त अप्राप्य है। गुनाचाय का भी एक भिन्न रूप में ही चित्रित किया गया है। उनके इस चित्रण से विनाश मीय साम्राज्य के निर्माता और संचालक आचाय चाणक्य की स्मृति आ जाती है। उहोंने भी यवन सम्राट सल्यूकस की पुत्री से चद्रगुप्त मीय का बवाहिक सम्बन्ध

१ नाटक आमख

२ भागवत पुराण स्कंध ६ अध० १८ १६

राजनीतिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए सम्पन्न कराया था। इस नाटक में भी अमुर सम्राट वृषपत्नी की पुत्री शेमिना के साथ, ययाति का विवाह भी इसी प्रकार के उद्देश्य की सिद्धि के लिए आचाय युक्त के प्रयत्न से होता है। वे कहते हैं—

“मनुष्य अपने क्षुद्र स्वाध से विराट् को दूषित करता है। अमुरो और आर्यों के इस महान जनपद को एक करने के प्रयत्न में मेरे मस्तक के केश श्वन हो गये और इस लड़की देवपत्नी का हठ मेरे पचास वर्ष के परिश्रम का निष्फल किये दे रहा था। अमुर प्रजा अपनी राजकन्या के अपमान से क्षुब्ध थी। अमुर सम्राट उद्विग्न था। आर्यों के प्रति उनकी भावनाएँ कटु होती जा रही थी। उधर आर्यों का यह वणद्वेष मिथ्या अहंकार की सृष्टि कर रहा था। इन विषमता के प्रतिकार का एक ही उपाय था—आर्या और अमुरों का रक्त सम्बन्ध।”^१

यहाँ आचाय युक्त का अति उदार एवं दूरदर्शी रूप चित्रित हुआ है। इसीलिए ययाति के वृद्धत्व के नाप की घटना यहाँ त्याग दी गयी है। उसके साथ उनका इस प्रकार का उदात्त स्वर्ण चित्रित नहीं पाता। ययाति का चरित्र यहाँ साधारण है।

द्रौपदी स्वयंवर

द्रौपदी स्वयंवर महाभारत में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। स्वयंवर मण्डप में अपने अचूक लक्ष्य के द्वारा मत्स्याग्निभेदन करके अजुन द्रौपदी को प्राप्त करता है। दुर्योधन इस घटना के द्वारा यह जान लेता है कि पाण्डव अब भी जीवित हैं। उधर पाण्डव आगामी परिस्थितियों में, द्रुपद की सहायता पाने की स्थिति में हो जाते हैं। इस प्रकार यह प्रसंग दुर्योधन के हृदय में ईर्ष्या का एक नया बीज बपन करता है जिसके परिणामस्वरूप कई नूतन घटनाएँ घटती हैं।

इस विशिष्ट प्रसंग को लेकर दो नाटक लिखे गये हैं—

१ द्रौपदी स्वयंवर ज्वालाराम नागर विलक्षण^१

२ द्रौपदी स्वयंवर राधेश्याम कथावाचक

इन दोनों नाटकों की विशेषता यह है कि इनका शीर्षक यद्यपि केवल एक विशिष्ट प्रसंग से सम्बन्धित है, तथापि नाटक में महाभारत की अनेकों घटनाओं का समावेश भी किया गया है, जिनमें बहुतेक-सी अप्रासंगिक घटनाएँ भी सम्मिलित हो गयी हैं।^१

द्रौपदी स्वयंवर^१

यह नाटक सर्वाश में महाभारत पर ही आधारित है अतएव इसकी घटनाओं के स्रोत का सर्वत्र नाटक के सक्षिप्त कथानक में ही पाद टिप्पणी में कर लिया गया है।

१ अभिज्ञा पृष्ठ ७४

२ प्रकाशक जिवारामनाथ दुष्ट उपयान बहार आफिस काशी प्र० सं० भाव १९२१

कथानक और आधार

द्रोणाचार्य राजा द्रुपद की समाधि में आकर उसको उसकी प्रतिमा का स्मरण दिलाकर आधा राज्य चाहते हैं। द्रुपद उनका अपमान करता है और द्रोणाचार्य विदिम्बावत्या में इधर उधर घूमने हैं। तत्पश्चात् कृपाचार्य के परामर्श और भीष्म के अनुरोध से कौरव पाण्डवा के गुरु नियत कर लिए जाते हैं।^१ अर्जुन के कौशल से प्रसन्न होकर द्रोणाचार्य उस ब्रह्मास्त्र दत्त हैं।^२ निपादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य भी द्रोणाचार्य के समीप धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आता है किन्तु निपादपुत्र होने के कारण द्रोण उसे शिक्षा देना स्वीकार नहीं करते। द्रोण की अस्वीकृति पर एकलव्य स्वयं अभ्यास करता है और असाधारण निपुणता प्राप्त कर लेता है। द्रोणाचार्य इससे प्रसन्न नहीं होते और गुरुदक्षिणा में उससे दाहिने हाथ का अंगूठा कटवा लेते हैं। इसके पश्चात् नाटक में राजकुमारा की शस्त्रपरीक्षा का दृश्य प्रस्तुत किया जाता है। रणभूमि में अस्त्रशौशल के प्रदर्शन के समय अर्जुन के साथ कर्ण का विवाद छिड़ जाता है और यह विवाद (कर्ण के कुल से सम्बन्धित) एक भीषण रूप धारण कर लेता है।^३

इसके पश्चात् द्रोण गिष्या से गुरुदक्षिणा मांगते हैं। आचार्य की इच्छानुसार सब शिष्य सना लेकर द्रुपद पर आश्रमण कर देते हैं और द्रुपद को पकड़कर गुरु के सामने उपस्थित करते हैं। आचार्य द्रोण उसके विजित राज्य में से उस आधा राज्य लौटा देते हैं। गंगा के उत्तर के प्रदेश के स्वयं राजा बनते हैं जिसकी राजधानी अहिच्छत्र है और गंगा के दक्षिण की ओर का भाग जिसकी राजधानी काम्पिल्य है वे द्रुपद को दे देते हैं। द्रुपद द्रोणाचार्य से बदला लेने के लिए यत्न करता है। याज्ञ नाम के मुनि यत्न करवाते हैं जिससे घटवृष्ण और द्रौपदी प्रकट होते हैं। आकाशवाणी द्वारा यह ज्ञात होता है कि यह पुत्र द्रोण का अंत करने वाला होगा और पुत्री कौरवकुल का नाश का कारण बनगी।^४ युवति हो जाने पर द्रौपदी का स्वयंवर रचाया जाता है।^५

अन्तर

महाभारत की कथा से इस नाटक की कथा में यही अंतर है कि नाटक में द्रुपद की समाधि में द्रोणाचार्य पहुंचकर उसकी प्रतिमा का स्मरण दिलाकर आधा राज्य चाहते हैं, जबकि महाभारत में अपनी पुरानी मंत्री का स्मरण कराकर द्रोणाचार्य सहायता की याचना करते हैं। यह अधिक समीचीन एवं बुद्धिसंगत प्रतीत होता है क्योंकि बाल्यावस्था में कहीं हुई बात की याद दिलाकर मित्र से आधा राज्य मांगना बड़ा हास्यास्पद एवं अस्वाभाविक

१ महाभारत आश्रमिक (सम्भवपर्व) अध्याय १३

२ वही अ. ३२ श्लोक १८

३ महाभारत आश्रमिक (सम्भवपर्व) अ० १३१ ३२ ३४ ३५ ३७

४ वही (अश्रमपर्व) अध्याय १६६ श्लोक ३६ ५०

५ वही (स्वयंवरपर्व) अध्याय १३७

प्रतीत होता है।

प्रस्तुत नाटक की कथा में, यज्ञ की लपटा से धष्टद्युम्न और द्रौपदी के जन्म जैसी घटनाएँ आज के युग में बुद्धिमत्त प्रतीत नहीं होती, ता भी लेखक ने उन्हें कोई नया रूप देने का प्रयत्न नहीं किया है।

द्रौपदी स्वयंवर^१

यह नाटक राधेश्याम कथावाचक लिखित है। यह विशेषतः यू अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी के लिए रचा गया है।

कथानक

प्रस्तुत नाटक का आरम्भ श्रीकृष्ण और नारद के वार्तालाप में होता है। नाट्य जनसंख्या कहते हैं कि अपनी मायिक शक्ति में वे आततायिया का सहार क्या नहीं कर दते। श्रीकृष्ण प्रत्युत्तर देते हैं कि प्रत्येक रूप में पाण्डवा की सहायता देने का अवसर अभी नहीं आया है अभी तो समस्त पाण्डवों की योगमाया ही बर रही है। विदुर की बुद्धि में बँठकर वही लाभापुह से पाण्डवा की रक्षा करायी और उसके बाद द्रौपदी-स्वयंवर में भी विजयी बनायगी। ऐसा ही हाना है।

हस्तिनापुर में राजकुमारा की परीक्षा होती है। इस घटना के द्वारा आपस में बहुत बटुना आ जाती है। दुर्योधन अपने पिता का पसनाकर पाण्डवा को उत्तम दखन के बहाने वारणवन में भेज देने में सफल हो जाता है।

इस नाटक में हस्तिनापुर की घटनाओं का प्रथम और द्वारका की मुख्य घटनाओं का प्रथम एक साथ चलता है। कथा कुछ जटिल-सी बन गयी है। जाम्बवत की पुत्री जाम्बवती के साथ श्रीकृष्ण का विवाह मुच्युतस्य और भीमामुर की कथा, जैसी अप्रासंगिक कथाएँ भी इसमें सम्मिलित हैं।

यह नाटक पूर्णरूपण महाभारत पर आधारित है।^२ घटनाओं में कोई काँट-छाँट नहीं की गयी है, केवल उन्हें नाटकीय रूप में प्रस्तुत कर दिया गया है।

१ प्रकाशक राधेश्याम पुस्तकालय बरेली प्रथम सं० सन् १९३०

२ महाभारत आन्विक संख्या १३३ ३४ ४२ ४४ ४६ ४५ ६२

पाण्डव प्रताप अथवा सम्राट् युधिष्ठिर^१

यह नाटक वावू हार्लस माणिक का लिखा हुआ है। इसकी सभिप्त कथावस्तु इस प्रकार है—

इन्द्रप्रस्थ में मय नाम के अमुर शिपी द्वारा महाराज युधिष्ठिर की राजसभा का अदभुत वास्तुकला प्रदर्शन के साथ निर्माण कराया जाता है। महाराज युधिष्ठिर उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। इसी समय द्रुपदि नारदजी आते हैं और वे महाराज युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने की सम्मति देते हैं। इस प्रस्ताव पर विचार करने के लिए दूत भेजकर द्वारका से श्रीकृष्ण का बुलाया जाता है। श्रीकृष्णजी युधिष्ठिर को परामर्श देते हैं कि जब तक जरासंध का अंत न कर दिया जाए तब तक राजसूय यज्ञ करना ठीक नहीं है। भीम और अर्जुन को साथ लेकर वे स्वयं इस कार्य के लिए जाते हैं। भीम के साथ मल्लयुद्ध में जरासंध मारा जाता है। उसके पुत्र सहदेव को राजसिंहासन देकर भीम और अर्जुन सहित श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ लौट जाते हैं। समारोह के साथ राजसूय यज्ञ का आयोजन होने लगता है। अर्जुन के संरक्षण में यज्ञीय अश्व छोड़ा जाता है। दिग्विजय के पश्चात् राजाघ्रा से प्राप्त विपुल धन और विविध प्रकार के उपहारों से भण्डार भर जाते हैं।

यज्ञ आरम्भ होने पर अर्घ्य अर्पण का अधिकारी भीष्म पितामह की सम्मति से श्रीकृष्णजी को माना जाता है। गिणुपाल इस नियम का विरोध ही नहीं करता, अपितु आक्षेपयुक्त एवं अपमानजनक भाषा में उनकी भक्तता भी करता है। सौ गालियाँ क्षमा करने के उपरान्त श्रीकृष्ण उसका सहार कर देते हैं। यज्ञ पूरा होता है। महाराज युधिष्ठिर सम्राट की उपाधि धारण करते हैं।

आधार

कथावस्तु का आधार महाभारत के समापन के आरम्भ की कथा है।^२

नाटककार ने महाभारत की विस्तृत कथा को इस छोटे से नाटक में बड़े ही कौशल से गुम्फित किया है। नाटक की शली पर तत्कालीन थियेट्रिकल कम्पनिया का प्रभाव स्पष्ट है तथापि परिष्कृत चरित्र चित्रण भाषा तथा कथोपकथन की ओर लेखक ने पर्याप्त ध्यान दिया है। महाराज युधिष्ठिर के समाभवन को देखते हुए दुर्योधन की मन स्थिति भीष्म की उदारता तथा सम्राट युधिष्ठिर के विनयभाव आदि का चित्रण अति सुन्दर है। वस्तुतः इसकी रचना विशुद्ध हिन्दी रसमंच के लिए की गयी थी। काशी नागरी नाटक मण्डली द्वारा प्रकाशन से पूर्व ही इस नाटक का सफल अभिनय भी किया गया था।

१ प्रकाशक माणिक कार्यालय काशी प्रथम सं १९१७ ई

२ महाभारत समापन अध. १४५

वचन का मोल^१

उमाशंकर बहादुर लिखित इस नाटक में कुल तीन अंक हैं। महाभारत की कुछ घटनाओं का लेकर ही लेखक ने इस नाटक का सृजन किया है। इसका प्रस्तुतीकरण साधारण है। क्या इस प्रकार है—

कथानक

नाटक का आरम्भ गजुनि के साथ युधिष्ठिर के जुआ खेलने से होता है। क्रमशः वे सम्पूर्ण वस्तुओं का हारत चलाते हैं यहाँ तक कि द्रौपदी का भी वे दाव पर लगा बैठते हैं। द्रौपदी राजसभा में दुःशासन द्वारा घमोड़कर लायी जाती है और उसका चीरहरण किया जाता है। द्रौपदी के गीन-मन्त्राचार से प्रमत्त हो घतराष्ट्र उससे तीन वर मागने के लिए कहता है किंतु वह केवल दो वर मांगती है प्रथम से युधिष्ठिर की दास्य स्थिति से मुक्ति तथा द्वितीय से अपने अग्र पतिव्या की मुक्ति। तीसरा वर वह यह कहकर नहीं मांगती कि क्षत्रिय की पत्नी का केवल दो वर मागने का अधिकार है—

एकमाह्रुवैश्वर द्वौ तु क्षत्रत्रिया चरौ ।

अथस्तु राज्ञो राजेद्र ब्राह्मणस्य शत वरा ॥^२

द्रौपदी के इस गीत से घतराष्ट्र अति प्रसन्न होते हैं और वे पाण्डवा का सम्पूर्ण राज्य उन्हें मँप देते हैं।

पाण्डव राज्य प्राप्त करके इन्द्रप्रस्थ तक भी नहीं पहुँच पाते कि दुर्योधन के आग्रह पर घतराष्ट्र को पुनः दूत भेजना पड़ता है। आदेश पालन की दृष्टि से युधिष्ठिर पुनः आ पहुँचते हैं। दूत का खेल पुनः प्रारम्भ होता है और इस बार की शत के अनुसार पाण्डवा को बारह वप का वनवास और एक वप का अनातवास मिलता है।

आधार

कथा को आधार महाभारत का समापन है।^३ नाटक की कथावस्तु में अन्तर केवल उस स्थल पर है जहाँ चीरहरण की घटना को लेखक ने महाभारत के सट्टा एक अलौकिक रूप में देकर अति मनात्रानामिन् तथा बुद्धिसम्भत रूप दिया है। यहाँ वृष्ण ही द्रौपदी का वस्त्र नहीं बनाते अपितु घतराष्ट्र मध्य में पड़कर स्वयं इस अशोभनीय कृत्य का रूढ़वा देते हैं।

प्रस्तुत नाटक का नामकरण वचन का मोल^१ सम्भवतः इसी आधार पर किया गया है कि सब कुछ खाने, देकर और सहकर भी युधिष्ठिर अपने वचन का पालन करते हैं।

१ प्रकाशक वेदर बुक कम्पनी पटना और दिल्ली स० १९५१ वि०

२ महाभारत समापन (सूत्रपर्व) अध्याय ७१ ३५

३ महाभारत समापन अ० ६० ६१ ६५ ६७ ६८ ७१ ७४ ७६ और ७७

कृष्णापमान^१

गणेशदान शर्मा गौड़ द्वारा लिखित इस नाटक की कथा मुद्र रूपा से द्रौपदी के अपमान से सम्बंधित है। पाच अंकों का यह सक्षिप्त नाटक है। कथावस्तु इस प्रकार है—

नाटक का प्रारम्भ घतराष्ट्र द्वारा पाण्डवा को उनका आधा राज्य दिला दिया जाने पर दुर्योधन के मनस्ताप से होता है। कण, दुर्योधन, शकुनि इत्यादि मिलकर विचार विमर्श करते हैं कि किसी प्रकार घतराष्ट्र को इस बात के लिए राजी कर लिया जाए कि वे पाण्डवा का कौरवा के साथ जुग्रा खेलने दें। जुग्रा खेला जाता है और परिणामस्वरूप युधिष्ठिर जुए में सब-कुछ हार जाते हैं। द्रौपदी का सभा में घोर अपमान किया जाता है।

नाटक में यही अंतिम घटना प्रमुख है। इसके आगे की घटना पुनः राज्य देने का केवल सबत मात्र है।

आधार

नाटक का आधार महाभारत है।^२ कृष्णा (द्रौपदी) का अपमान महाभारत की एक प्रसिद्ध घटना है। नाटककार ने इसी घटना को अपने नाटक का विषय बनाया है।

विवेचन

नाटक की कथावस्तु छोटी रखने के कारण लेखक को पात्रों के चरित्रों के विकास का अवसर अधिक मिला गया है। दुर्योधन, शकुनि, कण आदि का परिचय अच्छा कराया गया है।

नाटक की भाषा पर युग की थियेट्रिकल कम्पनियों की तुलनादीर्घी भाषा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने प्रयत्न करके भाषा को गूना है। उस युग के नाटकों की दूसरी विशेषता अतिरिक्त एवं अगोमनीय शृंगारिकता इसमें कहीं नहीं भ्रान पाई है।

द्रौपदी-वस्त्रहरण^३

राय प्रभुनाल निम्न पाँच अंकों का गद्य पद्यमय यह एक मुन्तर नाटक है। लक्ष्य ने कथा का बड़ बौगल से एक सूत्र में पिराया है। कथावस्तु इस प्रकार है—

नाटक का प्रारम्भ राजसूय यज्ञ से होता है। दुर्योधन वहाँ पाण्डवा का वस्त्र तथा

१ प्रकाशक साहित्य कानून कायदा भागनपुर प्र० सं० १६७५ वि०

२ महाभारत भाग २ ६ अध्याय पृ ४७ ४८ ५६ ६८

३ प्रकाशक श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेम प्रकाशक सन् १९५३ पृ १०६६

अपना अपमान देखकर जल भुन उठना है और हृदय में एक गूल लेकर वह हस्तिनापुर लौटता है। घतराष्ट्र को उक्साकर पाण्डवा को जुमा खेला के लिए अपन यहाँ बुलवाता है। युधिष्ठिर द्रौपदी सहित अपना सबकुछ दाँव पर लगाता है। द्रौपदी अपमान सहित समामण्डप में खीचकर लाइ जाता है। उसके प्रदना का उत्तर पुन का साहम किमी समासद म नहीं होता। अत म घतराष्ट्र प्रसन होकर उमे वर देत है।

युधिष्ठिर को उनका राज्य लौटा दिया जाता है किंतु पाण्डव अभी इद्रप्रस्थ में नहीं पहुँच पाते हैं कि घतराष्ट्र के आदेश से उन्ट पुन बुला लिया जाता है, जुधा फिर खेला जाता है। इस बार उन्हें वारह वष का वनवास और एक वष का अनातवास मिलता है। पाचा पाण्डव भुनिवग धारण करके वन को प्रस्थान करते हैं।

नाटक का आधार महाभारत है।

नाटक में घटनाओं का संयोजन उत्तम है। नाटक अभिनेय है। भूलक्या से नाटक की क्या म कोई अन्तर नहीं है।

अज्ञातवास

प्रस्तुत नाटक द्वारा प्रसाद रचित है। जसा कि नाम से स्पष्ट है क्या पाण्डवा के वारह वष के वनवास व उपरान्त घन के अनुसार एक वष के अनातवास से सब व रखनी है। नाटक का कथाव इस प्रकार है—

— द्रुपद की शत के अनुसार पाण्डवा का वन में घूमते फिरते वारह वष हो चुके हैं। अब एक वष अनातवास का शेष है किंतु भीम और द्रौपदी की इच्छा है कि अधिक कष्ट न सहकर इसी समय हम युद्ध द्वारा अपना अधिकार प्राप्त कर लेना चाहिए। युधिष्ठिर भीम को गत करके उचित मांग पर वान का प्रयत्न करते हैं। इसी समय महर्षि व्यास उनके पास आते हैं और सम्मति देते हैं कि उन्हें कहा और किस प्रकार गुप्त रूप से रहना चाहिए। व्यासजी के आदेशानुसार युधिष्ठिर अपने परित्रान वग का राजा द्रुपद के महा छोड़, अपने अपन नाम बदलकर राजा विराट के महा द्रौपदी के साथ रहने लगते हैं। युधिष्ठिर का नाम से जुए आदि से विराट का मनोरजन करते हैं। अर्जुन बृहन्नला नाम से हिजडे का रूप धारण कर विराट की पुत्री उत्तरा का नत्य सिखाने के काम पर नियुक्त होते हैं। भीम, जयंत नाम से पाकशाला का अध्यक्ष बनता है। नकुल, वाहुक नाम से अश्वशाला का निरीक्षक तथा सहदेव तनिपाल नाम से माशाला का मुख्य अधिकारी बन जाता है। द्रौपदी सरध्री नाम से विराट राजा की रानी सुदण्णा की परिचारिका बनती है। कुछ समय उपरांत द्रौपदी पर कुदृष्टि रखने के कारण रानी का भाई कीचक जो

१ महाभारत महापर्व (सूतपर्व) अ० ४७ ५६ ६५ ६७ ७१, ७४ तथा ७६

२ प्रकाशक रसिकद्वय नाटक माला कालपी उ प्र० प्रथम संस्करण

सेनापति भी है और उसके अग्र भाई भीम के द्वारा मारे जाते हैं।

कीचक के मारे जाने के समाचार फलने पर मत्स्य देश का राजा सुशमा अवसर पाकर कौरवा की सहायता से बिराटनगर पर आक्रमण कर देता है। दुर्योधन बिराटनगर के राजा की भीमा का अपहरण कर लेता है। खूब युद्ध होता है और अर्जुन अपने वास्तविक रूप में प्रकट होकर सबको परास्त कर देता है। दुर्योधन हार जाने पर भी इसलिए प्रसन्न है, कि अबधि पूरी होने से पूर्व ही पाण्डवा का पना चल गया है अतः उन्हें बारह वर्ष पुनः वन में रहना चाहिए। किंतु भीष्म, द्रोण तथा कृपाचार्य ज्योतिष की गणना करके निश्चित रूप से बताते हैं कि अनातवास की अबधि शीत चुकी है।

विजय के उपलक्ष्य में बिराटनगर में आनंद मनाया जाता है। सबके परामर्श से उत्तरा का विवाह अर्जुन पुत्र अभिमन्यु से कर दिया जाता है।

आधार

नाटक का कथानक पूणरूपेण महाभारत पर आधारित है।^१

मुख्य रूप से अभिनय के लिए ही यह नाटक रचा गया प्रतीत होता है क्योंकि घटनाएँ क्रमबद्ध सुनिश्चित तथा रोचक हैं। पात्रों का चरित्रचित्रण सामान्य है प्रस्तुतीकरण उत्तम है और कल्पना का अंश शून्य के समान है।

भीम-प्रतिज्ञा

जीवानंद शर्मा लिखित तीन अंकों का यह नाटक थियेट्रिकल कम्पनिया की शाली पर लिखा गया है। दृश्या की सत्या प्रत्यक अंक में अधिक होने से यह आकार में बड़ा हो गया है। कथानक निम्न प्रकार है—

नाटक का आरम्भ इन्द्रप्रस्थ में महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ से होना है। दुर्योधन इस यज्ञ में युधिष्ठिर की प्रतिष्ठा और बन्धुत्व को दण्डित ईर्ष्या करता है। इसके बाद एक दिन वह महाराज युधिष्ठिर का नया प्रासाद देखने के लिए आता है। भीम प्रासाद का निवान का वायु अपन ऊपर लत है। अवलोकन के मध्य दुर्योधन फस को हीज हीज को फना, दीवार का दरवाजा और दरवाजे को दीवार समझना चलता है। द्रौपदी खिलखिलाकर हँस पड़ती है और मध्या की सतान आधी हानी है बहकर व्यग्य करती है। यह व्यग्य दुर्योधन के हृदय में चुभ जाता है। पाण्डवा से प्रतिगोप लने के लिए वह गवुनि की सलाह से धतराष्ट्र से पाण्डवा का बुलवाना है। आन पर धतराष्ट्र जुआ खेलन का प्रस्ताव रगत

१ महाभारत बिराटनगर में ७-१२ २२ ३० ३५ ५ १६ तथा ७२

२ प्रकाशक बिहार एजन्स प्रेस एण्ड स्टोर्स भागलपुर

हैं। युधिष्ठिर आज्ञा-मानन की दृष्टि से खेलने के लिए तैयार हो जाना है और राज्य, भाई, द्रौपदी तथा स्वयं तक को दाँव पर लगा देते हैं। द्रौपदी का समा म अपमान किया जाना है। कृष्ण उसकी लज्जा की रक्षा करते हैं। द्रौपदी के बहने से घतराष्ट्र पाण्डवा को मुक्त कर देते हैं किंतु दुर्योधन यह नहीं चाहता इसलिए पाण्डवा के पास जुआ खेलने का निमंत्रण घतराष्ट्र के द्वारा वह पुनः भिजवाता है। इस बार हारने वाले के लिए बारह वष का वनवास तथा एक वष तक अनातवास भुगनन की दण्ड की शत रखी जाती है।

इसके बाद महाभारत की परिचित घटनाएँ हैं। अतः महाभारत युद्ध से होता है। भीम दुःशासन के रक्त से द्रौपदी को स्नान कराता है और इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करता है।

इस नाटक की कथा महाभारत से ली गयी है। महाभारत से नाटक के कथानक में प्रमुख अंतर उस स्थान पर है, जहाँ भीम दुःशासन के रक्त से द्रौपदी को स्नान कराया कर तुष्टि अनुभव करता है जबकि महाभारत में भीम स्वयं दुःशासन का रक्तपान करता है।^१ दूसरा अंतर नाटक की उस घटना से सम्बन्ध रखता है, जहाँ दुर्योधन को आग्नि में पड़े देखकर अर्थात् जल को स्थल और स्थल को जल समझने की भूल कर बैठने पर द्रौपदी हँसती है और "यम्य कसती है। महाभारत में द्रौपदी के व्यथ्य करने का विवरण न होकर मात्र हसने का उल्लेख है।^२

इस नाटक का कथानक बहुत विस्तृत है एक प्रकार से महाभारत की सम्पूर्ण प्रमुख घटनायाँ को यह अपने में लिय हुए है, तथापि घटनायाँ के प्रस्तुतीकरण का रूप परिष्कृत है।

कीचक वध

महाभारत में विराटपर्व के अंतर्गत कीचकवधपर्व, एक प्रसिद्ध स्थल है जिसमें विराटनगर में कीचक द्वारा द्रौपदी के अपमान की कथा है। इस कथा से सम्बद्ध दो नाटक प्राप्त हुए हैं—

- १ कीचक भगवन् नारायण भागव ।
- २ भीमविजय रामेश्वर चौमुवाल कविरत्न ।

कीचक^३

भगवन् नारायण भागव के प्रस्तुत नाटक में छह अंक हैं। कथावस्तु निम्न प्रकार से है—
पाचो पाण्डव द्रौपदी सहित वेप एव नाम वदनकर राजा विराट के यहाँ अनातवास

१ महाभारत कथपर्व ३७ अ३ २८ ३६

२ महाभारत समापर्व, ३६ ५० ३०

३ प्रकाशक बाला प्रसाद वर्मा स्वाधीन प्रेस झाँसी

करने की योजना बनाता है। ललिता लगी लग कर पा पात्र है जो द्रौपदी की प्रतिद्वन्द्विनी है। कीचक की राक्षसी प्रणयिनी हारा कारण, यह द्रौपदी को उग्रम निरन्तरान के लिए करती है। कीचक राजा विराट की पत्नी का भाई है। धन इम मन्त्र के म बला के मार्गाना करने यह मन्त्र में जाता है किन्तु यहाँ सराध्री का दगावर उग्र पर मुग्ध हो जाता है। अपनी बहन से सराध्री की प्राप्ति के लिए वह कुछ करना चाहता है किन्तु उग्र ममय बिना कुछ कह बह लौट जाता है। द्रौपदी, कीचक की इम मनावृत्ति का हाल पाँच पाण्डवों से कहता है। भीम बहुत उत्तेजित हो उठता है किन्तु युधिष्ठिर किसी प्रकार उग्र मान करती है।

रानी से कीचक का प्रस्ताव गुन द्रौपदी बहुत घमन्ताव सिगाना है विरोध प्रदर्शित करती है। एवं लिन कीचक गनी म द्रौपदी को अपमानित करता है ता द्रौपदी राजसूयार म जाकर निवायत करती है। कीचक भी बड़ी पढ़ेंचता है और बहता है कि द्रौपदी म उग्र धरना लिया है। द्रौपदी को दण्ड मितना है पर कीचक उग्रका अपराध क्षमा कर दन की प्रथना करता है।

अब पांच पाण्डव मन्त्रणा करके कीचक को मार डालन का पडपत्र रचत है। योजना के अनुसार द्रौपदी (सराध्री) रात में कीचक के पास जान का अपना मन्त्रय्य प्रसट करती है, तो ललिता सराध्री के कपड मांग स्वयं वाटिका में जान की च्छा प्रसट करती है। द्रौपदी राजी हो जाती है और महल में जाकर सा रहती है। ललिता के पढ़ेंचन से पूव ही स्त्रीवेध में जानर भीम, कीचक को मार डालता है। अन्तिम दृश्य में ललिता पढ़ेंचनी है और बटार से स्वयं को मार लेनी है।

आधार

उपयुक्त कथानक मूलतः महाभारत के विराटपर्व से लिया गया है। यह कथा वहाँ कीचक वध पर्व के अंतर्गत है किन्तु प्रस्तुत नाटक में कल्पना का अंग भी प्रचुर मात्रा में है। सबसे पूव ता ललिता (दासी) पात्र ही कल्पित है अतएव ललिता से सम्बंधित प्रायः सभी घटनाएँ भी कल्पित हैं, यथा द्रौपदी सराध्री के बने उसका वस्त्र पहन कीचक के पास जाने की उसकी इच्छा तथा इच्छा पूरी न होने पर स्वयं बटार से आत्मघात कर लेना इत्यादि सभी घटनाएँ इसी प्रकार की हैं। इन घटनाओं से नाटक के सौंदर्य एवं प्रभाव में पर्याप्त वृद्धि हुई है।

अन्तर

अपने मूल आधार से नाटक की कथा में जो अन्तर है वह इस प्रकार है—

१ प्रथम अन्तर उस स्थल पर है, जहाँ द्रौपदी अपनी विपत्ति का वणन पांच पाण्डवों को सुनाती है और पांच पाण्डव मन्त्रणा करके कीचक को मारने की योजना बनाते हैं। महाभारत में द्रौपदी, केवल भीम से ही कीचक द्वारा अपने अपमान का वणन करती है और केवल भीम ही बिना किसी भाई की सम्मति और सहायता के कीचक का वध कर डालता है।^१

१ महाभारत विराटपर्व (कीचक वध पर्व) अध्याय ७२५

२ महाभारत विराटपर्व (कीचक वध पर्व) अध्याय १७२२

२ द्वितीय अंतर स्थल भेद स सम्बन्ध रखता है। महाभारत म राजा विराट की पत्नी सुदेष्णा (कीचक की बहन), द्रौपदी (सरध्री) को कीचक के महल मे सुरा लान भेजती है और वही वह द्रौपदी का अपमान करता है। नाटक म द्रौपदी कीचक के द्वारा एक गली म सतायी जाती है।^१ अय प्रसंग मूल क्या के अनुमार हैं।

ललिता का चरित्र प्रस्तुत नाटक म बहुत मुदर चित्रित किया गया है। उसे कीचक की प्रणयिनी बनाकर लेखक न चरित्र म उगात्ता तथा क्यानक म रोचकता भर दी है। प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से यह एक मुदर नाटक है। भाषा पुष्ट परिमार्जित है। नाटक म परिहास-नामग्री पुरानी प्रथा के अनुमार जुटाने मे भागवजी न कारीगरी म काम लिया है। कीचक की विषयवासना और लालुपना का चित्र खींचा गया है पर कुरुवि को स्थान नहीं मिल पाया है।

भीमविक्रम^२

इस नाटक की क्या अति संक्षिप्त है। भीम पराक्रम से सम्बन्धित केवल एक घटना कीचक वध का उल्लेख है। राजा विराट के महा पाण्डवा के अज्ञातवास की क्या म से केवल कीचक के मारे जाने की घटना को लेकर ही नाटक की क्यावस्तु का विस्तार किया गया है।

प्रस्तुत नाटक की क्या भगवन्नारायण भागव लिखित नाटक 'कीचक' की क्या के सदृश ही है। अंतर निम्नलिखित हैं—

१ महा कीचक की पत्नी चद्रकला एक कल्पित पात्र भी है जो महाभारत तथा कीचक नाटक, दोनों स्थला पर नहीं दीख पडता। पत्नी कीचक को द्रौपदी के प्रति कुदृष्टि रखन से बहुत रोकती है किन्तु कामाध कीचक कोई बात मानन के लिए तयार नहीं होता।

२ कीचक नाटक म द्रौपदी पाचा पाण्डवा से अपनी विपत्ति का वणन करती है किन्तु इस नाटक म द्रौपदी केवल भीम से ही अपना दुखडा राती है। इम प्रसंग म यह महा भारत क समान है।^३

३ कीचक का वध इस नाटक म नाट्यशाला म भीम द्वारा किया जाता है, जबकि 'कीचक' नाटक म वधस्थल, वाटिका ह। महाभारत म भी कीचक का वधस्थल नत्यशाला ही है।^४ भीम पूव नियोजित कायक्रम के अनुमार पहले से ही जाकर नत्यशाला म एक पलंग पर लेट जाता है। कीचक के वहा आन पर तथा उसे टटोलन पर भीम उठकर उस मल्लयुद्ध द्वारा मार डालता है।

१ महाभारत विराटपव (कीचकवधपव) अ १५ श्लोक १

२ प्रकाशक हिंदी पुस्तक एजन्सी २०३ हरिमन रोड कनकता। प्रथम संस्करण स० १९६२

३ महाभारत विराटपव अध्याय १७-२२

४ महाभारत विराटपव (कीचक वधपव) अध्याय २२, श्लोक १८,३६

विवेचन

इस नाटक में पात्रों के सम्भावना में दरबारी गिफ्तना का ध्यान नहीं रखा गया है। गुप्त देव में रहते हुए पाण्डव, राजा व सम्मुख दरबार में एक दूसरे का वास्तविक नाम से सम्बोधित करते हुए लिखा गया है। वहीं युधिष्ठिर सरध्री व अग्रमान की जड़ भया जुग को बताने लगते हैं। क्या का गायत्री रूप देन व त्रिग जिम कौशल की आवश्यकता है उसकी यहाँ कमी है।

प्रस्तुत नाटक का नाम कुछ भ्रामक है। भीमविजय व स्थान पर इतना नाम 'कीचकवध' होना चाहिए था, क्योंकि भीम के विभिन्न पराक्रमों का वर्णन यहाँ नहीं है।

राजतिलक अर्थात् किराताजुनि-युद्ध नाटक'

श्री जगन्नारायण देवदार्मा तथा दयागकर शर्मा, संखन द्वय लिखित इस नाटक की कथावस्तु इस प्रकार है—

कथानक

प्रथम महर्षि व्यास की प्रेरणा से इंद्रकील पर्वत पर शिवजी को प्रसन्न करने पागु पतासत्र प्राप्त करने के लिए अर्जुन की कठोर तपस्या का चित्रण है। अंत में शिवजी किरात का रूप धारण करके अर्जुन की वीरता की परीक्षा लेने के लिए स्वयं उससे युद्ध करते हैं और उसकी वीरता से प्रसन्न होकर पागुपत अस्त्र उस देते हैं।

अर्जुन अस्त्र को लेकर अपने माइयों के साथ लौटकर आता है। माय में ही व्यासजी मिल जाते हैं। वे अर्जुन की सफल तपस्या से बड़े प्रसन्न हैं और आश्वासन देते हैं कि अब गन्धर्वाणों पर विजय निश्चित है। महाराज युधिष्ठिर व गुणों की प्रशंसा करते हुए महर्षि व्यास वन में ही अपने कमण्डलु से जल लेकर उनका अभिषेक करते हैं।

आधार

यह कथा महाभारत के वनपर्व के एक लघु प्रकरण, किरातपर्व से सम्बंध रखती है। संस्कृत के महाकवि भारवि का प्रसिद्ध महाकाव्य किराताजुनीयम् भी वनपर्व के इसी खण्ड की कथा पर आश्रित है। प्रस्तुत नाटक के लेखकों ने अपने नाटक को कथावस्तु के लिए किराताजुनीयम् को ही मुख्य आधार बनाया है। यह बात नाटक के आरम्भ के वक्तव्य में स्पष्ट कर दी गयी है।

संस्कृत साहित्य में किराताजुनीय नामक एक धीरे रस प्रधान महाकाव्य है। यह

नाटक उसी के आधार पर लिखा गया है।^१

किराताजुनीय की कथा इस प्रकार है—

युधिष्ठिर की छत में पराजय होने पर, पूव निर्दिष्ट शत के अनुसार समस्त राज्य चले जान पर, द्वादश वर्ष का वनवास एवं अत में एक वर्ष का अज्ञातवास का दण्ड भागने के लिए पाण्डवा को वन जाना पडा। वन में अनेक वर्षों का कष्टमय जीवन बितान पर युधिष्ठिर के अनुज और कृष्ण ने उत्तरोत्तर अपनी स्थिति में प्रति असताप बढ़ रहा था। अर्वाची की समाप्ति से पूव ही भीम और कृष्ण गानु पर आज्ञाकरण कर देने के लिए युधिष्ठिर पर जोर डाल रहे थे। ऐसे ही समय में महर्षि व्यास उनके पास आते है और दोनों पत्नों के बलाबल सहित समस्त परिस्थिति का परिचय देते हुए अति शक्तिशाली शत्रुपक्ष पर विजय प्राप्त करने के लिए युधिष्ठिर से आग्रह करते हैं कि वे अर्जुन का तप करने के लिए इन्द्रकील पर्वत पर भेजें, जहा वह अपनी कठोर आराधना से इन्द्र को प्रसन्न करके अपेक्षित शस्त्र और शक्ति प्राप्त करे। वे स्वयं भी शीघ्र सिद्धि प्राप्त करने के लिए अर्जुन को विद्या देने है —

महस्वयोगाय महामहिम्नामाराधनीं ता नप देवताताम ।

वातु प्रदानोचितभूरि धाम्नीमुपागत सिद्धिमिवास्मिद्विद्याम ॥^२

अर्जुन महर्षि के आदेश में अपनी तपस्या द्वारा पहले इन्द्र को प्रसन्न करता है। तत्पश्चात इन्द्र का सम्मति से पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के उद्देश्य में, भगवान् शंकर को प्रसन्न करने के लिए कठोर तपस्या करता है। पर्याप्त समय के उपरांत वे अर्जुन की परीक्षा लेने के लिए किरात का वेष धारण करके स्वयं उपस्थित होत हैं। एक गूँकर को अर्जुन और किरातवेष धारी शंकर दोनों ही अपना लक्ष्य बनाते है।

इस लक्ष्यवेध में प्रसंग की लेकर दाना में भगडा आरम्भ हुआ जाता है। अत में यह पारम्परिक युद्ध में परिवर्तित हो जाता है। युद्ध अति भयंकर हाता है। अर्जुन आहत हो जाता है परन्तु किरातवेषधारी भगवान् शंकर उसके वीर्य और शौर्य से अत्यधिक प्रसन्न होते है। अपने वास्तविक रूप में दर्शन करके उसे मनावाछित पाशुपतास्त्र प्रदान करते हैं—

इति निगदितवत सुनुपुञ्जमघोने,

प्रणतशिरमीश सादर सात्वित्वा ।

ज्वलदनलपरीत रौद्रमस्त्र दधान,

घनुरूपपदमस्त्र वेदमभ्यादिवेग ॥^३

और साथ ही अस्त्र में समस्त रहस्य भी बताते हैं। इन्द्र सहित अथ लांकपाल भी वहा उपस्थित होकर अपनी अपनी शुभनामनामाओं में साथ उसे विविध प्रकार के अस्त्र भेंट स्वस्व दंत हैं—

१ नाटक के आरम्भ में लेखक का बक्तव्य पृष्ठ ७

२ किराताजुनीय ३ २३

३ वही १८ ४४

नही समझा पाता । उधर काशिनरेश की सबसे बड़ी पुत्री अम्बा का सीमनरेश शाल्व से साक्षात्कार होता है और दोनों एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हो जाते हैं ।

स्वयंवर हाता है दूर-दूर के नरेश आ आकर अपना स्थान ग्रहण करते हैं । शाल्व भी पहचता है, किन्तु सबसे सम्मुख ही भीष्म अपने अतुलित वन के द्वारा काशिराज की तीना कथाया—अम्बा अम्बिका और अम्बालिका—का उठाकर ले आत हैं । भीष्म के पराक्रम के सम्मुख युद्ध म कार्द नहीं ठहर पाता ।

अपनी माता सयवती के आदशानुसार भीष्म अपने छोट भाई विचित्रवीर्य के साथ अम्बिका और अम्बालिका का विवाह कर देत हैं । विचित्रवीर्य राजयक्षमा या रोगी है और उसके मनाविनाद के हतु ही य कथाएँ लायी जाती हैं । सबसे बड़ी अम्बा भीष्म से शाल्व के प्रति अपन पूव आकषण की वात कहती है और उसी के पाम चल जान की अनुमति माँगती है । भीष्म सह्य अनुमति दे दत हैं किन्तु सीमनरेश शाल्व अम्बा को ग्रहण करने से अब एकदम तटस्थ हो जात हैं । अम्बा अनुनय विनय करती है किन्तु शाल्व भीष्म का उच्छिष्ट कहकर उस स्वीकार नहीं करते ।

उधर विचित्रवीर्य की मृत्यु हो जाती है । सत्यवती अपने यौवन का धिक्कारती है, पुत्र के मरने पर विकल हो उठती है । उसकी दोनों पुत्रबधुएँ छिन्न लना क सट्टा दीन-हीन, मलिन दीख पडती हैं ।

अम्बा, परशुराम स प्राथना करती है कि वे उसकी सहायता करें । परशुराम भीष्म से अम्बा के साथ विवाह कर लेने के लिए कहते हैं, क्वाकि उसी के वृत्य के कारण अम्बा इस स्थिति म पहुची है, किन्तु भीष्म स्वीकार नहीं करत । फलस्वरूप परशुराम और भीष्म म युद्ध होता है परशुराम अपनी पराजय स्वीकार कर लेते हैं ।

अम्बा अब भयकर तप करती है । शिव को प्रसन्न कर वह यही वर मागती है कि वह किसी प्रकार भीष्म को मार सके । शिव उसकी कामना पूरी करते हैं । अम्बा राजा द्रुपद के यहाँ शिखण्डी के रूप मे जम ले भीष्म की मृत्यु का कारण बनती है ।

आधार

यह सम्पूर्ण कथा महाभारत म उपलब्ध है । महाभारत म भी यह एक स्थल पर नहीं है । उद्योगपर्व के अम्बोपाख्यानपर्व^१ के अतिरिक्त आदिपर्व^२ मे भी यह उपाख्यान साधारण परिवर्तना के साथ इसी रूप म मिलता है

उद्योगपर्व (अम्बोपाख्यानपर्व)

भीष्म के दुर्योधन स यह कहने पर कि वे शिखण्डी से युद्ध नहीं करेंगे और न कुंती के पुत्रा का वध करेंगे, दुर्योधन भीष्म से प्रदन करता है कि—

भारतधेष्ठ । जब शिखण्डी धनुष-बाण उठाये समर म आततायी की भाँति आपको ,

१ महाभारत उद्योगपर्व (अम्बोपाख्यानपर्व) अ० १७३ १२०

२ वही आदिपर्व (अम्बपर्व) अ० १०१ १०२

भारने आयेगा, उस समय इस रूप में देखकर भी आप उसे क्या नहीं मारेंगे ?” तो भीष्म दुर्योधन को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हैं और यही कथानक महाभारत में अम्बोपाख्यानपत्र के नाम से प्रख्यात है।

महाभारत का यह पत्र दुर्योधन के उपयुक्त प्रश्न से ही आरम्भ होता है। भीष्म वचन करते हैं—

चित्रागद की मृत्यु के उपरांत, मैंने विचित्रवीर्य का विवाह किसी योग्य कुल की कन्या से कराने का निश्चय किया। उन्ही दिना मैंने सुना कि काशिराज की तीन कन्याएँ हैं, जो अप्रतिम रूप-सौंदर्य से सुशोभित हैं उनके नाम अम्बा अम्बिका और अम्बालिका हैं और वे स्वयंवर मन्ना में स्वयं ही पति का चुनाव करने वाली हैं। उन कन्याओं के लिए भूमण्डल के सम्पूर्ण नरों का आमंत्रण किया गया है। स्वयंवर का समाचार पाकर मैं एक ही रथ के द्वारा काशिराज के नगर गया।

वहाँ पहुँचकर मैंने वस्त्राभूषणा से अलङ्कृत, उन तीनों कन्याओं को देखा। उसी समय आमंत्रित होकर आय हुए सम्पूर्ण राजाओं पर भी मरी दृष्टि पड़ी। तदनंतर युद्ध के लिए खड़े हुए उन समस्त राजाओं को ललकारकर उन तीनों कन्याओं को मैंने अपने रथ पर बठा लिया।

‘परानम ही इन कन्याओं का गुण है।—यह जानकर उन्हें रथ पर चढ़ाकर मैंने वहाँ आय हुए समस्त भूपाता से कहा, “नरश्रेष्ठ राजाओं! शांतिनुपुत्र भीष्म इन राज कन्याओं का अपहरण कर रहा है तुम सब लोग पूरी तरह गति लगाकर इन्हें छुटाने का प्रयत्न करो, क्योंकि मैं तुम्हारे देखते देखते इन्हें बलपूर्वक लिए जाता हूँ। बार बार ऐसा दोहराने पर उन राजाओं ने विशाल रथसमूह द्वारा मुझे घेरे लिया किन्तु जैसे देवराज इंद्र दानवा पर विजय पाते हैं, उसी प्रकार मैंने वाणों की वर्षा करके उन सब नरों को जीत लिया और राजकुमारियों को माता सत्यवती को लाकर सौंप दिया।

उस समय काशिराज की ज्येष्ठ पुत्री अम्बा ने कुछ लज्जित होकर बताया कि मैंने अपने मन से पहले शाल्वराज का अपना पति चुन लिया है उन्हीं भी एकांत में मरे वरण किया है। शांवरराज निश्चय ही मरी प्रती ता कर रहे हों अतः कुश्रेष्ठ! तुम्हें मुझे उनकी सेवा में जान की आज्ञा देनी चाहिए।

इस पर माता सत्यवती ने आत्मा से मंत्रिया अश्विजा तथा पुरोहिता से पूछकर, बड़ी राजकुमारी अम्बा का मैंने जान की आज्ञा दे दी। आत्मा पाकर राजकुमारी अम्बा बड़े आह्वान के सरक्षण में शाल्वराज के नगर में गयी। शाल्वराज ने मिलकर वह इस प्रकार बोली—

‘मैं तुम्हारे ही पास आयी हूँ। मुझे धमानुसार ग्रहण कर घम के लिए ही अपने चरणों में स्थान दो। मैंने मन ही मन सबदा तुम्हारा ही चिन्तन किया है और तुमने भी एकांत में मरे साथ विवाह का प्रस्ताव किया था।’ इस पर शाल्व वाला—

तामश्रवोच्छाल्यपति स्मर्यन्निव विनाम्पते ।

त्वयायपूबया नाह भार्यासौ वरवर्णिनि ॥

गच्छ भद्रं पुनस्तत्र सकाशं भीष्मकस्य च ।

नाहमिच्छामि भीष्मेण गहीता त्वा प्रसह्य च ॥^१

“क्याकि भीष्म के द्वारा तुम बलात् ले जाई गयी थी अत मैं तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकूंगा ।”—शाल्व के मुख से इस प्रकार की कटु वात सुनकर अम्बा अति दुःखित हुई और रोती हुई कहने लगी—

भजस्व मा शाल्वपते भक्ता बालामनागसम् ।

भक्तानां हि परित्यागो न धर्मेषु प्रशस्यते ॥^२

राजकुमारी अम्बा ने अनेक प्रकार से प्रार्थना की, किन्तु शाल्व पर कोई प्रभाव न पडा वह अपने निश्चय से तनिक भी नहीं हटा । अम्बा निराश तथा अति दुःखित हाकर वहाँ से चली आयी और तपस्वी महात्माओं के आश्रम पर जाकर उसी वह गत प्रितायी । उसके मुख से सम्पूर्ण स्थिति को मली प्रकार जानकर ऋषि मुनि बड़े असमजस म पड गये और विचारन लग कि उसके हित के लिए वे क्या कर सकते हैं । कुछ लागा ने सम्मति प्रकट की कि उहे शाल्व को बाध्य करना चाहिए कि वे अम्बा का स्वीकार कर लें । कुछ लागा ने यह निश्चय प्रकट किया कि ऐसा होना सम्भव नहीं है क्याकि इस कथा को वांग उत्तर दकर उसन ग्रहण करने से इकार कर दिया है । अत सब तपस्विया न एवमन हाकर यही सुझाव दिया कि वह अपने पिता के घर चली जाए । इसके पश्चात जो आवश्यक हागा वही उसके पिता वाशिराज सोचें विचारेंगे । किन्तु अम्बा ने पिता के घर जाना इस कारण उचित न समझा कि बधु-बांधवा का मय जाकर उस अपमानित होकर रहना पडेगा । यह सुनकर समन्त तपस्वी अति चिन्तामग्न हो गए । तभी राजपि होत्रवाहन उस वन मे आ पहुँचे । य अम्बा के नाना थ । अम्बा की यह दुःखस्या सुनकर उन्होंने उसे आश्वामन देत हुए कहा—

तू मरे कहने से तपस्यापरायण जमदग्निन-दन परशुरामजी के पास जा व तरे इस महान दुःख और शोक को अवश्य दूर करेगा ।’

राजा होत्रवाहन अम्बा से इस प्रकार की बात कर ही रह थ कि उसी समय परशुराम के प्रिय सवक अट्टतत्रण वहा प्रकट हुए । उहे देखत ही सहया मुनि तथा स जय वशी वयोवद्ध राजा होत्रवाहन सभी उठकर खडे हो गये । आदिर मत्कार क उपरगत वे सब उहे फिर घर कर बठ गए और परशुरामजी के विषय मे अट्टतत्रण से पूछने लगे । अट्टतत्रण के सूचना देने पर कि वन तक परशुरामजी यही आ पहुँचेंगे, क्याकि वे भी आपस मिलने के लिए इच्छुक हैं सब बड आनन्दित हुए । राजा होत्रवाहन ने अपनी दौहित्री अम्बा का सम्पूर्ण वतात उनक समक्ष प्रस्तुत किया । अट्टतत्रण सब-कुछ सुनकर अम्बा से पूछने लगे कि अब उसकी क्या इच्छा है । परशुरामजी शाल्व को भी उससे विवाह करने के लिए विवश कर सकत हैं और यदि वह परशुरामजी के द्वारा भीष्मजी को पराजित देवना चाहती है, तो यह भी सम्भव हो सकता है । अम्बा ने जब सब निणय अट्टतत्रण पर ही छोड दिया, तो अट्टतत्रण ने सम्मति दी कि—

१ महामारत उद्योग पर्व (अम्बोपाछ्यान पर्व) अ० १७५ श्लोक ४५

२ महामारत उद्योगपर्व, अ० १७५

'यदि गगानन्दन भीष्म तुम्हें हस्तिनापुर न ले आते तो राजा गात्व, परशुरामजी के कहने पर तुम्हें आदरपूर्वक स्वीकार कर लेता, किन्तु भीष्म तुम्हें जीतकर अपने साथ ले गए इसी कारण उसके मन में तुम्हारे प्रति संशय उत्पन्न हो गया है। उधर भीष्म को अपने पुरुषाय का अभिमान है और वे इस समय अपनी विजय से उल्लसित हो रहे हैं अतः भीष्म से ही बदला लेना तुम्हारे लिए उचित होगा।

अम्बा को भी यह प्रस्ताव उत्तम लगा और उसने कहा कि मैं भी युद्ध में भीष्म के वध की इच्छा रखती हूँ क्योंकि उन्हीं के कारण मैं दुःख में पड़ी हूँ।

परशुरामजी के पधारने पर अम्बाने यही प्रार्थना की अश्रुतव्रण ने भी उसका यह कहते हुए समर्थन किया कि बीरवर भागव आपने समस्त क्षत्रियों को जीतकर, ब्राह्मणों के बीच में यह प्रतिज्ञा की थी कि 'यदि कोई क्षत्रिय वश्य अथवा गूढ़ ब्राह्मणों से द्वेष करेगा तो मैं उसे निश्चित ही मार डालूंगा। साथ ही भयभीत होकर शरण में आये हुए शरणार्थियों का परित्याग मैं जीत जी किसी प्रकार नहीं कर सकूंगा और जो युद्ध में एकत्र हुए क्षत्रियों को जीत लेगा, उस तजस्वी पुरुष का भी मैं वध कर डालूंगा।

परशुराम को अपनी प्रतिज्ञा स्मरण हो आई और उन्होंने भीष्म को दण्ड देने का निश्चय कर लिया। किन्तु प्रथम, साम नीति का अनुसरण करते हुए वे भीष्म से मिलने के लिए जाकर हस्तिनापुर के बाहर ठहर गए। भीष्म ने उनका आदर-सत्कार किया किन्तु अम्बा को ग्रहण कर लेने की बात सुनकर उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि 'मेरा तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता, मैं इसका विवाह अब अपने भाई से भी नहीं कर सकता।' यह सुनकर परशुराम क्रुद्ध हो उठे और भीष्म के स्वीकार न करने पर उन्हें युद्ध करने के लिए विवश कर लिया। माता गंगादेवी ने स्वल्पतः प्रकट होकर भीष्म से गुट के साथ युद्ध न करने की याचना की परशुरामजी के पास जाकर भी पुत्र की ओर सक्षमा माँगी किन्तु परशुरामजी ने गंगादेवी से यही कहा कि वे ही किसी प्रकार अपने पुत्र को समझा लें। भीष्म ने माता का आग्रह नहीं सुना। परशुराम और भीष्म के मध्य तीस दिन तक घोर युद्ध होता रहा, जिसमें दोनों ने एक-दूसरे पर क्षत्रि ब्रह्मास्त्र इत्यादि अस्त्रों का प्रयोग किया। भीष्म प्रस्वापनास्त्र प्रयोग करना ही चाहते थे कि तभी नारद सहित आठों वसुधों ने प्रकट होकर युद्ध रोक दिया। परशुराम न भी भीष्म से पराजय मान ली और अम्बा के सम्मुख अपनी असमर्थता स्वीकार कर ली।

अम्बा ने अब शिव की आराधना प्रारम्भ की। छ महीने तक निरन्तर केवल वायु पीकर अम्बा ठूठे काठ की तरह निश्चल भाव से खड़ी रही। माता गंगा ने उसके समीप जाकर कहा कि यदि तू इसी प्रयत्न में मर जायगी तो तुम्हें टेनी मेढी नदी बनना पड़ेगा। केवल बरसात में ही तू भीतर जल भिँसाई देगा। बरसात में भी भयकर ग्राहों से भरी भरी रहने का कारण समस्त प्राणियों के लिए तू अत्यन्त भयकर घोर-स्वरूपा रहेगी। तब आठ महीने तू गुप्ति रहनी इसलिए तू अपना प्रयत्न छोड़ दे तू इसमें सफल नहीं होगी। किन्तु अम्बा अपने प्रयत्न में नहीं हटती। फलस्वरूप गंगा के कथनानुसार बस देश में आधे शरीर से वह अम्बा नाम की नयी नदी बन गयी शेष आधे शरीर से बस देश में ही वह एक नया हाकर प्रकट हुई। अपने इस जन्म में भी वह तपस्यारत रही। शिवजी प्रकट हुए और उसके तप

स प्रभावित होकर उसको उसकी इच्छानुसार वर दिया कि तू राजा द्रुपद के यहाँ शिखण्डी नाम से पुत्री के रूप में जन्म लेगी और 'गीघ्रतापूर्वक' अस्त्र चन्तान की कला में-निपुणता प्राप्त करेगी। तू प्रथम, पुत्री के रूप में जन्म लेगी, तत्पश्चात् पुत्र बनकर भीष्म का वध करेगी।

अम्बा यह सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुई और तब वह दूसरे जन्म में यमुना नदी के किनारे चिता की आग में जलकर भस्म हो गयी।

इस उपरान्त की कथा, अम्बा के शिखण्डी रूप में जन्म लेकर कथा से पुत्र बनने से सम्बन्ध रखती है। यह कथा भी पर्याप्त विस्तृत है—

राजा द्रुपद ने सतानहीन होने के कारण पुत्र प्राप्ति के लिए गिव की आराधना की। शिव ने प्रसन्न होकर यही वर दिया कि तुम्हें पुत्र नहीं पुत्री होगी, जो कुछ समय के उपरान्त पुत्र ही जायगी। राजा द्रुपद का शिवजी का वन्दनस्वरूप पुत्री तो उत्पन्न हो गयी, किन्तु बहुत समय बीतने पर भी वह पुत्र नहीं बन पायी, यहाँ तक कि दशरथराज की कथा से उन्होंने उसका विवाह भी रचा दिया, क्याकि शिवजी के वचन पर उन्हें अटूट विश्वास था। दशरथराज को जब यह बात हुआ कि उनका जामाता पुत्र नहीं, स्त्री है, तो पुत्री के कारण उद्विग्न हो, उन्होंने आक्रमण कर दिया। द्रुपद अति चिन्तित हुए किन्तु पुत्री शिखण्डी ने वन में जाकर तपस्या की और एक यक्ष ने प्रसन्न होकर उसे अपना पुत्रपत्व कुछ समय के लिए दे दिया। शिखण्डी के रूप में जब वह पुत्र बनकर घर लौटी तो द्रुपद चिन्तामुक्त हो गए। उधर कुबेर ने उस यक्ष को सदा के लिए स्त्री बने रहने का शाप दे दिया। इस प्रकार शिखण्डी को पुत्रपत्व प्राप्त हुआ।^१

उद्योगपव के अम्बापाश्यानपव की कथा यहाँ समाप्त हो जाती है। इसके पश्चात् आगे चलकर शिखण्डी का युद्धभूमि में आग खबर ही अजुन न भीष्म पर विजय प्राप्त की। स्वयं शिखण्डी ने भीष्म के वलस्थल में पन-पन वाणी का प्रहार किया^२—

शिखण्डी तु महाराज भरताना पितामहम् ।

आजघानोरसि श्रुद्धो नवभिनिसित शर ॥

तत किरिटी सन्नुद्धो भीष्ममेवाम्यवतत ।

शिखण्डिन पुरस्ठृत्य धनुश्चास्थ समाच्छिनत ॥^३

नाटक की अधिनाश घटनाएँ उपयुक्त मूल कथा से साम्य रखती हैं अन्तर केवल कुछ स्थला पर हैं, जिनमें असंगतियाँ भी विद्यमान हैं।

अन्तर

१ प्रथम अन्तर तो यही है कि उद्योगपव की इस कथा में कहीं यह स्पष्ट नहीं है

१ शिखण्डी सम्बन्धी कथा का यह रूप नाटक में नहीं है किन्तु इसका उल्लेख आवश्यक है इसलिए यह कथा यहाँ दी गयी है।

२ महाभारत (भीष्मवधपर्व) अध्याय ११६

३ वही अ. ११६ श्लोक ४३ ५०

कि विचित्रवीर्य के स्थान पर भीष्म, वाशिराज की कन्याया के स्वयंवर में क्या पहुँचे ? वहाँ केवल इतना ही कहा गया है कि मैं अपने भाई विचित्रवीर्य का विवाह किसी कुलीन कन्या से करना निश्चित किया है।^१

विचित्रवीर्य के स्वयं आयोजन में सम्मिलित न होने वाल प्रसंग पर इस कथन से कोई प्रकाश नहीं पड़ता। मूल कथा में वही यह उल्लेख भी नहीं है कि विचित्रवीर्य धर्म रोगी था अथवा यही कल्पना की जा सकती थी कि रूग्णावस्था के ही कारण वह स्वयं नहीं जा सक्ता होगा अथवा भीष्म के हृदय में यह आशंका जगी होगी कि रोगी व्यक्ति का सम्भवतः कोई युवति कन्या वरण न करना चाह—इन दोनों में से किसी भी कारण का निर्देश मूल कथा में नहीं है।

नाटक में यह असंगति नहीं है। वहाँ विचित्रवीर्य का स्वयंवर में न जान का कारण मुख्य रूप से वाशिराज के द्वारा आमन्त्रित न किया जाना ही है। भीष्म ने इसे अपना घोर अपमान समझा, क्योंकि इसके मूल में विचित्रवीर्य की कुलीनता पर आक्षेप आता था। यह तथ्य नाटक में त्रिलोक्य स्पष्ट है।^२

२ नाटक की कथा में शाल्व, अम्बा को स्वीकार करने से इंकार कर देता है। उसका कथन है—

तुम उच्छिष्ट है। आना से मल वतन में गिरी हुई अमृत की बूँदों भी पीने योग्य नहीं रहती। स्त्री ही संसार में एक ऐसा पदार्थ है जो केवल एक बार, केवल एक बार स्पर्श किया जाता है तुम जाना।^३

नाटक में शाल्व के इस कथन से शाल्व के हृदय की इच्छा की तो अभिव्यक्ति हो जाती है कि तु किसी अन्य व्यक्ति द्वारा केवल स्पर्श किये जाने के कारण और यह भी अनान में बिना किसी भावना के ही त्याग दिए जाना, शाल्व के चरित्र को नीचे गिरा देता है और साथ ही यह तत्काल भी नहीं प्रतीत होता। नाटक अन्तिम तथ्य तक पहुँचने के हेतु आकुल ही बना रहता है। उद्योगपर्व की इस कथा में शाल्व जहाँ अन्य बातें अम्बा से कहता है वहाँ अंत में यह भी कह देता है कि मैं भीष्म से डरता हूँ इसलिए तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता।

गच्छ गच्छेति ता शाल्व पुन पुनरभाषत ।

विभेमि भीष्मात् सुश्रोणि त्व च भीष्मपरिग्रह ॥^४

जा व्यक्ति इतने सम्पूर्ण राजाओं के सम्मुख तीन-तीन राजकन्याओं को छीनकर ल आया उस व्यक्ति की वस्तु को अपने पास रखना खतरे से खाली नहीं होगा—ऐसे व्यक्ति से डरना स्वाभाविक है। यह कारण उचित एवं संगत प्रतीत होता है। शाल्व चाहे कितना ही धीर रहा हो किन्तु समय आने पर भयान छान गया—ऐसे व्यक्ति का भयभीत होना ही युक्ति

१ महाभारत उद्योगपर्व (अम्बोपाख्यान पर्व) पं १०३ श्लोक ८ ६

२ अम्बा (उद्योगपर्व) पं ६४ ६५

३ वही पृ ७८

४ महाभारत उद्योगपर्व (अम्बोपाख्यान पर्व) अध्याय १०५ २४

युक्त है।

३ नाटक में यह भी विचित्र लगना है कि अम्बा के शाल्व के द्वारा ग्रहण न किए जान पर कागिराज (अम्बा के पिता) के हृदय में बतव्य के प्रति कोई प्रेरणा नहीं जगी। यह तो सम्भव प्रतीत नहीं होता कि इस सम्बन्ध में कागिनरेण को कुछ बात नहीं हुआ हो क्योंकि यह घटना तो इस प्रकार की थी, जो दावानल के महान् चारा और फल जानी चाहिए थी। महना में बठन वाली अम्बिका तथा अम्बानिका तब को भी इस घटना का ज्ञान, नाटककार ने गिनाया है—

‘अम्बालिका—ओर वहन का क्या हुआ ?

अम्बिका—सुना है शाल्व ने उमने साथ विवाह नहीं किया।

अम्बानिका—यह तो बड़ी बुरी खबर है। अब वह कहीं जाएँगी ?”

वहनों चिन्तित हैं किन्तु पिता कागिनरेण की ओर से कुछ विचार विमग्न अथवा अम्बा की ओर से ही इस सम्बन्ध में कुछ निगम नाटककार ने नहीं दिखाया, यह अस्वरता है।

मूल कथा अम्बोपाख्यान पत्र में वे तपस्वीगण जितके पास जाकर अम्बा शाल्व से अपमानित हान के उपरान्त ठहरी थी, अम्बा को पिता के घर जान की सम्मति दत्त है, परन्तु अम्बा वहीनी है—

न शक्य कागिनपर पुनपत्तु पितुग हान।

अवज्ञाता भविष्यामि वाघवाना न सशय ॥^१

कागिराज पर इस घटना की कोई प्रतिनिधा सम्भवत इसीलिण न हुई हो कि भीष्म के पराक्रम से वे स्वयं भयभीत हो।

इसके अतिरिक्त पाठक के मन में स्वतः ही यह प्रश्न उठता है कि अम्बा ने शाल्व से प्रतिशोध न लेकर भीष्म से ही बदला लेने की क्या ठानी? जबकि भीष्म के द्वारा प्रथम तो उसका हरण अनानवग किया गया था, द्वितीय शाल्व के समाप जाने की अनुमति भी उन्होंने अम्बा को सहय दे दी थी। इसका समाधान नाटक में नहीं है। अम्बा शाल्व के पास से सीधी परगुराम के पास पहुँच जाती है किसी प्रकार का सकल्प विक्ल्प ही उसके मन में नहीं जगता। भीष्म को मारना उसका लक्ष्य है। शाल्व के प्रति किसी प्रकार का रोष उसके मन में नहीं दिखाई देता। उद्योगपत्र में अम्बा के सामने यह समस्या आती है। प्रथम तो परगुराम के सेवन अट्टत्रण ही अम्बा से इस सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं कि वह किसको दण्ड देना चाहती है, किन्तु जब निगम का भार अम्बा के द्वारा उन पर ही छोड़ दिया जाता है, तो वे स्वयं इसका निश्चय करते हुए कहते हैं—

। भीष्म पुष्टमानी च जित काशी तथैव च ।

तस्मात् प्रतिक्रिया युक्ता भीष्मे कारयितुं तव ॥^२

भीष्म इस सम्पूर्ण काण्ड के लिए उत्तरदायी हैं अतएव दण्डनीय हैं सुनकर अम्बा भी दृष्ट हो

१ नाटक पृ० ८४

२ महाभारत उद्योगपत्र (अम्बोपाख्यानपत्र) अ० १७६ १२

३ वही अ० १७७ १२

जाती है।

मूल कथा (अम्बासाम्यान पथ) में अम्बा का पाता राजपि हानना का वाता भी है। परपुरामजी की सहायता की ओर अम्बा का ध्याता आशयित कराना उमने नाता ही थे। नाटक में होत्रवाहा, गंगा तथा अम्बापथ का कोई उल्लेख नहीं है।

आदिपथ

अम्बा का चरित्र भी भारी आशयित में भी मिलती है। यहाँ अम्बासाम्यान जनमजप से विचित्रवीथ का विवाह तथा मृत्यु का वणन कर रहे हैं। यह कथा अम्बासाम्यान पथ की अपेक्षा बहुत सगिप्त है। इस आशयित की प्रमुग घटनाएँ हैं—

१ भीष्म द्वारा पाण्डुराज की तीना कथाप्रा का हरण।

२ पाण्डु में शाल्व तथा भीष्म का स्वयंवर युद्ध। उद्योगपथ तथा नाटक दोनों में भीष्म का उपस्थित राजाप्रा के साथ युद्ध का वणन है। अथवा शाल्व का साथ युद्ध का वणन वहाँ नहीं मिलता।

३ आदिपथ के इस आशयित से विज्ञित होता है कि राजकुमार विचित्रवीथ राज यक्षमा से पीडित नहीं था। अपनी शाना पतिपा (अम्बिका तथा अम्बालिका) के साथ सात वष का निरन्तर विहार करने तथा अग्रयम करने के कारण वह युवावस्था में ही राजप्रा का गिवार हो गया, अथवा वह पूणरूपण स्वस्थ था

स आशयितरूपसद्वृणो देयतुल्यपराश्रम।

सर्वासामेव नारीणां चित्तप्रमथनी रह ॥

ताभ्यां सह समा सप्त विहरन पुषिषीपति।

विचित्रवीथस्तरुणो यक्षमणा समगहृत ॥^३

नाटक में विचित्रवीथ का प्रारम्भ से ही क्षय रोगी दिखाया है। उसका विवाह करने का एक उद्देश्य यह भी रहा कि उसकी चित्तवर्तिया निराशा तथा विरचित की ओर से हटकर आगा उल्लास तथा रागरग की ओर भुक्के। विचित्रवीथ के रोग की आर सवेत अम्बिका और अम्बालिका ने अपनी वातचीत में किया है।^३

आदिपथ में अम्बा भीष्म के द्वारा पराजित शाल्व से भी विवाह करने की इच्छुव है। इस इच्छा में नारी के सच्चे प्रणय की भावी अवश्य मिलती है किन्तु अम्बा की यह साध मन में एक विलम्बा जगती है। जिस पुरुष में पत्नी को दूसरे से छीन लेने तक की सामर्थ्य नहीं है, उस पुरुष के प्रति इतना आशयित उचित नहीं लगता। मूल कथा में यह असमति अथवा चारित्रिक अनुपयुक्तता नहीं है। वहाँ शाल्व का चरित्र स्पष्ट दीख पड़ता है—

१ महाभारत आशयित (सम्भवपथ) अध्याय १०२

२ वही आदिपथ (सम्भवपथ) अध्याय १०२ ६६ ७१

३ अम्बा (उदयशकर मठ) पृ ८३

अस्त्रेण चास्पायेंद्रेण न्यवधीत-तुरगोत्तमान् ।
 कथाहेतोनरश्रेष्ठ भीष्म शासनवस्तदा ॥
 जित्वा विसजयामास जावन्त नृपसत्तमम् ।
 तत शाल्व स्वनगर प्रययौ भरतपथम् ॥^१

‘राजधानी का लूटकर धमपूवक पुन शासन करने लगना, मिद्ध करता है कि शाल्व म न तो कोई भावना थी न अम्बा के प्रति सच्चा स्नेह । पराजित होने की वदना से भी व्यथित वह नहीं दीख पड़ता । गुरवीर राजा म पराजित होने पर परिताप का अभाव प्रकृत है ।

नाटककार इस असंगति को बचा गया है । भीष्म के साथ शाल्व का एकाकी युद्ध न दिखाकर, उसने शाल्व को पराजित होने से बचा लिया है । यहा सामूहिक रूप से सभी राजा हारे हैं, शाल्व का दीरघ्य यहाँ इतना नहीं अमरता । हाँ, शाल्व म दूर चरित्र की कमी है, जिसकी व्याख्या नाटककार नहीं कर पाया । अम्बोपाख्यान पव म इसका स्पष्टीकरण है ।^२ या नाटककार न शाल्व म परिताप की भावना का अवश्य मुखरित किया है ।

विवेचन

विद्रोहिणी अम्बा अति उच्च कोटि का एक साहित्यिक नाटक ह । यह अभिनय भी है । भाषा सरल और काव्यात्मक है । स्थान-स्थान पर दार्शनिक दृष्टिकोण की भी छाप है । कथोपकथन अति चूटकीन मार्मिक रमात्मक एवं पात्र तथा अवसरानुकूल हैं ।

मट्टजी की इस शृति म चरित्र बहुत सुन्दर उमरे हैं । अम्बा का विद्रोहिणी रूप तो निखरकर आया ही है साथ ही सत्यवती भीष्म, शाल्व अम्बिका तथा अम्बालिका, यहा तक कि विद्रूपक के चरित्र चित्रण मे भी मट्टजी की लेखनी अति अफन रही है । अपन चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध म मट्टजी न जा विश्लेषण किया ह, वह इस प्रकार है—

अनलाघ्रा के छलछानान हुए मट्ट मन्द अश्रुपात द्वारा कई पात्र मेरे सामन आकर राय हैं और अन्त म सग हँसने की प्रतिभा करने वाले विद्रूपक न भी, ‘मैंने ता सदा से सबरे को साभ की ओर बढत देखा है । कहकर मुझे जी भरकर म्लाया है । कहा नहीं जा सकता, व पात्र स्वय इतनी दूर चले गये हैं या मैंन उह खदेडा है । लेकिन इतना तो जरूर कहूंगा कि मुझम उहे जानी दूर खदेडन की सामर्थ्य न थी ।

भीष्म महामारुत के बहुत ऊँचे पात्र हैं । उनक पास जात हुए मुझे सदा डर लगता रहा है पर अम्बा न उनक पीछे दौडकर मुझे बतरह दौडाया है । हा, अम्बा न उह पकड जरूर लिया हैं । लेकिन मैं भी भीष्म का पकड पाया ह, दसम अमी मैं बहुत सदिग्ध हूँ । अम्बिका और अम्बालिका के योग्य और ममभेदी विचारा म लचील पाठका को उत्कट क्रान्ति की भ्रान्ति होगी पर वह सत्य भी हो ही सकती है । विद्रूपक ने जरूर मुझे बहुत तग किया है । कभी-कभी मैं उससे बतरह खीभ भी उठा हूँ । लेकिन उसकी भीठी और

१ महामारुत (सम्भवपव), अ० १०२ श्लोक ४६ ५०

२ महामारुत (अम्बोपाख्यातपव), अध्याय १७५

अपने विचार प्रकट करने का उद्देश्य प्राप्त हो।”

निःसन्देह लेखक नाटक में अपने उद्देश्य को मुखरित करने में पूरा मफल रहा है। समाज की कटुतापूर्ण अभेद्य दीवारों आज भी ज्या की त्या खिची है। या समय के साथ परिस्थितियों में अन्तर चाहे अवश्य दीख पडा हो, किंतु यह परिवर्तन सतही है आमूलचूल परिवर्तन अभी क्षय है। अतएव कथानक पीरानिक होत हुए भी समस्याएँ पुरानी नहीं हैं वे नयी ही ह, जिनका समाधान अम्बा के विद्रोह द्वारा लेखक ने अप्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

मूल कथा की अपेक्षा प्रस्तुत नाटक का कथानक एक शाली अति रोचक सरस और उसकी सुपुल है।

भीष्म चरित

भीष्म महाभारत के एक विनिष्ट चरित्र हैं। लोक में भीष्म अपनी दृढ प्रतिभा के कारण प्रसिद्ध हैं। भीष्म व्रतधारी भीष्म का चरित वस्तुतः स्पष्टगीय और अनुपमेय है। इस प्रकार के दुर्लभ एक असाधारण चरित्रवान व्यक्ति से प्रभावित होकर, नाटककार ने इस सुन्दर चरित्र को साहित्य की नाटकीय विधा में बाधन का प्रयत्न किया है। श्री द्विनेन्द्र लाल राय का नाटक 'भीष्म' जो उद्धान मूलतः रंगला में लिखा था और जिसका अनुवाद हिन्दी में हो चुका है अनुवाद होने के कारण इस कोटि में नहीं आता। भीष्म चरित में सम्बद्ध हिन्दी नाटक जो उपलब्ध हुए हैं वे निम्नलिखित हैं--

- १ भीष्म विश्वम्भरनाथ गर्मा कौशिक
- २ भीष्मव्रत नाटक मूलजी मनुज
- ३ गंगा का बेटा पाण्ड्य वेचन रामा 'उग्र

भीष्म

विश्वम्भरनाथ रामा लिखित यह नाटक कई घटनाओं को एक साथ सँजान के कारण काफी सम्बद्ध हो गया है। घटनाओं का आधिक्य होने के कारण ही यहाँ प्रसंगानुरूप मूल कथा से अन्तर भी साथ साथ दिखाय गए हैं।

नाटक की कथावस्तु से विदित होता है कि पूव जन्म में भीष्म की वसु एक गंधर्व था। अपना स्त्री के प्रेमपात्र में बँधकर वे महर्षि बर्मिष्ठ की नदिनी की गौ की चोरी करने की घण्टता करते हैं। महर्षि का पता चल जाता है और वे आठों वसुओं का भूनाक में जाकर जीवन मरण का दुस्त भोगन का क्षय दत्त हैं किंतु प्रमुख अपराधी की वसु को शापवश

१ विन्नेहिणी अम्बा अपनी बात पृ० १३ १४

२ प्रकाशक शिवनारायण मिश्र, प्रताप कार्यालय कानपुर

संधित समय तक भूलोत म ही ठहरा के लिए बाध्य होना पड़ता है। मरत्यज्ञान म जन्म लेने पर गंगा उह अपन गम म धारण करती हैं। गान्धु की पत्नी बनकर वह उनका पालन पोषण करती हैं, पर इसी क्षण पर कि गान्धु उमरे बापों म बाधा न दें। सात पुत्रा को जन्म के साथ ही वह उह पानी म गहा दनी हैं। अष्टम पुत्र के माघ भी गया करन पर राजा उस रोहत हैं, इस पर गंगा क्रुद्ध होकर अष्टमपुत्र (भीष्म) का तनर चली जाती है और उनका सालन पालन करन के उपरांत परगुरामजी म धर्मविद्या सिगवानर गान्धु को सौंप देती हैं।

महाभारत म यह कथा इस रूप म नहीं है किन्तु यह अत्य प्रमाणित है कि भीष्म वसु के आठवें भ्राता स उत्पन्न थ।^१ महाभारत म भीष्म महर्षि विमिष्ट स छ भ्राता—गंगा कल्प, व्याकरण निरुक्त ज्यातिष तथा छत्र संहित समस्त कथा का अध्ययन करत हैं। नाटक म वर्णित परगुराम इनके गुण वहाँ नहीं हैं।^२

नाटक की कुछ विमिष्ट घटनाएँ जिनका साम्य महाभारत म है निम्नलिखित हैं—

१ सातनु का सत्यवती के साथ विवाह और दयव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा। महाभारत म यह कथा इस प्रकार वर्णित है^३—

एक बार राजा सातनु यमुना नदी के निकटवर्ती वन म गए। वहाँ राजा को भ्रवण नीय एव परम उत्तम सुगन्ध का अनुभव हुआ। सुगन्ध के उदगम का पता लगात हुए उन्होंने वहाँ मन्नाह की एक कन्या देवी, जो देवागता के सहाय सुन्दरी थी, जिसन राजा सातनु के पूछने पर अपना परिचय निपादराज की पुत्री कह कर दिया। राजा ने निपादराज से उसकी कन्या मांगी किन्तु उसने यही शत प्रस्तुत की कि हे पश्वीपत! मेरी शत है कि इसके गम से जो पुत्र उत्पन्न हो आपके बाद उसी का अभिषेक किया जाय। परन्तु सातनु अपने एकमात्र पुत्र देवव्रत को साथ से वचित करना नहीं चाहत थ। वे घर लौट आये।

तदनन्तर एक दिन राजा सातनु ध्यानस्थ होकर कुछ सोच रहे थे कि तभी भीष्म न उनके पास पहुचकर उनकी चिन्ता का कारण पूछा। कुछ स्पष्ट न जान सने के कारण वे भत्री के पास गय भत्री ने राजा का एक कन्या के प्रति आसक्त होना कारण बतलाया। भीष्म रथ जुतवाकर वताय गए स्थल पर पहुचे और धीवर निपादराज की शन को सह्य स्वीकार कर लिया, किन्तु धीवर ने कहा है महाशही आपका जो पुत्र होगा, वह सम्भवत इस प्रतिज्ञा पर दृढ न रहे—आपके बाद वह राज्य पर अधिकार पाना चाहे। निपादराज के अभिप्राय को जानकर भीष्म ने कठोर प्रतिज्ञा की कि वे आज म ब्रह्मचारी रहेगे—

अथ प्रभृति मे दाग ब्रह्मचय भविष्यति।

अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यत्यशया दिवि ॥^४

इसके उपरान्त भीष्म सत्यवती को रथ मे बठाकर प्रासाद म ले आते हैं। पिता सातनु

१ महाभारत आदिपर्व भृगावतरण

२ वही अध्याय ६३ ६१

३ वही आदिपर्व अध्याय १०

४ वही, आदिपर्व (सम्भवपर्व) अ १००, श्लोक ६६

सन्नुष्ट हाते हैं और भीष्म को इच्छा मृत्यु या वरदान देत हैं ।

२ काशिराज की तीना ब्याघ्रा का अपहरण ।^१

नाटक म दूसरी घटना, काशिराज की ब्याघ्रा के अपहरण से सम्बन्ध रखती है ।

महाभारत म इस घटना का रूप इस प्रकार है —

काशिराज की तीना ब्याघ्र अम्बराम्ना क सदग सुन्दरी थी । उनके स्वयवर की चचा मुन भीष्म वाराणसी पहुँचे । वहाँ उपस्थित राजाम्ना ने विचार कि भीष्म स्वय स्वयवर म भाग लेने आए है, इसलिए व्यग्यपूर्ण हास्य स उनका स्वागत किया गया । भीष्म ने कुपित होकर तीनी ब्याघ्रा का अपहरण कर लिया ।

३ अम्बा का गाल्व प्रेम ।

तीसरी प्रमुख घटना अम्बा सम्बन्धी है जो विभिन्न घटनाया के साथ पर्याप्त दूर तक चली गयी है । महाभारत म^२ इसका विवरण पहले विद्राहिणी अम्बा के प्रसंग म दिया जा चुका है । पहा आवृत्ति व्यप्य है ।

४ नाटक की अगली घटना, भीष्म से उनकी मृत्यु सम्बन्धी विचार विमर्ग से सम्बन्ध रखती है । युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण तथा अर्जुन इत्यादि भाइया के साथ भीष्म के समीप उनके वध के सम्बन्ध म पूछने जात हैं । भीष्म कहत हैं कि, युद्धस्थल म गिखण्डी को मेरे सामने रखने स मेरी मृत्यु सम्भव हा मन्ती है, क्याकि वह पहले नारी या और नारी पर वाण चलाना मरे लिए असम्भव हागा । एसा ही किया जाता है और भीष्म आहत होकर शरशय्या पर सेटे हुए उत्तरायण की प्रतीथा करते दीखत है । समस्त राजाण तथा योद्धा भीष्म स मिलने जात है । स्वागत भाषण करने के उपरान्त वे अपना सिर नीचा लटकने की शिकायत करत हैं । उपस्थित व्यक्ति कामल महीन वस्त्र से बना हुआ तक्रिया ल आते हैं परंतु पितामह के अनिर्घ्राय को समझकर अर्जुन गाण्डीव धनुष ल, उसे अनिमन्त्रित कर, भुकी हुई गाठ वाले तीन वाणा द्वारा उाक मस्तक को अँचा कर दत हैं ।

अगले दिन पानो पीने की इच्छा प्रकट बरन पर राजा लोग के द्वारा प्रस्तुत शीतल जल का उपयोग भीष्म नहीं करत, तब अर्जुन गाण्डीव की गजनमयी ध्वनि उत्पन्न करके जमीन से जल उत्पन्न करत है जिमकी धार सीधे भीष्म के मुख म पहुँचती है । महाभारत म यह घटना इसी रूप म उपलब्ध होती है ।^३ इस प्रकार नाटक की अधिकांश घटनाएँ मूलकथा के सदृश ही हैं ।

प्रस्तुत नाटक साहित्यिक तथा अभिनय है इसम घटनाक्रम बडी तीव्रता से चलता है । वही गतिरय नहीं दीख पडता । या नाटक सुलभा हुआ और रोचक है । मूल घटनायो के कौशलपूर्ण संयोजन ने नाटक के सौंदर्य का उभारने म अतिशय सहायता की है ।

१ महाभारत अ १ २

२ महाभारत उद्योगपर्व (अम्बोपाकथानपर्व) अध्याय १७५ ७७ ८ ८६ ८७

३ महाभारत भीष्मपर्व (भाष्मवधपर्व), अध्याय १०७, ११६ १२१

भीष्मव्रत^१

मूलजी मनुज लिखित भीष्म सम्बंधी तीन घण्टा का यह द्रुमग नाटक है जिसका कथानक विद्रोहिणी भ्रमरा तथा उदयकन भीष्म नाटक की घटनाओं के मदन ही है। म्म नाटक की कबल का घटनाएँ इन दोनों नाटकों से भिन्न हैं। प्रथम घटना भीष्म की गिता से सम्बंधित है। विश्वम्भरनाथ नामा लिखित भीष्म नाटक में भीष्म के गुण परशुराम बताया गया है जबकि प्रस्तुत नाटक में भीष्म के गुण श्रीव्यास का दिया गया है किन्तु य दाता ही नाम महाभारत में उल्लिखित गुण से भिन्न हैं वहाँ भीष्म के गुण बसिष्ठ हैं।

दूसरी घटना कागिराज व प्रासाद में कागिराज की सखी बड़ी पुत्री भ्रमरा के भीष्म के प्रति अनुराग से सम्बंध रखती है। यह घटना सत्य की कल्पना पर आधारित प्रतीत होती है। भीष्म नाटक का कोई भी प्रसंग किसी भी स्थल पर भीष्म के दौलत को प्रकट नहीं करता, जबकि प्रस्तुत नाटक में भीष्म के हृदय के इस सुकामल भाग की भ्रांति भी प्रदर्शित की गयी है। आज में अज्ञानचक्र लने के पूर्व भीष्म कागिराज कुमारी भ्रमरा से प्रेम करते हैं। यह प्रसंग नाटककार ने प्रति हृदयस्पर्शी संवादों द्वारा प्रस्तुत किया है। नाटककार की इस कल्पना में नाटक को सरलता तथा स्वाभाविकता दोनों प्राप्त की हैं।

प्रस्तुत नाटक का कथानक महाभारत से एक स्थल पर और भिन्न है। यहाँ भीष्म की मृत्यु का उपाय पूछने के लिए कुंती को भेजा जाता है जबकि महाभारत में भीष्म अपनी मृत्यु का उपाय युधिष्ठिर का बतलाते हैं।

प्रस्तुत नाटक की भूमिका से पता होता है कि लेखक न द्विजेन्द्रलाल राय के समस्त नाटकों का अध्ययन किया है। द्विजेन्द्रलाल राय के भीष्म नाटक के सम्बंध में आपका विचार है कि द्विजेन्द्रलाल राय का उस धीवर को जिसने अपनी दुर्दशिता से देवव्रत के न केवल शासक बनने में बाधा डाली है प्रत्युत उसके पुत्र पौत्रादिकों को भी उस अधिकार से वंचित करने में समर्थ हुआ है एक बाग के रूप में प्रस्तुत करना उचित नहीं जँचता। इसके अतिरिक्त भ्रमरा भ्रमरालिका में वृद्धावस्था तक उच्छ खल वृत्ति को प्रकृत करना भी मनोविज्ञान की दृष्टि से भी सगत प्रतीत नहीं होता।^२

इस प्रकार की दृष्टियाँ एवं शिथिलताएँ प्रस्तुत नाटक में कहीं देखने को नहीं मिलती। नाटक रोचक है क्योंकि ऐतिहासिक पात्रों के अतिरिक्त भ्रमरा की सखी और सता (सत्य बती की सखी) दो कल्पित पात्र भी जोड़े गए हैं, जिनके कथोपकथना न नाटक में पर्याप्त रसवृद्धि की है। नाटक की भाषा परिष्कृत एवं पुष्ट नहीं है, किन्तु अभिनय की कसौटी पर नाटक खरा उतरता है।

१ प्रकाशक शारदा मन्दिर दिल्ली

२ भीष्मव्रत (मूलका मनुज) भूमिका पृष्ठ २३

गगा का बेटा'

पाठ्ये वचन शर्मा उग्र लिखित इस नाटक की कथा निम्नलिखित है—

नाटक की कथावस्तु भीष्म के जीवन की प्रसिद्ध घटनाओं से सम्बद्ध है। नाटक का आरम्भ सुमरु पर्वत की एक तलहटी में ब्रह्मर्षि बसिष्ठ के आश्रम से होता है। उनकी हामधेनु नन्दिनी सायंकाल का समय हात पर भी जब वन से घर नहीं लौटती, तो बसिष्ठ चिन्तित हो जाते हैं। साज करन पर भी नन्दिनी का कुछ पता नहीं चलता। बसिष्ठ तब अपने ध्यानचक्रों में सम्पूर्ण घटना का यथावत् देख लेते हैं।

अष्ट वसु नन्दिनी का चुराकर स्वर्ग की ओर ले जाते हैं। ब्रह्मर्षि उन्हें देख से मानव बनने का भाव दे देते हैं। नन्दिनी तथा गाँठा वसु सब उनके सम्मुख उपस्थित होते हैं। उनके क्षमा याचना करने पर द्यौ का छाड़ माना के ज म लेते ही मरकर पुन स्वपद प्राप्त कर लन का बसिष्ठ आश्वासन लेते हैं किन्तु अष्टम द्यौ का अधिक अपराध होने के कारण वह मानव शरीर में मुक्ति न पा सकेगा—साथ ही ऐसा अवश्य कह देते हैं।

स्वर्ग में जाते हुए वसुओं का माग में गगा देवी मिलती हैं। अपने उद्धार के लिए वे उनमें प्रार्थना करने हैं। कर्णामूर्ति गगा, ब्रह्मि होकर उनका उद्धार के लिए तयार हो जाती हैं। देवर्षिणी गगा हस्तिनापुर के देवोपम महाराज शातनु का अपना पति बनाती हैं। अपने सात पुत्रों को तो वे एक-एक वर्ष बाद गगा में विमर्जित कर देती हैं परन्तु अष्टम पुत्र की वे रक्षा करती हैं। वसुओं के उद्धार का प्रतिश्रुत वाय पूषण हो जाने पर वे शातनु का छोड़कर चली जाती हैं किन्तु समय होने तक पुत्र के पालन का भार ग्रहण करती हैं। गगा का यह पुत्र 'स्वर्गत' 'गगापत्न' तथा 'भीष्म' नाम से पुकारा गया है। गगा के प्रताप से सवगास्त्र और अस्त्रविद्या में वह पारंगत हो जाता है। परशुराम और शिवजी से वह अस्त्रविद्या ग्रहण करता है।

नाटक की कुछ अन्य प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित हैं—

- १ दागराज की पुत्री सत्यवती से शत के साथ शातनु का पुत्र विवाह।
- २ भीष्म की प्रतिष्ठा।
- ३ काशिराज की तीनों कथाओं का स्वयंवर में से बलपूर्वक अपने सौतेले माई विचित्रवीर्य के लिए भीष्म द्वारा हरण किया जाना।
- ४ भीष्म और परशुराम का युद्ध तथा इस युद्ध में परशुराम की हार।
- ५ अम्बा का तप करके शिवजी से वर मागना।

भाषार

नाटक की यह कथा महाभारत में ज्यान्ती-रथा मिलती है।^१ कवन कुछ प्रारम्भिक प्रसंगा का महाभारत में विस्तारपूर्वक वर्णन है। भाषारिक का अतपत सम्भरण में नन्वी गौ का वर्णन प्रति विस्तृत है। शातनु का पूछन पर गया बतनाती है—

भाषार महर्षि वसिष्ठ का नाम है। गिरिराज मरु के पारस भाग में उनका पवित्र आश्रम है जहाँ सभी ऋतुस्रा में विकसित होत वान पूज उत्तरा शर्मा बढ़ात हैं। दश प्रजापति की पुत्री, देवी गुरभि न कश्यपजी का सहवाम से एक गौ को जन्म लिया जो वसिष्ठ ने होमपेनु के रूप में प्राप्त की। यह गौ प्रति गुप्तर तथा सबका कल्याण करनेवाली थी। जो व्यक्ति इगवा दूध पी लता, वह सबदा का लिए युवा बन जाता था।

श्री वसु का गाय मिलने की घटना भी इमी प्रवार प्रति विस्तृत है—

एक बार आठा वसु तथा सम्पूर्ण देवता या ही आश्रम के समीप विहरण करने के लिए पधारे। श्री वसु की पत्नी ने अपने पति से बहुत आग्रह किया कि वे उस गौ को उनकी सखी राजपि उगीनर की पुत्री का लिए लें। श्री न ऐसा ही किया और परिणामस्वरूप वसिष्ठ के गाय का मागी बना।

इन घटनास्रा का यह विस्तार नाटक में नहीं दिखाया गया है, किन्तु नेप समस्त घटनाएँ नाटक में प्रति सुंदर ढंग से प्रस्तुत की गयी हैं। नाटककार ने यहाँ समस्त पौराणिक घटनास्रा को ज्यान्ती-रथा रखने का प्रयत्न किया है। असंगत तथा अमम्भावित घटनास्रा को मोड़ने-तोड़ने का प्रयत्न नहीं किया है।

इस नाटक की कथा विश्वम्भरनाथ शर्मा कौणिव लिखित 'भीष्म नाटक' से बहुत मिलती जुलती है।

आधुनिक युग के पौराणिक नाटकों में उग्रजी का यह नाटक प्रति सुंदर है। भाषा, भाव तथा शली सभी दृष्टि से यह एक परिष्कृत नाटक है। ज्वालादत्त शर्मा उपाध्याय (पात्र) की सट्टि कर उग्रजी ने इसमें परिभाषित हास्य का पुट देने का प्रयत्न भी किया है।

सुभद्रा परिणय^२

वीरेन्द्रकुमार गुप्त लिखित सुभद्रा परिणय नाटक की कथा निम्नलिखित है—

प्रस्तुत नाटक, सुभद्रा के बलपूर्वक परिणय की घटना से सम्बंध रखता है। अजुन बारह वर्ष के तीर्षटन पर जाते हुए धाम में कृष्ण से मिलते हैं। कृष्ण उन्हें प्रथम, रवतक

१ महाभारत भाषारिक (सम्भवपर्व) अ ६६ १०० १०२ तथा उद्योगपर्व (धन्वोपाख्यापर्व), अ० १७५ ७७ ८ ८६ ८७

२ प्रकाशक आत्माराम एण्ड सज दिल्ली, प्रथम सं १९५२

पवत पर, तदनन्तर द्वारका ले जाते हैं। अजुन के आगमन के उपलक्ष्य में नगर खूब अच्छी तरह सजाया जाता है। अजुन के शयन कक्ष की तयारी सुमद्रा की सखी सत्या, सुमद्रा के साथ अति मनोयोग से करती है। सुमद्रा के वीणावादन तथा चित्रकला से अजुन उसके प्रति आकृष्ट हो जाते हैं और उसे पत्नी रूप में पाने के लिए व्यग्र हो उठते हैं। वे नहीं चाहते कि कृष्ण के बड़े भाई बलराम की इच्छानुसार सुमद्रा दुर्योधन का मिले। बलराम अपनी बहन सुमद्रा का विवाह अपने शिष्य दुर्योधन से इसलिए करना चाहते हैं जिससे यादवा और कौरवों के सम्बन्ध टूट जायें और भरत तथा यादव एक प्रचण्ड शक्ति के रूप में संगठित होकर समस्त विरोधी शक्तियों का सामना कर सकें। कृष्ण, बलराम तथा उग्रसेन से कहते हैं कि सुमद्रा के विवाह को राजनीति के क्षेत्र में न लाया जाय।

इसी बीच सारथि द्वारा समाचार मिलता है कि उत्तर-पश्चिम के नागा और यवना ने मिलकर सिंधु के इस पार के सौराष्ट्र के गणतंत्र पर आक्रमण कर लिया है। कृष्ण उधर जाते हैं और अजुन और सारथि सौराष्ट्र के पास के प्रांतों का देखने चल पड़ते हैं। प्रभास उत्सव से कुछ दिन पूर्व ही अजुन तथा कृष्ण दोनों द्वारका लौट आते हैं। कृष्ण अजुन को सुमद्रा हरण की सम्मति देते हैं। उधर सुमद्रा बलराम की पत्नी रोहिणी से स्पष्ट कह देती है कि मैं दुर्योधन के साथ विवाह नहीं करूंगी, किंतु भाई बलराम से कुछ बहन का साहस नहीं जुटा पाती।

दुर्योधन भी प्रभास पर आयोजित बड़े भारी उत्सव में सम्मिलित होता है। द्वारका पुरी से चलकर सभी प्रभास के लिए यात्रा करते हैं। भाग में दुर्योधन सुमद्रा से कहता है— 'मेरा भी एक चित्र बना दो।' सुमद्रा सुनकर क्रोधवश दुर्योधन के रथ की पंतावा अपने रथ पर बड़े-बड़े ही काट देती है। दुर्योधन बड़ा अपमानित अनुभव करता है, पर उत्सव में भाग लेता है। वहीं अपने गुरु बलराम के द्वारा उससे देग की दुरवस्था संभालने पड़ने से मेल करने तथा शकुनि और कण का साथ छोड़ने के लिए कहा जाता है पर दुर्योधन पाण्डवों से मेल करने के लिए तयार नहीं होता।

इसी स्थल पर जब स्नाना पूजन करने जाती हैं तो अजुन सुमद्रा को हर ले जाता है। दुर्योधन, शकुनि इत्यादि रथ लेकर दौड़ते हैं पर अजुन के रथ को रोकने में विफल रहते हैं। बलराम को भी अजुन का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता किंतु कृष्ण के द्वारा समझाये जाने पर बलराम समझ जाते हैं और अतत अजुन को बुलाकर सुमद्रा के साथ विवाह रचाया जाता है।

आधार

महामारत में सुमद्राहरण की यह कथा अति विस्तार में वर्णित है।^१ इस कथा के अनुसार अजुन बारह वर्ष के तीर्थाटन पर निकलते हैं और प्रभास क्षेत्र जा पहुँचते हैं। वहीं उनका श्रीकृष्ण से मिलन होता है। तदनन्तर घूम फिरकर अजुन और कृष्ण दोनों रवतक पवत पर जाते हैं, जहाँ श्रीकृष्ण के आदेश से सबको द्वारा पूर्व ही इसी उपलक्ष्य में भली

प्रकार, सज्जा की गयी है। तदनंतर द्वारकापुरी पहुँचने पर भी स्वागत समारोह तथा साज सज्जा से अर्जुन को प्रसन्न कर अभिनन्दित किया जाता है। श्रीकृष्ण के रमणीय भवन में अनेक रात्रियाँ तब निवास करते हैं।

कुछ दिन व्यतीत होते पर रवतक पवत पर वृष्णि और अर्धक वस के लोग का एक बड़ा भारी उत्सव होता है, जिसमें कृष्ण अर्जुन को भी ले जाते हैं। द्वारकापुरी तथा दूर-दूर के अनगिनत व्यक्ति उत्सव में भाग लेने के लिए पहुँचते हैं। यही अर्जुन सुभद्रा को देखते हैं और उसके प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन की मनोदशा को भाप लेते हैं और सुभद्रा को अपहरण द्वारा प्राप्त करने की सम्मति दे देते हैं।^१

तदुपरांत अर्जुन कुछ गीर्वाणों पुरुषों को भेजकर युधिष्ठिर की अनुमति भी इस कार्य के लिए प्राप्त कर लेते हैं। युधिष्ठिर की आज्ञा मिल जाने के उपरांत अर्जुन को जब ज्ञात होता है कि सुभद्रा पूजा करने रवतक पवत पर गई है तो अर्जुन एक सुन्दर सुसज्जित रथ के द्वारा आश्रित होने के बहाने रवतक पवत पर पहुँचते हैं और देवताओं की पूजा करके ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर, परिक्रमा पूरी करके द्वारकापुरी को लौटती हुई सुभद्रा को, बलपूर्वक पकड़कर रथ में बिठा लेते हैं और चल देते हैं।

अपहरण की सूचना क्षणमात्र में ही सम्पूर्ण द्वारकापुरी में फैल जाती है। सकडा सनिक पीछे दौड़ पड़ते हैं। बलराम अत्यन्त क्रोधित होते हैं।^२ परन्तु श्रीकृष्ण शांतिपूर्वक बलराम को समझाते हैं और तत्पश्चात् पुनः द्वारकापुरी में अर्जुन को आमन्त्रित करके विवाह रचाया जाता है।

अन्तर

महाभारत की कथा के साथ नाटक की कथा की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटककार पूणरूपेण महाभारत पर ही निर्भर नहीं रहा है। नाटक की कथा के विस्तार में उसने अपनी कल्पना का समावेश भी किया है।

१ अतः सत्या पात्र तथा तत्सम्बन्धी विस्तृत विवरणलाप तो नाटक में कल्पित है ही इसके अतिरिक्त सुभद्रा का विवाह दुर्योधन के साथ करने की बलराम की इच्छा को भी नाटक की कथा में अपनी ओर से ही जोड़ा गया है। महाभारत में बलराम की इस प्रकार की इच्छा का सबत मात्र भी नहीं है।

२ अर्जुन का उत्सव से कुछ माह पूर्व द्वारका में लाने के उपरांत पुनः राजनीतिक कारणों से हटा देना भी लेखक की अपनी कल्पना है। तब न शत्रु का कारण प्रेमी प्रेमिका दोनों के हृदय में प्रेम का परिपाक करना बताया है।^३

महाभारत की कथा के प्रमुख तथ्य निम्नलिखित हैं—

१ सुभद्रा का हरण उमर के मध्य में हुआ, प्रयुक्त रवतक पवत पर पूजा करके लौटते समय हुआ।

१ महाभारत आश्रित (सुभद्राहरण) अध्याय २१० अंश २२-२३

२ वही अध्याय २१६ अंश २०-२६

३ सुभद्रा परिणय अपनी बात पृ० १०

२ बलराम अजुन स केवल उसवे दुस्साहसपूर्ण काम के कारण ही मुद्र थे ।

३ कृष्ण के अतिरिक्त युधिष्ठिर की सम्मति भी इस काम के लिए अजुन को प्राप्त थी ।

४ दुर्योधन का प्रवण इस कथा के प्रसंग में वही नहीं हुआ है ।

नाटककार न इस कथा में दुर्योधन को सम्मिलित करके तथा बलराम को दुर्योधन के साथ सुमद्रा का विवाह करने इच्छा को दिखाकर नाटक की कथा को एक राजनीतिक मोड़ दे दिया है ।

भागवत पुराण

भागवत पुराण में भी सुमद्राहरण की कथा मिलती है ।^१ यहाँ इस प्रसंग का रूप इस प्रकार है—

शक्तिशाली अजुन, तीर्थयात्रा के लिए पृथ्वी विचरण करत हुए बदाचिन प्रभाम-क्षेत्र पहुँचते हैं । वहाँ उन्हें पता होता है कि बलरामजी, अपनी भगिनी सुमद्रा का विवाह दुर्योधन के साथ करना चाहते हैं और वसुदेव श्रीकृष्ण आदि उनसे इस विषय में महमत नहीं हैं । यह सब जानकर अजुन के मन में सुमद्रा को पान के हेतु लालसा जग उठनी है । अतः वे त्रिदशनी वष्णव का धेप धारण करके द्वारका पधारत हैं । सुमद्रा को प्राप्त करने के लिए अजुन वहाँ वर्षाकाल के चार महीने तक रहते हैं । वहाँ पुरवासी और स्वयं बलरामजी उनका खूब सम्मान करत है । उन्हें यह विदित नहीं होता कि ये अजुन है ।

एक दिन बलरामजी आतिथ्य के लिए त्रिदशनीवष्णव धेपधारी अजुन को आमन्त्रित करत हैं और उनको अपने भवन में ल आते हैं । खूब स्वागत सत्कार होता है । अजुन मोजन के समय विवाह योग्य सुन्दरी सुमद्रा को देखत हैं जिसका अनुपम सौन्दर्य स्त्रियाँ तक के हृदयों को मुग्ध करनवाला है । देखते ही अजुन मोहित हो उठत हैं और सुमद्रा प्राप्ति की उत्कट कामना उनके हृदय को मयन लगती है । सुमद्रा अजुन को देखकर मन में उही को पति बनाने का निश्चय कर लेती है ।

एक बार सुमद्रा देवज्ञान के लिए रथ पर सवार होकर द्वारका दुर्ग से बाहर निकलती है । उसी समय महारथी अजुन देवकी, वसुदेव और श्रीकृष्ण की अनुमति से, सुमद्रा का हरण कर लेत हैं । यह समाचार सुनकर बलरामजी बहुत विगडत हैं । परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तथा अथ सुहृद् सम्बन्धीजन उन्हें पर पकडकर समझात हैं और तब वे शांत होत हैं । इससे उपरांत बलरामजी प्रसन्न हाकर वर-वधु के लिए बहुत सा धन, सामग्री हाथी, रथ घोडे और दासी-दास दहज में दत हैं ।

भागवत की उपयुक्त कथा नाटक की कथा के अति समीप प्रनीत होती है, क्योंकि—

१ यहाँ दुर्योधन के साथ सुमद्रा के विवाह करने की बलरामजी की इच्छा का स्पष्ट उल्लेख है ।

२ अजुन और सुमद्रा एक-दूसरे को प्राप्त करने के लिए यहाँ समान रूप से

उत्सुक हैं।

३ बलरामजी के अतिरिक्त अन्य सम्य धी जन इस विवाह से सहमत हैं।

४ अजुन द्वारकापुरी में विवाह से पूर्व चार महीने निवास करते हैं।

कुछ दृष्टव्य अंतर—

१ भागवत की कथा में अजुन को सुमद्रा की प्राप्ति के लिए त्रिदण्डी वणव का रूप धारण कर चार महीने निवास करते दिखाया गया है। नाटक में इस वेष का उल्लेख नहीं है।

२ सुमद्रा हरण भागवत में द्वारकापुरी में ही सुमद्रा की पूजा के लिए जाते समय होता है और महाभारत या नाटक की कथा के समान खनक अथवा प्रभास क्षेत्र में नहीं पड़ता।

इस प्रकार नाटक की घटनाओं तथा भागवत की इस कथा के मध्य भिन्नताओं की अपेक्षा समानताएं अधिक हैं। अतः नाटक की कथा महाभारत की अपेक्षा भागवत की कथा के अधिक समीप है तथापि इन दोनों आधारों के अतिरिक्त नाटक के सृजन में कल्पना का अंश भी प्रचुर मात्रा में रहा है।

विवेचन

भूमिका लखक श्री गोविन्ददासजी के अनुसार यह नाटक पौराणिक है और पौराणिक कथा में ऐसी समस्याओं का समावेश हो गया है जो आधुनिक काल की हैं।^१

वस्तुतः यह सत्य है। आधुनिक परिवारों में भी जब युवकी कथा किसी विशिष्ट व्यक्ति से सम्बन्ध करना चाहती है तो कभी-कभी परिवार के सदस्यों में ही उस सम्बन्ध के विषय में मतभेद उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार की एक भाँकी लेखक ने इस नाटक में प्रस्तुत की है। ऐसे वातावरण में सुमद्रा की आकुलता पीडा दग्ता तथा साथ ही गालीनता जिस ढंग से प्रस्तुत की गयी है वह सराहनीय है।

नाटक की प्रायः सम्पूर्ण कथा पौराणिक पात्रों को लेकर चली है केवल सत्या पात्र कल्पित है किन्तु इसका प्रवेश नाटक के रस में बद्धि ही की है। प्रस्तुत पात्र सत्या के प्रति नाटककार का भ्रूणव अधिक रहा है। नाटककार ने इस स्वयं स्वीकार किया है—

सत्या के प्रति मेरा बड़ा पम्पान है। नाटक के आधे से अधिक सौन्दर्य का श्रेय सत्या को है। यदि सत्या का नाटक से निकाल दें तो कुछ भी न बचेगा। इस इतिवृत्त की अस्थिरता पर मास मज्जा चटाने एवं गरीर में रक्त प्रवाहित करने का काम सत्या ही करती है।^२

एक व्यक्तिगत घटना कभी समाज तथा राष्ट्र को किस प्रकार प्रभावित करती है नाटककार ने इस रचना में यही दिग्दर्शन का प्रयत्न किया है और वह इसमें सफल हुआ है। लेखक की यह धारणा रही है कि श्रीकृष्ण ने सुमद्रा का विवाह दुर्योधन के साथ इसलिए नहीं

१ सुभगापरिचय पृष्ठ ५ १

२ वही पन्नों कात पृ० ११

होने लिया क्याकि व कौरव-पाण्डव वैमनस्य को किसी भी मूल्य पर कम करना नहीं चाहने थे। इस घटना के पश्चात जो घटनाचक्र प्रवाहित हुआ उसके लिए यही घटना उत्तरदायी कही जा सकती है। अभिमन्यु के नश्वर वध के मूल में सम्भवतः यही घटना थी। अतः लेखक के अनुसार 'राजनीतिक चक्रा का परिचालन मानवीय एवं राष्ट्रीय सिद्धान्ता के आधार पर न होकर बहूधा व्यक्तिगत लगाव के द्वांग ही हुआ करता है।'^१

वस्तुतः यही ध्वनि इस नाटक में मुखरित है। माया की दृष्टि से नाटक यत्रन्तत्र क्लिष्ट हो गया है। या नाटक अभिनेय है।

नाटककार ने अर्जुन सुभद्रा विवाह की इस घटना को 'सुभद्रा हरण' नाम न देकर 'सुभद्रा परिणय' नाम दिया है जो सवथा उचित ही है। सुभद्रा का विवाह क्या पक्ष की ओर से थीकृष्ण, वसुदेव देवकी एवं अयम्बधिघया तथा वरपक्ष की ओर से युधिष्ठिर की अनुमति से हुआ होता है इसलिए 'हरण' होने का प्रश्न नहीं रहता।

चक्रव्यूह^२

अभिमन्यु^१ की क्या स सम्बद्ध लक्ष्मीनारायण मिश्र लिखित यह एक अति सुन्दर एवं परिष्कृत नाटक है। प्रसिद्ध चक्र-यूह भेदन की घटना को लेकर लेखक ने प्रस्तुत कथा का विस्तार किया है। नाटक तीन अंकों में विभक्त है, कथा निम्नलिखित है—

युद्धभूमि में युधिष्ठिर के मन्त्रणागह में विचार विमग्न हो रहा है कि अर्जुन जब दूर ससप्तका के साथ युद्धरत है तो उसकी अनुपस्थिति में चक्रव्यूह भेदन के लिए किसे भेजा जाए। सबके व्यूहभेदन में अनभिज्ञ होने के कारण युधिष्ठिर अति चिन्तामग्न हैं। भीम की उग्र वाणी एवं उत्तेजित स्वरूप युधिष्ठिर को चिन्तामुक्त नहीं कर पाते। तभी अभिमन्यु पहुँचकर सबका आश्वासन देता है कि यह काय वह अवश्य कर सकेगा, क्याकि माता के गिरिविर में टंगे चक्र-यूह के चित्र का दिक्षा पिता (अर्जुन) उस चक्र-यूह भेदन की विधि, ससप्तका के युद्ध में जान स पूव सिखा गये हैं। अतः युधिष्ठिर तथा माताप्रा से आजा स और अपनी पत्नी उत्तरा स भेंट करने के उपरांत अभिमन्यु युद्ध-स्थल में पहुँच जाता है। उत्तरा स मिलन का दृश्य अति स्वाभाविक एवं हृदय-स्पर्शी है। सुकुमारी गम्बती पत्नी का आत्माकामिश्रित धय, तरुण पति-पत्नी का सुकीमल शान्त में मोहक, मनोरञ्जक वार्तालाप एवं मयात्मायुक्त विदा विवरण दर्शक को भाव विमोह कर देने की अद्भुत क्षमता रखता है। रणभञ्जक में अभिमन्यु का द्रोणाचार्य के अतिरिक्त दुर्योधन पुत्र लक्ष्मण से भी आभना सामना होता है। उत्तर प्रत्युत्तरों की चोटों के साथ दोनों में भयकर युद्ध होता है। प्रथम, लक्ष्मण की मृत्यु होती है, तत्पश्चात सब महारथी मिलकर अभिमन्यु को मार डालते

१ सुभद्रा परिणय अपनी बात पृ० १२

२ प्रवाहक कोशाम्बी प्रकाशन दारागज प्रयाग पंचम सं० १९५७

है। अभिमन्यु व समान्य हान ही, जो दुर्योग का भाग पुत्र अभिमन्यु की मृत्यु का कारण बनता था, समस्त वैशम्पायन मुतावर अभिमन्यु का गिर घटाती गाँव में रणरत्न एक पिता की शक्ति से उठता है। समान्यता से मुक्त करा व उपरान्त जब अज्ञात सीमा है तो अभिमन्यु की मृत्यु मुतावर जयद्रथ का अज्ञान ही की मरणा का भाग की तथा तथा म वर मरने की स्थिति में स्वयं अग्नि में प्रवेश करा की प्रतिज्ञा करता है।

अन्त में सब धार भित्तर भीष्म व समीप जात है। भीष्म इच्छा करता है कि उत्तरा जो पाण्डवा और कौरवा की अन्तिम छाया को अज्ञान में समाप्त हूँ, मानुसकी (दुर्योधन की पत्नी) और सुमन्त्र (अज्ञान की पत्नी) व मध्य बड़े और ज्ञान उस भाग कुत्र की अज्ञानि माता का पत्न प्राप्त करा का अज्ञानीका हैं। भीष्म की इच्छानुसार एसा ही किया जाता है। अन्तिम दृश्य में सब उमर अज्ञान की प्रतीक्षा में दीग पत्नी है, जब अभिमन्यु का पुत्र जन्म लेगा और दाना कुत्रा में पुत्र सुग गति की स्थापना होगी।

जयद्रथ की मृत्यु इस सात्वत में नहीं स्थिती जाती।

आधार तथा अन्तर

प्रस्तुत नाटक की कथा का आधार महाभारत का द्रोणपर्व^१ है। मगर न कुछ मूल घटनाएँ यथा अज्ञान की जयद्रथवध की प्रतिज्ञा तथा अज्ञान भ्रम की घटनाओं को ही यथावत् लिया है शेष विस्तार के मूल में समान की अज्ञानी कल्पना है। जहाँ समान की कल्पना प्रवणता ने नाटक की कथावस्तु को अज्ञान मनोरम एवं अभिन्न रूप प्रदान किया है वहाँ मूल कथा से इस कथा में अन्तर भी आ गया है जो निम्नलिखित हैं—

१. दुर्भीषण का हृदय परिवर्तन इस नाटक में सबसे मुख्य वस्तु है जो महाभारत की कथा में तथा महाभारत की इस कथा पर आधारित किसी रचना में नहीं दीख पड़ता। इस परिवर्तन का प्रयोजन कथा का मानवीय और बुद्धिमत् रूप देना है।

२. चक्रव्यूह में प्रविष्ट होने की विधा यहाँ अभिमन्यु माना के गर्भ में नहीं सीरता माता व शिविर में टँगे चित्र को देखकर पिता द्वारा प्रवण विधि बताने से उसका ज्ञान प्राप्त करता है।

३. युद्ध का विवरण लक्ष्मण अभिमन्यु तथा द्रोणाचार्य का पारस्परिक वार्तालाप इत्यादि सब प्रसंगा में कल्पना का भाग है।

४. अभिमन्यु और लक्ष्मण उस दिन युद्ध में भाग न लें, भीष्म की यह इच्छा भी काल्पनिक है।

विशेष

यह नाटक अति परिमार्जित एवं पुष्ट खड़ी बोली में लिखा गया है, जिसमें उचित अवसरों पर एक दो गीत भी सम्मिलित हैं। आज के बौद्धिक युग के अनुरूप लेखक ने

१ महाभारत द्रोणपर्व अध्याय ३३ ५०

२ महाभारत द्रोणपर्व (प्रतिज्ञापर्व) अध्याय ७३ श्लोक २० २१, ४७

कथा को बड़े सगन एवं मयन ढग से प्रस्तुत किया है। तत्कालीन घातावरण को बनाए रखने में भी लेखक पूर्णरूपण सफल रहा है। पात्रों के चरित्र बहुत सुन्दर एवं स्वाभाविक ढग से चित्रित किये गए हैं। कथा का बिना विद्युत त्रिय ही एक नया रूप देने के सम्बन्ध में लेखक ने अपना मत निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किया है—

‘महाभारत के इस पौराणिक आख्यान को अधिभूत से अधिक मानवीय और बुद्धिमग्न रूप देने का मेरा प्रयत्न रहा है। रामायण और महाभारत, अपने सवमान्य आधुनिक रूप में आने से पूर्व, युगात्क राजभक्तता के सिद्धांतों पर, जातीय उत्सवों में चरणगीता के रूप में गाये जाते रहे। लास की भावभूमि में यह युगात्क बढ़ते रहे। पूरे काल और अंत में वाल्मीकि और व्यासदेव के नाम में इनका विवसित रूप आया। समारंभ सभी महाकाव्यों की भांति इनमें भी विजेताओं का उत्सव और विजिता का अपकष प्रधान अंग बन गया।

“इस नाटक में अनील के चरित्र अजुन और सुयोधन, अमिमयु और लक्ष्मण आदि अनासक्त वृत्ति से दखे गये हैं। किमी के प्रति नाटककार का निजी लगाव नहीं है उसकी ओर सँयाय का अवसर सबको समान मिला है और अंत में उसकी समवेदना के आसू भी सबके लिए समान हैं। पाण्डव और कौरव दाना पशुओं को पुष्प और पाप का प्रतीक न मानकर अपनी परम्परा के स्वाभाविक मानव का रूप दिया गया है। अब समय आ गया है कि हम अपनी पौराणिक घटनाओं और उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों के साथ सँयाय करें। इस रूप में हमारा अनीत केवल बुद्धिमग्न ही नहीं, हमारे लिए उपयोगी भी होगा।”

अंत इन्हीं विचारों की पृष्ठभूमि से प्रेरित होकर प्रस्तुत नाटक में मिश्रजी ने दुर्योधन के चरित्र को एक मानवीय एवं मनावानिक रूप दिया है। महाभारत का स्वार्थी अविवेकी क्रूर एवं चालबाज राजा दुर्योधन यहाँ सुन्दर मरल विवेकयुक्त भावनामय रूप लेकर उपस्थित हुआ है। कल्पना के इस प्रकार के सजाजन द्वारा लेखक ने पौराणिक कथा का खण्डन किये बिना इस एक तर्कमग्न रूप प्रदान किया है। यहाँ मनुष्य मनुष्य है देवता अथवा दानव नहीं। नाटककार की यह भावप्रवणता एवं उदभावना शक्ति उनके गभीर अध्ययन एवं विचार शक्ति की परिचायक हैं।

अमिमयु की कथा को आधार बनाकर हमसे पूर्व कई नाटक लिखे गये हैं, किन्तु पात्र चित्रण, कथा संयोजन तथा घटना क्रम की दृष्टि से यह नाटक सर्वोत्कृष्ट है।

परीक्षित

आनन्दप्रसाद वपूर लिखित प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु तीन अंकों में विभाजित है। कथावस्तु का रूप निम्नलिखित है—

१ नाटक ‘अज्ञेय पूर्ववर्ग’ पृष्ठ ४५

२ प्रकाशक उपयास बहार प्राप्ति काशी प्रथम संस्करण

अश्वत्थामा, पिता की मृत्यु का वन्ता मने व निष्, द्रोणा व पाँच पुत्रों को मारने व वाप भी उतरा के गम को नष्ट करे व निष् अग्निवाण का प्रयोग करता है। उतरा व गम से इसीलिए परीति भङ्गाहीन मृत व मरण उपाय होता है। उतरा गम महा विनाश को देगकर रणा के निष् अग्निवाण म प्रायता करती है कि किसी प्रकार गम मृत मानव को, जा पाण्डवों का अन्तिम यज्ञ है जीवित कर दें। कृष्ण उतरा व विनाश ग द्रविण होकर गुप्तानचक्र द्वारा अग्निवाण को नष्ट कर देता है और परीति पुन जीवित हो जाता है।

समयानन्तर परीति एव निष् पानी व मना करण पर भी घामट व निष् वन म जाता है। साधिया से मटकर वह मिण्डी ऋषि के आश्रम की ओर जा पहुँचा है। वही वत्प्यास से व्यथित होकर, ऋषि से पानी पिलान के निष् प्रार्थना करता है। बार-बार बहने पर भी गमाधि म तीन ऋषि कुछ गुन नहीं पान। राजा के गिर पर स्वर्ण का मुकुट है और स्वर्ण म वलि का वाग है। राजा की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। विवेकहीन हो वह ऋषि का अश्रम कहता है और पास पड़े हुए एक मरे गव को ऋषि की घोवा म डालकर चला जाता है।

राजा व चक्र जान पर सायवान मिण्डी ऋषि का पुत्र शूरी ऋषि बाहर से आश्रम म आता है और अपन पूज्य पिताजी की घोवा म मृत सप को देगकर त्रोगामिभूत हो जाता है और सप डालन वाल राजा परीति को सातवें निष् तप सप द्वारा डग जाने और मरन का साप दे देता है। समाधि से उठन पर पिता को पुत्र के साप से बहूत दुःख होता है क्योंकि व अपन योगबल से सम्पूर्ण स्थिति को समझ लेता है, किन्तु ऋषि का साप अश्रम नहीं हो सकता यह विचार कर व अपन एक निष्प का परीति के पास भेजते हैं और उसके द्वारा वे साप व सम्बन्ध म राजा को सूचित करवा देते हैं। उधर मुकुट के उतारत ही राजा स्वय सम्पूर्ण घटना को स्मरण कर लेता है और बहूत पश्चात्ताप करता है।

इसके पश्चात राजा हरिद्वार म जाकर सुवदेवजी से भागवत का पारायण सुनता है। जिस दिन पाठ समाप्त होता है सुवदेवजी प्रसाद के रूप म उस पुष्प देते हैं। पुष्प म सूक्ष्म रूप बनाकर बठा हुआ तप उस तुरन्त उस लेता है और परीक्षित की मृत्यु हो जाती है।

प्रस्तुत कथा महाभारत पर आधारित है किन्तु कई स्थला पर मूल कथा से कुछ अन्तर भी विद्यमान हैं।

अन्तर

१ नाटक म अश्वत्थामा का अग्निवाण, श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र द्वारा नष्ट किया जाता है। महाभारत मे सुदर्शन चक्र का कोई प्रसंग नहीं है केवल कृष्ण उस ब्रह्मास्त्र

- क प्रभाव को नष्ट कर देता है और बालक परीक्षित जीवित हो उठता है।^१
- २ नाटक में राजा परीक्षित, मुनि के कण्ठ में मृतक सप इस कारण डाल देता है क्योंकि उन्होंने राजा के द्वारा पूछे जाने पर जल के सम्बन्ध में उत्तर नहीं दिया, किन्तु मूल कथा में राजा परीक्षित ने युग के सम्बन्ध में पूछा है और मुनि से उत्तर न पाने पर वह क्षाणित हो उठा है।^२
- ३ नाटक में आमजमृत्यु राजा परीक्षित के पास, अर्धराज धन्वन्तरि रथाय पहुँचता है। महाभारत में राजा की रक्षा के लिए मात्रास्त्र ने जाता द्विजश्रेष्ठ काश्यप आते हैं।^३
- ४ मृत्यु का प्रसंग भी महाभारत से नाटक में मिन है। नाटक में तपक में बचने के लिए परीक्षित हृदिदार पहुँचता है। युवदवजी भागवत का पारामण समाप्त हो जाने पर राजा को प्रसाद के रूप में पुण्य दान है। पुण्य में सूयम रूप से बठा तपक राजा का डम लेता है। किन्तु महाभारत में राजा रथाय बही नहीं जाता। महल का सब प्रकार से सुरक्षित करके वही से राजकाज की व्यवस्था करता है। तपक कुछ नागों को तपस्वी ब्राह्मणा का रूप बनाकर राजा को फल-फूल भेंट करने के लिए भेजता है और राजा उही फला में से उस फल को खाकर समाप्त हो जाता है जिस पर तपक नाग बठा था।^४

इन प्रमुख अन्तरों के अनिश्चित एक अन्तर नाम से भी सम्बन्ध रखना है। नाटक में ऋषि का नाम महाभारत के अनुसार गमीक न होकर मित्री है।

इस नाटक का प्रमुख उद्देश्य, कम की रेखाप्रा की प्रवृत्तता का चित्रण करना ही है। प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से नाटक उत्तम है।

कुरुवनदहन^५

सात अंका में विभाजित कुरुवनदहन नाटक बन्दीनाथ मट्ट वी० ए० लिखित है। इसका आधार महाभारत है।^६ उद्योगपत्र से शल्पपत्र पद्यत इषकी कथा का विस्तार है, यद्यपि मध्य में अन्वतर कथाएँ भी सम्मिलित हैं। नाटक का विभाजन अंका और दृश्या में है। इस नाटक के कथानक के सम्बन्ध में लेखक का मन निम्नलिखित है—

“संस्कृत में बणीसहस्र एक बीर रम प्रधान नाटक है। उसमें महाभारत युद्ध की कथा है। उसी की सहायता से यह कुरुवनदहन नाटक तयार किया गया है। इसका यदि

१ महाभारत आश्वमेधिक पर्व (धनगीतापर्व) ७० १

२ वन्य आदिपर्व (प्रास्तीकपर्व) म ४०

वही आदिपर्व अध्याय ४२ अंका ३१

४ वही आदिपर्व (प्रास्तीकपर्व) अ० ४२ और ४१

५ प्रकाशक राममूषण प्रस भाग्यता प्रथम संस्करण १९१२ ई०

६ महाभारत उद्योगपत्र से शल्पपत्र (पदापर्व) अध्याय ५६ पद्यत

वेणीसहार का स्पातर कह तो भी अनुचित न होगा। इस पात्र पर पात्रका का मामूम हा जाएगा कि उपयुक्त पात्र मस्तुत की गहायता म निग जा। पर भा गता ताम बन्ता सवथा उचित ही हुषा है, उगम घोर इगम यका प्रार है। तिता ही तद अतिता तितनी ही नई घटनाएँ इगम सम्मिचित कर दा गयी है घोर तगीमंहार के तितन ही पात्र घोर तितनी बाततीत इगम नहा रणा गया है। उगम छ घा है गमम गात है। उगम तीनी व वगा का भीम द्वारा बीधा जाना ही पात्र की कथा का कट्ट माना गया है। गमम मह बात नहीं है।

‘उसरी घोर इगरी घली म भी बडा भू है। यं घषडी वग पर गका (घरा) तथा सीन (दुदया) म विमवन तिया गया है तिमग मन्ने म मुगमता रहे। घषडी नायक रचनापद्धति उन्नत तथा समयापयुक्त है। इमलिए उगता ही अनुकरण करना उचित समभा गया ।

‘इसकी मूलवथा का प्रारम्भ महाभारत व उद्यागपथ सहाता है। जवरि कतुरी द्वारा भीम को यह सूचित कराया गया है कि दुर्योधन की गमा म श्रीकृष्णजी का सधिप्रस्ताव सजर जाना निष्पन्न हुभा। वहाँ से लगानर कीरथा के पूण पराजय तथा दुर्योधन व मार जान तक की कथा इसम है। इमलिए इग नायक का नाम कुर्यनन्हन रणा गया है।’

यह एक मुद्दर एव परिष्कृत नाटक है।

वाणशय्या^१

लक्ष्मणप्रसाद मिश्र लिखित तीन अवा के इस नाटक का कथानक इस प्रकार है—
नाटक की कथा का प्रारम्भ श्रीकृष्ण के दुर्योधन से सधि प्रस्ताव के प्रसफन हो जाने पर होता है। श्रीकृष्ण के चले जाने पर भीष्म दुर्योधन को पुन समभात हैं किन्तु अनुनि और वण के दुराग्रह और स्वम अपनी दुष्टता व वारण दुर्योधन युद्ध के निरचय को नहीं त्यागता।

फलत भयवर युद्ध होता है। युद्ध मे अजुन के वाणो से आहत होवर भीष्म गरगभ्या पर सूय के उत्तरायण होन तक पडे रहत है। वही युद्ध म सबके मारे जाने पर वे मुधिठिर प्रमति पाण्डवा को शांति और धम का उपदेश देते है।

आधार

कथा का आधार महाभारत है। इसकी विभिन्न घटनाएँ क्रमग उद्योगपव,^२ भीष्म

१ नाटक लेखक की प्रस्तावना पृ० १२

२ प्रकाशक लेखक स्वयं अमीरगज महमूदाबाद (भवध)

३ महाभारत उद्योगपव अ० १२४ व ६२ अ० १२५ २७

पर्व^१ तथा शान्तिपर्व^२ से सम्बन्धित हैं।

प्रस्तुत नाटक तथा मूल घटनाओं में कोई विशेष अंतर नहीं है।

विशेषण

नाटक के नायक भीष्म है। नाटककार की मौलिकता चरित्र चित्रण में है। इसमें भीष्म का चरित्र अति सुन्दरता से चित्रित हुआ है। उनके विमल गुण, उनकी सत्यप्रियता, धर्ममूर्ता, अनुपमेय वीरता आदि का अच्छा समन्वय दिखाया गया है। श्रीकृष्ण को यहाँ भक्तवत्सल अवतारी के रूप में चित्रित किया गया है।

कुरुक्षेत्र^३

बाबू जगन्नाथगण लिखित यह एक सुन्दर नाटक है। इसकी कथा पूणत महामारत पर आधारित है। कथा इस प्रकार है—

महाराज पाण्डु के वन चले जाने पर राज्य के संचालन का भार अर्धे धृतराष्ट्र पर पड़ता है। पाण्डुपुत्र अमी बालक ही होते हैं और उनकी शिक्षा अमी पूण नहीं हुई है, किन्तु जब वे बड़े होते हैं तो उनके दौय की श्याति चारा ओर फलने लगती है। द्रोणाचार्य द्वारा अमी पाण्डुवा को शस्त्र परीक्षा में अजुन मवश्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। यायत राज्य पाण्डुवा का होना है किन्तु धृतराष्ट्र दुर्योधन की वृत्ति और राज्यलिप्सा को देखते हुए उसे राज्य से वञ्चित नहीं करना चाहत। लाक्षागृह के निर्माण द्वारा पाण्डुवा का समूल नष्ट करने के प्रयत्न किय जात हैं किन्तु पाण्डुव वच निकलते हैं और वग बदलकर मटकत रहते हैं। द्रौपदी स्वयंवर पर वे पुन प्रवृत्त हात हैं। धृतराष्ट्र भी दुर्योधन के द्वारा पाण्डुवा की हत्या के लिए की गयी कर्तूना को पूरी तरह जान जात हैं किन्तु विवग होकर उन्हें राज्य का विभाजन करव-पाण्डुवा क मध्य करना ही पड़ता है।

आधार

उपयुक्त सम्पूण कथा महामारत के आदिपर्व में यथावत् वर्णित है।^४ युधिष्ठिर राजा बनन पर अपनी नयी राजधानी 'इन्द्रप्रस्थ' बसाते हैं। मय नामक अमुर काशीगर, बहुत सुन्दर राजमवन का निर्माण करना है। युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करत हैं। उनका प्रभाव बहुत बढ जाता है। दुर्योधन मवनिमित भवन को दखन आता है, किन्तु यहाँ द्रौपदी द्वारा

१ महामारत भीष्मपर्व अध्याय ११६

२ वही शान्तिपर्व (राजधर्मानुशामनपर्व) अध्याय २५

३ प्रकाशक सीकितिया विहारोनाल बर्म मधुरामवन छारा

४ महामारत आदिपर्व अ० १.१ ३३ १४, ४७ १८६ ६८

अपमानित किए जान स प्रति वृद्ध हानर वापस लौटता है ।

इसके पश्चात् की सम्पूर्ण कथा प्रतिगोध की कहानी है जिममें जुग का गुना जाना, बारह वष का वनवास तथा अज्ञातवास साधि प्रस्ताव एवं दुर्योधन की अनीति की कहानी सम्मिलित हैं ।^१

विवेचन

सम्पूर्ण महाभारत की कथा का लक्ष्य लगभग न समाधान रूप में इमका निवाह किया है । महाभारत का कोई भी महत्वपूर्ण प्रसंग इममें छूटन नहीं पाया है । इसकी दूमरी सफलता अभिनय विषयक है । प्रकाशित हान स पूर्व नाटक दो बार अभिनीत भी हा चुका है । इससे पूर्व २७ जून सन १९७८ का अष्टांग हिन्दी-नाट्य मम्मलन मुजफ्फरपुर, के अधिवेशन के अवसर पर भी इसका सफल अभिनय हुआ था ।

लेखक ने इस नाटक में चरित्र चित्रण की धार विनाप ध्यान दिया है । प्राय सभी पात्रों का चरित्र चित्रण मूल महाभारत के अनुरूप ही हुआ है । इम दृष्टि स धृतराष्ट्र दुर्योधन, भीम, शकुनि आदि के चरित्र चित्रण में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है ।

मनोरजन और चिंतन विधाम के लिए नाटक में हास्य रस का समावेश आवश्यक होता है—विशेषतः वीर और करुण रस प्रधान नाटक में । अनएव हास्य रस की अवतारणा के हेतु लेखक ने प्रस्तुत नाटक में एव कल्पित पात्र वनमाती की कल्पना की है, जो प्रति उपयुक्त है ।

कण^२

इस नाटक में तीन अंक हैं । कण नायक है । सम्पूर्ण कथा महाभारत पर आधारित है, अतः नाटक का कथानक तथा आधार साथ साथ दिखाय गये हैं ।

कथानक तथा आधार

द्रोणाचार्य के पास नाना दशों के जो राजकुमार अस्त्रशिखा लेने के लिए आये, उनमें कण का नाम भी है । सूतपुत्र कण अजुन से सदा स्पर्धा रखता था, एसा उल्लेख भी महाभारत में है ।^३

महाराज धृतराष्ट्र और पाण्डु के राजकुमारों की शस्त्रपरीक्षा के लिए बहुत बड़ा

१ महाभारत भाष्यक ।

२ प्रकाशक जे सिंह बक्सलेर काशी मुद्रक सूर्यनारायण जयनाथ प्रिंटिंग बक्स राजघाट काशी

३ महाभारत भाष्यक पृ १३१-११

४ वही भाष्यक अध्याय १३१ श्लोक १२

प्रदान आपाजित किया जाता है। आचाय द्रोण के आदेश से सत्र राजकुमार श्रम में अपनी-अपनी परीक्षा देते हैं। आचाय, अर्जुन के हस्तकौशल से प्रति प्रसन्न होत हैं। दुर्योधन इससे हतप्रभ हो जाता है। भीम और दुर्योधन आपस में ही एक-दूसरे से झगड़ने लगते हैं। कण भी अर्जुन का प्रशंसा से उत्तेजित हो जाता है। वह भी अर्जुन से बड़कर अपना शीघ्र प्रदर्शित करता है और अर्जुन का द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारता है किंतु अर्जुन यह कहकर उसके साथ लड़ने के लिए उद्यत नहीं होता कि वह अधिरथ नामक सूत का पुत्र है। अर्जुन उसका अपमान करता है, यह देखकर दुर्योधन कण को अग्रदेश का राजा बनाने की घोषणा करता है।

महामारत में दिखाया गया है कि कुन्ती अपने दोना पुत्रों को लड़ने की उद्यत देव वृत्त दुखी होती है और मूर्च्छित हो जाती है। विदुर दक्षिणा से चन्दन आदि छिड़कवाते हैं। कृपाचाय जो द्वन्द्वयुद्ध की रीति-नीति में दक्ष थे, कण से उसके कुल तथा राजवंश का नाम घटाने के लिए बहते हैं क्योंकि राजकुमार नीच कुल तथा हीन आचार वाले व्यक्तियाँ के साथ युद्ध नहीं करत।

दुर्योधन ने प्रत्युत्तर में बताया कि राजाघ्रा की तीन योनियाँ होती हैं—उत्तमकुल में उत्पन्न पुरुष, गुरूवीर तथा सनापति। अत्र गुरूवीर होने के कारण कण लड़ना नहीं चाहत तो मैं कण को इसी समय अग्र देश के राज्य पर अर्निपित करता हूँ। दुर्योधन के आदेशानुसार महारथी कण का सोन के सिंहासन पर बैठाकर मन्त्रवक्ता ब्राह्मणा द्वारा पूजा से युक्त सुवर्णमय कलाश अग्रदेश के राज्य पर अर्निपित किया जाता है।^१ इसके उपरान्त कण की वीरता तथा दानशीलता सम्बन्धी विविध घटनाएँ भी नाटक में हैं। इसकी प्रमुख घटना इन्द्र द्वारा कवच और कुण्डल मंगिन में सम्बद्ध है। महामारत में इसका रूप इस प्रकार है—

इन्द्र के ब्राह्मण रूप धारण करके कवच-कुण्डल की याचना करने पर कण ने गोधनो से भरे हुए अनेक ग्राम, युवती स्त्रियाँ तथा यहाँ तक कि सम्पूर्ण राज्य देने की इच्छा प्रकट की किन्तु इन्द्र ने कवच और कुण्डल के अतिरिक्त किसी भी अर्थ वस्तु को नहीं लेना चाहा। अतः कण ने भ्रूय की बात स्मरण करके कि इन्द्र के द्वारा कवच-कुण्डल मागने पर उसकी अमोघ शक्ति मंगिन लेना इन्द्र की अमोघशक्ति के विनिमय में ही अपनी वस्तुएँ देने की घोषणा की। इन्द्र ने स्वीकार किया किन्तु साथ ही कहा कि इस अमोघ शक्ति को तुम किसी विगिष्ट व्यक्ति पर अपने जीवन सकट की अवस्था में ही प्रयुक्त कर सतत हो। यदि प्रमादवश किसी साधारण व्यक्ति पर यह प्रयुक्त की जाएगी तो यह उसे न मारकर तुम्हारे उपर ही आ पड़ेगी। कण ने तेजोमय दह धनी रहने का बरतान पाकर अपने गरीर से दिय कवच को उधड़कर इन्द्र के हाथ में रख लिया। इस वचनरूपी कर्म से उसका नाम

१ महामारत (आण्डिच) अध्याय १३५ श्लोक १२

२ वही आण्डिच अध्याय १२५, श्लोक ३३ ३८

वर्ण पडा ।^१

धनुशासनपत्र म भी वण की गन्धीरता का संकत है ।^२
मूलकथा म नाटक की घटना म रामायण भी घनर नही है ।

अर्जुनपुत्र वभ्रुवाहन^३

कृष्णकुमार महापाध्याय द्वारा लिखित तीन अंका का यह नाटक अग्नि गुप्तर एवं अग्निनय है । कथावस्तु अग्नि राक्षस गाली म प्रस्तुत की गयी है—

बारह वष के वनवास क मध्य एक समय अर्जुन नागराज-नया उन्नी स विवाह करते हैं । इनके पुत्र का नाम इलावत रखा जाता है । नागराज के ममीप क ही मणिपुर के राजा की कया चिन्तामदा स भी अर्जुन न विवाह किया है और इसम वभ्रुवाहन नाम का पुत्र होता है ।

नाटक म महाभारत के युद्ध के समाप्त होने पर, महर्षि व्यास की सम्मति स राजपूय मन करने का विचार किया जाता है । मन के अश्व की रक्षा का भार अर्जुन पर डाला जाता है । अर्जुन अपने पुत्र इलावत, शिष्य सात्यकि वणपुत्र वृषवेतु और बहुत बडी सेना लेकर अश्व की रक्षा के लिए चल पडत हैं । काई राजा अश्व का रोजन का साहस नही करता किन्तु यह अश्व जब मणिपुर के राज्य की सीमा से पार होते लगता है तो वहाँ का राजकुमार वभ्रुवाहन अश्व को छोड देने पर अपने राज्य का अपमान समझता है और अश्व को रोक लेता है । अर्जुन की भी यही इच्छा है । उसे यह असह्य प्रतीत होता है कि उसके पुत्र को कोई कायर समझे । दोनों ओर से भयकर युद्ध होता है । इस युद्ध म वभ्रुवाहन सात्यकि और वृषवेतु को निरस्त्र करके रणक्षेत्र स भगा देता है । उसकी सगी मौसी का पुत्र इलावत मारा जाता है । अन्तिम दिन अर्जुन और वभ्रुवाहन का युद्ध होता है । वभ्रुवाहन की वीरता देखकर अर्जुन अग्निमयु की मृत्यु का दुःख भी भूल जाते हैं और पुत्र क गीय की भूरि भूरि प्रशंसा करत हैं । अन्त म युद्ध म अर्जुन की मृत्यु हो जाती है ।

इस युद्ध की घटना से पूव एक बार नारदजी मातमक्ति से प्रसन्न होकर इलावत को एक ऐसी मणि देते हैं जिसको धारण करन से धारणकर्ता की कभी मृत्यु नही होगी और यदि किसी मृत व्यक्ति से उसका स्पर्श कर दिया जाये तो वह जीवित हो सक्ता है । परन्तु इसका प्रयोग केवल एक ही बार किया जा सक्ता है । यह मणि उलूपी अपने पास सँभाल

१ महाभारत, वनपर्व अध्याय ३०६ श्लोक २३ २४ तथा अ ३१ के ३८ श्लोक तक ततश्चिच्छ्वा कबच विव्यमनात् तयवाद् प्रज्ञी वासवाय ।
सपोत्कृत्य प्रददौ कुञ्जैते कर्णात् तस्मात् कर्मणा तेन कर्म ॥

—(वन अ० ३१० श्लोक ३८)

२ महाभारत धनशासनपर्व अ० ३०७ श्लोक ६

३ प्रकाशक श्रीलाल उपाध्याय, श्रीसीताराम प्रेस विप्लवखरगज बनारस १६२६ ई०

कर रखनी है। इसका प्रयोग वह अपने पुत्र इन्द्रवन्त के मर जान पर भी नहीं करती। उलूपी के द्वारा उसा मणि से अर्जुन पुन जीवित कर दिया जाता है। वस्तुतः इसी अवसर के लिए वह इस मणि का मंगलकर रखती है। उसे विद्वान् है कि इस युद्ध म बभ्रुवाहन अपने पिता को अवश्य परास्त कर देगा।

आधार

यह कथा मुख्य रूप से जमिनीय अश्वमेधपर्व पर, जो महाभारत का ही एक परिशिष्ट अंग माना जाता है आधारित है। यह कथा इस अर्थ में प्रति विस्तार में वर्णित है। संक्षेप में यहाँ की कथा का रूप इस प्रकार है—

राजसूय यज्ञ का अंश, जो अर्जुन के संरक्षण में भेजा जाता है, जब बभ्रुवाहन के राज्य मणिपुर में पहुँचता है तो वह अपने वीरा को भेजकर उसे बड़ी सरलता में पकड़वाकर मंगा लेता है किन्तु जब वह घोड़े के भस्त्रक पर चढ़े हुए स्वर्णपत्र को पढ़ता है कि वह युधिष्ठिर के अश्वमेधपर्व का अश्व है और उसका पिता अर्जुन इसकी रक्षा में नियुक्त हैं, तो वह अपने प्रमुख मंत्री सुमति की सम्मति के अनुसार घोड़े को छोड़ देता है और प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा कुमारी कात्यायनी एवं अतुलित धर्म के साथ स्वागताय पदल ही अर्जुन के समीप पहुँचता है। अर्जुन के चरण स्पर्श कर बड़ी विनम्रता से वह अपना परिचय देता है। बभ्रुवाहन की यह गानीनता अर्जुन को नहीं सुहती। वह बभ्रुवाहन (चित्रागदा से प्रभूत और उलूपी से पालित) और म पुत्र को शोधपूर्वक उसकी कार्यरता के लिए फटकारता है और तब बभ्रुवाहन अर्जुन की लनकार से उत्तेजित हो सम्पूर्ण सामग्री सहित अपने समस्त प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ लौटकर अर्जुन की सेना के साथ मयकर युद्ध करता है।

मूल कथा से नाटक की कथा पर्याप्त अंग में मिलन है।

अन्तर

१ नाटक की कथा में बभ्रुवाहन अश्व का अपने राज्य में पहुँचा देखकर ही मयकर युद्ध प्रारम्भ कर देता है। मूल कथा के अनुसार वह अर्जुन के प्रति पूज्यभाव प्रदर्शित नहीं करता।

२ नाटक में बभ्रुवाहन के द्वारा मात्यकि और वपकेतु युद्धस्थल से केवल मात्र भगा दिया जात है, जबकि जमिनीय अश्वमेधपर्व में धर्मात्मान युद्ध में विभिन्न विधिद्वारा के साथ बभ्रुवाहन वपकेतु का भी वध कर देता है। अर्जुन यह देखकर अत्यन्त सतप्त होते हैं और मयकर विलाप करते हैं।^१

३ यहाँ चित्रागदा से अर्जुन के विवाह की कथा भी मिलन रूप में वर्णित है। जमिनीय अश्वमेधपर्व में बभ्रुवाहन अपने मंत्री सुमति का अपने माना पिता का विवरण देते हुए कहता है—

१ जमिनीय अश्वमेधपर्व—अध्याय २२, २४ तथा २७, ४० तक।

२ जमिनीय अश्वमेधपर्व अध्याय २७

“मित्रन्, मेरी माता तो इन्हीं अजुन की पत्नी हैं। एक बार वे अपनेपिता के महान् मन्त्र कर रही थी, उस समय जब ताल भग हो गया, तब उनका महामना पिता न धाप देने हुए वहा, अरी ताल भग करनेवाली, तू जल में नाकी बनकर निवास कर। देवयोग से जब तुझे अजुन के चरण प्राप्त हाग तब व ही तुझे इस धाप से मुक्त करेंगे और नि सत्केट के ही तेरे पति हाग।” उनके कथनानुसार यह घटना घट चुकी है। मैं इस गुप्त नगर में उन्हीं अजुन से उत्पन्न हुआ हूँ।”

नाटक में बभ्रुवाहन व जम व साथ इस प्रकार की बोर्ड कथा नहीं लिखायी गयी।

४ जमिनीय अश्वमेधपर्व में अजुन व वध व उपरांत उसके पुनर्जीवित होने की कथा प्रति विस्तृत तथा एकात्म भिन्न रूप में है। उसका सारिप्त रूप इस प्रकार है—

अजुन की मृत्यु होने के पश्चात् चित्रागता, अजुन व साथ अपने पुत्र व युद्ध का समाचार सुनकर हस्तिनापुर से मणिपुर आ जाती है। यहाँ आकर पति को मृत देखकर, वह धार विलाप करके पुत्र का बहुत भला-बुरा कहती है। उलूपी भी वहाँ पहुँच जाती है और वह भी अत्यन्त दुखी होती है। माताओं के असह्य दुःख का देख तथा उनकी चिन्ता में प्रवेश करके पति के साथ परलोक जान की इच्छा को जान, बभ्रुवाहन स्वयं अग्नि में प्रवेश करने की तयारी प्रारम्भ करता है। तब उलूपी बताती है कि पाताल लोक में एक ऐसी मणि है जो मरे हुए को जीवन प्रदान कर सकती है।

मगवान शकर ने यह सजीवनी मणि गरुड से भयभीत हुए नागा को प्रदान की थी, किन्तु इस मणि की प्राप्ति प्रति कठिन है।

बभ्रुवाहन यह सुनकर धोषणा करता है कि उमकें लिए कुछ भी असंभव नहीं है। किन्तु माता उलूपी बभ्रुवाहन को पाताल लोक जाने की आज्ञा नहीं देती और उसके बदले मन्त्र वेत्तामा में श्रुष्ट मन्त्री पुण्डरीक को, जिसे वह अपना सखा-तुल्य मानती है अपने पिता शोपनाग के पास अपने दानों कणभूषण तथा कण्ठभूषण देकर मणि की याचना के लिए भेजती है।

पुण्डरीक द्वारा याचना किए जाने पर शोपनाग मणि देने के लिए प्रस्तुत हो जाता है, किन्तु शोपनाग की यह इच्छा जानकर समस्त नागलोक दुःखी हो जाता है। एक प्रमुख नाग धतराष्ट्र यह तक प्रस्तुत करता है कि इस मणि के द्वारा ही हम अपने चिर शत्रु गरुड से अपनी रक्षा करते हैं। मणिरहित हो जान पर हम बिलकुल शक्तिहीन हो जायेंगे। मलयलोक की स्त्रियाँ भी हम सरलता से मणिहीन कर सकेंगी तथा साधारण व्यक्ति भी हम बाधकर घर-घर घुमाते फिरेंगे।

सब-कुछ सुनकर शोपनाग न समझाया कि जब श्रीकृष्ण रूपी मणि अजुन की सहायताय जायगी तो हम फिर यग लूटने का अवसर वहा मिलेगा। तथापि नाग राजी नहीं होते। फलस्वरूप इच्छा रहत हुए भी शोपनाग मणि नहीं दे पाता और पुण्डरीक को निराग होकर वापस आना पड़ता है।

बभ्रुवाहन पुण्डरीक को खाली लीटा देख प्रति क्रुद्ध हो उठता है और अपनी विनाश

वाहिनी को लेकर पानाल लोक में जा धमकता है। नागा के पना में उत्पन्न हुई वायु के वेग से संयुक्त उनके फूटकारा से अपनी सेना का जलकर राख हुई देखकर बभ्रुवाहन भयकर मयूरासन का संधान करता है। इसके उपरांत वह मधु की वर्षा करने लगता है। वाणा से घायल हुए शरीर जब मधु से मराबोर हो जाते हैं, तो वह वीर अर्जुनकुमार पिपीलिका अस्त्र का प्रयोग करता है। उस अस्त्र में निकली हुई चीन्गिया नागा के शरीर में लिपट जाती हैं और तत्पश्चात् वह उस मणि तथा नाना प्रकार के घन को ग्रहण करके आनन्द पूर्वक मणिपुर के लिए प्रस्थान करता है।

तब वह नाग जिसमें तक्षक को मणि देने से रोका था अपने पुत्रों दुवुद्धि तथा दुस्वभाव, का बुलाकर यह इच्छा प्रकट करता है कि किसी प्रकार अर्जुन जीवित न होने पाय नहीं तो महान अनर्थ हो जायगा। वे दाना जाकर अर्जुन के बिराल सिर का बभ्रुवाहन के पहुँचने से पूर्व ही चुरा लेते हैं और उस भयकर एवं विशाल वन में डाल देते हैं जहाँ गरुड़ की पहुँच नहीं हो सकती थी। उलूपी और चित्रागदा यह देखकर अति दुःखित होती हैं। बभ्रुवाहन भी रणभेद में पहुँचकर जब यह वस्तु सुनता है तो वह मत्त तुल्य हो, पृथ्वी पर गिर पड़ता है।

उधर कुन्ती के अर्जुन के सम्बन्ध में एक दुस्वप्न देखने के कारण कृष्ण गरुड़ पर भीमसेन, कुन्ती, माता देवकी और गाणकुमारी यशोदा को चढ़ाकर उसी स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ मृत अर्जुन तथा वपकेतु इत्यादि अचेत पडे होते हैं। अर्जुन की यह दशा देखकर सब अति दुःखित होते हैं। तदनन्तर कृष्ण की इच्छा के वशीभूत हो धतराष्ट्र नाग के दोनों पुत्र दुवुद्धि और दुस्वभाव नष्ट हो जाते हैं और अर्जुन का सिर उसी समय मणिपुर आ जाता है। तदुपरांत कृष्ण प्रथम वपकेतु तथा उसके पश्चात् अर्जुन के हृदय पर उस मणि को रखकर जीवित कर देते हैं—^१

समुत्थिते कणपुत्रेऽथ पाय
स्तथा बुद्धौ विधिना तेन कृष्णात् ॥
यथा देही भायया भिन्न भाव ।
सम्प्राप्यासी निर्विकार सुयोगात् ॥^२

प्रस्तुत कथा का उल्लेख महाभारत में भी उपलब्ध है।^३

अन्तर

महाभारत की कथा से नाटक की कथा में निम्नलिखित अन्तर हैं—

१ महाभारत की कथा में चित्रागदा का विवाह करने से पूर्व, उसका पिता चित्रागद, पुत्री के पुत्र को अपना पुत्र माने जाने की शर्त रखता है। किन्तु नाटक की कथा में इस

१ जमिनीय अरवमेघ पत्र, अध्याय, २७ ५०

२ वही अध्याय ५० श्लोक १६

३ महाभारत भावभेदिक पत्र, अध्याय ७६

प्रकार का कोई सनेत नहीं है।

२ नाटक में इलाकत (इरावान) की मृत्यु राजगुप्त या वं भवतर पर अज्ञ की रक्षा के लिए अजुन के साथ जान पर बध्नुवाहन वं द्वारा दिग्गयी जाती है जबकि महाभारत में युद्ध के अवसर पर पाण्डवों की रक्षा करत हुए दत्तावत की मृत्यु कौरवों वं पशु के एग महावली यादवा अलम्बुष के द्वारा होती है।^१

३ नाटक में बध्नुवाहन अपने राज्य का अपमान समझकर अजुन पर आक्रमण करता है जबकि महाभारत में बध्नुवाहन उलूपी द्वारा धर्म गुमान तथा उत्तेजित किय जाने पर पिता से युद्ध करता है।^२

४ अगला अन्तर अजुन के पुनर्जीवन से सम्बन्धित है। नाटक की कथा में अजुन उलूपी द्वारा उस मणि में जीवित किया जाता है जो उलूपी वं पुत्र इलाकत का नागजी द्वारा उसकी मातृभक्ति से प्रसन्न होकर दी जाती है और जिससे सम्बन्ध में नारदजी का यह कथन था कि इससे केवल एक मृत व्यक्ति जीवित हो सकता है। उलूपी वं द्वारा इस मणि का प्रयोग अपने पुत्र के लिए नहीं अपने पति अजुन के लिए किया जाता है।

महाभारत में अजुन की मृत्यु पर चित्रागला बहुत विनाप करती है और उस समय उलूपी नागा की आधारभूत सजीविनी मणि का स्मरण करती है और मणि स्मरण मात्र से ही वहा आ पहुँचती है और उसी से अजुन को जीवन मिलता है।^३

द्विवेचन

नाटक में अतीविक घटनाओं के निराकरण का प्रयत्न लेखक ने बहुत कम किया है तथापि मातृभक्ति पितृभक्ति तथा देशभक्ति का रूप अति सुन्दर ढंग से चित्रित करने में लेखक सफल रहा है।

चन्द्रहास

श्रीमयिलीशरण गुप्त लिखित यह चन्द्रहास^४ नाटक पाँच अंका में विभाजित है। नाटक का कथानक निम्नलिखित है—

कुतलपुर के राजा के मन्त्री घण्टबुद्धि वं यहाँ राजा के पुरोहित गालवमुनि जा रहे थे कि उह माग में वच्चा के साथ खेलता हुआ एक सुन्दर बालक चन्द्रहास दिखायी दिया। वे उसकी आकृति की भयंता में प्रभावित होकर उसे अपने साथ लेकर घण्टबुद्धि वं यहा

१ महाभारत भीष्मपर्व अध्याय ६ श्लोक ५६-७६

२ वही भाष्यमधिक पर्व अध्याय ७६ श्लोक १-१३

३ वही भाष्यमधिक पर्व वं अतगत अतृपीता पर्व में अध्याय ८

४ प्रजापक साहित्य सदन चिरलाव श्रावणी

गये। वहाँ बालक की प्रशंसा करते हुए उठान भविष्यवाणी की, 'यह बालक आगे चलकर इस राज्य का अधीश्वर होगा।' मन्त्री घट्टयुद्धि का यह भविष्यवाणी अच्छी नहीं लगी, क्योंकि राजा के निमतान होने के कारण वह उस राज्य का अपने पुत्र मदन को दिलवाना चाहता था। उसने चन्द्रहास को हया करवाकर, मदन के माय को प्रशस्त करने का निश्चय किया और इस काय के लिए अपने परम विश्वस्त व्यक्ति विराचन और विमन्त्र को, चन्द्रहास को लेकर वन में भेजा। किन्तु उन दाना के मन में चन्द्रहान के भाते मुख और मध्यता को देखकर, दया उत्पन्न हुई और वे उनके हाथ की पट्ट उँगली का काटकर और यह सोचकर कि यह तो यहाँ मर ही जायगा, उसे निविड वन में छोड़कर चले आये और मन्त्री को कटी उँगली दिगाकर सन्तुष्ट कर लिया।

दूसरी ओर कुतल राय के अधीन चन्दनावती के राजा के यहाँ भी कोई सतान नहीं थी। उसकी रानी बड़ी दुखी थी। एक रात उसे स्वप्न हुआ कि भगवान ने दान देकर आदेश दिया है कि 'वन में एक भय्य बालक है, उसे तुम अपना पुत्र बनाया वह तुम्हारे वन का उज्ज्वल करेगा।' रानी ने अपने स्वप्न का वृत्त राजा से कहा, किन्तु राजा ने विश्वास नहीं किया। वह यू ही गिवार खेलने के लिए वन में चला गया और किसी अज्ञात शक्ति से खिचता हुआ वही जा पहुँचा, जहाँ वह बालक था। राजा बालक को नकर घर आ गया और उसे अपना पुत्र मानकर, उसका लालन-पालन करने लगा।

मन्त्री घट्टयुद्धि का जब यह समाचार मिला, तो वह स्वयं सम्पूर्ण स्थिति को देखने के लिए चन्दनावती गया। वह जाकर उसने चन्द्रहास को पहचान लिया। उसके मन में पुनः चन्द्रहास को समाप्त करने की इच्छा जगी। चन्द्रहास बड़ा ही सुन्दर और गुणी था। उसकी म्याति कुन्तलपुर तक पहुँच चुकी थी। मन्त्री की पत्नी भी उसके गुणों पर आहित होकर अपनी काया विपया का विवाह उसके साथ करना चाहती थी। मन्त्री ने पत्नी का आश्वामन दिया था कि वह उसे स्वयं देखेगा।

अब मन्त्री ने एक चाल चली और चन्दनावती के राजा से कहा कि किसी विश्वस्त आत्मी को एक अति आवश्यक काय में कुतलपुर भेजना है और उसके लिए चन्द्रहास उपयुक्त रहेगा। उसने एक पत्र अपने पुत्र मन्त्र का माकेतिक लिपि में लिखकर दे दिया। चन्द्रहास पत्र लेकर धोड़े पर गया। धूप के कारण विधाम लेने के लिए वह कुतलपुर के उद्यान में एक वक्ष की छाया में लगा तो उस नींद आ गयी। मन्त्री की पुत्री विपया अपनी सखिया सहित बाग में, अपने विनाद के लिए सयाग में आ पहुँची। वक्ष के नीचे सोय हुए चन्द्रहास को उसने बसा ही पाया जसा लोगो से सुना था। उसके सिरहाने एक पत्र रखा था। उस पर अपने भाई का नाम और पिता की लिखावट देखकर उसने उस पत्र का खोल लिया, लिखा था 'इस विप दे देना।' उसने विप के आग 'या और जोड़ दिया और पत्र बद करके वही छोड़ दिया।

मन्त्री जब चन्दनावती पहुँचा और उसे चन्द्रहास के के साथ विपया के विवाह का समाचार मिला, तो उस बड़ा विस्मय हुआ। अब उसने चन्द्रहास, अपने दामाद की हत्या कराने का दूसरा उपाय सोचा कि सायकाल वह उसे अंधेरे में वन में देवी का दान कराने के लिए भेजेगा और वही उसकी हत्या कर दी जायेगी।

उधर गालव मुनि के परामश से राजा ने चंद्रहास को ही अपना उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय किया। सायंकाल को विचार करने के लिए राजा ने मदन से कहकर चंद्रहास को बुलाया। मदन ने चंद्रहास को राजा के पास भेज दिया और खुद देवी के धूम्य मंदिर में चला गया। मुनि गालव ने परामश करने चंद्रहास को राज्य स्वीकार करने के लिए राजी कर लिया। गालव मुनि ने चंद्रहास का वास्तविक परिचय भी कराया कि यह केरल देश के स्वर्गीय राजा सुधामिन् का पुत्र है। कुचक्रियो ने सुधामिन् को मारकर उसका राज्य हरण कर लिया। उस समय चंद्रहास की आयु एक वर्ष की भी नहीं थी। इसकी धाय किसी प्रकार इसे लेकर दून नगर में आ गयी। राजा को यह सब जानकर प्रसन्नता हुई, क्योंकि चंद्रहास उसका मित्र का पुत्र निकला।

इसी बीच समाचार मिला कि मन्त्री और मन्त्र दोनो देवी के मंदिर में अचेतना वस्था में पड़े हैं। सब वहाँ गया। व दोनों अब तक जीवित थे। मन्त्री ने निराश होकर राजा के साथ ही बन जाने का निश्चय किया। चंद्रहास राजा बना और मदन मन्त्री।

आधार

प्रस्तुत कथा, जमिनीय अश्वमेधपर्व^१ में बड़े विस्तार से वर्णित है। कथा का स्वरूप बहुत कुछ यही है बस कुछ स्थलांतर अन्तर है।

अन्तर

१ चंद्रहास के पिता सुधामिन् का वधन, गालव मुनि के द्वारा कुतल नरेश का नाटक में कथा के अन्तिम भाग में परिचय के तौर पर दिया गया है, जबकि मूल कथा जमिनीय अश्वमेधपर्व में यह विवरण कथा के प्रारम्भ में ही है।

२ नाटक की कथा में चन्दनावती के राजा कुलिन्द की रानी को स्वप्न में आत्मा मिलता है कि अमुक स्थल पर एक बच्चा है जिसको उस अपना पुत्र मानना चाहिए। मूल कथा में इस प्रकार के किसी स्वप्न का उल्लेख नहीं है। राजा स्वयं ही भ्रूणवा के लिए उस वन में पहुँचना है और वधिन्या द्वारा छोड़े गये पट्ट उगली से रहित उस अनाथ बच्चे को देखता है उसका नामकरण चंद्रहास वह स्वयं अपने राज्य में लाकर करता है।^२

३ नाटक में घट्टवुद्धि का यह समाचार पूर्व ही मिन जाता है कि चन्दनावती के राज्य में चंद्रहास पन रहा है और तब वह चन्दनावती जाता है। मूल कथा में इसका विवरण इस प्रकार है—

बड़े हो जाने पर चंद्रहास के पिता ने पुत्र का निवृत्त करन का आत्मा लिया, किन्तु उसने बस कुतल-नरेश के गन्धुदा का मारन का ही आत्मा लिया, क्योंकि उसका राज्य कुतल-नरेश के अधीन था। विजय प्राप्ति के उपरान्त चंद्रहास चन्दनावती की

१ जमिनीय अश्वमेध पर्व मीमांसा प्रग मारुपुर पृ० ५० १८ तथा ७८ ८९, पृ० ३११ ३६८

२ जमिनीय अश्वमेध पर्व अध्याय ५० श्लोक २२ २५

३ जमिनीय अश्वमेध पर्व पृ० ५० २२ २५

राजगद्दी पर अमिपित किया जाता है। तदनन्तर पिता के आदेशानुसार दम सहस्र स्वण मुद्राएँ (आधी राजा के लिए तथा आधी म से आधी आधी रानी तथा मन्त्री के लिए) कर रूप में चन्द्रहाम द्वारा भेजी जाती हैं। राजवाहक माग म स्नान करके कुतनपुर पहुँचत हैं तो उनके गील वस्त्र दनतर मन्त्री पूजना है कि तुम्हारे राजा की मृत्यु कथ हुई। मुनकर व व्यक्ति अपने राज्य की समझि का व्यौरा देत हैं जिस मुनकर वह कुतनपुर की दक्ष रेख के लिए अपने पुत्र मदन को अपना कायभार सौंपकर चल पडता ह श्री चन्द्रनावती पहुँचकर ही उस चन्द्रहास के सम्बन्ध म बात होता है।^१

४ चन्द्रहाम की हत्या के लिए अपने पुत्र मदन को लिखे गए घुष्टबुद्धि के पत्र का विवरण नाटक म विस्तृत है। पत्र मूल कथा म मीलबन्द है।^२

५ गानव मुनि मून कथा म राजा के पुरोहित हैं काइ सामान्य मुनि नहीं। नाटक की कथा म य मुनि दिवाय गय हैं जो राजा के पाम पहुँचते हैं और परामना दत हैं।^३

६ एक मुख्य अन्तर जो नाटक की कथा म दीग पडता है वह घुष्टबुद्धि तथा उमन पुत्र मदन की मृत्यु से सम्बन्धित है। मूलकथा म चन्द्रहास को जब दोना की मृत्यु का समाचार मिनता है तो वह देवी के मन्दिर म तुरान पहुँचता है। पिता पुत्र को मृतक अवस्था म पडा देखकर व स्वय स्नान करके गुड होता है तदनतर स्वस्तिवाचन करके वह गुम लक्षणो से युक्त सुन्दर चीकार कुण्ड छादकर तयार करता है और उस कुण्ड मे देवी मूर्त्त का पाठ करना हुआ अपने शरीर का पैर स लेकर मस्तक तक का सारा मास काटकर होम कर देता है। हिन्या का ढाँचा और मस्तक गप रह जाने पर अपना मिर काटन का प्रस्तुत होता ह तभी चण्डिका देवी प्रकट होती हैं और चन्द्रहास स दो वर मागने को कहती है। चन्द्रहाम प्रथम वर म श्रीहरि के चरणा मे अटल भक्ति तथा दूसरे से पिता पुत्र का पुन जीवन माँगता है। देवी प्रसन्न होकर यही वर देती है और दोना जीवित हो जाते ह।

कृष्णाजुन युद्ध

कृष्णाजुन युद्ध^४ नाटक कमवीर के सम्पादक, पण्डित माधवलाल चतुर्वेदी (भारतीय आत्मा) की रचना है। इसका प्रथम प्रकाशन, १८८२ वि० (सन् १९१८ ई०) मे हुआ। इसकी रचना प्रकाशन समय से बहुत पूव हा चुकी थी एक जबलपुर म हिन्दी साहित्य

१ अमिनीय अक्षमेष पत्र गीता प्र म शौरवपुर अध्याय ५२ अंको ७ ७२

२ अध्याय ५३ श्लोक ६ १५

३ ५७ श्लोक १५

४ ५८ श्लोक १ २८

५ प्रकाशन, व घ शिवनारायण मिथ प्रकाश पुस्तकालय काजपुर पंचम संस्करण

सम्मेलन के अवसर पर इसका सफल अभिनय पहले ही हो चुका था। चतुर्वेदीजी का यह अनेकाला नाटक है—प्रथम और अंतिम। इसके अतिरिक्त उनका कोई अन्य नाटक प्रकाश में नहीं आया। निःसन्देह हिन्दी के नाटक-साहित्य में इसका स्थान महत्वपूर्ण है। इसे पर्याप्त लाकप्रियता प्राप्त हुई है।

कथानक

आकाश माग से अपनी पत्नी चित्रांगी के साथ जात हुए गंधव चित्रसेन द्वारा धूका हुआ पान गंगास्नान के पश्चात् सध्या करत हुए गालव मुनि की अजलि में आ गिरता है। देखत ही मुनि के क्रोध की सीमा नहीं रहती। वे श्रीकृष्ण से चित्रसेन व अपराध की शिक्षा देकर करते हैं। श्रीकृष्ण गानव द्वारा क्षमा न किय जाने पर दूसरे दिन चित्रसेन को मार देने की प्रतिज्ञा करत हैं। देवर्षि नारद द्वारा दण्ड की अधिक्ता का ध्यान दिलाय जाने पर भी वे अपने वचन से मुडत नहीं हैं। चित्रसेन देवर्षि से समाचार पाकर अपनी रक्षा के लिए इन्द्र के पास जाता है किन्तु वहाँ से आस्वासन न पाकर वह महाभारत युद्धविजयी पाण्डवों के पास जाता है। युधिष्ठिर मिलने नहीं हैं अथ भाई स्थिति की गम्भीरता पर विचार करने श्रीकृष्ण के विरुद्ध युद्ध करके उसकी रक्षा करने का आस्वासन नहीं देते हैं।

नारदजी दूसरा उपाय सुझाते हैं। चित्रसेन स गंगा के किनारे चिता तयार करके विलाप करते हुए उस पर बैठने के लिए कहते हैं। उधर उड़ी की प्ररणा से सुमद्रा गंगा स्नान के लिए आती है। वह चित्रसेन के करण क्रन्दन से द्रवित होकर पूरी बात सुने बिना ही उसकी रक्षा का आस्वासन दे देती है। स्थिति की गम्भीरता का पता बाद में चलता है किन्तु वह अपने वचन व परिपानन के लिए अजून से आग्रह करती है। अजून पत्नी के वचन को पूरा करने का आस्वासन देते हैं। उधर शिवजी भी इस काय में अजून की सहायता करने का निश्चय करत हैं। ब्रह्माजी श्रीकृष्ण और अजून व बीच युद्ध के मयकर परिणाम की भाग्यता से गालव मुनि के पास जाकर चित्रसेन को क्षमा कर देने का आग्रह करत है। गानव भी कुछ गानत हान पर अपराध की क्षमा का दण्ड की अधिक्ता का अनुभव करते हैं और ब्रह्माजी के साथ ही युद्धभूमि की ओर चल दत हैं। उधर युद्धभूमि में इतना दाना के पहुँचन से पूव ही दाना घोर से युद्ध आरम्भ हो जाता है। अजून श्रीकृष्ण के प्रहार में घायल होकर मूर्च्छित हो जात हैं। अपनी अर्धचेतनावस्था में स्वभाववग महायत्ना के लिए श्रीकृष्ण का ही पुनारत हैं। श्रीकृष्ण अजून का अपनी गानत लखत हैं। ब्रह्माजी के साथ गालव मुनि भी वहाँ आकर चित्रसेन को क्षमा कर देते हैं अतः दाना में पुन युद्ध की आवश्यकता नहीं रह जात। प्रतिष्ठा नग की भाग्यता भी समाप्त हो जाती है।

घाघार

चतुर्वेदीजी के एक नाटक व हिन्दी में प्रकाशन में पूव, इसा कथा की घाघार बनाकर मराठी में तान नाटक त्रिभुजा धुबय। प्रथम चित्रसेन गंधव नामक नाटक सन् १८८३ में १० वीं आगार न त्रिभुजा है। इसमें मराठी नाटक साहित्य में पर्याप्त स्थान प्राप्त है। इस कथानक का घाघार बनाकर महाश्वेद त्रिभुजा कलकत्ता में सन् १८८५ में

कृष्णाजुन युद्ध नाम स एव सुन्दर नाटक की रचना की। इन दोनों नाटकों व पश्चात् इसी कथानक पर एक तीसरा नाटक सन १९१४ में नरसिंह त्रिनामणि के लखर न कृष्णाजुन युद्ध नाम में ही लिखा। इसे भी उस युग में मराठी साहित्य में पर्याप्त प्रशंसा और ख्याति प्राप्त हुई। मराठी के इन सुन्दर नाटकों में चतुर्वेदीजी को भी आर्कषित किया। इस कथानक पर हिन्दी में इसमें पूर्व कोई नाटक नहीं लिखा गया था। मराठी के इन नाटकों से प्रेरित होकर उभी कथानक पर हिन्दी में इस कृष्णाजुन युद्ध नाटक की रचना चतुर्वेदीजी ने की है। उनके इस नाटक की कथा का आधार मुख्य रूप से मराठी के ये नाटक ही रहे हैं। जिस प्रकार से धर्म शंभूशिवर के संस्कृत नाटक 'चण्डकीर्णिक' को आधार बनाकर भारत दु हरिश्चन्द्र ने सत्य हरिश्चन्द्र की रचना की उसी प्रकार चतुर्वेदीजी ने भी कृष्णाजुन युद्ध लिखा है।

विश्लेषण

इस नाटक के श्रीकृष्ण अर्जुन और सुभद्रा ये तीनों पात्र महाभारत के हैं। चित्रसन का भी इन्द्र की समा के एक प्रधान गणध्व के रूप में महाभारत में उल्लेख हुआ है। महर्षि गालव का भी महाभारत में उल्लेख हुआ है परन्तु उन गालव के साथ इस नाटक की घटना का सम्बन्ध नहीं बताया गया है।

मालवनाथ चतुर्वेदी का सम्बन्ध राष्ट्र के स्वतन्त्रता आन्दोलन से प्रत्यक्ष रूप में रहा है इसलिए इस नाटक में युग की राजनीतिक विचारधारा भी प्रतिबिम्बित होती गयी है। महर्षि गालव के पात्र सिध्वा के द्वारा जिस हास्य रस की सृष्टि की गयी है वह पर्याप्त मात्रा में मिलता है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह नाटक सामान्य है। महर्षि गालव माधना ज्ञान की उच्च भूमि में पढ़कर भी चित्रसन के अनजान में हुए अपराध से अत्यधिक क्रुद्ध हो जाते हैं और उनकी निर्यात श्रीकृष्ण से भी कर देते हैं यह शासन और उचित प्रतीत नहीं होता। श्रीकृष्ण का भी एक छोटे से अपराध के लिए मृत्यु दण्ड देने की प्रतिज्ञा करना सबका अपायचित नहीं लगता है। अर्जुन का चरित्र वस्तुतः अति उदात्त चित्रित हुआ है। सुभद्रा के चरित्र का और परिभाषित किया जा सकता था। सोमनाथ गुप्त के अनुसार, यदि चतुर्वेदीजी ने सुभद्रा के चरित्र में स्थीजितन कापभवन वाली त्रिया के द्वारा अर्जुन को रिभाने का प्रयास न किया होता और उसके स्थान पर हिन्दू रमणी के कर्तव्य और पति पर उसके अधिकार की तत्काल उपस्थापिता एव महाना लिखायी होती तो बहुत ही सुन्दर बात होती। सुभद्रा के चरित्र में जो शिथिलता इस तीसरी श्रेणी की यात्रा के कारण आ गयी है वह दूर हो जाती। कर्तव्य का उदात्त उम महान् चरित्र के भी अनुकूल होता और हिन्दू सत्कृति का धारक भी।^१

कृष्णाजुन युद्ध एक सुन्दर साहित्यिक नाटक तो है ही अभिनय गुणा से भी परिपूर्ण है। इसमें न कहीं शृंगारिकता है और न अतिरंजन। वान, युवा और वृद्ध स्त्री और पुरुष सबके लिए समान रूप में पठनीय और अभिनेय है। अब से लगभग ३०-३५ वर्ष पूर्व हिन्दी जगत में इस नाटक ने अपनी लावप्रियता अर्जित की है।

१ महाभारत समाप्त, पृ० ७ पृ० २२

२ हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास सामान्य गुप्त हिन्दी भवन प्रकाशक सं० सं० १९५१ पृ० १०६

रामायणधारा

षष्ठ अध्याय

- १ आनन्द रघुनन्दन
- २ कतव्य
- ३ आदश राम
- ४ भूमिजा
- ५ शवरी कथा (क) शवरी (ख) शवरी अछूत (ग) शवरी
- ६ श्वषण कुमार (इस नाम के तीन नाटक)
- ७ रावण

- ८ रामकथा के कुछ अन्य नाटक १ रामराज्य वियोग २ सीता वनवास ३ जनक वाग वान, ४ धनुष लीला ५ भाषण, ६ रामलीला रामायण, ७ रामचरित्रोद्दीपन ८ रामलीला ९ रामान्जिक, १० प्रयाग रामागमन, ११ बन्धु भरत १२ सीता स्वयंवर, (बन्धीनी दीर्घा) १३ सीताहरण १४ रामान्जिक (गिरवरधर) १५ रामबनयात्रा, १६ रामचरित १७ सीता-स्वयंवर (मु० तोताराम) १८ रामलीला विजय, १९ पंचवटी २० रामायण नाटक ।

रामचरित से सम्बद्ध नाटक

अष्टादश पुराण एवं महाभारत के समान वाल्मीकीय रामायण भी कविता तथा नाटकधारा के लिए युगांत प्रेरणा का स्रोत रही है। अमरकाव्य रामचरितमानस के रचयिता गान्धारी तुलसीदासजी के समान भा यह आत्मा रचना के रूप में निरतिरिक्त रूप में रही है यद्यपि अनुप्रासित व अष्टादश रामायण से भी पर्याप्त मात्रा में हुए हैं। तुलसीदासजी के रामचरितमानस का आधार बनारस में हिन्दी में अनेक कान्या तथा नाटकों की रचना

उत्तरकाल में होती आई है। नाटक रचना तो विशेष रूप से विपुल मात्रा में हुई है, परन्तु प्राग्भूत की अधिकतर नाटक रचनाएँ पद्यमय हैं। इन रचनाओं में बहुतसी तो ऐसी हैं, जिनमें रामचरितमानस के सम्पूर्ण भाग अथवा किसी स्थल विशेष के किसी अंश को यत्र-तत्र नाटकीय निर्देश जोड़कर नाटकीय रूप की अभिधा प्रदान कर दी गयी है। वस्तुतः नाटक नाम से पुकारे जानेवाले ऐसे नाटका में नाटकीय तत्त्वा का सवथा अभाव है। रामलीला के प्रदर्शना के अवसर पर रंगमंच पर कथोपकथना को तस्वर बोलने के रूप में अभिनय करने के लिए ही उह नाटकीयता प्रदान की गयी है। यह स्थिति आरम्भिक अवस्था की है। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और हिन्दी में नाटकीय विधान का विकास होता गया, रचनाएँ भी उसी अनुपात में परिमार्जित होती गयीं।

इस धारा में जिन नाटका के मूलस्रोतों का विचार किया जाएगा उनमें अधिकतर ऐसी रचनाओं की हैं जिनका आधार मुख्य रूप से रामचरितमानस है। आरम्भिक रचनाएँ प्रायः ऐसी ही हैं। उत्तरकाल की कुछ रचनाएँ वस्तुतः नाटकीय विधान को दृष्टि में रखकर रची गयी हैं, अतः पर्याप्त मात्रा में परिमार्जित हैं।

इस धारा में कुछ नाटक ऐसे भी हैं जो रामायण की प्रधान-कथा पर आधारित न होकर उसमें आयी अवान्तर-कथाओं अथवा उपान्यासों पर आधारित हैं, यद्यपि इनकी संख्या अल्प है। इस प्रकार के नाटका का समावेश रामचरितधारा शीपक में सम्भवतः निरापत्तिजनक रूप में न हो पाता, अतः इसे 'रामायणधारा' कर लिया है। ऐसा करने में प्रधान कथा अथवा अवान्तर कथा किसी पर भी आधारित नाटक को इसमें सम्मिलित करने में अनुपपत्ति या आपत्ति होने की सम्भावना नहीं रह जाती।

आनन्द रघुनन्दन

यह नाटक रीवाँ के महाराज जयसिंह के पुत्र महाराज विन्वनाथसिंह देव का है। इनका जन्म सन १६६१ से १७४० तक रहा है। जसा कि नाटक के नाम से प्रतीत हो रहा है यह रामचरित से सम्बद्ध है। यह सात अंका का एक बड़ा नाटक है।

कथानक

नाटक का आरम्भ, राम और उनका तीनों भाइयों के जन्म के समाचार से होता है और रावण पर विजय के पश्चात् राम के अयोध्या में राजतिलक से समाप्त होता है। आरम्भ में सभा में महाराज दशरथ को चारों राजकुमारों के जन्म की सूचना मिलती है। गूढ आनन्दसूक्त मनाया जाता है। किंगोर हाने पर राम और लक्ष्मण का महर्षि विश्वामित्र आश्रम रक्षा के लिए ले जाते हैं। वहाँ से तीनों, राजा जनक के धनुष यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए मिथिला जाते हैं। माग में अहल्या का उद्धार होता है। राम के शिवधनुष तोड़ने पर महाराज दशरथ को सूचित किया जाता है। वे अयोध्या से बरात लेकर मिथिला

पहुँचते हैं। राम और सीता का विवाह सम्पन्न होता है। अयोध्या के राजा पर कुछ समय बाद पश्चात् राम को युवराज बनाने का प्रस्ताव एवं कथना का अग्रहण राम का चोटीय रूप का बनवास और भरत को अयोध्या का उत्तराधिकारी घोषित किया जाता है। राम, माना और लक्ष्मण वन को चले जाते हैं। वहाँ रावण द्वारा सीता का अपहरण, राम की सुग्रीव से मित्रता एवं रावण का संहार होता है। राम सीता और लक्ष्मण का साथ अयोध्या के राजा और शासन भार ग्रहण करते हैं।

आधार

नाटककार राजा विश्वनाथसिंह ने अपना इस आनन्द रघुनाथ नाटक की कथा का मुख्य आधार आदि कवि की रामायण को ही माना है। इस बात का सबूत उन्होंने नाटक की प्रस्तावना में दिया है। यह इस प्रकार है—

“(भाव का प्रवेश)

भाव—त्रिपालनादिके परिषेयम् ।

सूत्र—(प्रणम्य गहीत्या वाचयति)

बहुविधि आगिष्य गिष्य हमारी ।

है इत कुशल, कुशल तुय चार्ह, होवे निरमल बुद्धि तिहारो ॥

दिगतिर अथ भू भूरि भार भय, वदन विधाता विनय कराई ।

अब उदार अवतार परम प्रभु सहै पुढमि परम मुददाई ॥

ताके गुनगन भरित चरितमय काव्य ससृष्ट रची अगारी ।

नाटक करन परिहै प्रभु आगे पेशत ह्व है तेऊ सुतारो ॥

श्री जसिह भुवाल विधिपति गुत विमुनायसिह जहि नाऊँ ।

सो नाटक ‘आनन्द रघुनाथ’ भाषा रचि है आउ पडाऊँ ॥

यहाँ इस पद्य में पंचम पंक्ति में गुनगन भरित चरितमय काव्य ससृष्ट रची अगारी से आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि के अमर ससृष्ट महाकाव्य रामायण की ओर ही संकेत है। इसीलिए आनन्द रघुनाथ को भाषा नाटक कहा गया है— सो नाटक आनन्द रघुनाथ भाषा रचि है। ये शब्द नाटक के मौलिक स्रोत के लिए ऊपर उद्धृत काव्य की ओर ही स्पष्ट संकेत कर रहे हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि नाटककार का मूल-आधार तो यद्यपि वाल्मीकीय रामायण ही है तथापि वह गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस से प्रभावित न हुआ हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सर्वांग में उसने वाल्मीकीय रामायण का ही अनुसरण नहीं किया है। कुछ घटनाएँ अथवा उसके संकेत ऐसे हैं जिनका वाल्मीकीय रामायण में उल्लेख नहीं है पर रामचरितमानस में वर्णित हैं। कुछ ऐसी भी हैं जिनका वाल्मीकीय रामायण एवं रामचरितमानस दोनों में ही उल्लेख नहीं है। ऐसी घटनाओं के लिए या तो किसी अन्य स्रोत की खोज करनी होगी या फिर उन्हें नाटककार की अपनी उद्भावना मानना होगा। कुछ अपहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१ प्रथम अंक के सीता स्वयंवर के प्रसंग में यहाँ कहा गया है कि सहस्राजुन और रावण दोनों ही सीता को प्राप्त करने के लिए मिथिला में उपस्थित होते हैं। दोनों धीरे-धीरे

आपस में ही कुछ भगडा हा जाता है। सहस्राजुन ता पिनाव धनुष का नमस्वार बरके ही वहाँ से चला जाता है और रावण भी यह आकाशवाणी गुनवर कि, 'स्वामी, तुम्हारी कुमीन सी नया को मपुनामा दैत्य हर लिय जाय ह।' वहाँ से चल देता है।

वान्मीकीय रामायण में इस घटना का उल्लेख नहीं है। वहाँ केवल सामान्य रूप से इनका ही कहा गया है—

इद धनुवर ब्रह्मन जनकरभिपूजितम् ।
राजभिद्रव महावीर्यैरंगत पूरित तदा ॥
नतत् सुरगणा सर्वे सासुरान च राक्षसा ।
गधव-यक्षप्रवरा सकि-नर महोरगा ॥

अर्थात् यह वह श्रेष्ठ धनुष है जिसका जनकशिश्या ने सदा पूजन किया है और इसे उठान में असमर्थ महापराक्रमी राजाआने भी इसका सम्मान किया है। इसे समस्त देव, असुर, राक्षस गधव, यक्ष, कि-नर और महानाग भी नहीं चला सके हैं।

रामचरित मानस में भी इन दोनों वीरों के विवाद का उल्लेख नहीं है। वहाँ भी—

मप भुज-बल विधु सिवधनु राहू । गरुभ्र बठोर विदित सब बाहू ।

राथन बान महाभट भारे । दक्षि सरासल गर्वाहि सिधारे ॥

केवल इतना ही कहा गया है। एक स्थल पर सामान्य रूप में और दूसरे पर रावण और बाण का नामान्तर्लुपक विशेष रूप में निर्देश है। नाटककार ने अपनी रचना में इसी को विस्तार दिया है।

२ दूसरे अंक में आरम्भ में ही आदिकवि और उनके शिष्य में सम्भाषण है। इसमें प्रकट होता है कि भरत का उससे मामा के यहाँ भोजना, राम को युवराज बनाने के स्थान पर वन को भोजना कुटिला मथरा को बुद्धि को फेरना—य सब वाय पूव से ही 'सुरवाज मिद्धि' के उद्देश्य से सुनियोजित योजना के अंग रहे हैं—

माका बानी की बानी यौ सुनी परी — तुम त्रिगजान (दशरथ) प जाय बहूडहजग कारी (भरत) डिभीवर (गन्धुन) को बागमीर को पठवाइयो और उपाय करि भूप सा हितकारी (राम) का युवराजपद दिवावत वन दिवाइयो । अह हितकारिहू को याही रख है । हौं कुटिला के कठ बठि सुरकाज सिद्ध करन जाऊँ हौं ।'

इस नाटक का यह प्रसंग वान्मीकी की रामायण पर नहीं तुलसी के रामचरित मानस पर आधारित है। वहाँ सुरगण बार बार सरस्वती से यही विनय कर रहे हैं, कि तुम जाकर उन लोगों को बुद्धि विवृत कर दो, जिससे वे लाग राम को वन भेज दें—

विर्पात हमारि विलोकि बडि मातु करिय सोइ आजु ।

रामु जाहँ धन राजु तजि होइ सकल सुरबाजु ॥

—अयोध्याकाण्ड, दोहा ११

३ द्वितीय अंक में ही एक अर्थ स्थल पर इंद्र के पुत्र जयंत के वायस का रूप धारण करके चित्रकूट में राम की युटी पर आना और दुष्टतावश सीता के पर का चाच मारकर विदात करना एवं उसे दण्ड देने के लिए राम द्वारा छोड़े बाण द्वारा उसका सबत्र अनुसरण किया जाना तथा राम की शरण में आने पर त्राण मिलना ।

भ्रान्त रघुनन्दन में इस घटना का वर्णन चित्रकूट में कुटी बनाकर राम व निवास के पश्चात् एव भरत मिलन से पूर्व आया है। वाल्मीकीय रामायण में भरत मिलन व पूर्व अथवा पश्चात् वही पर भी इस घटना का वर्णन नहीं है। किन्तु मुद्ररक्षाण्ड में इस घटना का उल्लेख मात्र उस स्थल पर किया गया है जहाँ हनुमान (लक्ष्मण) सीता के पास जाते हैं, राम का संदेश सुनाते हैं और फिर सीता की निशानी के साथ उनका सम्पर्क लेकर पुनः राम के पास लौटते हैं। सीता स्मरण दिलाने के लिए अपने एकमात्र जीवन की कुछ घटनाओं का उल्लेख करती है—

अभिज्ञान च रामस्य दृष्टां हरिगणोत्तम ।

क्षिप्तामिषोकां चारस्य षोपादेकाक्षिशातनीम ॥

—मुद्ररक्षाण्ड सग ४० दशक ६

यद्यपि महापि वाल्मीकि ने वही इस घटना का विस्तृत विवरण नहीं दिया है किन्तु इस उल्लेख से इतना तो स्पष्ट है कि वे राम व चरित्र की इस घटना से परिचित थे।

गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस में अरण्यकाण्ड व आरम्भ में भरत मिलन व पश्चात् इसका विस्तृत वर्णन आया है। सम्भव है भ्रान्त रघुनन्दन में यह घटना यहीं से ली गयी हो।

४ तृतीय अंक में ही जहाँ राम पंचवटी में कुटी बनाकर निवास करने लगते हैं उनके कुशल समाचारा को जानने के लिए माता कौशल्या द्वारा एक दूत का दूत बनाकर राम के पास भेजने और राम द्वारा अपना समाचार देकर पुनः वापस भेजने का उल्लेख है। यह घटना पूर्णरूपण नाटककार की स्वकल्पना है। इसका वाल्मीकीय रामायण एव रामचरितमानस में वही उल्लेख नहीं है।

५ इसी अंक में शूषणला के नाक बान काटे जान की घटना के पश्चात् रामम नाम के राक्षस के राम के पास आने और मारे जान का भी—दोना ही आधार अथवा में उल्लेख नहीं है।

६ तृतीय अंक के अन्त में एक अन्य महत्वपूर्ण घटना का और उल्लेख है वह यह कि लक्ष्मण तो राम और सीता का कुटी पर छोड़कर स्वयं आश्रय के लिए चले जाते हैं उधर राम सीता को यह आदेश देते हैं— महिजा छाया महिजा इत राखि दिगशिर बधान्त अग्नि में रही।'

सीता की पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए ही यहाँ सम्भवतः नाटककार ने राम से ऐसा कहलाया है। इसका भी वाल्मीकीय रामायण एव रामचरितमानस में उल्लेख नहीं है। इस घटना को पढ़ने के उपरान्त मन में स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि यदि वस्तुतः ही रावण के द्वारा हरी गयी सीता छाया सीता ही थी और राम को यह सब तथ्य ज्ञात ही था तो फिर सीता के लिए राम की इतनी व्याजुलता क्या दिखायी गयी है? रावण को मारने के उद्देश्य से छाया सीता के हरण का औचित्य कुछ सीमा तक तो सिद्ध किया जा सकता है। वस यह कल्पना है कल्पना के लिए ही। बुद्धि इसे स्वीकारती नहीं है।

७ चतुर्थ अंक में एक घटना है कि द्रविड देश की पवत गुफा में रहने वाली एक तपस्विनी राम के आगमन को सुनकर उनके दर्शन के लिए जाती है और उन्हें कुछ आवश्यक

सन्निव सूचनाएँ देती है।

यह घटना भी सवथा नाटककार की अपनी कल्पना मात्र है। इसका श्रोत न तो वाल्मीकीय रामायण में है और न रामचरितमानस में।

८ पंचम अंक में लका राक्षसी (लका की अधिष्ठात्री देवी) रावण को लका में हनुमान के प्रवेश का समाचार देकर समझाती है 'महिजा (सीता) जहाँ रही सो थल भय सा बताय दियो। तुमसौं बहौं हौं, रिताकारी (राम) परम पुरुष हैं। जो जीवन चाही तो महिजा को ल कारण जाउ।'

इस घटना के प्रथम अंग का वर्णन दोना ही ग्रंथों वाल्मीकीय रामायण एवं रामचरितमानस में उपलब्ध है।^१ रामचरितमानस के वर्णन की अपेक्षा वाल्मीकीय रामायण का वर्णन विस्तृत है। वहाँ लका द्वारा प्रथम हनुमान को चपत मारने एवं इसके पश्चात् हनुमान द्वारा उसे एक मुक्का मारने का उल्लेख है। इसके पश्चात् ही ब्रह्मा के एक वचन का स्मरण करते वहाँ हनुमान को नगर में प्रवेश की अनुमति दे देती है। यहाँ हनुमान के अपना सूत्र रूप बनाकर प्रवेश करते का उल्लेख नहीं है, व अपने स्वामाविक रूप में ही प्रवेश करते हैं—

अथ सा हरिशाहू प्रविणत महाकपिम् ।

नगरी स्वेन रूपेण ददश पवनात्मजम् ॥ सुन्दरकाण्ड ३/२०

इसके विपरीत रामचरितमानस में हनुमान मस्तक समान रूप धरकर लका में प्रवेश करते हैं—

मस्तक समान रूप कपि धरी । लकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ।

नाम लकिनी एक निसिचरी । सो कह चलेसि मोहि निदरी ॥

प्रवेश करने पर हनुमान एक मुक्का मारकर उसे विभ्रत कर देते हैं। यहाँ तुलसीदास न रामदूत को नारी द्वारा पिटने से बचा लिया है।

इस घटना के दूसरे भाग अर्थात् नारी-लका द्वारा रावण का समझाये जाने का वर्णन दोना ग्रंथों में नहीं है। यह नाटककार की अपनी कल्पना से प्रसृत है। नाटक के पष्ठ और सप्तम अंका की घटनाओं का मूल अर्थात् की घटनाओं में नहीं विशेष अंतर नहीं है।

विवेचन ।

महाराज विश्वनाथसिंह (सन १६६१-१७४०) के श्रावण रघुनन्दन के गद्य एवं पद्य दोना की मुख्य भाषा ब्रज है जो कि पर्याप्त रूप में सुपरिष्कृत है। यत्र-तत्र ब्रजकारों की छटा भी मन का माहती चलती है। इसके गद्य रूप दर्शन के लिए एक छोटा सा उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—

राजा दण्ड के नाम राजा जनक का पत्र—

'अनन्त श्रीमहाराज अपराजिताविराज सवल महाराजनि सिरताज जग लाज का

जहाँ, गरीब निवाज, महिमण्डल महद्र, भुरेद्र के उपद्र सम करन काज यग जागत जहान, केत भान समान, प्रतापवान, दानमान, सनमान सुजान, चान प्रेम निधान, न्गिजान भूपञ्च येने शीलकेतु भूप की जोहार । अनूप कुगल स्वप्न है । इत आपनी कृपाही कुगल है । भुवन हित मुनि सग अग अग आमा उमग अनग आमा भग करनहार आपके युगल कुमार आये । हम लोग लोचन लाहु पाय । हितकारी महीपति मद मारि महेश धनु तारि मही कीर्ति छाई महिजा पाई । सजि वरान आइय व्याहि ल जाइय ।

यह सप्तहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा गद्य का मँजा हुआ रूप है ।

यह नाटक संस्कृत के नाट्यशास्त्र के नियमों का अनुसरण करता है । नाटक के आरम्भ की प्रस्तावना और विष्कम्भक उसी परिपाटी के द्योतक हैं । नाट्य सकेत इसमें सबत्र ही संस्कृत में दिये हैं । यह कुछ अस्वामाविक-ता लगता है । यह सबके ब्रजभाषा में भी दिये जा सकते थे । संस्कृत से सबथा अपरिचित व्यक्ति के लिए सम्भवतः कुछ कठिनाई भी उपस्थित कर सकते हैं ।

इस नाटक में सबसे बड़ी कठिनाई तो पात्रों के नामों से सम्बंधित है । इसमें परम्परा से प्रचलित नामों को ग्रहण नहीं किया गया है, अपितु उनके स्थान पर कुछ अन्य सादृश्य को लेकर दूसरे ही नाम गये हैं । उनमें से कुछ प्रधान पात्रों के नाम इस प्रकार हैं—

राम हितकारी भरत डहडहकारी लक्ष्मण डील धराधर, शत्रुघ्न डिम्भीकर, दशरथ दिग्गजान ककेयी काश्मीरी विश्वामित्र भुवनहित वसिष्ठ जगदयोनिज जनक गीलकेतु सीता महिजा परशुराम रणकेतु रावण दिक्शर मेघनाथ धनध्वनि विभीषण भयानक, सुग्रीव सुगल, वाली वासव हनुमान श्रेतामल्ल, अगद भुजभूषण अनसूया अनीष्या आदि तथा अयोध्या अपराजितापुरी गंगा ब्रह्मकुण्डजा ।

नामों की कठिनाई के अतिरिक्त एक और कठिनाई यह है कि इस नाटक में अनेकों का विभाजन दृश्यों में नहीं किया गया है । इससे इसमें गति समय और स्थान के सम्बन्ध में बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है । प्रत्येक अंक की क्यावस्तु के लिए प्रायः एक ही घटना स्थल है । उसी पर विविध दृश्य उपस्थित किये गये हैं । उदाहरण के लिए प्रथम अंक में अयोध्या के दृश्य ताडकावध का दृश्य वनभाग का दृश्य, मिथिला के दृश्य आदि सब एक ही स्थल पर दिखाये गये हैं । स्थान और दृश्यों के परिवर्तन का कहीं निर्देश नहीं है ।

इस नाटक की एक प्रमुख विशेषता या इसे दोष भी कह सकते हैं वह यह है कि जिस सामाजिक स्थिति श्रेणी, प्रदण या दण का पात्र है वह वहाँ की और उसी प्रकार की भाषा बोलता है । दूसरी नटी गौरसेनी प्राकृत बोलती है । कुमार दशनाथों अपभ्रंश बोलता है धानिनी भ्रष्ट भागधी प्राकृत बोलती है काबुल का चारभुज पश्तो बोलता है नेपथ्य में दो गान हान हैं जो मधिली में हैं गौतम का बगाली गिष्य बगाली में बोलता है आदि । एक स्थल पर अंग्रेजी का भी प्रयोग किया गया है । इस प्रकार से विविध भाषाओं एक बालिया के रूप में इस नाटक में मिलते हैं । मुख्य भाषा तो ब्रज ही है । विविध भाषा बानगी से रचना के समय का आभास तो हो जाता है किन्तु नाटक के वृत्तयुगीन वातावरण का प्रभाव नहीं आ पाता ।

आचार्य रामचन्द्र गुप्त ने इस नाटक को हिंदी नाटक साहित्य का प्रथम नाटक स्वीकार किया है। वस्तुतः बाल्यम की दृष्टि से इसे प्रथम होने का श्रेय दिया जा सकता है। यह हिंदी का प्रथम प्रयास है अतः इसमें कहीं-कहीं जो दाप हैं उनकी उपेक्षा की जानी चाहिए। सतु तत्र विद्येप दुलम सदुपयस्यति वरम य ।' महाकवि भारवि के इन शब्दों को स्मरण करते हुए महाराज विश्वनाथ सिंह को उचित गौरव अवश्य मिलना चाहिए।

कर्तव्य'

सेठ गोविन्दराम ने अपने कर्तव्य नाटक को दो खण्डों में विभक्त किया है। प्रथम खण्ड में मयाग पुरुषोत्तम राम का चरित्र है और द्वितीय में श्रीकृष्ण का। वस्तुतः ये दोनों पाच पाच अंकों के स्वतंत्र नाटक हैं। क्या और काल की दृष्टि से दोनों में कोई भी पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है। यहाँ श्रीराम के चरित्र का आचार बनाकर रचे गये कर्तव्य पर ही विचार किया जा रहा है। इसका कथानक इस प्रकार है—

कथानक

इस नाटक की कथा का आरम्भ राम के अभिषेक की तयारी से होता है। राम और सीता दाना आने वाले उत्तरत्यागित और कर्तव्य की चर्चा कर रहे हैं। सीता अनि प्रसन्न हैं। राम अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक हैं। उसी समय महाराज दशरथ की अस्वस्थता का समाचार का साथ राम को बुलाया जाता है। कन्ये की वरप्राप्ति का अनुमार, राम और सीता लक्ष्मण सहित वन को चले जाते हैं। वन में तेरह वर्ष तो सरलता से कट जाते हैं किन्तु चौदहवें वर्ष का आरम्भ होते ही उत्पन्न आरम्भ हो जाते हैं। स्वर्गमृग के पीछे सीता के अनुरोध से राम का जाना, पीछे राम का सा आनाद सुनकर लक्ष्मण का भी चले जाना और सीता का हरण—यह सब घटता है। इसके पश्चात् सुग्रीव के साथ मित्रता और बाली का वध होता है। समुद्र पर पुन बनाकर लका में युद्ध और तत्पश्चात् विजयोपरान्त सीता की परीक्षा तथा ग्रहण की घटनाएँ चलती हैं। अयोध्या में आकर राम के द्वारा सीता का परित्याग अश्वमेध और दाना कुमारा का रामायणपाठ तथा वाल्मीकि के आग्रह से सीता का आगमन होता है। सब नागरिकों के सहमति प्रकट करने पर भी पुन सतीत्व परीक्षा के लिए राम आग्रह करते हैं। पृथ्वी फटती है और सीता का विलय हो जाता है। -

इसके उपरान्त की घटनाएँ भी नाटक के कथानक में सम्मिलित हैं यथा—शम्भूक का वध, एक ऋषि की राम से एकांत बातचीत, वहा किमी का न आन देन की दत्त, आने वाले का वध, दुर्वासा का आगमन, प्रवेश के लिए आग्रह, लक्ष्मण का रामकृत त्याग, त्यक्त लक्ष्मण के द्वारा याग से सरयूतट पर शरीर त्याग उर्मिला का सती होने के लिए प्रयत्न, राम का

मृत्यु भूतान—उत्तम घण्ट, राम, भरत, मनुष्य धर्म का विनय ।

इस नाटक की मुख्य विधाया यही है कि गीता यहाँ परोक्षा व समय धर्म म प्रवर्णन नहीं करती प्रवर्णन व विषय बेव्यव उच्चत होती है ।

आधार

रामकथा पर नियम गय हिन्दी व नाटक का आधार प्रायः दामोदर रामायण आधारित रामायण, रघुवर्ण उतररामचरित रामचरितमांग रहा है । परन्तु गठनी न मनम से किसी एक को अपन इम नाटक के बयाना का आधार नहीं बनाया है । य मामूहिक रूप म उपयुक्त कथा म से सभी म प्रमाणित हैं और जहाँ जा उनको छाँटा सगा है उम उहने नि सवाच भाव से ग्रहण किया है । पौराणिक कथा व मूल रूप म आख्यानानुसार वही वही उह माड भी दना पडा है । इम सम्बन्ध म गठनी का बयन है—

सबसे पहली बठिनाई मेरे सामने समय व विमाजन की उपस्थित हुई पौराणिक कथा अपन काल के अनुरूप होन हुए अस्वामयिक भी न हा । इम काल पर ध्यान रखन के लिए मुझे इम नाटक म समय के विमाजन म स्वनत्रता लेनी पडी है । दूसरी बठिनाई जो मेरे सामने उपस्थित हुई वह कथा का एक निश्चित रूप बनाना था । राम और कृष्ण की कथा प्राचीन कथा म हर स्थान पर एक-सी नहीं है । छोटे माटे पाठानर हा इतना ही नहीं पर कई स्थल एमे हैं जहाँ मुख्य मुख्य काना म ही अंतर है । कथा को निश्चित रूप देने म मुझे स्वतंत्रता लेनी पडी है परन्तु मैंने यह प्रयत्न अवश्य किया है कि अपनी कथा का कोई-न-कोई प्राचीन आधार अवश्य रखू । इस सम्बन्ध म मेरा मन है कि किसी भी आधुनिक लेखन को यह अधिकार नहीं है कि पौराणिक कथा की छाया मात्र लखर उमे तोड मरोडकर वह एक नयी कथा की ही रचना कर डात । हाँ किसी कथा व अथ के इन्टरप्रिटेशन के सम्बन्ध म लेखक को स्वतंत्रता अवश्य रहती है । इस स्वतंत्रता का उपयोग मैंने भी किया है । राम तथा कृष्ण के अनेक कार्यों का जो अथ आजकल लगाया जाता है उमसे मेरा मतभेद होने के कारण मेरे मतानुसार जा युक्तिसंगत है वही मैंने लगाया है । साथ ही चूँकि मैंने राम और कृष्ण को इस नाटक म मनुष्य माना है ईश्वर नहीं इसलिए ऐसे स्थला पर जहाँ राम और कृष्ण के काय ईश्वरीय जान पडत हैं मैंने उन कार्यों को ऐसा रूप देने का प्रयत्न किया है कि जिसम वे मनुष्य के लिए असम्भव न जान पडें । फलतः, रामकथा म सीता की अग्निपरीक्षा, सीता का पृथ्वी प्रवेश राम के साथ अवध की प्रजा का स्वर्गारोहण धर्म का वणन दूसरे ही प्रकार से करना पडा है ।^१

विवेचन

इस प्रकार इस नाटक के लिखने म सेठजी का एक विशेष उद्देश्य रहा है । अपनी नयी पृष्ठा की लिखी हुई भूमिका म उहोंने अपने इस उद्देश्य को स्पष्ट किया है । उनका कहना है—

‘मैंने यह नाटक भगवान् रामचन्द्र और भगवान् कृष्णचन्द्र को मनुष्य मानकर ही लिखा है। इन दोनों का मनुष्य मानकर भी कुछ लिखा जाय तो भी मैं कह सकता हूँ कि पूव अथवा पश्चिम किसी भी िसा के, किसी भी िसा में, किसी भी साहित्यकार का ऐसे नायक नहीं मिल है, जस भारत के साहित्यकारों का राम और कृष्ण के रूप में मिले हैं।’

सेठजी का यह नाटक तीस वष पहले का लिखा हुआ है, किन्तु जिस उद्देश्य को लेकर सेठजी ने इसकी रचना की है, वह लक्ष्य सबदा नूतन रहेगा, क्योंकि आपने राम के कतव्यपथ को अपने नाटक में सर्वोच्च भूमि पर प्रदर्शित किया है। यूँ तो राम के जीवन का अध्ययन करने के बहुविध दृष्टिकोण हो सकते हैं और रठ है परन्तु यहाँ लेखक ने कतव्य का बसोटी पर ही खबर उह दता है। यहाँ भी राम कम भाव नहीं हैं। उनकी मानवीय दुर्लताया के साथ उनका निस्वय रूप बना ही आकर्षक और ग्राह्य बना है। यह इसलिए भी कि लेखक ने उन्हें मानव रूप में ही चित्रित किया है। भगवान् का अतनारी रूप स्तुत्य ता बन जाता है पर ग्राह्य नहीं। यहाँ ईश्वर और मानव के बीच में महत्त्व की एक विशाल भित्ति खड़ी हो जाती है जा समानता और तद्रूपता एवं ऐनाम्पानुभूति में बाधक बन जाती है। भगवान् जत्र तक भगवान् ह तत्र तत्र मानव के साथ उमकी एकरूपता कम सम्भव हो सकती है। मानव की मानव के साथ जा सहाजुभूति हो सकती है वह अतनारी के भाव न्। सेठजी ने इस नाटक में इस बात का ध्यान रखा है कि राम के लोकतर बायों का चित्रण भी मानवता के घरातल पर ही किया जाये। अतिए उन घटनाया का तोड भाट करन में उह बौद्धिक श्रम करना पडा है।

रामन्या में लोकतर घटनाया की बहुता होने के कारण सबत्र उनकी मानवीय व्याख्या प्रस्तुत नहीं की जा सकती है। सीता ने अग्नि में कत्कर अपने सती के की परीक्षा नहीं दी कूदने के लिए प्रस्तुत हाकर दी है। अग्नि में कूदने के लिए उनका प्रस्तुत होना ही जनदृष्टि में उनका सतीत्व की शुद्धि के लिए पयाप्त मान लिया गया है। परन्तु राम के अश्वमेध यज्ञ में वात्मीकि के आश्रम से उह बुलाकर भरी समा में पुन अपने सतीत्व की शुद्धि की परीक्षा देने के लिए राम के आदेश पर, उनके कर्ण निबंदन पर पृथ्वी के फटन पर उसमें उनका समात की नहीं रोका जा सका है। मारीच के स्वर्णमय बनने और उसके पीछे राम के भागने के लिए भी कुछ नहीं कहा गया। गायद इसकी किसी अय रूप में व्याख्या सम्भव प्रतीत न हुई हो।

रात्रि एवं दिवस के समान श्याम और श्वेत मानवचरित्र के आवश्यक पथ हैं। सेठजी के मानव राम के भाव श्याम के र्यान पर श्वेत की मात्रा ही अधिक है। उनमें कतव्य की वह उदात्त भावना है कि जो कुछ भी उहान किया है सब उसी से प्रेरित होकर। कतव्य उनके दिन की चिन्ता और रात्रि का स्वप्न है। कतव्य की पूर्ति के लिए राजा को यदि अपने सवस्व की आहुति भा देनी पड़े ता उसे पीछे नहीं हटना चाहिए यही उनका आदेश रहा है। जो कुछ भी उहान अपने जीवन में किया सब इसी के बसोभूत होकर। युग की मयादाया से वे बढ़ रहे, उनकी रखा करना उनका कतव्य रहा। मयादा रक्षा को इसी

भावना से प्रेरित होकर उठते गरी तापना और गम्भीर का बंध किया। अन्त में गम्भीर का एकमात्र धराराध महा था कि वह गूढ़ जाति में उत्पन्न हारर भी तब कर रहा था। युग की प्रयाण इस सहन नहीं कर सती। उगाता रणा का त्रिण कश्चिद्द राम का हृदय पर गन्धर रणकर जा कुछ किया, वनव्य गमभेन ही। उद दगर त्रिण प्रगगा भी कम नहीं मिला। वनिष्ठ का रणा म—

वनव्य का त्रिण सुमन राग्य छोडा परम त्रिय सती गांधी पना का त्रिण विषाग सहा और भन म प्राणा स प्यार भना का भी गा किया। भगतिन स्यायी को त्याग सुमन प्रजा का वनव्य का माय किया है।

पर राम का सन्नाप नहीं है एक नाम जाते हृदय में है—

'नाम, परन्तु मैं यह सत्र स्वय का गाकर पाया है। तादृश स्त्री को हत्या की ग्लानि भव तब मर मन में है, वाली का भ्रम स मारन की लज्जा स भ्रम तब मरा हृदय लज्जित है। पत्नी का मर कारण वन्य भागना पडा है। मैं समभना था कि वनव्य पातन स ससार को मुसी बरता का गग मनुष्य स्वय भी मुगा हाना है पर नहीं, यह मरा भ्रम निवृत्ता मैं तो सदा पीडित ही रहा।

आदर्श राम'

आदर्श राम के नाटक का नाम बजरत्नदामजी है। जसा कि नाटक के नाम से ही स्पष्ट है, रामकथा का केन्द्र बनाकर इसका रचना की गई है। अति प्राचीन काल से ही श्रीराम का चरित्र को आधार बनाकर विविध प्रकार का साहित्य-मजत होता रहा है और आज भी यह प्रथम मनवरत गति से चलता जा रहा है। इस प्रथम में पर्याप्त पुष्पकोत्तम श्रीराम की अचना के साहित्य पुष्प का रूप में, लेखक का यह नाटक है। सुम-युगा स श्रीराम चरित सम्पन्न एक विषय जनता का आदर्श बनकर समुचित पथ का निर्देशन करता रहा है। आदि कवि वाल्मीकि से लेकर आज तक श्रीराम पर बहुत कुछ लिखा गया है किन्तु आज भी यह प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। श्रीराम का चरित कतना बहुमुखी है कि पूर्णरूप से उस चित्रित करने का कोई साहित्यकार साधिकार घोषणा नहीं कर सकता। लेखक के दृष्टिकोण का अन्तर वष्य वस्तु के स्वरूप में भेद उपस्थित कर देता है। इस नाटक के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

श्रीराम का चरित सुपरिचित हान का कारण ही नाटक की कथा का उन्लेख यहाँ नहीं किया गया है। यह अवश्य है कि लेखक ने इस एक विशेष दृष्टि से उपस्थित किया है। उनका कहना है—

'यदि हम अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के पुत्रा का परब्रह्म परमेश्वर मानकर

ही चलें तब व साधारण मानव के लिए न आत्म ही हा सकते हैं और न उनका राज्य ही आत्म राज्य । यह तो निश्चित रूप से माना ही जाता है कि श्रीरामचन्द्र ने अपनी मारी जीवन नीला भारतभूमि पर मानव रूप ही म मानवा व बीच द्यनीत की थी और उनके आत्मचरित्र महामानव या महापुरुष मानवर चित्रित किए जाएँ तो वे साधारण मानवा के लिए भी आदश उच्च आदश ही मकेंग । कुछ मम ही विचार म दम नाटक के लिखने का प्रयाम किया गया ह ।^१

यहा लेखन न दस नाटक के विषय का उद्देश्य स्पष्ट कर किया है । इसी प्रमम म वह भाग कहता है—

“इस नाटक म रामायण के सभी पात्र मानवा ही के रूप म चित्रित किए गए हैं और सभी न अपन अपन काय-व्यवहार आदि से अपनी उच्चता तथा महत्ता प्रमट की है इस नाटक के लिखने म यह भी ध्यान रखा गया है कि इसम शृंगार रम की मध भी न आवे । वास्तव मे दस नाटक का रम मुग्धत वीर ही है और उनके तीना भेन मयवीर कमवीर या उद्योगवीर तथा युद्धवीर प्रधान पात्रा म पूणरूपेण प्राप्त हैं । साथ ही यह नाटक अभिनय की दष्टि से भी प्रस्तुत किया गया है और मच पर वैसे ममी दश्य बचाय गए हैं जा नाटयशास्त्र के अनुसार वज्य हैं ।^२

आधार तथा निवेदन

भारत देश म रामकथा की दा धाराएँ प्रसिद्ध हैं, एक ता अति प्राचीन काल स चली आ रही महर्षि वाल्मीकि की रामायण की धारा है । इसम राम को आदश मानव के रूप म चित्रित किया गया है । इसके द्वितीय काण्ड स लेकर षष्ठ काण्ड पयंत वही श्रीराम को ईश्वर या परब्रह्म रूप म चित्रित नहीं किया गया है । प्रथम और सप्तम काण्ड मे जहाँ उनका अनिमानव रूप मिलता है विद्वान आनाचका के मत से वे अण प्रमित्त मान गए हैं । वाल्मीकि के पदचान समय का धारा के साथ उमम कुछ धाराएँ एसी भी मिल गयी जो उत्तर-का की भावधारा का प्रतिचित्र थी । रामकथा की दूसरी धारा अध्यात्म रामायण की धारा है । गान्धामी तुलसीदासजीका रामचरितमानम इसी धारा का उत्कृष्ट रूप है । सस्कृत भाषा के हाम के साथ वाल्मीकीय रामायण और अध्यात्म रामायण इन दोनों का सामाय जनता म प्रचार उत्तरात्तर पून हाता गया । गान्धामीजी ने इस कमी को अनुभव करके भाषा म राम चरित का भक्ति समर्धित रूप प्रस्तुत किया । इसम राम का परब्रह्म मानवर ही उनके चरित का चिन्तन किया गया है । श्रीबजरत्न पासजी के ‘आदश राम की कथावस्तु का आधार मुग्धत वाल्मीकि रामायण है ।

श्रीराम चरित्र का जा रूप भक्तियुगीन कविया न दिया, वह अति मानवीय है और इसलिए अतिरजित होत हुए भी आज के युग की भावधारा के अनुरूप वह उस रूप म उतना प्रेरणा का स्रोत नहीं बन सकता, जितना कि एक महामानव या महापुरुष का ।

१ बजरत्नराम ‘आदश राम’ का भारभिक निवेदन पृ० १

२ वही पृ० २३

नाटककार ने स्वयं ही इसको अधिक स्पष्ट किया है—

'रामचरित्र पर अनेक महान ग्रंथ काव्य, नाटकादि संहृत तथा हिन्दी में लिखे जा चुके हैं। ऐसी अवस्था में एक नया नाटक लिखने की क्या तुल्य है। इसे बतला देना उचित नात होता है। इस नाटक में यह ध्येय रखा गया है कि आरम्भ ही से रामचंद्र को ईश्वरावतार न मानकर उनके उन महत्वपूर्ण कार्यों का दिग्दर्शन कराया जाए, जिनके कारण वह मनुष्यत्व से दत्त तथा दत्तवत् स परमेश्वरत्व तक उंचे उठ गए। यदि वह सर्वशक्तिमान परब्रह्म परमेश्वर ही मानकर चला जाए तो जो कुछ उन्होंने इस मत्त सत्तार में किया था उसका विशेष महत्व ही क्या रह जाता है। किसी महान शक्ति की नींदा मात्र रह जाती है। साधारणतः जब किसी व्यक्ति विशेष में जन साधारण के स्तर से बहुत उच्च प्रतिभा, विद्वत्ता, साहस, शौर्य, श्रौंणायादि गुण पाये जाते हैं तब स्वभावतः मानव प्रकृति उन पर विशेष आस्था रखन लगती है। जब ये गुण अत्यधिक विस्फुट तथा व्यापक रूप में पाये जाते हैं तब वह आस्था श्रद्धा में परिणत हो जाती है। किंतु जब इन गुणों के कारण उक्त व्यक्ति विशेष के काम-कलाप से देशव्यापी लाम देग को पहुँचता है तब उस देग के निवासियों की श्रद्धा भक्ति इतनी उमड़ पड़ती है कि वे उसे परमेश्वर ही मान लेते हैं और हृदय से उसका अर्चन-पूजन करते हुए वही मातृ अपनी मातृ पीठिया के लिए छोड़ जाते हैं।

श्रीरामचंद्रजी ने अपने अपरिमेष गुणों के कारण अपनी प्रजा तथा राज्य के उत्पीड़क गानुआ का नाश कर ऐसा शांत समृद्ध राज्य स्थापित कर दिया कि आज तक तथा भविष्य में भी रामराज्य आदर्श माना गया और माना जाएगा। ऐसी महान आत्मा को परमात्मा या परब्रह्म मान लेना सहज स्वभाविक है। मानव रूप धारण कर मानव समाज के बीच रहते हुए ही ये सब कार्य किये गए थे अतः वे उसी रूप में वर्णित किए जाए तो अधिक स्वभाविक होगा। ऐसे ही विचारों से इस नाटक में श्रीरामचंद्र की महत्ता का प्रदर्शन उनके कार्यों द्वारा किए जाने का प्रयास किया गया है।^१

इस प्रकार लेखक ने मानवीय धरातल पर रखकर ही अपने नायक के लोकमान्यता की उदात्त चरित्र का चित्रण किया है। यह एक सोहृदय रचना है। लेखक की सफलता सराहनीय है। रामकथा में जहाँ कोई लोकोत्तर अथवा अनिरजित घटना आई है, लेखक ने उसको मुक्तियुक्त रूप देने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए अहल्या के उद्धार की घटना इसी प्रकार की है। रामचंद्र और लक्ष्मण का साथ लेकर मिथिला का जात हुए महर्षि विश्वामित्र रामचंद्र से गौतम पत्नी अहल्या के उद्धार के लिए कहते हैं—

एक प्रबल दस्यु ने उसका हरण करके उसे प्रस्तर बाट में बन्द कर रखा है। मुनि श्रेष्ठ निराश्रय तथा निरपराय हाकर उमरी मुक्ति के लिए तप में लीन हैं। यदि यह कार्य करोगे त्रिमूर्ती हमें दृष्ट आगा है तो तुम यथा तथा मुनि के आशीर्षक भी भागी होगे।^२

इस नाटक के प्रथम अंक के पंचम दृश्य में पुनः दो बार अहल्याद्वार की चर्चा हुई है। पहले तो महर्षि विश्वामित्र ने मिथिला पहुँचने पर उनके माय दो राजकुमारों को दण्ड

१ अक्षरानुसार आश्रम राम की भूमिका पृ ७१०

२ अक्षरानुसार आश्रम राम अंक १ दृश्य ४ पृ १८१

कर अथ उपस्थित ऋषि कुमारा की वीरता की चर्चा करते हुए कहते हैं—

'ऋषि—मुनिवर वास्तव म य दानो राजकुमार अयन्त ही गच्छिमम्पन्न, साहसी तथा गस्त्र-कुण्डन है। दम्ब-जैवन कोट की ताटकर तथा दम्पुराज का मात्कर अहल्या का उद्धार कर लाए। आन तक जिसका उद्धार प्रसिद्ध धर्मिय न कर सके उमका इतने सात्र नम प्रकार उद्धार कर डालना अमाधारण काय है। ये इम समय वीराप्रगण्य हैं।

मरा ऋषि—विश्वामित्रजी क्या महज म किमी की प्रशंसा करते हैं। भारत के उद्धार का आश्रय उन्होंने इहा का बनाया है ता इनकी शक्ति स पूण परिचित हाकर ही बनाया है। उनके आरम्भिक कार्यों का देखकर हम सबको भी पूण विश्वास हा गया है कि य अगम्भव को भी नम्भव करन योग्य वीर हैं।'^१

दूसरा स्थल वह है जहा तक महर्षि विश्वामित्र के पास जाकर बातचीत म उस प्रसंग का भी उल्लेख करते हैं—

'जनक—(सिर नवाक^१) धय दुआ। भगवन अहल्योद्धार की जो यह वार्ता सुनी जा रही है वह क्या सय है? यदि मलय है ता उस दुर्भेद्य दुग को किस वीर ने तोना?

विश्वामित्र—सय है राजर्षि और उमे ताडन वाला यह वीर बालक है।

जनक—(राम-लक्ष्मण का दम्बर साद) ऋषिवर, य किस राजकुल के भूपण हैं, जो अत्यन्त हानहार जान हा रह हैं?

विश्वामित्र—राजर्षि य कौशाधिप महाराज दगरय क पुत्र हैं। उनके चार पुत्रा म सबसे बड़े इहा रामचन्द्र न काट तोडा था। इ ही दोना वीरा न मारीच तथा सुबाहु द्वारा स्थापित उपनिग को ना कर सुबाहु तथा तात्का का मार डाला और मारीच भाग गया।^२

ऊपर क प्रसंगा म अहल्या के उद्धार का जा रूप नाटककार न यहा प्रस्तुत किया है वह प्रकार अथवा भाग की दृष्टि स स्वामात्रिण मल ही हा ग्राह्य नहा हो सकता। अहल्या का किमी दम्बु द्वारा धपहरण और अपन दुर्भेद्य काट म बंद कर रखना तथा उमक पति महर्षि गौतम का उसके उद्धार क उपाय की गोज म मौन बठकर माना जपत दिखाना उचित प्रनीत नही होना। इद्र म धर्मित, महर्षि गौतम स गप्त गिला बनी अहल्या का राम द्वारा उद्धार किम रूप म कराया जाए, जिममे अनिरजकता न आने पाय और स्वा-मात्रिकता क साथ बुद्धिब्राह्म भी हो यह समझ्या नाटयचार के सामन उपस्थित हुई और उस समय जा समाधान उम जंचा वह उसन उपस्थित कर दिया।

इस प्रकार क समाधान उन नाटका क ठीक हा सकत हैं, जिनकी क्यावस्तु केवल कल्पना पर आधारित है। परंतु जब बाइ नाटककार जनप्रसिद्ध कथा का लेकर नाटक की रचना करता है, ता उसम स्वीकृत तथ्या का परिवर्तित करत समय उमे उमके लिए काई ठाम आधार उपस्थित करना चाहिए। यदि अहल्या के इस प्रसंग क सम्बंध म लेखक न वाल्मीकि रामायण के वातवाण्ड और उत्तरवाण^३ क सम्बद्ध म-दर्मी का विवचक दृष्टि से

१ इन्द्रलेखास धामश राम अथ १ दृश्य ४ पृ० १८-१९

२ वही अथ १ दृश्य ४ पृ २०-२१

ध्यातुं न पठति या हाता मा उरु दग्ध मुग्ध मयाधातु मित जात । मग्नि वाग्धाति न
गौम व दाप स भट्टया वा तिता गती बयाया ३—

“तया गत्तया घ व गज भाषामग्नि दत्तया न ।
इह वपसत्प्राणि घृति निवगिष्यन्ति ॥
वानभक्षा तिराहारो तप्यता भग्नाकितो ॥
भद्रया तयभूतानामाश्रम तिम्र यतिष्यन्ति ॥
यदा त्वेतद् दन घोरे रामो वगारयात्मा ।
प्रागनित्यन्ति दुषपस्तसा पूता भविष्यति ॥
तस्यातिष्येन दुष सौ सोभमोदृशियन्तिता ।
मत्सयाण मुदा युक्ता एव यपुपरिषिष्यन्ति ॥”

धर्यान् दद्र वा न्न प्रार गाय दार गौम न धना पता भट्टया वा ना पाप न्या—
यही गुण हठारा क्यों ता वायु न लण करना हूँ तिराहार रत्तो हूँ भूमि पर

भूति म गायन करता हूँ गमस्त प्राणिया स भद्रय्य हारर दन भ्रात्रम म तिसाग करानी ।
जय दुषप न्गारय व पुत्र गम दन पार वा म ध्राण्य तय गुण पवित्र हानी । उनरा भ्रातिष्य
करन म गुम नाम और मादृशित हूँ तामागी और तय गुम भ्रातृपूतक मर पाप प्रार
वही पूव सौत्रययुक्त धना शरीर धारण कर सागनी ।

उपर उद्धत वाल्मीकि रामायण की इन पक्तिया म स्पष्ट है कि वही भी गौम व
ध्या म भ्रह्मया वा तिराहारुप म परिवर्तित हात वा उत्तम नही है । गाय स भट्टया व
उद्धार वा उपाय मा वता न्या गया है । और जय महर्षि विद्वामित्र की ध्याना स गौतम
व भ्रात्रम म राम पहुँच ता उठाने वहाँ भट्टया वा जिस रूप म दया उत्तम भी उत्तम
शिला बनन वा भ्रातास वही नहीं मिलता ।* गास्वामा तुलसीदासजी न जो भट्टया की

- १ वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड सग ४८ श्लोक २६ ३२
२ तत्राग छ महातेज भ्रात्रम पुण्यवचन ।
तस्यना महाभागामट्टया देवर्षिणीम् ॥
विश्वामित्रवच जुवा राघव सह तस्मण ॥
विश्वामित्र पुरस्ठत्य भ्रात्रम प्रविशेण ह ॥
दुर्लभ सहाभागा तपसा षीतितप्रमाम् ।
लोकदधि समागम्य दुनिरीक्ष्या बभूव ह ।
सा हि शीतमवावयेन दुनिरीक्ष्या बभूव ह ।
तयाधामपि लोकाना यावद्वरामस्य दशनम् ॥
शापस्यान्तमुपागम्य तेषा दर्शनमागता ।
राघवो तु तत्र तस्या पाणो जगूहदुर्गम् ॥
स्मरतो शीतमवच प्रतिजघाट सा हि वी ।
पादमर्ष्यं तयातिष्य चकार गुणमाहिता ॥

शिखा रूप में परिवर्तित बताया है उमरा आधार सम्भवतः अर्थात् रामायण है।^१ इसलिए नाटककार ने अर्थात् की घटना का लेकर जिस रूप में उसे तोड़ मोड़कर प्रस्तुत किया है, वह सवथा अयुक्त एवं निराधार है।

इसी प्रकार रावणवध के उपरान्त सीता की अग्नि परीक्षा के प्रसंग को भी मिला रूप में प्रस्तुत किया है। सीता के आग से, प्रवेश करने के लिए, लक्ष्मण में चिता प्रस्तुत करायी जाती है। इसी बीच राम भ्रूंचिन्त हो जाते हैं। अपनी उस अचेतावस्था में स्वप्न सा देखते हैं कि अग्निदेव स्वयं सीता के निष्कलक होने का सा भी दे रहे हैं। बस, राम हड़बड़ाकर भागकर जाते हैं और सीता को अग्नि में प्रवेश करने से पूर्व ही पकड़कर ले आते हैं और कहते हैं 'जिन तत्परता से तुमने शरीर भस्म कर लेने की दृष्टि इच्छा कर ली थी वह कुछ निश्चित प्रमाण था।'^२ बस, इतनी परीक्षा यहाँ पर्याप्त मान ली गयी है। स्पष्ट है कि नाटककार न अतिरंजन या अलौकिकता से प्रचान के लिए रामायण की उस प्रसिद्ध घटना को इस रूप में प्रस्तुत किया है।

भूमिजा^३

प्रस्तुत नाटक के रचयिता मवदानदजी ने अपनी इस रचना में सीता के जीवन से सम्बन्धित कथा को लिया है। एक पुराने कथानक को लेकर उसकी आत्मा को अतः रक्षित रूप में युगानुरूप एक नयी दृष्टि प्रदान करना लेखक की रचनापद्धति तथा मौनिकता दोनों का प्रकट करता है। नाटक की कथा इस प्रकार है—

महाराज नगर के प्रासाद के एक कक्ष में सीता की अग्नि शुद्धि का एक वहनु चित्र लटका हुआ दिखाई देता है जिसके नाचे अंग और चरित्र का युद्ध उठ रहा है और बड़े बड़े दीप जल रहे हैं। कचुकी तथा लक्ष्मण के पारस्परिक वातालाप में ज्ञात होता है कि महागनी सीता का दुमुख की सूचना के कारण नगर में निगमित करने का आदेश राम लक्ष्मण का दे चुके हैं।

लक्ष्मण की पत्नी उर्मिजा प्रवेश करती है और बतलाती है कि सीता के सम्प्रदाय की

१ गीतमन्तरी सापवस उपन देह धरि धीर ।

चरनचमन रज चाहति रूपा करहु रघवीर ॥

—रामचरितमानस बा० दो० २४३

इण्डियन प्रेस स० सम्पादक श्यामसुन्दर दास

दृष्टवाहृत्वा वपमाना प्राञ्जिन गीतमोत्रवीनु ।

दुष्स्व त्व त्रिष्ठ दुर्व स शिखायामाश्रमे भ्रम ॥

—अध्यात्मरामायण बालकाण्ड मग ५ श्लोक २७

२ आश्व राम पृष्ठ ११२

३ प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ दुर्गाकुण्ड रोड वाराणसी प्र० स १६६०

यह चर्चा और सूचना सबत्र प्रसारित हा गई है किन्तु सीता एवदम शांत है, आसू तक उनकी आश्रम नही दीख पडता । उर्मिला लक्ष्मण को सम्मति देती है कि किसी प्रकार यह दुषटना रोकनी चाहिए क्योकि यह निश्वास करना ही कठिन है कि सीता असती है ।

लक्ष्मण उर्मिला क हाथ म थमी हुद् पिटारी का अबलोकन करत हैं तो नवजात गिणुग्रा के पहनने योग्य सुदर वस्त्र उसम स टपक पडन है । उर्मिला बताती है कि य कौशल्या माता न तयार किए है । उसी समय दुमुख प्रवण करता है और उस देखत ही दोना, लक्ष्मण और उर्मिला घणा से मुह फेरकर चले जाते हैं । भरत का आगमन भी तत्काल हाता है । वे दुमुख को देखत ही उसे भाले से मारना चाहते हैं कि तभी प्रतिहारी आ पहुचता है जो लक्ष्मण का बुलाने आया है ।

राम और लक्ष्मण जत्र मिलकर उस स्थल पर आत है ता लक्ष्मण एक बार पुन राम स अपना दण्ड हटा लेने की प्रायना करते हैं किन्तु राम अपने निश्चय पर अटल रहते हैं । उधर दुमुख कौशल्या स क्षमा मागता है पर वे कुछ न कहकर उपेक्षा से मुह फेर लेती हैं । राम क पास आकर वे कहती हैं बेटा अपन इस खेल को बन्द कर । भाग्य की विटम्बना कि कौशल्या माता राम के निश्चय का निश्चय न मानकर इसे अत तक खेल ही मानती रहती है । सीता जिस समय राम से बिदा लन आती है तो लक्ष्मण तुरत आफर सूचित करत है कि रथ तयार है । राम उस समय अति यथित हो उठत हैं और कहत हैं—

अग्नी चम्पकारण्य चलना है—गुरु वसिष्ठ क पास । उनका आदेश उहे लौटा देना हागा । सती का परित्याग मुझसे न हागा । तुम लव राज करो प्रजा सतोप की सँस ले । मैं अपनी सीता को लेकर चला जाऊगा ।^१

अतन सीता वाल्मीकि क आश्रम म पहुचा दी जाती ह वही लव कुश का जन्म होना ह और वही उनका पालन पापण किया जाता ह । अगल दस्य म वाल्मीकि के आश्रम म लव कुश दिसाई दत है । वाल्मीकि उह बतलान हैं कि मन अचानक अनुष्टुप छन्द की रचना की है । वासन्ता का भी वाल्मीकि के द्वारा सूचना मिलती है कि राम अश्वमेध यज्ञ करनवाल हैं और सहर्षमिणी क स्थान पर उहान सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा का निर्माण करवाया है । इसी समय व यह भी बतलात हैं कि गूढ शम्भूज का वध करन क लिए राम दण्डकारण्य तक तो आएण, गायण महा भी आयें । लव भी पट ममाचार मुन लेता है और यह जानकर कि शम्भूज के वध का कारण उसका वदपाठ करना है ता वह तत्काल प्रुछता है—

गूढ को वत्पाठ का निषध ह यह त्रिग शास्त्र म त्रिगा है ?^२ ता वाल्मीकि काद सतोपजनक उत्तर नही द पात ।

उधर अश्वमेध यज्ञ का घाण आना है । लव के द्वारा घाडा पण्ड त्रिण जान पर भी अश्वमेधु (लक्ष्मण पुत्र) का हाथ लव पर नहा उठना । अतन राम को सूचना दी जाती है

१ लक्ष्मण सूत्रिका १०. ५१

२ महा १ ६८

कि एत बालक द्वारा जम्भवासन का प्रयोग किया गया है। यह जान राम का आश्चय होता है। युद्धक्षेत्र पर पहुँचने पर सीता से भी भेंट होनी है। वाल्मीकि के द्वारा व अपन पुत्रा के सम्बन्ध म भी जान जात हैं और हय विह्वन हो उठत हैं। तब कुश रवाभिमानवश घोडे को पकडकर भी छाड देत हैं—जिस पिता न उनकी मा को जीवन-मयत दुःख पहुँचाया, चाहे वह राजा ही क्या न हो व न ता उसका सम्मान करना चाहते हैं न उसका घोडा पकडकर उसस युद्ध करना चाहते हैं। एम निदयी पुरुष के साथ युद्ध करना भी व अपना अपमान समभत है और दाना नाई (लव-कुश) बाहर चल जात हैं। अत्र राम, सीता से राजभवन लौट चलन का आग्रह करत हैं पर सीता अत्र विलकुल तैयार नही होती और अन्तिम दृश्य म व विलीन हा जाती हैं।

आधार

नाटक की कथा यहाँ है। यह कथा दण्डक का भवभूति रचित उत्तररामचरित के कथानर का स्मरण कराती है जा आद्योपान्त कथण रम स श्रोत प्राप्त है। जहा तक नाटक म उपस्थित मार्मिकता तथा भाव प्राबल्य का प्रश्न है निश्चित रूप से नाटककार भवभूति स प्रभावित है और उस अक्ष म उत्तररामचरित की छाया इम नाटक म पूणरूपेण दरी जा सकती है किन्तु जहा तक कथा क प्रस्तुतीकरण का सम्बन्ध है नाटक स्वय म मौलिक है।

उत्तररामचरित के प्रमगा स नाटक की कथा सवांग म नही मिलती। वहा प्रारम्भ कुछ पूर्वघण्टित घटनाग्रा के परिचय से हाता है—सूत्रधार और नट की पारस्परिक बातचीत से विन्तित हाता है कि कौगल्या इत्यादि सभी रानिया तथा परिवार के अत्र सम्मानित सदस्य (वृद्ध-जन) ऋष्यश्र ग के आश्रम म द्वादश वापित्रीय यन म सम्मिलित होने गए हैं। ऋष्यश्र ग का परिचय भी दण्डक को यही मिलता है कि वे दशरथ क दामाद हैं क्याकि उनकी पुत्री शाता का विवाह ऋष्यश्र ग क साथ हुआ था।

तत्पश्चात य स लौट हुए अष्टावन ऋषि राम को वसिष्ठ का आदेश मुनात हैं कि प्रजा क अनुरजन क लिए उह सबदा सजग रहना उचित है। इसके उपरान्त चित्रदशन प्रकरण प्रारम्भ हाता है। लक्ष्मण, नवनिर्मित चित्र म राम और सीता को रामचरित की प्रमुख घटनाग्रा स सम्बद्ध चित्रा का अवलोकन कराते हैं।

अन्तर

- १ चित्रदशन सम्बन्धी कोई घटना प्रस्तुत नाटक म नही है।
- २ उत्तररामचरित म नाटक म वासन्ती का मिलन वनवास की अवस्था म सीता से नही हाता, जबकि इस नाटक म वासन्ती ही सीता की एकमात्र सहायिका है।
- ३ उत्तररामचरित क अन्त म, वाल्मीकि, अभिनय द्वारा राम को सीता के निष्वासन की अवधि म घटित घटनाग्रा का ज्ञान करात है। भूमिजा नाटक मे इस प्रकार का कोई प्रकरण नही है।
- ४ उत्तररामचरित का अन्तिम दृश्य राम-सीता के मिलन से समाप्त हाता है। प्रस्तुत नाटक म मिलन सम्भव नही हुआ है।

शेष घटनाएँ, यथा अश्वमेध यज्ञ की सूचना लव पुत्र के द्वारा जम्भवास्त्र का प्रयोग तथा सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा—वर्ष घटनाएँ नाटक में उत्तररामचरित के अग्ररूप में हैं किन्तु इनका प्रस्तुतीकरण अश्वमेध यज्ञ के बाद किया है।

वाल्मीकि रामायण

नाटक के मूल आधार के सम्बन्ध में वाल्मीकि रामायण का पर्यालोचन भी अर्पित है।^१ इस ग्रन्थ में प्रस्तुत नाटक की कथा उत्तरकाण्ड के अधिराग भाग में प्रिवरी पड़ी है।

नाटक में प्रस्तुत अधिराग प्रसंगा का आधार दसम स्पष्ट देखा जा सकता है। यथा सीता की अपकीर्ति फलाने वाली जनवर्षा लक्ष्मण के द्वारा सीता का वन में ल जाएँ जाना अश्वमेध यज्ञ सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा इत्यादि किन्तु दाना (वाल्मीकि रामायण तथा नाटक भूमिजा) में भिन्नताएँ भी पर्याप्त हैं—

अन्तर

१ कुछ प्रमुख पात्र यथा दुमुष, वासन्ती इत्यादि वाल्मीकि रामायण में नहीं हैं यद्यपि राम द्वारा रावण के सम्बन्धी चर्चाएँ सुनने का प्रसंग यहाँ है। वाल्मीकि रामायण में सीता सम्बन्धी लाकापवाद का समाचार राम यहाँ दुमुष से नहीं प्रत्युत अपने मित्र मद्र के पाते हैं।

२ वाल्मीकि रामायण में शत्रुघ्न लवणासुर का मारने के उद्देश्य से जात हुए मध्य में महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में टहरते हैं और वहीं लव कुश के जन्म के सम्बन्ध में जान लेते हैं। राम तब भी इस घटना से अनभिज्ञ रहते हैं क्योंकि शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम से लवणासुर का मारने के लिए सीधे आगे बढ़ जाते हैं और बारह वर्ष बाद लौटते हैं—

तथा तां क्रियमाणां च वृद्धाभिर्गात्रनाम च।

सकीतनं च रामस्य सीतायां प्रसवौ शुभौ ॥

अधराने तु शत्रुघ्नं शुश्राव सुमहत् प्रियम्।

पणशालां ततो गत्वा मातृदिष्टयेति चाब्रवीत् ॥^२

प्रस्तुत नाटक में राम के परिवार का कोड भी सदस्य इस घटना को नहीं जान पाता।

३ वाल्मीकि रामायण में राम जब शम्भूक वध के लिए जाते हैं तो शम्भूक वध के उपरान्त अगस्त्य मुनि के आश्रम में ठहरकर ही अयोध्या लौट आते हैं इसलिए 'भूमिजा' नाटक के सहस्र दण्डकारण्य जान तथा वहाँ उत्तररामचरित नाटक के सहस्र वन प्रातर को देखने तथा सीता से मिलने का अवसर नहीं आता।

४ प्रस्तुत नाटक में युद्ध (अश्वमेध यज्ञ के घाटे से सम्बन्धित) का विस्तृत वर्णन है। वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार का युद्ध आश्रम में नहीं घटता, यद्यपि घोड़े का विवरण वहाँ

१ वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड सग ४, ५२ ६६ ७५ ७६ ८३ ८४ तथा ८९ से ९७ सग पद्यत

२ वही उत्तरकाण्ड सग ६६

- ३।^१ महींपि वाल्मीकि लव कुश का लेकर अश्वमेध यज्ञ में आत हैं और वानका को यज्ञशाखा के समीप तथा समा में रामायण गान करने का आदेश दत्त हैं। यही राम का लव कुश के सम्बन्ध में पात होना है, सीता को अपनी युद्ध का प्रमाण देना के लिए यही समा में आना पड़ता है और यही वे धरती में विलीन हो जाती हैं।^२
- ४ वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु लव के साथ युद्ध नहीं करते, प्रत्युत लक्ष्मण ही अश्व व सन्धक बनाकर भेजे जाते हैं तथापि भूमिजा नाटक तथा उत्तररामचरित के सहज लव के साथ राम समा का युद्ध विवरण यहाँ गठी है।
- ५ वाल्मीकि रामायण में राम एक कृतव्य पालक प्रजारजक राजा के रूप में ही दीर्घ पंडित हैं जबकि प्रस्तुत नाटक में राम का मानवीय रूप ही अधिक उभरकर आया है।
- उपरोक्त भिन्नताओं से यह स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण में जहाँ पर्याप्त समानताएँ हैं वहाँ पर्याप्त भिन्नताएँ भी हैं। उत्तररामचरित में तो भिन्नताओं का ही आधिपत्य है। रामचरितमानस का तो नाटक का आधार कदापि माना ही नहीं जा सकता, क्योंकि—
- १ रामचरितमानस का उत्तरकाण्ड, बेबल रामराज्य की सुखदावस्था तथा राम के माहात्म्य का ही वर्णन मात्र है।
 - २ वहाँ राम और सीता के मिलन राज्याभिषेक तथा लव कुश के अयाध्या में ही जन्म के उपरांत क्या समाप्त हो जाती है। सीता का रसानल प्रवर्ण की घटना नहीं दिखायी गई है।^३

आगेव भूमिजा नाटक के आधार निश्चित करते समय यह कहना असंगत न होगा, कि ललक ने मन्वभूति व उत्तररामचरित तथा वाल्मीकि रामायण का पर्याप्त अध्ययन किया है और तत्पश्चात् रामायण के प्रमुख पात्र राम सीता, लक्ष्मण, भरत उर्मिला इत्यादि पात्रों एवं कुछ विशिष्ट ऊपर निष्पिष्ट घटना तथा उत्तररामचरित की गहन अनुभूति को लेकर स्वतंत्र रूप से नाटक का ताना-बाना बुना है। इसके मूल में नाटकराज की कल्पना प्रचुर मात्रा में है और यही कल्पना ललक की मायनाओं को भी सिद्ध करती चलती है।

विवेचन

नाटक 'भूमिजा' राम सम्बन्धी नाटक में प्रमुख स्थान रखता है। इस नाटक की कथा का ललक ने न केवल एक नय दृष्टिकोण से देखने का ही प्रयत्न किया है, बल्कि पात्रों के अंतर्गत में पैठर उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्वा को भी टटोला है और इस प्रकार मनो-बनानिक स्तर पर सम्पूर्ण नाटक का निर्वाह ललक ने बहुत सुन्दर ढंग से किया है।

वाल्मीकि रामायण के सहज राम यहाँ एक ठूठ नहीं हैं। नियमपालक राजा हात हुए भी एक धुकधुकाता हृदय उनके पास है जो उन्हें अपनी पत्नी के प्रति इतना निष्ठुर कदम उठाते हुए, पग-पग पर व्यथित बनाता है एवं साधारण मानव की तरह रलाता है। निम्न-

१ वाल्मीकि रामायण ह्य लक्षण सम्पन्न विमोच्यमि समाधिना। — उत्तरकाण्ड सर्ग ६१ श्लोक २१

२ वहाँ उत्तरकाण्ड सर्ग ६२ ६३

३ रामचरितमानस उत्तरकाण्ड २४ २५

लिखित उदाहरण इस कथ्य का प्रमाणित करन के लिए पयाप्त है—

यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वीतकल्पा ।
 करोत्विहात्मन शुद्धिमनुमाय महामुनिम ॥
 छन्द मुनेश्च विज्ञाय सीतापाश्च मनोगतम ।
 प्रत्यय दानुकामायास्तत दशत मे लघु ॥^१

इसके विपरीत भूमिजा नाटक म प्रस्तुत राम का कथन अत्रलोकनाथ उद्धृत है—

राम—सत्रह वर्षों तक राजमहल मे अनलक्ष्यता पर तड़पता रहा हूँ जानकी ! पिताच बन कर मरघट म घूमता रहा हू । भगवान बशिष्ठ का आत्म बच बनकर राम के वश पर जमा रहा है । प्रजा क पागलपन पर राम न पत्थर बनकर अपना हृदय बलिदान किया है । अब सामर्थ्य नहीं है देवि ! राम को राज्य नहीं चाहिए, राजमहल नहीं चाहिए धन बभब सम्पदा कुछ नहीं चाहिए । स्वयं भगवान भी उसके द्वार स आज विमुख लौट जावेंगे । राम भिन्न बनकर रहेगा उस भिन्नारी का सतोप चाहिए उस चाहिए पत्नी उसे चाहिए पुत्र सुननी हो कयाणि ! राम को चाहिए सीता राम का चाहिए लव-कुश ! इस विभूति पर त्रिभुवन का राज्य राम ठुकरा देगा ।^२

जहा तक नाटक के मूल्य का प्रश्न है साहित्यिक दृष्टि से यह नाटक अनि उच्च काटि का है । भाषा परिमार्जित पुष्ट एव कायात्मक है । प्रवाह एव प्रभाव के दशन यहा सवन होत है ।

नारी जाति के स्वाभिमान को मुखरित करना ही इस रचना के लेखक का मुख्य उद्देश्य है । आज की नारी जाति क सामने भी आज यह एक ज्वलन्त प्रश्न है कि वह आज के इस सघषमय ससार म जहा पुरुष हर पय पर उसको अपमानित लाछित एव प्रतापित करने का प्रयत्न कर रहा है—अपने अस्तिव की रक्षा किस प्रकार करे । क्या वह हर प्रकार के अत्याचार तथा अत्याय के सम्मुख घुटने टक द अथवा अपन कुल की मान मर्यादा की रक्षा करत हुए स्वाभिमान का आश्रय लेकर पुरुष को एक अविस्मरणीय पाठ पढाय ?

लेखक ने इस प्रश्न का समाधान उडे स्पष्ट शब्दा म अपनी रचना म सीता के मुख स स्थान स्थान पर करवाया है । निरपराधिनी सीता मुख बभब स एकाएकी छिन करके जब निविड बन प्रातर म छोटे दी जाती है ता उसके सम्मुख समस्या है कि वह कहा जाए क्या कर ? अतत वाल्मीकि के आश्रम म आश्रय लेकर अपना सम्पूर्ण जीवन वह वही काट देती है । राम उसे पुन स्वीकार करना चाहत हैं पर नारी का स्वाभिमान पुरुष क इस दान, अनुकम्पा को निरीह हाने पर भी ठुकरा देता है । सीता कहती है—

नारी का आत्मसम्मान अमर हो जाएगा पिता ! राम का प्रेम सीता के हृदय म प्रसय पयत जीवित रहेगा किन्तु सीता का गरीर अपमानित होकर फिर उसी घर म लौट जाये जहा स अपना काला मुह लकर वह चली आइ थी यह मुभम सहन नहा होगा ।^३

१ वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग ६५ श्लोक ५५

२ भूमिजा नाटक प० ८५

३ वही पृ० ८६

प्रस्तुत नाटक दु खान्त है। सीता राम के पाम लौटकर नहीं आती। लेखक ने इस प्रकार का अन्त जान-बूझकर किया है। इस सम्बन्ध में लेखक का कथन है—

“संस्कृत नाटका की परम्परा में ट्रेजिडी के लिए स्थान नहीं है। भवभूति ने उत्तर रामचरित के अन्त में राम और सीता का प्रयोग जाकर एक प्रकार की निस्संग तटस्थता ग्रहण कर ली है। मुझे यह रचा नहीं। नारी के आत्ममग्गन और गौरव का इस मिला स महत्त्व नहीं होता। राम का एतान परमानाप और कष्ट भाग भवन में स्वाभाविक है, किन्तु सीता की इस आत्मलानि के प्रति उन्मीलता, दा वार के कटु अनुभवों का बाद गिवाए बिना, मेरी समझ में वर्णनित्यति सम्पूर्ण नहीं होती। बचुकी और दुमुख के चरित्र भी दमीनिए मैन उमार हैं। लक्ष्मण और उमिला के प्रमग का यही प्रमाजन है।^१

अभिनय की दृष्टि में भी यह नाटक पूर्णरूपण सफल है। इस सम्बन्ध में लेखक का मत है—

रामच का ध्यान भरे लिए प्रमुख रहा है। किन्तु साहित्य-यत विम्भूत करन की चला मैन नहीं की है। हिन्दी में अभिनय नाटक नहीं हैं। दृश्यकाय का जो प्रधान लक्षण है इस अभिधाग का मात्रन करने के लिए मैं स्वयं अभिनीत करन के वांछी नाटक प्रकाशित करना उचित मानता हूँ। आवश्यक काट छांट हो जाती है। भूमिजा के साथ भी ऐसा ही रहा है।^२

इस प्रकार भूमिजा नाटक अभिनय के उपरांत ही प्रकाश में आया है। प्रथम बार इसका अभिनय २३ फरवरी १९५६ का तवाऊ में उत्तर प्रदेश सरकार के विकास संग्रहालय के रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया। लेखक के तीन अन्य नाटक विषयान्त, चेतनह और मिराजुद्दौला का प्रकाश भी अभिनय के उपरांत ही हुआ।

वस्तुतः सम्पूर्ण नाटक में एक ही दृश्य इस प्रकार का नहीं है जिसके प्रस्तुत करन में कठिनाई अनुभव हो। उन्मीलनाय सीता यहाँ घरनी में प्रवेश नहीं करती अपितु स्टज पर अचकार कर दिया जाता है और सीता रंगमंच में बाहर निकल जाती हैं। सीता के घरनी में विनय होन की घटना को त्रियामक रूप देने का ढग लेखक ने यही किया है जो अभिनय सुगम है और साथ ही स्वाभाविक भी।

युद्ध की घटनाएँ नेपथ्य में मवादा के द्वारा सूचित की जाती हैं। यथा— बालका के द्वारा जन्मकास्त्र का प्रयोग किया गया।^३

इस प्रकार नाटक की सम्पूर्ण कथा को लेखक ने बुद्धिसंगत एक स्वाभाविक रूप देने का प्रयत्न किया है और वह इसमें सफल रहा है। नाटक रोचक, मार्मिक तथा अत्यन्त प्रभावोत्पाक है।

१ लेखक के निवेदन से पृ ७

२ वृत्त पृ १०

३ नाटक पृ ७३

कुछ तकसगत नहीं प्रतीत होती। हाँ झूठे बरस वाली घटना का स्पष्टीकरण लेखक ने धृच्छा किया है—

‘गवरी—(टोकरी से एक एक बेर निरालकर दत्त हुए) यह लीजिए भगवत ! यह पहाड़ पर कं भाड़ का है मरसे मीठा है। मैंने एक एक बेर छाँट छाँटकर आपने लिए रखा है। जब मैं वन जाती थी तो सब भाड़ियों के बेर चगती चलती थी जिस भाड़ी कं बेर मीठे हाथ में उमम पट्टान बनाती चलती थी।^१

व्याख्यान की यह विशेषता यहाँ दृष्टव्य है कि जातिभेद अथवा धृच्छत समस्या जसा कोई प्रश्न लेखक ने नहीं छुआ है।

नाटककार का उद्देश्य गवरी की भक्ति भाव से आपूरित कहानी को प्रस्तुत करने के साथ साथ तत्कालीन राजनीतिक पहलू का चित्रित करना भी रहा है। नाटक के मुलपट्ट पर ही धरित है— राजनीतिक छाया सहित पौराणिक नाटक। पुस्तक के अन्त में भी लेखक ने मतंग ऋषि की पुत्री स्वधा से कहलवाया है—

‘स्वधा—सवा नहीं एक प्रायना है भगवत ! त्रि एक बार इम देस में इन रागसा का निराल दाजिए और इट्ट एमा मदेड तीजिए त्रि न मे विन्नेगी रह जाए न इतरा विन्नेगीपन बचा रहै। हमारा देग अयड हो सग धनधाय से पूण रहे और उम पर कभो तिसा विन्नेगी का गामन न हो।^२

यह नाटक राजनीति स्थिति के साथ तत्कालीन आधुनिक वातावरण पर भी प्रकाश डालता है। लेखक की आशा के साथ एक स्वप्न है जिस साकार कर पान की इच्छा भी सम्भवतः इम पुस्तक की रचना का एक लक्ष्य कहा जा सकता है।

नाटक की भाषा उलित मंडी बोली है जो पात्र और परिस्थिति के अनुकूल होने के साथ साथ प्रभावशाली भी है। नाटक अभिनय है। भूमिका में लेखक ने बगभूषा और दुग्ध विधान के महत्त्व भी दिये हैं जो नाटक के अभिनय में महापक्ष निष्ठ हो सकते हैं। नाटक का प्रथम अभिनय म० २००० की अन्तर्गत चतुर्थी का बागी की अभिनय रणाला में ही दिये हुए था। अन्तर्गत म० २००० और २००८ में यह नाटक अन्तर्गत में लया गया।^३

‘शवरी अछूत’

जसा कि नाटक के नाम से स्पष्ट है अन्तर्गत में गवरी का पुत्र रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक का प्रस्तुतीकरण पर्याप्त साक्ष्य है। अन्तर्गत का माहात्म्य प्रदर्शन भी

१ शवरी (गंगाधर शर्मा) पृष्ठ १११

२ अन्तर्गत ११२ का अन्तर्गत अन्तर्गत

३ अन्तर्गत की अन्तर्गत से

४ अन्तर्गत ४० निम्न अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत ११२१

शवरी की कथा द्वारा बड़े मार्मिक ढंग से किया गया है। अछूत समस्या इसमें प्रमुख है। भूमिका में लेखक ने लिखा है—

शवरी स्वयं गूंग ऋषिया के गूदागा की सुख प्रदान करने में अपने मोक्ष का साधन समझ रही है ।^१

कथानक

नाटक का प्रारम्भ ऋषिया के इस वात् विवाद से होता है कि अछूता का बहिष्कार उचित है। मतग ऋषि विषय में हैं। ऋषिया को अप्रसन्न करके भी वे शवरी को अपनी कुटिया के समीप रहने की अनुमति दत्त हैं। शवरी भी ऋषिया की उपेक्षा की बिना नहीं करती, क्योंकि मतग ऋषि उन उचित सम्मान और स्नेह देते हैं। शवरी ऋषिया के आश्रम में समिधा पहुँचानी है और सरावर तब का माग साफ करती है।

इस नाटक में भी ऋषि गणपति के द्वारा शवरी से घृणा क्रिय जान के कारण पम्पा सरोवर के अशुद्ध एवं खतरमय हो जाने की घटना वर्णित है। मतग ऋषि १०० बप की आयु प्राप्त कर शवरी को राम की प्रतीक्षा करने का आदेश दे समाधि द्वारा प्राण त्यागते हैं। राम आकर शवरी का आतिथ्य स्वीकार करते हैं। उसके जूटे धर खाते हैं। तत्पश्चात् नवधा भक्ति का उपदेश दे प्रस्थान करते हैं तो शवरी राम के चरणों पर गिरकर प्राण त्याग देती है।

आधार

यह नाटक रामचरितमानस पर आधारित है^२ क्योंकि शवरी का शूद्र जाति का होना नाटक और रामचरितमानस में एक समान है। नवधा भक्ति का विवरण भी इसमें रामचरितमानस के अनुसार ही है।^३

विवेचन

आचार्य मीताराम चतुर्वेदी लिखित शवरी नाटक से यह नाटक एकदम भिन्न है। कथानक में उतना अंतर नहीं है जितना दृष्टिकोण में। प्रथम नाटक शवरी में लेखक ने शवरी के साथ अछूत होने का प्रश्न नहीं जोड़ा है इसलिए अछूत समस्या जसा कोई प्रश्न वहाँ नहीं है जबकि प्रस्तुत नाटक में यही समस्या प्राथमिक है। सम्भवत इसका कारण नाटका के पथक स्वात ही हैं चतुर्वेदीजी ने अपने नाटक का कथानक वाल्मीकि रामायण से लिया है जिस काल में बगवितमेद अथवा अछूत समस्या जैसे कोई प्रश्न न थे, रामचरितमानस के सज्जन-काल तक आत आत परिस्थितिवत् छुआछूत की समस्या अस्तित्व में आ गयी थी

१ शवरी अछूत भूमिका पृ० ३

२ रामचरितमानस मानसाक अरण्यकाण्ड, ३४ दोहा चौपाई १

३ रामचरितमानस अरण्यकाण्ड ३५ दोहे से ऊपर दो अंतिम पंक्तियाँ तथा ३५ दो० के पश्चात् प्रथम ३ चौपाइयाँ

और इसीलिए लेखक ने अपने युग की समस्या का समाधान रामचरितमानस में पाकर ही इस समस्या को उभारकर लिखा है।

शवरी'

तीसरा नाटक 'शवरी' सठ गाविन्द्यास लिखित है। इस नाटक के चार खण्ड हैं—
कहानी एकांकी नाटक, एकपात्री नाटक और श्रवण गाय। क्यानाक क्रम में इस प्रकार है—

कथानक कहानी खण्ड

नायिका शवरी केवल छ वष की है। वह एक भील बालिका है और दक्षिण में दण्डकारण्य वन में पम्पा नाम के एक सरोवर के तट पर सप्त ऋषियों के आश्रम में रहती हुई उनकी सेवा करती है।^१ शवरी इन ऋषियों की चार वष तक बड़ी लगन से सेवा करती है। एक समय पुत्र मुहूर्त में ये ऋषि आश्रम को छोड़ भागे बढ़ते हैं। प्रस्थान करते समय वे उसकी सेवा में प्रसन्न होकर वर देते हैं कि भगवान रामचन्द्र के दक्षिण में पधारने पर वे उस दशन देंगे।

एकांकी खण्ड

नाटक के द्वितीय खण्ड एकांकी में शवरी को दस वष की अवस्था का दिखाया जाता है। ऋषियों की प्रस्थान के बाद पर वह व्यथित होती है किन्तु श्यामा गाय की सेवा करती हुई राम के दशन की आशा में धैर्य धारण करती है।

एकपात्री नाटक

इस खण्ड में ऋषियों को गय चार वष बीत जाते हैं। शवरी चौदह वष की हो जाती है। दो वष पश्चात् पौडगी अवस्था में भी राम के प्रति उसकी तल्लीनता और आतुरता वही है। दो वष प्रतीक्षा में और बीन जाते हैं। बारह वष का एक युग और बीतता है, पर शवरी की प्रभु प्रतीक्षा और स्वागत की तयारियाँ उसी प्रकार चलती रहती हैं।

श्रवण काव्य

अंतिम चतुर्थ खण्ड में शवरी को एक दिन राम का समाचार मिलता है। आगतुको से वह राम सम्बन्धी—ताडकावच, विवाह वनवास सीताहरण इत्यादि समाचार सुनती रहती है। आखिर एक दिन राम आ पहुँचते हैं। शवरी इस समय तक चौरासी वष की

१ प्रकाशक भारतीय विषय प्रकाशन फुवारा दिल्ली, १९५६

२ यहाँ पर सप्त ऋषियों के नाम बड़े हैं जो कि गण में सप्तऋषि नाम से प्रसिद्ध तारो हैं।

हो जाती है। उसके देखने मुनन की गस्त्रिया का ह्रास होता जाता है, किन्तु अपने धाराघ्य देव राम के पहुँचने पर वह उनका भरपूर स्वागत सत्कार करती है। उह बेर खिलाती है और फिर राम व प्रस्थान के समय उनसे चरणा मे गिरकर प्राण त्याग ती है।

शबरी स्वय राम व दान करने नहीं गयी—नाटक म इसका कारण यही बताया जाता है कि अति बड़ा और गिरल होन के कारण एर तो वहाँ उमरा पहुँचना ही बठिन था और पहुँचकर भी वह उनके सवा सत्कार का अवसर भला कस पाती वह तो अपने घर आने पर ही मम्मव था। दूसरे उसे ऋषिया के वचन पर विश्वास था जो कह गये थ, कि राम एक तिन स्वय उसकी कुत्रिया मे पधारेंग।

इस प्रकार गद्य-पद्य मित्रित यह सम्पूर्ण कथा भक्तिरस की मामिनता एव दशन की लालसा स अ्रोत प्रात है। कई स्थल तो वस्तुतः अत्यन्त दृश्यद्रावन हैं यथा—

क्या इस वसत का नी अत लिखा यो ही है ?

किया प्राणनाथ आके प्राणा को जुडायेगे।^१

इसी बीच काल और अपने गरीर मे

होड लगी देतकर सोच हुआ उसको

अत मे क्या मेरा, रामदग्न किये जिना

अन्त होगा, और तब ज्ञ है वे पास ही

कभी नहीं, कभी नहीं, वर है ऋषियों का।

सर नहीं सकती में दशन किये जिना ॥^२

आधार और अन्तर

प्रस्तुत नाटक के आधार वाल्मीकि रामायण तथा रामचरितमानस हैं^३ किन्तु वाल्मीकि रामायण मे नाटक की कथा म यह अतर है कि यहाँ मतग ऋषि का कही उल्लेख नहीं है, जबकि वाल्मीकि रामायण म मतग ऋषि एव प्रमुख पात्र है।^४ हा वाल्मीकि रामायण व अनुरूप सप्त ऋषिया के नाम इसम अवश्य ह। रामचरितमानस की कथा म जहा शबरी का एक नीच जाति का स्त्री के रूप म दिखाया गया है, वहाँ नाटक मे इमे केवल एक भील वाला के रूप म प्रस्तुत किया गया है।

विवेचन

इम दृष्टि स प्रस्तुत नाटक वाल्मीकि रामायण के अधिक निकट है क्योकि शबरी की मृत्यु का सकेत भी इम नाटक म वाल्मीकि रामायण के सदृश है। शबरी की तमश समीप आती बढावस्था का चित्र प्रस्तुत करने का ढग सृष्टी का अपना ही है। मूल ग्रथ म कही भी इस प्रकार का चित्रण नहीं है। गली तथा कथानक दोना म नूतनता एव

१ शबरी (सठ बोधिदगस) एकपात्रा नाटक पच्छ ३७

२ वही अथकाथ खण्ड पच्छ ५४

३ वाल्मीकि रामायण भरष्यकाण्ड सग ७४

रामचरितमानस भरष्य काण्ड बाहा ३३ ३६ प० ५८३ ५८५ (गीताप्रेस मानसाक)

४ वाल्मीकि रामायण भरष्यकाण्ड सग ७४ श्लोक २१ २२

परिष्कृति नाटककार की मौलिकता के परिचायक हैं, किन्तु इस मौलिकता एवं नूतन दृष्टिकोण का श्रेय युग के बदलते मानदण्डों को ही दिया जा सकता है। शली के सम्प्रथम लेखक का कथन है—

“राष्ट्रकवि मयिलीगरणजी गुप्त की यथाधरा के महान् इन रचना में कहाना, नाटक और श्रम काय में तीना तो हैं ही, इन तीना माध्यमा के अनिश्चित इन रचना में एकापत्री नाटक का भी समावेश किया गया है। यह बात यहाँ तक ठीक है, यह तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु एकापत्री नाटक लिखना मुझे भी कुछ कठिन अवश्य लगा। इस रचना के गद्य अंशों को भी गद्यभाष्य के रूप में लिखने का प्रयत्न किया गया है।”^१

यह नाटक अभिनय के पाठ्य अधिक है। सम्भवतः इसकी शली सामान्य स्तर से उत्कृष्ट है। जनसाधारण इसकी विशेषताओं का पहचानन में असमर्थ हो सकता है।

इस प्रकार ये तीना नाटक जहाँ तक शबरी की अनुपम भक्ति का प्रश्न है सभी समान हैं। शबरी की मृत्यु केवल दो नाटकों में—सठ गोविन्ददास की शबरी तथा गौरीगकर मिश्र की शबरी अछूत में लिखाई गयी है।^२ शबरी का अछूत के रूप में शबरी अछूत में केवल गौरीगकर मिश्र ने चित्रित किया है जो वाल्मीकि रामायण तथा रामचरित-मानस के अनुरूप है।

श्रवणकुमार-कथा

श्रवणकुमार का चरित्र अपनी मातृपितृ भक्ति के कारण लोक में भी बहुत प्रसिद्ध रहा है। रामायण का यह एक प्रमुख आख्यान है। श्रवण के चरित्र से सम्बद्ध निम्नलिखित नाटक उपलब्ध हुए हैं—

श्रवणकुमार	हरशंकरप्रसाद उपाध्याय
श्रवणकुमार	राधक्याम कयाबाचक
श्रवणकुमार	वेणीराम त्रिपाठी श्रीमाली

१—श्रवणकुमार^३

हरशंकरप्रसाद उपाध्याय लिखित श्रवणकुमार नाटक की कथा का स्वरूप निम्न लिखित है—

- १ शबरी (सठ गोविन्ददास) निवेदन से
 २ वाल्मीकि रामायण अरण्यकाण्ड श्लोक २२
 रामचरितमानस अरण्यकाण्ड राहा २४ अंतिम चौपाई
 ३ प्रकाशक बजराम चक्रेलर बनारस द्वितीय संस्करण १९२८

कथानक

नागान्या पर विष्णु और माया का वार्तानाप होता है। विष्णु भक्ति की महत्ता बताते हैं। माता पिता की अडिग भक्ति के कारण ही श्रवणकुमार के ऊपर किसी प्रकार की माया का प्रभाव नहीं हो पाता।

श्रवणकुमार अपने माता पिता को ईश्वर के मायात रूप में मानकर उनकी सर्वांत-कारण से सब प्रकार की सेवा करता है। उसकी पत्नी विद्या भी पति, माम और समुर की सेवा में लगी रहती है। उसे सेवा भाग से विरल करन का प्रयत्न भी मित्र व वहवावे में आकर उसके भाइ द्वारा किया जाता है। पति के घर में घोड़े से उसे पिता व घर माना का बीमारी का असय वहाना करके ले जाया जाना है। वहा वह अपने भाई और मामी की सही माग पर लाती है।

गुरु वमिष्ठ के आदेश से श्रवणकुमार अपने माता पिता को सब तीर्थों की यात्रा और देवदशन के लिए कामरी में बिठाकर ले जाता है। प्रयाग काशी, बदरीनारायण आदि तीर्थों पर भी जाता है। उसकी पत्नी विद्या भी उमे खोजत खोजते बदरीनारायण पहुंचती है और वही उसकी मृत्यु होती है। तीर्थयात्रा से लौटने पर अयाध्या के पास वन में रात्रि को महाराज दण्ड के शम्भेदी बाण से श्रवण की मृत्यु होती है उसकी मृत्यु के ममाचार से श्रवणकुमार के माता पिता की भी मृत्यु हो जाती है। पिता मरत समय दण्ड के पुत्र वियोग में मरने का भाष दत्त हैं। माता भी राजा के मतक शरीर की उचित समय पर दाह क्रिया में हो सकने का शाप देती है।

आधार

प्रस्तुत नाटक व आधार मूलरूप से रामचरितमानस, वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण तथा ब्रह्मपुराण हैं।

रामचरितमानस

रामचरितमानस^१ में मृत्युान्या पर लेटे हुए महाराज दण्ड के द्वारा क्या सुनाये जाने का उल्लेख तो है किंतु कवि ने दण्ड के मुख से क्या का वणन नहीं करवाया है। वहां केवल इतना ही बणित है—

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती । भइ जुग सरिस सिराति न राती ॥
तापस अथ साप सुधि आई । कौसल्यहिँ सब क्या सुनाई ॥
भयउ बिकल वरमन इतिहासा । राम रहित विग जीवन आसा ॥^१

१ रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड ११४ दोहे की पहली चौपाई

२ वही ११४ दोहे की प्रथम और दूसरी चौपाई

वाल्मीकि रामायण

इसके विपरीत वाल्मीकि रामायण^१ में यह कथा अति विस्तार में वर्णित है। राजा दशरथ मृत्युपाप्मा पर पड़े हुए कौशल्या का वह दुःख प्रथम स्वयं गुनाहें विमल बारण उन्नी मृत्यु उम रात निश्चित है। श्रीरामराजकी का वन में गए हुए वह छठी रात बीन रही थी। तभी राजा दशरथ को अपना पूर्वजन्त दुःख का स्मरण हुआ। कथा का अंत यहाँ इस प्रकार है—

पिता के जीवनकाल में राजा दशरथ की अति अल्प अग्ने धनुषधर के रूप में था। वे अश्वमेधी बाण चलाना जानते थे। क्या ऋणु व सुगण मुद्रावन समय में वे अपने धार धनुष बाण लेकर सरयू नदी के तट पर गिरवार सेना के लिए गए। वहाँ त्रिगी उपद्रवकारी भसा मनवान हाथी गिहू भयना व्याघ्र अत्यासि विना हिंगन जनु का भारत की इच्छा से वे नदी के पान ही टूटकर गए। उस समय वहाँ सत्र आर धार अघवार छा रहा था। अश्वमात उहाने पानी में घड़ा भरता का स्वयं गुना। अतएव वहाँ हाथी की कपना करके उहाने विपथर साथ के समान ताश्र बाण छाड़ दिया। बाण के छूत ही राजा दशरथ का किसी घनवासी का हाहाकार स्पष्ट गुनाइ दिया। अपना को निष्पाप धापिन करता हुआ उस बाणी की पीडा से अति व्यथित हा रहा था। वहाँ राजा दशरथ को उमक य गण स्पष्ट गुनाई दिये कि—मुझे अपने इस जीवन के नष्ट हान की चिन्ता उतनी नहीं है। मरे मारे जाने से मरे माता पिता को जा कष्ट होगा, उसी के लिए मुझे बारम्बार गोक हा रहा है।^२

य करण वचन सुनकर दशरथ उस ऋषिकुमार के पास गए उहाने उस अति दीन दगा में देखा—उसकी जटाए बिलरी हुई थीं, घड का जल गिर गया था और वह बाण से विधा पडा था। आसन मृत्यु बाल उस ऋषिकुमार न बताया कि वह प्यासे माना पिता के लिए पानी लने की इच्छा से वहाँ आया था। आश्रम में वे उसकी प्रतीभा कर रहे हाने। उस तपस्वी ने दशरथ से उस बाण को निकाल देने की भी प्रार्थना की, क्योंकि ममस्थल पर लगा हुआ वह बाण उमको बहुत पीडा पहुँचा रहा था। दशरथ यह सुनकर अति द्रवित हुए परंतु बाण को खींचने के सम्प्रथ में वे दुविधा में पडे थे, क्योंकि बाण के निकाल देने से उस ऋषिकुमार की तत्काल मृत्यु निश्चित थी। उधर ब्रह्महत्या का भाव भी उह आतन्वित बना रहा था। दशरथ की आशका पहचानकर उस ऋषिकुमार ने कहा कि मैं वश्य द्वारा

१ वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड सग ६२, ६४ के २७ श्लोक तक

२ वाल्मीकि रामायण—

नम तपानशास्त्रामि जीवितसयमात्मन ॥ ३

मातर पितर चाभावतशास्त्रामि मन्वथ ।

तपेति मथन बद्ध चिरकानमत मया ॥ ३१

तो नून दुबलावधो मत्प्रतीक्षी पिपासितो ।

चिरमाशा वृता कष्टा तुल्या सद्यारविष्यत ॥ ३२

गूढ़ जातीय माता के गम से उत्पन्न हुआ है, इसलिए हम चिन्ता को आप अपने हृदय से निकाल दें।^{१)} मेरे पिता के आश्रम की ओर वह पगडंडी जाती है, मुझे इस पीड़ा से मुक्त करके आप उह सूचना दें, उह आप प्रमत्त कर लें जिसमें कुपित होकर व आपका शाप न दें। दशरथ न नदनुमार ही किया और फिर ऋषिकुमार द्वारा सन्केतित माग पर जाकर उहाने उसके बद्ध माता पिता को जल खान की सूचना दत्त हुए अपना पन्चिच दिया और उनके पुत्र की दुःखद मृत्यु की जानकारी भी दी।

दशरथ द्वारा अपने मुख से अपना पाप प्रकट किये जाने के कारण वे लोग उहे भस्म हो जाने का कठोर शाप नन्ना दे सके। इस मुनिकुमार के माता पिता का, उनकी इच्छानुसार दशरथ उस स्थल पर ले गए, जहां उनका पुत्र मरा पड़ा था। उन दोनों तपस्वियों ने पुत्र की दह की टटानकर स्पर्श करत हुए कृष्ण विलाप किया तत्पश्चात् वे दम्पति पुत्र को जलाजलि दान के त्राय मत्पर हुए। इसी समय वह धमन मुनिकुमार अपने पुण्य कर्मों के प्रभाव से दिव्य रूप धारण करके अपने माता पिता को धामनित करता हुआ शीघ्र ही इंद्र के साथ स्वर्ग को चला गया। पुत्र के वियोग से व्यथित उहाने दशरथ से कहा—

१. पुत्र के वियोग से इस समय जसा कष्ट हम हो रहा है, ऐसा ही तुम्हें भी होगा। तुम भी पुत्र शोक से ही बाल व गाल में जाओगे।^{२)} इस प्रकार शाप देकर वे बहुत दूर तक कृष्णा जनक विलाप करत रहे और फिर वे पति पत्नी अपने शरीर का जलती हुई चिता में डालकर स्वर्ग को चले गए।

अध्यात्म रामायण

अध्यात्म रामायण^{३)} में उपलब्ध श्रवण उपाख्यान का स्वरूप वाल्मीकि रामायण के सट्टा ही है, अन्तर केवल दो स्थला पर है।

अन्तर

- १ प्रथम अन्तर उस स्थल पर है जव अर्ध तपस्वी दम्पति पुत्र की मृत्यु के कारण विलाप करत हुए राजा दशरथ को चिन्ता बनाने का आदेश दत्त है और तीना एवं साथ ही अग्नि में भस्म होकर स्वर्गलोक का चले जात है। उसी समय श्रवणकुमार के बृद्ध पिता राजा दशरथ को शाप दत्त है^{४)}। वाल्मीकि रामायण में प्रथम श्रवणकुमार ही इंद्र के साथ स्वर्गलोक का जाता है।
- २ वाल्मीकि रामायण से अध्यात्म रामायण के आख्यान में दूसरा अन्तर यह है कि वाल्मीकि रामायण में ऋषिकुमार के बध की घटना राजा दशरथ के युवाकाल पिता की

१ वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड मग ६५ श्लोक २ २५

२ वही मग ६५ श्लोक ५५

३ अध्यात्म रामायण अयोध्याकाण्ड मग ७ श्लोक १२ ५५

४ वही सर्ग ७

जीवितावस्था में और दशरथ के विवाह में पूव घटी है^१, जत्रि अध्यात्म रामायण में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। वहाँ राजा दशरथ ने यवन इतना ही कहा है—

पुराह धीवने दपतश्चापबाणधरो निनि ।
अधर मृगयासक्तो नद्यास्तरे महायने ॥^२

ब्रह्मपुराण

ब्रह्मपुराण^३ में यह कथा 'दशरथ चरित्र' अध्याय में अन्तर्गत आती है। प्रचारांतर में यह कथा पूव निर्दिष्ट दोना प्रथा के सदृश ही है। कथा की प्रमुख विशेषता यही है कि, यहाँ उस वृद्ध पुरुष का नाम श्रवण है जिसका पुत्र दशरथ के बाण से मृत्यु को प्राप्त होता है। पिता के लिए श्रवण नाम का सक्त दो बार किया गया है।^४ यहाँ रात्रि के समय जल पीने की दोना की (माता पिता की) इच्छा को भी यवन किया गया है।

दूसरा अंतर उस स्थल पर दीख पड़ता है जहाँ ग्राम-नृत्यु कुमार ने स्वयं का ब्राह्मण घोषित किया है। अथ स्थला पर वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण में मुनिकुमार की जाति वश्य है।

प्रस्तुत नाटक के मूल आधार के चारों ही स्थल मान जा सकते हैं क्योंकि चारों स्थलों की कथा लगभग समान है और नाटक की कथा से भी अधिकांश में साम्य रखती है। कल्पित स्थल तथा घटनाएँ नाटक में निम्नलिखित हैं—

- १ मूल प्रथा में वही भी श्रवणकुमार के विवाहित होने का सक्त नहीं है। अतः नाटक में श्रवण की पत्नी विद्या कल्पित पात्र है अथवा इस पात्र से सम्बन्धित सम्पूर्ण क्रिया-कलाप भी कल्पित है।
- २ नाटक में वर्णित माता पिता की कामरी में बठानर श्रवण द्वारा तीर्थ यात्रा करवाय जान की घटना भी मूल कथाओं में प्राप्त नहीं आती। मुनिकुमार अपने आश्रम के निवास स्थान से ही माता पिता के लिए जल लेने आता है।
- ३ सबसे महत् अन्तर जो मूल स्थला तथा नाटक में दृश्य है वह है कि इन कथाओं में वही भी दशरथ के द्वारा विद्ध कुमार का नाम श्रवण नहीं बताया गया है। कोई अथ विशेष नाम भी इसके लिए नहीं दिया गया। सबत्र मुनिकुमार ऋषिपुत्र तथा तपस्वी इत्यादि शब्दों से ही उसका उल्लेख किया गया है। हाँ, ब्रह्मपुराण में तपस्कुमार के पिता का नाम अवश्य श्रवण है।^५

विवेचन

नाटक की कथा निःसन्देह रोचक और हृदयस्पर्शी है। एक साधारण लोकप्रसिद्ध

१ वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ६३

२ अध्यात्म रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ७।२

३ ब्रह्मपुराण त्रितीय खण्ड अध्याय १२३ श्लोक ३३-५३

४५ वही सर्ग १२३ श्लोक ७-७५

घटना को नाटकीय रूप दे डानना नाटककार की मौलिकता एवं प्रतिभा को प्रकट करता है।

२-श्रवणकुमार^१

राधेश्याम कथावाचक लिखित यह नाटक तीन अंका में विभाजित, सरल भाषा में लिखा हुआ एक रोचक नाटक है। प्रकाशन क्रम से इस विषय का यह दूसरा नाटक है। कथा इस प्रकार है—

कथानक

नाटक की कथा हरशंकर उपाध्याय लिखित श्रवणकुमार नाटक के ही सदृश है। इस नाटक में केवल एक उपकथा और जोड़ दी गयी है, जिसका उद्देश्य सम्भवतः माता पिता की सेवा न करने के दुष्परिणामों को ही दिखाना प्रतीत होता है। यह उपकथा प्रासंगिक एवं काल्पनिक है। इस उपकथा का रूप इस प्रकार है—

उपकथा

चम्पकनाल चमेली से विवाह हान के उपरांत, अपने पिता मानुषकर और माता लक्ष्मी का धुलाप में अपनी पत्नी के कहने से निकाल देता है और श्रवण की पत्नी विद्यादेवी को, उसके भाई नन्दाशंकर का बहकाकर पति के घर से बुलवा लेता है। श्रवण पाकर उसके सनीत्व को भ्रष्ट करने की दुरमिलापा भी वह व्यक्त करता है, यहाँ तक कि बलात्कार करने पर उतारू हो जाता है। सती विद्या के शाप से वह कोणी बनता है। इसकी पत्नी चमेली घर छोड़कर एक साधु चेतनदास के साथ घर का धन लेकर भाग जाती है। बाप का दोना मर जात है। जीवन के कष्ट अनुभवों के बाद चम्पक भी माता पिता की शरण में जाता है और उनका भवक बन जाता है।

उसके बाद की कथा दोना नाटका में समान है।

आधार

इसके आधार-स्थल भी पूर्व उल्लिखित नाटक व आधार-स्थलों के समान हैं।

३-श्रवणकुमार^२

वणीराम त्रिपाठी श्रीमाली लिखित इस नाटक में अद्य नाटका की अपेक्षा कुछ

१ प्रकाशक लेखक स्वयं राधेश्याम कथावाचक बरेली प्रथम सं० सन् १९३२

२ प्रकाशक टाकुरप्रसाद बुकसेलर कचौड़ी गली बनारस अद्युप सत्स्वरण सन् २००५ वि० प्र० सं० सन् १९९३ वि०

विशेषताएँ है, जो इस प्रकार हैं—

- १ श्रवण के माता पिता का नाम यहाँ जानवती और गात्वन दिया गया है जो किसी भी मूलकथा में उपलब्ध नहीं होता। युवावस्था बीतने पर भी पुत्र का मुग्ध न दल सक्ने से ये चिंतित है। नागदजी के आदेश से वह पुत्र प्राप्ति के लिए बारह वर्ष पयंत नमि पारण्य में कठोर तपस्या करत है। ब्रह्मा प्रसन्न होकर उह पुत्र प्राप्ति का वर देत है, किंतु इस वर पर कि पुत्र जल्द ही होत पर दाना की आँखा की ज्योति नष्ट हो जाएगी।
- २ यहाँ अवातर कथा प्रमकुमार और पृणिमा की है जिह माता पिता और सास ससुर की सेवा का अवसर दिया गया है। श्रवणकुमार और उसकी पत्नी विद्या के ससुर से दोना में अच्छा परिचयन दिखाया गया है जसा कि सत्सगति से हाना अपेक्षित है।
- ३ यहाँ विद्यावती श्रवणकुमार की यात्रा में जहाँ वह अपने माता पिता की तीर्थ यात्रा का ल जाता है आरम्भ से ही साथ जाती है।
- ४ वषा के कारण गलन से विद्या की मृत्यु का उल्लेख यहाँ भी है।

आधार तथा विवेचन

मुख्य आधार-स्थल प्रथम दोना नाटका के सट्टा ही हैं। नाटक में सौंदर्य लान के लिए ही पूव उल्लिखित विभिन्न कल्पित घटनाओं की सट्टि यहाँ की गयी है जिनसे नाटक नि सदेह अति रोचक बन गया है।

रावण^१

देवराज दिनश द्वारा लिखित नाटक 'रावण पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान के विभाजन से पूव सन १९४२ में लिखा गया था। इसका प्रकाशन-काल विभाजन के पश्चात का है। नाटक के प्रारम्भ में दो शत लिखत हुए लेखन ने इस सम्बन्ध में प्रकाश डालत हुए बताया है कि पञ्जाब से आत हुए नाटक की पाहुलिपि उनके पास थी। तथापि नाटक के पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार ने विभाजन के समय की समूची परिस्थिति का नाटक के माध्यम से मुखरित करने का प्रयत्न किया है।

जसा कि नाटक के शीपक से स्पष्ट है कथा का प्रमुख नायक रावण है, जिसने राम की पत्नी सीता का हरण किया राम के पक्ष के समीप कृत्तिका को त्रास दिया, भरपूर कष्ट पहुँचाया—नरक ने इस सप्तमे एक नयी दृष्टि से दखा है, उसने इस सबका कारण, शूणलता का अपमान निश्चित किया है। राम का रावण की भगिनी का निरस्तार करने का ही दुःखद

परिणाम लम्बे काल तक भागना पड़ा। इस प्रकार इतिहास में प्रथम चार रावण कंचरिज का उज्ज्वल पक्ष पाठक के समक्ष आता है। नाटक में लेखक ने रावण को तीन वस्तुएँ ही अति प्रिय लिखाई हैं—शिव, वेणु की ऋचाएँ और बहन। रावण यहाँ एक दुराचारी आततायी तथा अशुभकी राजा के रूप में नहीं दीख पड़ता। उनके समस्त प्रयास, भले ही वे राम को बचत देने का प्रयास करते हैं। रावण को एक सम्माननीय पद पर स्थिर कर देते हैं और इस प्रकार परम्परा से चली आती हुई एक निश्चित धारणा का खण्डन हो जाता है।

गुणगुणा रावण को बहन है, जो राम रावण के इतिहास प्रसिद्ध युद्ध का प्रधान कारण रही है—गुणगुणा के चरित्र पर भी नाटककार ने एक नया प्रकाश डाला है, पाठक तथा दर्शक का महानुभूति समक्ष बराबर बनी चलती है। गुणगुणा के नाम में भी लेखक ने परिवर्तन किया है। कारण बतलाते हुए लेखक ने लिखा है—

‘मैंने गुणगुणा को केवल गुणगुणा की ही सजा दी है। वसंता गुणगुणा नाम अपने में भावुक भाव लिए हुए है जिसका अर्थ है—गुण जन्म क्षमकीने नखा वाली। कुछ विद्वानों का मत है कि उमरा नाम गुणगुणा रखा होगा—गुणगुणा जैसे सुघट नखा वाली। गुणगुणा एक सुंदर पत्नी होती है किंतु गुणगुणा नाम ही अशुभ प्रचलित और ठीक जैसा है। इस नाटक को लिखते हुए मुझे ऐसा भाव हुआ जैसे मराठी इस मारी पत्र में इस ‘गुणा’ शब्द के आ जान से मारीत्व का अभाव आ रहा है। गुणा शब्द ‘गुणा’ के पास पहुँच रहा है गुणा है पुरुषत्व का सूचक, जैसे अजमलना, गृहमानना इत्यादि इत्यादि। इसलिए मैंने गुणगुणा का प्रयोग अशुभ नाम गुण नाम के साथ करके उसे सुंदर कर दिया है। चाह उसमें अर्थ कुछ न हो किंतु काना का प्रिय अवश्य लगता है।’

निश्चित ही लेखक गुणगुणा का अकृत किय विना अपना स्वच्छंद मौलिकता प्रतिपादित करने में समर्थ हुआ है। नाटक का कथानक इस प्रकार है—

कथानक

सबप्रथम रावण मारीच की कुटी पर जाकर उसे अपने साथ चलने के लिए बाध्य करता है किंतु माल्यवान रावण का मामा रावण को लौट जान की सम्मति देता है क्योंकि गुणगुणा द्वारा किया हुआ अपराध उसकी दृष्टि में क्षम्य नहीं है। गुणगुणा इस पर अपने भाई रावण को जाकर पुनः उकसाती है। परिणामस्वरूप रावण फिर उत्तेजित हो जाता है और सोना को हर लेता है। उधर जटायु द्वारा राम को इसकी सूचना मिल जाती है। उधर-उधर वन में भटकते हुए राम और शबरी का मिलन भी होता है।

ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव और हनुमान से राम का परिचय होता है। सुग्रीव का अकमण्यता पर राम लक्ष्मण विचार करते हैं अतः लक्ष्मण हनुमान के साथ सुग्रीव के पास जाकर उसे उसकी प्रतिज्ञा के प्रति फिर मचेष्ट करते हैं, सुग्रीव अपने उत्तरदायित्व के प्रति सजग हो जाता है। अगल दशम में मान्यवान तथा मन्तेदरी के बानालाप से पात होता है कि गुणगुणा सारे प्रदंग में घूम घूमकर नवयुवकों में राष्ट्र के प्रति उनके कृतव्य तथा प्रेम का

जागृत कर रही है। हनुमान लगे पहुँचकर निर्भीकण म मिलन है जा भ्रमारात्रिका म सीता से मिलन म उनकी सहायता करत हैं। हनुमान पाठ जाकर रावण के दरबार म पहुँचत है जहाँ उनका वध पर विचार लिया जाता है। निर्भीकण हनुमान का वधहीन करके छाड़ देने की सम्मति दत्त है।

भगनी घटनाओं म नल नाल का पुत्र बायना तथा गिर का रावण की सहायताय प्रस्तुत होना सम्मिलित है। रावण के दरबार म भगवत के पर जमान की घटना म घटित होती है।

मघनाट और कुम्भरूप का मृत्यु के उदरगत नाटक म रावण की मृत्यु दिखाई गयी है जिसकी समाप्ति पर नाटक के अनुसार युग का श्रेष्ठ मानव समाप्त हो जाता है।

आधार

उपयुक्त कथा निर्दिष्ट रूप से रामचरितमानस पर आधारित है किन्तु नाटक म प्रस्तुत प्रमग वात्मीनि तथा अध्यात्म रामायणों म भी मिलन है।^१

इस प्रकार विभिन्न वाणों म मधु-सुत प्रसारी कथा को लेकर ने एक मूल म पिरो कर नाटक म प्रस्तुत किया है। अधिकांश म यह मूलकथा के समान ही है तथापि भिन्ननाए भी पर्याप्त स्थिता पर दीरा पठती हैं—

१ नाटक म मातयवान रावण का मामा है, जबकि मूल कथा म मातयवान रावण का नाना तथा मन्त्री है—

रामचरितमानस—

मातयवत अति जरठ निगावर । रावन मातु पिता मन्त्रीवर ॥

—पष्ठ सोपान लकावाण, ४७/३

वाल्मीकि रामायण—

ततस्तु मुमहाप्राज्ञो मातयवान नाम राक्षस ।

रावणस्य वच धृत्वा इति मातामहोऽश्रवीत ॥

—युद्धवाण्ड सग ३१।६

अध्यात्म रामायण—

तत समागमद् धृद्धो मातयवान राक्षसो महान ।

धुद्धिमानोति निपुणो राज्ञो मातु प्रिय पिता ॥

—युद्धवाण्ड, ५।२५

१ रामचरितमानस धरण्यावाण्ड ततीय सोपान २३ ३ २७ ४ २६, ३३ ३ किष्किंधावाण्ड ततीय सोपान १ २१ सुन्दरवाण्ड पचम सोपान १ २३ लकावाण्ड पष्ठसोपान सातवी विश्राम ३४, ३ सुन्दरवाण्ड ३८ ४३

वाल्मीकि रामायण धरण्यावाण्ड सग ३१ ५२ ७२ ७४ किष्किंधा सग ५ २८ ३० सुन्दरवाण्ड सग १ ४ ४७ ५४ युद्धवाण्ड

अध्यात्मरामायण धरण्यावाण्ड सप्तम सग ५१ किष्किंधावाण्ड सग १ ६ सुन्दरवाण्ड सग २ ३ युद्धवाण्ड सग ८ ११

२ दूसरा अन्तर नाटक में उन्मुख्यल पर है जहा विभीषण हनुमान का बन्धनहीन करके छोड़ देने की सम्मति देना है जबकि मूल कथाया म विभीषण रावण का केवल बंध मान से रोकता है ।^१

३ नाटक में रावण व दरवार म अग्न के पर जमाने की घटना किसी यागिक क्रिया से सम्बंध रखती है जबकि रामचरितमानस म यह किसी दवी शक्ति अर्थात केवल एक अलौकिक घटना मात्र है । वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायणा म इस प्रकार का प्रमग उपलब्ध नहीं है ।

४ नाटक मे विभीषण के राम से जाकर मिन जान का कारण रावण से उमका मनभेद नहीं है अपितु कुम्भरूप के पुत्र कुम्भ के प्रतिवात् से कुपित होना है जबकि राम चरितमानस म पुलस्त्य ऋषि के शिष्य द्वारा प्राप्त सदेश विभाषण द्वारा सुनने पर रावण न विभीषण का अपमान किया और परिणामस्वरूप विभीषण चला गया ।^२ वाल्मीकि तथा अध्यात्म रामायणा म भी विभीषण रावण से सीता का लौटा देने के लिए कहता है किन्तु यह किसी के द्वारा किया गया सन्देश नहीं है, विभीषण की स्वय की सम्मति है ।^३

विवेचन

उपयुक्त विश्लेषण से यह सिद्ध है कि नाटककार यद्यपि कथानक के चयन म मूलकथा पर आश्रित रहा है तथापि उसन कल्पना का आश्रय भी भरपूर लिया है, यद्यपि ऐसा करना हुए कथा की आत्मा अशून रही है । हा, यह अवश्य ह कि नायक का चरित्र यहा एकत्रम परिवर्तित है । लेखक के दृष्टिभेद स ही यह सम्भव हुआ ह । युग युग से रावण के नाम के साथ जुड़ी हुई कालिमा का लेखक ने अग्नी समय लेखनी स छिन कर डाला ह ।

संसार म प्रत्येक वस्तु व दो पक्ष हात हैं—सित और असित । असित म स सित के दान करना ही मानवता ह और साधारण म असाधारण व का उमारना एक कला । नाटक के नायक के चरित्र म परिवर्तन करना सम्भवत लेखक का यही लक्ष्य रहा ह । लेखक की यह कल्पना निश्चित ही अति महत् ह । गूणण का समन्त प्रदेगा म धुमाकर युवका म राष्ट्र प्रेम का जागत करवाना भी लेखक की कल्पना ह जिसका प्रस्तुतीकरण नाटक म आवश्यक था, किन्तु इस प्रकार की कल्पना उद्देश्य निबाह तथा नाटक क सादय बद्धि म महायक रही ह ।

नाटक की सम्पूर्ण कथा क प्रस्तुतीकरण म यहू तथ्य भी दृष्टव्य है कि लेखक असम्भावित तथा अनावश्यक घटनाया का विलगुन बचा गया है सोप घटनाया की उमन मानवीय तथा बुद्धिसमन रूप देने का प्रयत्न किया है । रावण के दरवार म अगद व पर

१ रामचरितमानस मुद्रकाण्ड पंचम सोपान ५ २३
वाल्मीकि रामायण मुद्रकाण्ड सर्ग ५२
अध्यात्म रामायण मुद्रकाण्ड सर्ग ५ श्लोक २६ ३०

२ रामचरितमानस मुद्रकाण्ड दशम ३६ (क छ)
बार बार पत् लागत विनय करत दन भीम । परिहरि मान मोह म भद्रु कोमनाशीम ॥
मुनि पुनस्ति निज शिष्य मनकहि पशियह वाद । तुलन मो मैं प्रभु सन कही पाद मुखवगठ तात ॥

३ वाल्मीकि रामायण मुद्रकाण्ड मग ६ १० । अध्यात्म० यदकाण्ड सर्ग २

धनुष लीला नाटक^१

रामगुलामलान ने अपने इस नाटक में गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस का आधार लेकर, उस युग में प्रचलित लीला का उद्देश्य से कथोपकथन के रूप में सीता स्वयंवर के कथा भाग का नाटकीकरण कर दिया है। सम्भाषण अधिक पद्या में है। वहीं वहीं गद्य भी है। पात्रों का चरित्र चित्रण तथा अन्य नाटकीय तत्वों का इसमें सवथा अभाव है। यह लीला के लिए लिखा गया, मात्र लीला नाटक है।

भाषण^२

इस नाटक के नेत्रक गुप्त बंधु हैं। इसके लिखन का उद्देश्य भ्रातृप्रेम के उज्वल रूप का दिखलाना है। नाटक की कथा बहुत छोटी है। इसमें बस तीन अंक हैं।

कथानक

नाटक की कथा का आरम्भ श्रीराम का राजतिलक के आयाजन से होता है। राजतिलक का समाचार सुनकर मायरा के लिए भयभीत होती है कि वही ताड़ना के समान राम राजा बनने पर उस भी न मार डालें। वह कथा का उत्तजित करती है और परिणामस्वरूप राम लक्षण और माना के साथ वन को चला जाता है।

नाटक का आग के दृश्यों का चित्रण बड़ा ही दृश्यसंगी है। ननिहाल से लौटने पर भरत राम के लिए अधीर हो उठता है। मन्त्री पुराहित और मानाएँ उन्हें समाश्वस्त करने में अक्षम रहते हैं। वे राम का निवासान के लिए चला पड़ते हैं। विविध प्रकार से वे राम का मनाने के लिए प्रयत्न करते हैं। मन्त्री भरत का बड़ा ही उपात्त रूप चित्रित हुआ है।

भाषण

इस कथा का आधार शास्त्रामात्रा रवि रामचरितमानस है।

भाषण और अभिनय दोनों दृष्टियों में यह नाटक बड़ा सुन्दर है। कथापरक चरित्र चित्रण और कथा का प्रवाह, मन्त्री तथा मानापजनक हैं।

१ प्रकाशक ईशानचन्द्र प्रसाद कथापरक काशी प्रथम संस्करण सं० १९९८

२ प्रकाशक सर्वज्ञान प्रकाशन मन्त्री अक्षयप्रसाद पटना प्र० सं० २०१२

श्रीरामलीला रामायण^१

रामलीला करने वाला के लिए प० ज्वालाप्रसाद मिश्र १ रामधामी तुलसीदास के रामचरितमानस में उपयोगी अंग के रूप में कथापकथन के रूप में इस मधुगीत किया है। इस सम्बन्ध में उनका कथना है—

इस समय रामधामी तुलसीदास कृत रामायण के आधार पर रामलीला होती है। यह ग्रन्थ कथा की रीति पर भक्त गिरोमणि तुलसीदासजी ने रचा है जिसमें नीला करने वाला को यह कठिनाता उपस्थित होती है कि नीला करान के समय किम चौपाई को छोड़ना चाहिए और किमको पटना चाहिए और सब इस चरित्र के करान में चतुर पुण्या की प्राप्ति भी कठिन है और पढ़ने वाला की बुद्धि के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार में चरित्र किया जाता है यह देखकर हमारा यह विचार हुआ कि इस तुलसीकृत रामायण में से वही उपयोगी दाहा चौपाई गाएँ जिनका केवल रामलीला मात्र में सम्बन्ध है और कथाक्रम भंग न हो यही सिद्धान्त कर हमने रामायण में से उरयागी ग्रन्थ का उद्धार किया है।^२

श्रीरामलीला रामायण के नाम में ही इस ग्रन्थ के सात खण्ड हैं। प्रति काण्ड पर एक खण्ड आधारित है। इसमें प्रत्येक खण्ड के विविध दृश्या का दर्शना में विभक्त किया गया है। दर्शन ग्रन्थ के स्वामीय है। श्रीरामलीला रामायण के सभी खण्डों में रगनिर्देशन के अतिरिक्त वही ग्रन्थ नहीं है। पात्रों के समस्त कथापकथन आहा और चौपाइयाँ हैं।^३

श्रीरामलीला रामायण^३ नाटक

इस नाटक में चार अंक हैं। इसमें सीता स्वयंवर से लेकर रावण के बध तक की रामायण की कथा को नाटक के रूप दिया गया है। मुख्यतः इसकी रचना नाटक लेखने वाली कम्पनियों के लिए की गयी है। इसीलिए इसकी भाषा चतुर्थी उद्गू मिश्रित है। गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। कथापकथना में भी पद्या का प्रयोग है ठीक वसा ही जसा कि थियेट्रिकल कम्पनियों के अर्थ नाटकों में पाया जाता है।

भाषा सरल है। पठित और अभिनेत सबको समझ में आने योग्य है। इसकी रचना सामान्य जनशक्ति को ध्यान में रखकर की गयी है।

१ प्रकाशक बन्धुशंकर प्रसाद बन्धुई १९६१ वि०

२ नाटक श्रीरामलीला रामायण की भूमिका सं ५० १

३ प्रकाशक बन्धुई भूपण यज्ञालय मधुरा। सम्पादक द्वारिकाप्रसाद भरतिया

रामचरित्रोद्दीपन नाटक

रघुवररत्नाल पाण्डे का यह नाटक राम की सीमा के विना रचा गया प्रथम है। इसमें समापण पद्य में है। यही इसकी नाटकीयता है। लगन के मत में विनिष्ट प्रकार की कथा भूषण बनाने के लिये रघुवर पर ध्यान देना ही जो आवश्यक है वही नाटक है। इसीलिए इस नाटक बहा गया है। यद्युक्त इसमें नाटकीयता कुछ भी नहीं है। पद्य भी लगन के अन्तर्गत नहीं है। समूहीन है। गुणन के मुगनष्ट पर ही—

‘त्रिसप्त श्री गोगाद् तुनगीदाम भगानाम सतित्तयान द्वा कविा की सीधी-भाषा कविनामा का सप्रह विना है। यद्युक्त यह सप्रह ही है। वही गार्द नवाना नहीं है।

इस नाटक की कथा का आधार मुख्यतः रामचरितमानस है।

रामलीला वा नाटकाकार रामायण

दामोदर गार्गी सप्रे न महर्षि वाल्मीकि की रामायण को आधार बनाने पर रामचरितमानस पर रामलीला के उद्देश्य से सात काण्डों में इस विनालकाय प्रथम की रचना की है। प्रथम की प्रस्तावना में नटी द्वारा कथा का आधार एवं रचना के उद्देश्य का स्पष्ट कर दिया गया है। इस नाटकाकार रामायण प्रथम के प्रथम भाग की रचना सन् १९२७ में हुई थी। वाल्मीकि के अन्त के एक श्लोक में लखन ने अपनी रचना के रूप का और भी स्पष्ट कर दिया है—

रामलीलानुरूप यदवालकाण्ड सदा मुचि ।

दामोदरेण तत्प्रीत्या भाषाया समनूदितम् ॥

इससे स्पष्ट है कि लखन ने नाटक के आधार में वाल्मीकीय रामायण का भाषा में अनुवाद किया है सात भागों के गीतक सात काण्डों के नाम से ही रखे गये हैं। इन भागों में रामायण के काण्डों की समस्त कथा नहीं है। मुख्य मुख्य घटनाओं को ही ले लिया गया है।

रामाभिषेक नाटक

रामायण की कथा के आधार पर रामगोपाल विद्यान्त ने इस नाटक की रचना की है। इसमें तीन अंक हैं और प्रत्येक अंक में अनेक गर्भाव। नाटक की विषयवस्तु के सम्बन्ध

१ प्रकाशक हिन्दी नाट्य पुस्तकालय रजि.त.पुरवा बानपुर प्र० सं० सन् १९११ ई०

२ प्रकाशक धडग बिलास प्र स बाकीपुर पटना १९२२ ई०

३ प्रकाशक नववक्त्रिणोर यज्ञाणय सन १९७७ ई०, सं० १९३३ वि०

म नाटक की प्रस्तावना म नट के मुख से स्पष्टीकरण करा दिया गया है—

‘क्या प्यारी, तुमको क्या स्मरण नहीं है कि रामामिपेक नामक एक नूतन नाटक मित्त, उसम ऐसा ही प्रसंग है सबगुणाधार सबलोकाभिराम श्रीराम सरीखे नायक और रामराज्यामिपेक के उद्योग स उनका वनवास और राजा दशरथ की मृत्यु का त्रिवरण उसके विषय म है ऐसे पवित्र चरित्र नायक और एसा कर्णारसापशमित विषय वहाँ मिलेगा । सो आज उसी का प्रारम्भ किया जाय ।’

इम नाटक की रचना भी सम्भवत लीला के लिए ही की गयी ह ।

प्रयाग-रामागमन^१

उपाध्याय श्री बदरीनारायण ‘प्रेमघन जी का यह एक छोटा सा रूपक ह । इसमे वाल्मीकीय रामायण म वणित, शृगवरपुर से मर्हि मारुडाज के आश्रम पयत भाग का नाटकीकरण किया गया ह ।

यह एक भावप्रधान मधुर रूपक है । इममें भगवती गंगा, वन त्रिवणी सगम और मारुडाजाश्रम का जो वणन किया गया है, वह अति मनोरम है । कथा की दृष्टि से कम भाव की दृष्टि से इमका महत्त्व विशेष ह । प्रेमघनजी मारतडु मण्डल के प्रमुख लेखक रहे है । उनकी भाषा भाव, शची आदि समी सुंदर हैं ।

इस रूपक म तीन प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है । सीताजी के मुख से ब्रज भाषा का प्रयाग कराया गया है । निपात्पति के मुता स ठेठ भोजपुरी सुनाई दती है और शेष पात्र खडी बोली हिन्दी का प्रयाग करत है । प्रेमघनजी की भाषा के दो नमूने—

सीता—(आँचल से राम के आसू पाछकर) हूँ प्राणनाथ ! आपने का य जायो कि मैं थक गई हूँ । नाथ, एसी भूलिहूँ के ना सोचियो । मैं तो ऐसे ही पूछी । भला आपक सग मोहि खेद और कलग ? हा इन अँलियान मे ये अँसुना दनिवें तें अवश्य ही हिया दरकयो जाय है ।’ पृ० १३

निपादराज—महाराज, आप ई भरि न कहै । अनुध्या के लावन परजा में स केहू कँ सँग नाही लिहिन । सुमन कँ विलपत छाडि भागिन । ऊ बंचारा उही पार रावत होई । अब ही का ऊ गवा धारे होई । अब माहि कन रोआवें । पृ० ४

बन्धु भरत^२

तुलसीराम गर्मा दिनश ने भ्रात प्रेम के आदर्श को दृष्टि म रखकर इस नाटक की

१ प्रकाशक-मुक्त स्वय लेखक आनन्दाश्रमिणी यन्त्रालय मिरजापुर स० १९६८ वि०

२ प्रकाशक श्रीरा मन्दिर, बम्बई प्रथम संस्करण माघ १९३८ ई०

रचना की है। यह चरित्र प्रधान नाटक है। इसकी कथावस्तु तो रामायण की ही प्रसिद्ध कथा है। लखन न उसका चित्रण इतना सुन्दरता से किया है कि भारत का चरित्र भी उन्नत बन गया है। यह उसका बड़ा विदु है। आत्मा भाई के रूप में भारत को सिमाना ही इस नाटक-कार का उद्देश्य है और वह भ्रमण इस उद्देश्य में सफल रहा है। कथा का जो प्रवाह चलता है उसमें कोई नवीनता नहीं है। वह तो पाठक या दर्शक का परिपरिचित कथा भाग्य है किन्तु उसमें भारत को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह बस्तुतः भाव विभार कर देने वाला है।

सीता स्वयंवर नाटक¹

बदौरीन दीक्षित का लिखा यह पाँच अंका का नाटक है। इसमें सीता स्वयंवर पर्वत की सारी कथा आ गयी है। सीता स्वयंवर का चित्रण तो नाटक के अंतिम अंक में हुआ है। पहले अंक में राम के जन्म की पृष्ठभूमि पृथ्वी का मार हरण करने के लिए देवताओं की चिन्ता दगरय की चिन्ता, पुत्रवृष्टि यज्ञ, चारा पुत्रा का जन्म मिथिला में सीता का जन्म दाना के विवाह के लिए दलनामा की चिन्ता, शिवजी के पाम जाना शिवजी का अपना धनुष धकर परगुणम का राजा जनक के पाम भेजना, विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण का यज्ञ को रक्षा के लिए अपने साथ ले जाना और फिर राना कुमार का क्रमिक के साथ मिथिला जाना आदि बातों का चित्रण है।

कथा का मूलाधार गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस है। नाटक की भाषा साधारण है। ब्रज और खड़ी बोली दोनों का प्रयोग हुआ है। पात्रों का चरित्र चित्रण भी सामान्य है। रामचरितमानस की कथा का लखन न इस नाटकीय रूप दिया तो है किन्तु उस अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई।

सीताहरण नाटक²

यह बदौरीन दीक्षित का रामायण के सीताहरण के प्रसंग को लेकर लिखा गया एक छोटा सा वरुण रस का नाटक है। इसकी भाषा बड़ी ही चटकीली है। ऐसा प्रतीत

१ प्रकाशक बेंकटवर प्रेस बम्बई सन् १९५६ गन् १९०

२ प्रकाशक लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस लखनऊ, प्र० स १९६५ ई०

हाना है कि उस युग की थियेट्रिकल कम्पनियां व नाटका स प्रभावित हाकर लेखक ने इसकी रचना की है। उसकी भाषा का एक नमूना—

“नटी—वही, वही, राम की प्यारी मुकुमारी जनक कुमारी का हरन अयात सीताहरन नाटन करना हागा, जिसम नीच मारीच बनन का हरना हागा, राम के आश्रम म विचरना हागा रावण का यतीरूप धरना हागा राम का कपट हरना का प्राण हरना हागा, सीता का हरना हागा, जटायू का समर करना व मरना हागा गीध का उद्धरना हागा—वही नाटक दिखाकर आज रसिका का चित्त हरना हागा।’

नाटक के सभी सम्भाषणो मे प्राय इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है। पात्रा के कथोपकथन म शिष्टता और मर्यादा का ध्यान उचित मात्रा म नहीं रखा गया है। नाटक साधारण है।

रामाभिषेक नाटक^१

यह बाबू गंगाप्रसाद गुप्त का एक भाव प्रधान नाटक है। रामायण की अति प्रसिद्ध कथा का लेकर लेखक ने इसे सुन्दर रूप मे गुम्फित किया है। इसकी भाषा और भाव परिभाषित हैं। पात्रा का चरित्र चित्रण उदात्त है। कथोपकथन मर्यादित एव समयानुकूल है। यद्यपि गद्य और पद्य दाना का प्रयोग है, किन्तु गद्य की अपभ्रंश पद्य भाग अधिक है। विविध गीता म अनन्क रागा का समावेश किया गया है। प्राय सभी स्थला पर गीता म समयानुकूल वानावरण और भावनात्रा का चित्रण किया गया है। कुछ दृश्या म ग्रामीण जनता का विचार चित्रण बहुत अच्छा हुआ है।

रामवनयात्रा नाटक^२

बाबू गिरिवरधर का सान अका का यह एक बडा नाटक है। इसम राम, लक्ष्मण और सीता के वन को प्रस्थान करन एव महाराज^१ दशरथ की करण मृत्यु तक की ही कथा का समावेश है।

लेखक ने तुलसीदासजी के रामचरितमानस और वाल्मीकि की रामायण दोना को अपने नाटक की कथा का आधार बनाया है।

१ प्रकाशक हिन्दी साहित्य, बनारस मिटी प्रथम स० स० १९६० सन १९१०

२ मन्क एवं प्रकाशक रणजीत प्रस पटना सिटी प्रथम स० सन् १९१

इस नाटक की रचना भी लेखक ने सीला के लिए ही की है, किन्तु रामचरित पर आधारित अथ सीला नाटक की अग्रभा इमम कुछ विषयपना है। यह उसी मौलिक रचना है। इसमें लेखक ने बसित, रोला, वमन्ततिलना दाहा, प्राप्तर, सयया प्राप्ति विविध छन्ना का तथा भरवी, खमाच भभाती, पीनू आदि अनेक रागा का प्रयाग किया है। इमम गद्य का भी प्रयाग हुआ ता है, किन्तु बहुत प्राण। प्राथ का अधिक्तर भाग राग और रागिनिया स पूण है। पात्रा के कथापकथना म भी अधिक्तर पद्य का ही प्रयोग हुआ है।

रामचरित नाटक^१

इस नाटक के लेखक जयगोविन्द मालवीय है। इसकी कथा रामायण से ली गयी है। इसमें विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण की वन यात्रा स सत्तर लक्षेण वर्ष तर की कथा है।

लेखक न इसे सीला के लिए लिखा है। समस्त नाटक को उहाने अवा म नही अपितु आठ लीलाआ म विभक्त किया है। लीलाआ को अक का स्थान दिया जा सक्ता है। बीच बीच म स्थान-स्थान पर जो विविध पात्रा के प्रवेश और रगाला के लिए जो निर्दोष हैं उहे दृश्य परिवतन कह सकते है। स्थान परिवतन का निर्दोष लीलाआ म किया गया है।

सारे नाटक की भाषा खडी बोली है। कथोपकथन बहुत अच्छे और प्रभावयुक्त है। इसे लेखक ने बडे परिश्रम स लिखा है ऐसा उहाने स्वय उल्लेख किया है।^२

सीता स्वयवर नाटक^३

यह नाटक समस्त रामलीला नाटक का एक भाग है। मरठ के मुग्गी तोताराम ने गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस की कथा के आधार पर उस समय के लागा की रचि का ध्यान रखत हुए पारसी एलफ्रड थियेट्रिकल कम्पनी मुम्बई के तज पर इसको लिखा है। वस्तुत रामलीला खेलन वाला के लिए ही इसकी रचना की गयी है। इसमें अयाध्या स अपने यन की सुरक्षा के लिए विश्वामित्र द्वारा राम और लक्ष्मण के ले जाए जाने से आरम्भ करके सीता के स्वयवर पयत भाग की कथा का कथापकथना म वणन किया गया है। इसमें

१ प्रकाशक भरस्वता यन्त्रालय प्रयाग प्रथम स फरवरी १८९४ ई०

२ बडे परिश्रम स नीलाय रचा।—नाटक की भूमिका से

३ प्रकाशक ईश्वरी प्रगाद रामचन्द्र सम्मन पुस्तकालय सदर बाजार मरठ स १९६० सन १९ ३

अंक के लिए एकद्वय और दृश्य के लिए तीन शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसमें दो ही एकद्वय हैं। इसमें गद्य भाग कम है, पद्य अधिक।

रामलीला विजय नाटक^१

यह लघु नाटक एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए बच्च बलदेव प्रसाद ने लिखा है। इसमें मुख्य पृष्ठ पर ही, इस नाटक में रामलीला और मुहरम का हाल बड़ी कल्पित के साथ हिन्दू मुसलमानों के उपदेश के लिए प्रकाश किया है।^२ यह शब्द छप हुए हैं।

यह सात अंकों का एक विवरणात्मक गद्यमय नाटक है। नाटक इसे नाम दिया गया है वस्तुतः यह नाटक की पद्धति का नाटक नहीं है। इटावा में सन १८८६ में बलवन्तर होई साह्य ने जिस चतुरता और व्यापकता से हिन्दुओं के साथ यथावत् करत हुए रामलीला का सफलतापूर्वक सम्पन्न कराया, जैसा कि रामनगर काशी राज्य में होता है इसी प्रकार की बातों का कथापनचयन में व्योरेवार विवरण दिया गया है।

इस नाटक की कथा का सम्बन्ध तो राम कथा से नहीं है किन्तु इसका विषय रामलीला से सम्बद्ध है इसीलिए इसका नाम रामलीला रखा गया है। यह बहुत ही साधारण कवि की रचना है।

नाटक पंचवटी^३

यह गम्भूदयाल सक्सेना का नया नाटक है। इसमें नाटककार ने नवीन पद्धति का आश्रय लिया है। समस्त कथावस्तु का अंक और दृश्या में विभाजन न करके लेखक ने हठ, विलास, 'वनपथ', 'तापसी और पंचवटी' इन नामों से पांच खण्डों में विभक्त किया है। इस नाटक का नाम भ्रामक है। नाम से प्रतीत होता है कि पंचवटी में रहते हुए राम लक्ष्मण और सीता की जीवनकथा का चित्रण या उस स्थान का अपना विशिष्ट इतिहास सन्निविष्ट होगा, किन्तु ऐसा कुछ नहीं है। इसके पंचम खण्ड पंचवटी में, रावण के सहार के उपरान्त प्रयोध्या में राज्य सम्भालने के बहुत वर्षों के बाद अश्वमेध यज्ञ करने से पूर्व राम एक बार पुनः पंचवटी जात हैं। उस समय सीता के वियोग से दुखी राम अपने वनवास काल के

१ प्रकाशक कागिता यज्ञालय बनारस प्रथम सं० सन् १८८७ सं० १९५२ वि

२ प्रकाशक नवयुग प्रेस कुटीर बीकानेर प्र० सं० सम्बन्ध १९६८

व्यक्ति, वृक्ष, नदी, पत्नी और स्वामी को देखकर सीता की स्मृति स और दुःखी हो जाते हैं। राम की उस दुःखित अवस्था का चित्रण कुछ विस्तार के साथ इनमें किया गया है। नाटक के इस भाग को पढ़ने से भवभूति के उत्तररामचरित के सम्बद्ध प्रसंग के वर्णन की छाप स्पष्ट लभित होने लगती है।

नाटक के प्रथम तीन खण्डों की कथा रामायण के अयोध्याकाण्ड से ली गयी है। पहले 'हूठ' खण्ड में राम के राज्याभिषेक का आयोजन और फिर पिता के आदेश में वन जाने की तयारी का वर्णन है। दूसरे में लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा और पत्नी उर्मिला से राम और सीता के साथ वन जाने के लिए विदा लेते हैं। यहाँ का चित्रण रामायण के चित्रण से अधिक हृदयस्पर्शी है। इसमें नवीनता भी है। वनपथ खण्ड में कोई विशेषता नहीं है। चतुर्थ खण्ड 'तापसी' में लक्ष्मण ने रामायण की कथा को छोड़कर अपनी कल्पना से ही इस अंक को सजाया है। इसमें रामायण की उपक्षिता विरहिणी उर्मिला का सहानुभूतिपूर्ण एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार नाटक की कथा का मुख्य आधार रामायण हाते हुए भी लेखक ने अपनी नवामेपिनी प्रतिभा से कई नवीन एवं सुन्दर उदभावनाएँ की हैं। नाटक की भाषा शली चरित्र चित्रण कथोपकथन आदि परिमाणित और सुन्दर है।

रामायण^१

रामायण की कथा को नाटकीय रूप देने के लिए श्रीकृष्ण हसरत ने इसकी रचना की है। इसमें रामायण की प्रायः सभी प्रमुख घटनाएँ सन्निविष्ट हो गयी हैं।

कथानक

नाटक का आरम्भ शिवजी के प्रति रावण की प्रगाढ़ भक्ति से होता है जहाँ वह उन्हें तुष्ट करके तीना लोकों में मानव के अतिरिक्त सबसे अजेय होने के वर को प्राप्त करता है किन्तु अचिन्त मानव से उसकी मृत्यु हो यह बात भी उस सह्य नहीं होती, अतः वह पुनः कठोर तप करके ब्रह्मा से मानव रूप में श्रीराम से मुक्ति का आश्वासन प्राप्त करता है। इसके पश्चात् रावण के विविध अत्याचारों के कई दृश्य दिखाये गये हैं और सभी प्रमुख घटनाओं के अनन्तर श्रीराम द्वारा युद्ध में उसका वध होता है।

आधार

नाटक की मुख्य कथा का आधार गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस है।

परंतु उत्तरकाण्ड की कथा का समावेश इस नाटक में नहीं किया गया है। रावण पर विजय प्राप्त करके सीता और लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटने तक की कथा इसमें ली गयी है।

यह नाटक श्रीहसरत ने किसी थियेट्रिकल कम्पनी के रंगमंच के लिए लिखा था, अतः इसकी भाषा उद्बुद्ध मिथित हिन्दी है। अर्थात् उस युग में यह बड़ा लोकप्रिय रहा है।

श्रीकृष्णधारा

सप्तम अध्याय

- १ श्रीकृष्ण चरित (क) कस विचस (ख) कस बध (ग) श्रीकृष्णावतार
(घ) श्रीकृष्ण जन्म (ङ) श्रीकृष्ण (च) बलबीर कृष्ण
- २ श्रीकृष्ण-सुदामा (क) श्रीमुनामाकृष्ण (ख) श्रीकृष्ण सुदामा (ग) द्वापर
की राज्य क्रांति
- ३ उपा अनिरुद्ध चरित (क) उपाहरण (ख) उपा नाटक (ग) उपा अनिरुद्ध
(मुग्गी आरजू) (घ) उपा अनिरुद्ध (राधश्याम)
- ४ कतय (उत्तराध)
- ५ मोरघ्वज

श्रीराम व चरित व समान ही श्रीकृष्णचरित भी साहित्य और जनसमाज में समारूढ होता चला आया है। यह भी लीला का विषय रहा है। लीला का ही लक्ष्य मानकर अनेक नाटकों की रचना अतीत में होती रही है। विविध प्रकार की लीलाओं की दृष्टि से भी श्रीकृष्ण चरित अति व्यापक रहा है अतः इस आधार बनाने पर विविध नाटकों की रचना हुई है। इनमें कुछ नाटक तो ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध श्रीकृष्णचरित व साथ किसी अन्य चरित से भी है जैसे मुनामाचरित उपा अनिरुद्धचरित मोरघ्वजचरित आदि। इनमें श्रीकृष्ण के चरित की अपेक्षा अन्य चरितों की प्रधानता दी गयी है यद्यपि श्रीकृष्ण का सम्बन्ध भी किमी-न किमी रूप में सघन है ही। एमीनए इस धारा का शीपक श्रीकृष्णचरितधारा में रखकर बसल श्रीकृष्णधारा रमा है जिससे इसमें श्रीकृष्ण से सम्बद्ध अन्य चरितों पर आधारित नाटकों का भी सरलता से सम्मिलित किया जा सके। इस धारा में भी दो प्रकार के नाटक देखने में आए हैं एक तो वे जो आरम्भिक काल की रचना हैं। इनमें अति भाव अधिक है नाटकीयता कम। दूसरे व जिनकी रचना श्रीकृष्ण

का महापुरुष मानकर की गयी है। इनमें मायतत्त्व के माय नाटकीय तत्त्व की भी 'यूनता' नहीं है।

श्रीकृष्ण-चरित

पौराणिक साहित्य में श्रीकृष्णचरित अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखता है। कृष्ण का जीवन में सम्पन्न विभिन्न घटनाओं में पयाप्त नाटकीय तत्त्व निहित हैं, यही कारण है, कि कृष्णचरित के विभिन्न रूपा को लखर लिखे गए जो नाटक उपलब्ध होते हैं, वे अनि रोचक एवं सरम हैं। इस श्रेणी के निम्नलिखित नाटक प्राप्त हुए हैं—

- १ कस विध्वंस बनवारीलाल
- २ कस बष रामनारायण मिश्र द्विजदल'
- ३ श्रीकृष्णावनार राधेदयाम क्यावाचन
- ४ श्रीकृष्ण जन्म भारतसिंह यादवाचार्य
- ५ श्रीकृष्ण चतुर्भुज एम० ए०
- ६ बलवीर कृष्ण रघुवीरारण मिश्र

कस विध्वंस'

प्रस्तुत नाटक के लेखक बनवारीलाल हैं। पांच अंका का यह एक भक्तिप्रधान नाटक है। कसका क्यावन्तु निम्नलिखित है—

कस ने अपने पिता उग्रसेन का बंदी बनाकर मथुरा के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया है। प्रजा उसका अत्याचारा से दुखी है। एक छात्राश्रयाणी होती है कि तरी बहन देवकी में उत्पन्न अष्टम पुत्र तरे विनाग का कारण हागा। वह बहन और बहनाई दोनों को जन में डाल देता है और उनकी प्रयक सन्मान का मारना जाना है। कृष्ण के उत्पन्न होते ही बसुदेव उह ब्रज मन्द के घर पहुँचा देते हैं और उनकी सच जात पुत्री को कसका दे जाता दिया है। कस उसकी हत्या करा देता है।

कृष्ण का लालन पालन नर के घर में होता है। वहा व और बलराम दोनों विविध प्रकार की लीलाए करत हैं। कस को स्थिति का पान हाता है तो वह कृष्ण का मारने के

लिए विविध उपाय करता है किन्तु असफल रहता है। अन्त में मथुरा में वह एक आयोजन करता है जिसमें बहुत से अग्र्य राजाओं का भी आमन्त्रित किया जाता है। वह अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण और बलराम को भी बुलाता है। वह चाहता है यह बात गन्त के लिए दूर कर दिया जाए। इसी के लिए वह योजना बनाता है। उसकी योजना मफल हानी है, कृष्ण को मारने बात ही मारे जाते हैं और अन्त में उनकी मृत्यु कृष्ण के हाथ में होती है।

कंस की मृत्यु के बाद श्रीकृष्ण अपने नाना उग्रसेन का मुक्त करके उन्हें मथुरा में राज सिंहासन पर आसीन कराते हैं। अपने पिता वसुदेव और माता देवकी का भी वे जेल से मुक्त करते हैं। कुछ समय तक अपने माता पिता के पास ही रहने की आशा के आशानन्द से प्राप्त कर लेते हैं।

आधार

इस कथा का मूल आधार भागवत पुराण है।^१ नाटक की कथा जिस स्थल से आरम्भ होती है वह भागवत पुराण में इस प्रकार वर्णित है—

प्राचीनकाल में यदुवशी राजा अरसन थे। वे मथुरा नगरी में रहकर माथुर मण्डल और अरसन मण्डल का शासन करते थे। उसी समय से मथुरा ही समस्त यदुवशी राजाओं की राजधानी हो गयी थी। एक बार मथुरा में अरु के पुत्र वसुदेवजी विवाह करने अपनी नवविवाहिता पत्नी देवकी के साथ घर जान के लिए रथ पर सवार हुए। उग्रसेन का पुत्र कंस था। उसने अपनी चचेरी बहन देवकी को प्रसन्न करने के लिए, उसके रथ के धाडा की रास पकड़ ली और वह स्वयं ही रथ हाकन लगा। देवकी के पिता देवक थे। अपनी पुत्री पर उनका बड़ा प्रेम था। कथा को विदा करते समय, उन्होंने उसे सोने के हारा से अलकत चार सौ हाथी पन्द्रह हजार घोड़े अठारह सौ रथ तथा सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषण। स विभूषित दो सौ सुकुमारी दासिया देहेज में दी। विदाई के समय बरवध के मंगल के लिए एक ही साथ राख, तुरही और दुहुमियाँ बजने लगी। माग में जिम समय घोड़ों की रास पकड़कर कंस रथ हाँक रहा था उस समय आकाशवाणी ने उसे सम्बोधित कर कहा—

अर मूल जिसका तू रथ में बँठाकर लिए जा रहा है उसकी आठवें गम की सत्तान तुझे मार डालगी।^२

इस आकाशवाणी के उपरांत तलवार खींचकर कंस देवकी को मारने के लिए उद्यत हो गया। उस समय वसुदेव ने विविध प्रकार से कंस को अपने इस पापनम से बिरत करना चाहा किन्तु कंस ने एक न सुनी। अन्त में वसुदेव ने देवकी की प्रत्येक सत्तान को कंस को दे दान की प्रतिज्ञा की तब वही कंस ने देवकी का मारने का विचार छोड़ा। देवकी और वसुदेव अपने स्थान पर चले आए। देवकी के प्रथम पुत्र को लेकर वसुदेव कंस के पास पहुँचा तो कंस वसुदेव की सत्यवादिता से अत्यन्त प्रभावित हुआ और हँसकर बोला—

१ भागवत पुराण दशम स्कन्ध (पूर्वाध्याय) अध्याय १४४

२ वही अध्याय १ श्लोक २६-३४

“आप इस नहे-से मुकुमार बालक का ले जाइय । मुझे इससे कोई मय नहीं है क्याकि आकाशवाणी न श्रेवती के आठवें गम से उत्पन्न मन्तान के द्वारा मेरी मृत्यु यताई थी । कम के य वचन सुनकर वसुदेव पुत्र का वापस ल छाए । इधर भगवान नारद कम के पास आय और उमे बताया कि यज म रहनवाल नद आदि गाय उनकी मित्रियाँ वसुदेव आदि वृष्णिवाणी यादव दवकी आदि मव दवता हैं । दत्या के कारण धरती का भार बन् रहा है, इमलित देवताआ की आर स उनर वय की तयारी की जा रही है ।

दवापि नारद के इन वचना स कस को निश्चय हो गया कि यदुवशी दवता हैं और देवकी के गम स विष्णु भगवान ही मुझे मारन क लिए उत्पन्न होन वाल हैं, अत उसने देवकी और वसुदेव को हथकणी बंधी स जककर क म डाल दिया और उन दोनों से जा पुत्र हात गए उह मारता गया ।^१

अतर

नाटक तथा भागवत पुराण की इस कथा म अतर केवल इतना ही है कि उपयुक्त वर्णित कथा के अनुमार कम देवकी के प्रथम पुत्र का मारता नही वसुदेव का सह्य लौग देना है । प्रारम्भ में वह देवकी तथा वसुदेव का वती भा नहो बनाता । नाटक म कस प्रारम्भ स ही दाना का बती बनाकर उनके प्रत्येक पुत्र को मारता चलता है ।

नाटक का शेष घटनाएँ भागवत पुराण के सह्य है । विष्णुपुराण^२ तथा हरिवश पुराण^३ म भी यह सम्पूर्ण कथा मिलती है किन्तु हरिवशपुराण म शक्य करय का हावते हुए कस का आकाशवाणी सुनाई दन वाली घटना अप्राप्त है । विष्णुपुराण म भी यह वर्णन मिलता है ।

ब्रह्मपुराण

ब्रह्मपुराण म^४ य सभी घटनाएँ विद्यमान हैं किन्तु हरिवशपुराण के सह्य यहा भी कस के द्वारा देवकी के रय सचालन तथा आकाशवाणी की घटना नही है, शेष सब घटनाएँ अय पुराणा के ही सह्य है ।

पदमपुराण

पदमपुराण^५ की कथा भागवत पुराण के सह्य ही है । यहा भी समस्त घटनाएँ उसी क्रम तथा उसी रूप म घटी हैं । कोई मौलिक अतर नही है ।

१ भागवत पुराण दशम स्कन्ध (पूर्वाधे) अ० १ श्लोक ३७ ६६

२ विष्णुपुराण पंचम अण अ० १ २१

३ हरिवशपुराण विष्णुपर्व अ ५ ३२

४ ब्रह्मपुराण अध्याय ७२ ८६, ८६

५ पदमपुराण अध्याय २४५

महाभारत

महामारत में भी कस के द्वारा रचनात्मक तथा आत्मपराधी की घटना के प्रति रिकारण रूप से घटनाएँ यथावत् हैं।

कृष्ण की बाललीलाओं का निरूपण यहाँ भी हृदयकारक है। भाग्य तथा शस्त्री की दृष्टि से यह नाटक परिमार्जित नहीं है किन्तु मूल घटनाओं का मौल्य नाटक के रूप में निरूपण निरूपण है।

कसवध नाटक^१

प्रकाशन क्रम से द्वितीय नाटक, रामनारायण मिश्र द्विजनेत्र लिगित कसवध नाटक है। पाँच अंकों का यह एक लघु नाटक है। इसकी भाषा परिष्कृत है।

कथानक

नाटक का आरम्भ देवनागरी का एक समास होता है। कस के अत्याचारों से सब देवगण चिन्तित हैं। मुक्ति का कोई उपाय नहीं मूमता है। अतः मणिजी के अनुरोध से सब विष्णु की स्तुति करते हैं। कस की सावधानी रहन पर भी कृष्ण जम्भोपरात व्रज में लानन पालन के लिए भेज दिये जाते हैं। कस का जब यह पात होता है, तो वह कृष्ण की समाप्ति के लिए विविध उपाय करता है। कृष्ण तथा बलराम को बुलान के लिए अश्रुरजी को गोकुल जाना पड़ता है। मथुरा में आने पर क दाता वदुत से अमुरा का सहार करते हैं। अतः कस श्रीकृष्ण के हाथ से मारा जाता है।

आधार

इस कथा का प्रमुख आधार हरिवंशपुराण^२ है। यहाँ कथा का प्रारम्भिक रूप इस प्रकार है—

स्वयं से उतरकर नारदजी सीधे मथुरा के उपवन में लड़े हो गए और वही से उन मुनिश्रेष्ठ ने कस के पास दूत भेजा। दूत ने कस को जाकर सूचना दी कि नगर के उपवन में नारदजी पधारे हैं। नारदजी के आगमन का समाचार सुनकर असुर कस जल्दी जल्दी अपनी पुरी से बाहर निकला।

१ महाभारत सभापत्र अध्याय ३८ व ७६७ ८०१

२ प्रकाशक लेखक स्वयं मधुवनी दरभंगा प्र० सं १६१०

३ हरिवंश पुराण विष्णुपर्व अध्याय १ ३२

उपवन में पहुँचकर उसने अपने स्पृहणीय अतिथि देवर्षि नारद का दशन किया जो पाप-ताप से रहित थे। उनका तज प्रबलित अग्नि के समान जान पड़ता था। कस ने उनका लिए कानिमान मुषणमय आमन दिया और विधिपूर्वक उनका पूजन किया। आसन ग्रहण करने के उपरांत नारदजी बोले—विभिन्न स्थला पर घूमता हुआ मैं, किसी समय हाथ में वीणा लिए, मरु के गिम्बर पर विराजमान ब्रह्माजी की समा में गया जहाँ देवताओं का समाज जुड़ा हुआ था। वहाँ देखा कि स्वतः पत्नी धारण किए नाना रत्नों से विभूषित ब्रह्मा आदि सभी देवता नित्य सिंहासन पर बैठे हुए हैं। उस समा में देवताओं की जो गुप्त मात्रणा हो रही थी उसमें मैंने सुना कि मेवका सहित तुम्हारे वध हेतु अत्यन्त दारुण उपाय का ही विचार हो रहा है। कस, बड़ा जो कुछ मैंने सुना है उसका अनुसार मयुरा में जा तुम्हारी यह छोटी बहन देवकी है, इसका आठवाँ गर्भ तुम्हारे लिए मृत्यु रूप होगा।^१

भागवत पुराण तथा विष्णु पुराण में भी यह कथा उपलब्ध होती है किन्तु वहाँ कथा का प्रारम्भिक रूप कुछ भिन्न है।

भागवत पुराण

जिम समय साखा देवता के दल ने घमडी राजाओं का रूप धारण कर अपने भारी भार से पृथ्वी को आक्रान्त कर रखा था, उस समय गौ का रूप धारण किए हुए तथा रोती हुई पृथ्वी ब्रह्माजी की धारण में गई। ब्रह्माजी ने बड़ी सहानुभूति के साथ उसकी दुःखगाथा सुनी। उसके बाद वह भगवान शंकर, स्वर्ग के अध्याय प्रमुख देवता तथा गौ के रूप में आयी हुई पृथ्वी को अपने साथ तैरते धार तट पर गये। क्षीर सागर तट पर पहुँचकर ब्रह्मा आदि देवताओं ने पुष्प सूक्त के द्वारा उन्हें परम पुष्प मदानायामी प्रभु की स्तुति की। स्तुति करते-करते ब्रह्माजी समाधिस्थ हो गए, उन्होंने समाधि की अवस्था में ही आकाशवाणी सुनी।^१ इसके बाद जगत के निमाणकर्ता ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा—

देवताओं! मैंने भगवान की वाणी सुनी है। तुम लोग भी उम भेरे द्वारा अभी सुन लो और फिर वसा ही करो। भगवान का पृथ्वी के कष्ट का पहले ही पता है अतः वसुदेवजी के घर स्वयं पुष्पोत्तम भगवान प्रकट होंगे। उनकी आश्रय उनकी प्रियतमा श्रीराधा की सेवा के लिए देवागणों का ग्रहण करनी। स्वयंप्रकाश भगवान दोष भी जो भगवान की कला होने के कारण अनन्त हैं और जिनका सहस्र मुख हैं भगवान के प्रिय कार्य करने के लिए उनसे पहले ही उनके बड़े भाई के रूप में अवतार ग्रहण करेंगे। भगवान की योगमाया भी उनकी आज्ञा से उनकी लीला के कार्य सम्पन्न करने के लिए अशरूप से अवतार लगी।

विष्णु पुराण

विष्णु पुराण^२ में भी कथा का आरम्भ भागवत पुराण के सङ्ग ही है, किन्तु यहाँ

१ हरिवंश पुराण विष्णुपर्व अध्याय १ श्लोक १ १६

२ भागवत पुराण दशम स्कन्ध (पूर्वाङ्क) प्रथम अ० श्लोक २० २१

३ विष्णु पुराण पंचम अङ्क, अध्याय १ २०

ब्रह्मा द्वारा भ्रान्तिवाणी नहीं सुनी गयी। पृथ्वी की वरुण पुत्रों के मुन दक्षताप्राप्त महिमा शीघ्र सागर के निवृत्त पहुँचकर य भगवान विष्णु की स्तुति करने लग। भगवान भ्रज भ्रान्ति विश्वरूप प्रकट करते हुए ब्रह्माजी से प्रसन्नचित्त हो कहने लग तुम्हें मुझ जिम वस्तु की इच्छा हो, वह सब कहो। ब्रह्माजी से समस्त वस्तुओं के मुनवर उहनि भ्रान्ति दक्षता शीघ्र श्याम दा के उपाड शीघ्र दक्षताप्राप्त स बोले—

मेरे ये दोना के पृथ्वी पर भ्रवतार लेनर पृथ्वी के भाररूप कष्ट को दूर करेंगे। सब देवगण भ्रान्ति भ्रान्ति भ्रान्ति स पृथ्वी पर भ्रवतार लेनर भ्रान्ति स पून उत्पन्न हुए उमत्त दक्षता के साथ युद्ध करेंगे। वसुदेवजी की जा देवी के समान देवी नाम की भार्या है उमत्तें गम से मेरा यह श्याम के भ्रवतार लेगा शीघ्र इस प्रकार वहाँ भ्रवतार लेनर वह बालनेमि के भ्रवतार कस का वध करेगा। एमा कहनर श्रीष्टि भ्रान्ति घान हा गए।^१

इसी समय भगवान नारदजी न कस स आवर कहा कि देवकी के भ्रान्ति गम स भगवान धरणी पर जन्म लेंगे। नारदजी से मह समाचार पाकर कस ने वसुदेव शीघ्र देवकी को कारागृह में डलवा दिया। वसुदेव प्रतिजानुसार कस को अपनी प्रपञ्च सन्तान ला लानर देने रह। देवकी के पहले छ गम हिरण्यकशिपु के पुत्र थे। कस द्वारा उन सबके मार जाने पर शेष नामक भगवान का भ्रान्ति, भ्रान्ति से देवकी के सातवें गम में स्थापित हाकर फिर नष्ट हो गया। देवकी के भ्रान्ति गम से कृष्ण उत्पन्न हुए। योगमाया भी उसी दिन यशोदा के गम से भ्रवतरित हुई।

इसके उपरान्त की कथा कृष्ण के गोकुल पहुँचाने गोकुल से कथा लाने तथा उसकी मृत्यु की समस्त घटनाएँ नाटक में सट्टा ही हैं।

ब्रह्मपुराण

ब्रह्मपुराण^२ में श्रीकृष्ण भ्रवतार का वस्तुतः विष्णुपुराण के सट्टा ही है। शेष घटनाएँ अन्य पुराणों के सट्टा हैं।

पद्मपुराण

पद्मपुराण^३ की कथा भागवत पुराण के समान है।

उपर्युक्त समस्त कथा की कथाप्राप्त में स प्रस्तुत नाटक की कथा हरिवंशपुराण की कथा के ही अधिक समीप जान पड़ती है क्योंकि यहाँ भी देवताप्राप्त की समा में ही कस के विनाश का निश्चय होता है। शेष सब घटनाएँ तीनों कथाओं में ही उपलब्ध हो जाती हैं।

१ विष्णुपुराण अध्याय १ श्लोक ५६-७५

२ ब्रह्मपुराण अध्याय ७२-८५

३ पद्मपुराण अध्याय ७४-८५

४ हरिवंश पुराण विष्णुपर्व अध्याय २-२२। भागवत पुराण दशम स्कन्ध (पूर्वाह्न) मं० ४-४४। विष्णु पुराण पद्म पर्व, अध्याय ३-२०

अंतर

नाटक की कथा तीना ग्रन्थों की कथा से इस दृष्टि में भिन्न है कि नाटक में शिवजी मध्यस्थ बनते हैं। वही देवताओं को विष्णु के समीप जाकर प्रार्थना करने के लिए प्रेरित करते हैं, जब कि मूल कथाओं में शिव का कहीं कोई सन्देश नहीं है।

इन तीना ग्रन्थों की कुछ प्रमुख घटनाओं को मग्नहीत कर लेखक ने नाटक की रचना की है। नाटक लघु है इसलिए सम्पूर्ण घटनाओं का समावेश इसमें नहीं हो पाया है।

श्रीकृष्णावतार^१

राधेश्याम कथावाचक लिखित यह एक राचक नाटक है। इस नाटक की रचना यू. अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी के लिए की गयी है। कथा के मध्य में मनोरजनाय अर्वाचर प्रसंग भी आते हैं किन्तु इनका मुख्य तथा स कोई सम्बन्ध नहीं है।

कथानक

प्रस्तुत नाटक का प्रारम्भ स्वर्ग में नारद और विष्णु भगवान के वार्तालाप से होता है। नारदजी भूलोक में बहते हुए अत्याचारों का उल्लेख करते हैं और उनके अंत के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं। भगवान उन्हें आश्वासन देते हैं कि देवकी के गर्भ से अष्टम पुत्र के रूप में वे जन्म लगे।

किस अपने पिता को अपदस्थ करने स्वयं भयुरा का राजा बन जाता है। वसुदेव के साथ देवकी का विवाह होकर रथ में उसके चल दान पर आकाशवाणी होती है कि इसका अष्टम पुत्र तारा सहारक होगा। अतः कस दाना को बन्दी बना लेता है। वह उनके प्रत्येक पुत्र का वध करता रहता है। श्रीकृष्ण के जन्म के उपरांत की घटनाएँ अथ नाटका की ही समान हैं।

कालिया नाग का नाशन पूतना, शकटासुर, वपभासुर अघासुर, बकासुर तथा धेनुकासुर राक्षसों के वध की घटनाएँ यहाँ अथ नाटका की अपभा अति हैं। इस नाटक की कथा कसवध पर्यन्त है।

आधार

इस नाटक का आधार मुख्य रूप से भागवत पुराण है।^२ नाटक का प्रारम्भ कल्पित

१ प्रकाशक, लेखक स्वयं राधेश्याम पुस्तकालय बरेली प्र० सं० १९२९ ई०

२ भागवत पुराण दशम स्कन्ध (पूर्वाह्न), अध्याय १४४

अंतर

नाटक की कथा तीना प्रथा की कथा से इस दृष्टि में भिन्न है कि नाटक में गिबजी मध्यस्थ बनते हैं। वे ही दबताग्रा को विष्णु के समीप जाकर प्रार्थना करने के लिए प्रेरित करते हैं, जब कि मूल कथाग्रा में शिव का कहीं कोई संबंध नहीं है।

इन तीना प्रथा की कुछ प्रमुख घटनाग्रा का मग्नहीत कर लेखक ने नाटक की रचना की है। नाटक लघु है, इसलिए सम्पूर्ण घटनाग्रा का समावेश इसमें नहीं हो पाया है।

श्रीकृष्णवतार^१

राधेश्याम कथावाचन लिखित यह एक रोचक नाटक है। इस नाटक की रचना यू. अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी के लिए की गयी है। कथा के म. प्र. में मनोरजनाथ अवातार प्रसंग भी आते हैं किंतु इनका मुख्य रथा से कोई सम्बन्ध नहीं है।

कथानक

प्रस्तुत नाटक का प्रारम्भ स्वर्ग में नारद और विष्णु भगवान के वार्तालाप से होता है। नारदजी भूलोक में बढते हुए अत्याचारा का उल्लेख करते हैं और उनके अंत के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं। भगवान उन्हें आश्वासन देते हैं कि देवकी के गर्भ से अष्टम पुत्र का रूप में व जन्म लेंगे।

कम अपने पिता की अपत्त्य करके स्वयं मयुरा का राजा बन जाता है। वसुदेव के साथ देवकी का विवाह होकर रथ में उसके चल देने पर आकाशाणी होती है कि इसका अष्टम पुत्र तरा सहारक हागा। अंत कस दाना को बंदी बना लेता है। वह उनके प्रत्येक पुत्र का वध करता रहता है। श्रीकृष्ण के जन्म के उपरांत की घटनाएँ अथ नाटका के ही समान हैं।

कालिया नाग का नाशन, पूतना, शकटासुर, वषमानुर, अघासुर बकासुर तथा धेनुकासुर राक्षसा के वध की घटनाएँ यहा अथ नाटका की अपक्षा अधिक हैं। इस नाटक की कथा कसवध पर्यन्त है।

आधार

इस नाटक का आधार मुख्य रूप से भागवत पुराण है।^२ नाटक का प्रारम्भ कल्पित

१ प्रकाशक लेखक स्वयं राधेश्याम पुस्तकालय बरेली प्र. सं० १६२६ ई०

२ भागवत पुराण दशम स्कन्ध (पूर्वाह्न) अध्याय १४४

है। तथापि देवताओं का आस्वासन देने वाला प्रसंग तथा भगवान विष्णु के जन्म लेने वाला प्रसंग इत्यादि सभी पुराणों में हैं। यहाँ इसका रूप परिवर्तित है, क्योंकि भागवत तथा पद्म पुराणों में पृथ्वी गौ का रूप धारण कर, अत्याचारा से पीड़ित हारर ब्रह्माजी की शरण में जाती है और ब्रह्मा देवताओं तथा गौरूपिणी पृथ्वी को लेकर क्षीर सागर के तट पर जाकर विष्णु भगवान की आराधना करने है। भगवान कस के नाश हेतु स्वयं जन्म लेने का आस्वासन देते हैं। विष्णु पुराण तथा ब्रह्मपुराण^१ में गौरूपिणी पृथ्वी की पुकार पर ब्रह्मा स्वयं विष्णु के पास जाता है और विष्णु उन्हें आश्वस्त करने हैं। हरिवंशपुराण^२ में देवता एक सभा में स्वयं कस दब का निश्चय करते हैं। नारद उसमें कोई भाग नहीं लेते। इस दृष्टि से उपयुक्त समस्त स्थला पर कथा का रूप भिन्न है जो नाटक की कथावस्तु के प्रसंग से मेल नहीं खाना अतएव नाटक की कथा का यह प्रसंग मौलिक है। रथ के चल देने पर आकाश वाणी हान का प्रसंग भागवतपुराण^३, विष्णुपुराण^४ तथा पद्मपुराण^५ तीनों में मिल जाता है। नाटक की शेष घटनाएँ इन सब ग्रंथों में यथावत् दमी जा सकती हैं।

श्रीकृष्ण-जन्म नाटक^६

ठा० भारत्सिंह यादवाचार्य लिखित श्रीकृष्ण-जन्म नाटक में केवल तीन अंक हैं। इस नाटक की कथावस्तु संपिप्त है तथा अत्र नाटका से कुछ भिन्न भी है। कथा का रूप इस प्रकार है—

कथानक

देवकी के विवाह के समय की आनाशवाणी मुनिकर कस भयभीत हो वसुदेव तथा दबकी दाना को बंदी बना लेता है। दबकी का जो भी सन्तान होती है, वह उस मरवा डालता है। दबकी के अष्टम पुत्र के जन्म पर पुत्र रूपी भगवान अपना विराट रूप दिखते हैं। देवकी स्तुति करती है तदुपरान्त बालस्वरूप धारण करने की प्रायना करती है। श्रीकृष्ण के बाल रूप में भ्रान पर दबकी और वसुदेव उसकी रक्षा की चिन्ता करते हैं। वसुदेव की हथकड़ी बटियाँ टूट जाती हैं। पुत्र का रूप में रखकर व अपन छोट भाइ नन् के यहाँ ब्रज में छाडने के

१ भागवत पुराण दशम स्कन्ध (पूर्वाह्न) अध्याय १ श्लोक १७-२५। पद्म पुराण अ० २४५

२ विष्णु पुराण पंचम अंश अध्याय १ श्लोक १२-२६। ब्रह्मपुराण अ० ७२ ५ ३१

३ हरिवंश पुराण विष्णुपर्व अध्याय १ श्लोक ११७

४ भागवत पुराण दशम स्कन्ध (पूर्वाह्न) अध्याय १ श्लोक २६ ३४

५ विष्णु पुराण पंचम अंश अध्याय १ श्लोक ५८

६ पद्म पुराण अध्याय २४५ ४८

७ प्रह्लादक पाण्डुरामार मनानान कागा प्र० अ० सन् १६२४

लिए ले जात हैं। कोई प्रहरी उन्हें देख नहीं पाता। जमुना भी मुस्तर हो जाती है। व्रज जाकर वे नद से मिलत हैं। पुत्र को लेकर बटले में नद सद्य जात किया का इस आशा से दे देत हैं कि बस किया की हत्या नहीं करेगा। वसुदेव वारागृह में लौन्त है तो उनके हाथा परा में पुत्र हथकडी-बडिया पड जाती हैं।

उधर नद के घर घूमधाम से पुत्र जमोसव मनाया जाना है।

आधार

इस नाटक का मूल आधार भागवतपुराण ही^१ है क्योंकि नाटक की अधिनाश घट नाएँ इस ग्रन्थ में ज्यो-की-त्या मिल जाती हैं। भगवान के विराट रूप में जन्म लेने पर देवकी के द्वारा केवल इसी पुराण में स्तुति की गयी है। कृष्ण के गिरुरूप में परिवर्तित हो जान के उपरांत, वसुदेव द्वारा उन्हें गाकुल में जान की घटना भी यहाँ यथावत वर्णित है। अन्तर केवल एक स्थल पर है।

अन्तर

नाटक में वसुदेव कृष्ण को सूय में रखकर ले जात है किन्तु यहाँ कृष्ण वसुदेव की गोठ में ले जाय जाते हैं। विष्णुपुराण^२ तथा हरिवंशपुराण^३ में भी कृष्ण का गाकुल ले जाने का प्रसंग है किन्तु हरिवंशपुराण में यमुना पार करने का विवरण उपलब्ध नहीं है,^४ यहाँ वसुदेव कृष्ण को लेकर रात के समय यशोदा के घर में घुस जात है। अतएव वे यल या जल किस भाग से गये, यह केवल अनुमान का विषय रह जाता है।

पद्मपुराण^५ तथा ब्रह्मपुराण^६ में भी यह वर्णन इसी रूप में प्राप्त होता है, किन्तु यहाँ कृष्ण को किस प्रकार ले जाया गया इसका उल्लेख नहीं है। हाँ, ब्रह्मपुराण में इतना अवश्य निखा है कि कृष्ण का वषाकाल में ले जात समय शेषनाम न अपने फणा से छायी की।^७

विवेचन

इस नाटक की शली थियेट्रिकल कम्पनिया के नाटका जसी है। इसका स्तर भी साधारण है, भाषा भी परिष्कृत नहीं है किन्तु एक दृष्टि में यह नाटक अत्यन्त विवक्षित अर्थ नाटका से भिन्न है। यहाँ नाटककार ने अलौकिक एवं चमत्कारिक घटनाओं के साथ-साथ घटना का व्यावहारिक रूप भी उपस्थित किया है। वसुदेव यहाँ कृष्ण को यशोदा के भगीव

- १ भागवत पुराण दशम स्कन्ध (पूर्वार्द्ध) अध्याय २४४
- २ विष्णु पुराण (पंचम अध्याय) अ० ३ श्लोक १५ २३
- ३ हरिवंश पुराण (विष्णुपर्व) अध्याय ४ श्लोक २१ ३०
- ४ वही अध्याय ४
- ५ पद्म पुराण अध्याय २४५ ४३ ५५
- ६ ब्रह्मपुराण अध्याय ७३ २ २६
- ७ वही अध्याय ७३ २१

लिटाकर तथा नाद की कान्या को चुपचाप लेकर नहीं चले जाते। अपने छोटे भाई नाट से कहकर वे उनकी पुत्री को लाते हैं। मूल कथाओं तथा अन्य नाटकों के समान यह अदना-वन्ती चुपचाप नहीं हो जाती। भाँवा अपने बालक के सम्बन्ध में यह भी पाते हैं कि वह पुत्र है मा पुत्री और इसलिए किसी के द्वारा उठाकर ले जाने पर भी कोई सन्देह न जग, यह चीज अत्यन्त अव्यावहारिक अविश्वसनीय एवं असंगत है।

इस नाटक के अतिरिक्त अन्य तीनों नाटकों में कहाँ भाँवा नाटकीय घटनाओं की बुद्धि समान रूप देने का प्रयत्न नहीं किया गया है। इसका कारण सम्भवतः युग-सापक्षता ही हो। प्रकाशन के कालक्रम की दृष्टि से यह चतुर्थ नाटक है समय के साथ-साथ विचारधारा का परिवर्तन यहाँ स्पष्ट है। अन्य तीनों नाटक अपने मूल आधारा के समीप होते हुए भी व्यावहारिकता से बहुत दूर हैं।

श्रीकृष्ण'

चतुर्भुज एम० ए० लिखित यह नाटक संगीत नाटक अकादमी की आर्थिक सहायता में प्रकाशित हुआ। इस नाटक के मूल में लक्ष्मण का उद्देश्य कृष्ण की केवल उन भूमिकाओं को प्रस्तुत करना रहा है जिनका अभिनय भली प्रकार किया जा सके। इस नाटक का सफल अभिनय प्रथम बार १७२५१ को लक्ष्मण के ही निर्देशन में हुआ। सुन्दर तथा सरल भाषा में लिखा हुआ तीन अंकों का यह एक लघु नाटक है। कथानक इस प्रकार है—

मगध सम्राट् जरामगध अपनी एकमात्र पुत्री अस्मि के विधवा हो जाने के कारण दुःखी है। उस आश्रय होना है कि कृष्ण (एक बालक) के द्वारा मथुराधिपति कंस का वध किया प्रचार मम्मक है। अस्मि के हत्यारण करके प्रवृत्त करने पर तो उस विद्वान् करना ही पड़ता है। अग्न मनापति गणुपाल से वह मात्रणा करता है और अस्मि के यह कर्तव्य पर कि वह पति का बन्धन बन के लिए ही सना नही हूँ कृष्ण से युद्ध करता है किन्तु कृष्ण जरामगध का मन्त्रण बार परास्त करके हैं। बन्धन कृष्ण के साथ रहते हैं। मन्त्रण बार की पराजय से व्यथित हो जरामगध कान्यकन का आमन्त्रित करता है। कान्यकन विधवा है। जरामगध उसका मन कर पाया था उसकी सना जगती नीति में लडता है। कालकन अस्मि का दग्ध ही मुगध हो जाता है और कृष्ण का हारण के पश्चात् उमम विवाह करने की याचना बनाता है। कृष्ण कान्यकन से उठते हुए द्वारका चल जाते हैं और वहाँ अपनी गज धाना बनाते हैं। कान्यकन अस्मि से आन्तर प्रमोदना करना है पर अस्मि विपयुभी कन्धर से कान्यकन का भाग्य स्वयं मर जाती है।

दुर्भाग्य घटना इस नाटक में अस्मि का परिणय में सम्बन्ध रखता है। उमम भाई

भी उसका विवाह गिणुपाल से करना चाहता है। रक्मिणी का पत्र पाने के कारण कृष्ण पूजा के अवसर पर बलराम के साथ पहुँचकर मूर्ति के पीछे छिपकर रक्मिणी का हरण कर लेता है और रक्म से लड़त हुए द्वारका चले जाते हैं।

तीसरी घटना युधिष्ठिर के रायसूय यज्ञ से सम्बन्ध रखती है। कृष्ण बताने हैं कि जरामघ और गिणुपाल का जीवन ही कठिन है। भीम राजगह पहुँचकर जरामघ से मल्ल युद्ध कर उसका वध कर दते हैं। अन्तिम दृश्य में गिणुपाल का वध सुगुण चक्र से कृष्ण के द्वारा होता है क्योंकि गिणुपाल कृष्ण का सर्वप्रथम निलन करने के पक्ष में नहीं है। वचन के अनुसार सौ अपराधा से अधिक हाँ जान के कारण कृष्ण उनसे मार डालते हैं तत्पश्चात् तिलक होता है।

उपयुक्त कथानक में तीन प्रमुख प्रसंग स्पष्ट देखे जा सकते हैं—

- १ कालयवन की मृत्यु।
 - २ रक्मिणी हरण।
 - ३ युधिष्ठिर का रायसूययज्ञ तथा जरामघ एवं गिणुपालवध।
- इन तीनों प्रसंगों के आधार-स्थल तथा अन्तर निम्नलिखित हैं—

आधार

भागवत पुराण

भागवत पुराण^१ में उपयुक्त तीनों ही प्रसंग लगभग इसी रूप में विस्तार में वर्णित हैं। नाटक तथा भागवत पुराण की कथा में अन्तर इस प्रकार है—

कालयवन की मृत्यु

१ नाटक में अस्ति का जरामघ की एकमात्र पुत्री कहा गया है। भागवत पुराण में जरामघ की अस्ति और प्राप्ति दो पुत्रियाँ हैं और दोनों का विवाह क्रम के साथ हुआ है।

२ नाटक की कथा में जरामघ जब सत्रह बार पराजित हुआ तो अठारहवीं बार उसने कालयवन का सहायतायें आमंत्रित किया। भागवत की कथा के अनुसार कालयवन का नारदजी ने भेजा था, न वह स्वयं आया और न उसे जरामघ द्वारा आमंत्रित ही किया गया।^२

३ नाटक में कालयवन की मृत्यु अस्ति के द्वारा कटार से उस समय की गयी, जब

१ भागवत पुराण दशम स्कन्ध (उत्तरार्द्ध) अध्याय १० पं. ५१ ५२ ५४ ७२ ७४

२ भागवत पुराण—

अष्टादशसप्तमे प्रागामिनि तन्त्ररा।

नारदप्रियलो कीरो यवन प्रत्यक्ष्यत ॥

—दशम स्कन्ध (उत्तरार्द्ध) अध्याय १० पं. ५४

यह उसके गौरव पर मुग्ध है, उगम प्रणयपात्रता कर रहा था। भागवत पुराण की कथा में कालयवन की मृत्यु का अस्तित्व प्रणय कथा के साथ बार्द सम्बंध रहा है।

रुक्मिणी हरण

भागवत पुराण तथा नाटक की कथा में रुक्मिणी-हरण प्रथम में सम्बद्ध विम्बित्वित् अन्तर है—

१ नाटक में रुक्मिणी हरण का घटना पूजा के अन्तर पर ही घटता है किन्तु ब्राह्मण द्वारा सद्गम भङ्ग जा के स्थापन पर (भागवत पुराण की कथा के अनुसार) यहाँ कृष्ण रुक्मिणी के पत्र से द्रविड हार के कुण्डिनपुर पहुँचते हैं और यथासमय रुक्मिणी का हरण लेते हैं।

२ नाटक में मूर्ति के पीछे छिपकर रुक्मिणी के पूजा के लिए अन्त पर उगम हरणना सख्त की अपनी कल्पना है। भागवत पुराण में रुक्मिणी हरण उम समय होता है जब रुक्मिणी पूजा के उपरान्त मन्दिर में से सगी के गाय निरन्तरी है। यहाँ हरण की विधि में भी अन्तर है। नाटक की कथा में ऐसा प्रतीत होता है कि के मन्दिर के गुप्त द्वार से बाहर निकल गये जबकि भागवत की कथा के अनुसार कृष्ण समस्त राजाघा के सम्मुख रुक्मिणी को उठाकर ले गये।

युधिष्ठिर का रायसूय यज्ञ, जरासन्ध तथा गिणुपालवध

इस प्रसंग में नाटक तथा भागवत पुराण की कथा में बहुत साधारण अन्तर है—

१ नाटक में कृष्ण अर्जुन और भीम म्नातक के रूप में जरासन्ध के पास पहुँचते हैं भागवत पुराण में इन तीनों ने जरासन्ध के तबन में ब्राह्मण वेप में प्रवेश पाया, ऐसा वर्णित है।

२ नाटक में भीम तथा जरासन्ध के मध्य मलयुद्ध हाता है और भीम अपनी शक्ति के बल से जरासन्ध पर विजय पा लेते हैं। भागवत पुराण के सद्गम यहाँ जरासन्ध की कथा जरा नाम की रा इसी से जुड़ी हुई नहीं मानी गयी है, अतएव उस चीर दिय जान का विवरण यहाँ नहीं है।

जरासन्ध के मारन की खेखर की यह नूतन कल्पना स्वाभाविक तथा युद्धिसगत है। कथा का मूल रूप भी इससे विद्वत नहीं होता। जरासन्धवध तथा राजसूय यज्ञ से सम्बद्ध नाटक की शेष घटनाएँ, भागवत पुराण के सद्गम ही हैं।

विष्णु पुराण

कालयवन की मृत्यु का प्रसंग भागवत पुराण के समान विष्णु पुराण में भी उपलब्ध

होना है। कथा के साथ यहाँ कालयवन के जन्म का वृत्तांत भी विशेष रूप से वर्णित है। विष्णुपुराण के अनुसार कालयवन महर्षि गार्ग्य का पुत्र था, जिस उन्हाम बारह वर्ष तक शिव की आराधना तथा उम अर्घ्य में बचल लौहचूण भक्षण करते प्राप्त किया।^१ कथा में कालयवन, यवनराज की पत्नी से उत्पन्न बताया है। यौवन तथा बल प्राप्त करने के उपरांत कालयवन को जब नारदजी के द्वारा यह बात हुया कि पथ्वी पर यादवा की शक्ति समे प्रचण है तो कालयवन ने अति विशाल म्लच्छ मना को लेकर प्रथम यादवा क नता कृष्ण से ही टक्कर ली।^२ यहाँ भी कालयवन को जरासंध के द्वारा आमन्त्रित नहीं किया गया। अस्ति तथा प्राप्ति नाम की जरासंध की दो पुत्रिया का वर्णन विष्णुपुराण क आख्यान में भी उपलब्ध हाता है। य दोनों कस का रानिया थी। इस प्रकार यह कथा अधिकांश में भागवत पुराण क ही समान है।

रुक्मिणी हरण का प्रसंग विष्णु पुराण में संक्षेप में है।^३ यहाँ श्रीकृष्ण को रुक्मिणी द्वारा पत्र अथवा आह्वान द्वारा सभे में भेजे जान का कोई संकेत नहीं है। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी एक दूसरे के प्रति आकर्षित हैं और रुक्मिणी का भाई द्रुपदी अस सम्बंध का विराधी है यहाँ इतना ही उल्लेख है। नाटक तथा विष्णुपुराण की शेष घटनाएँ समान हैं।

हरिवंश पुराण

विष्णुपुराण के सहा हरिवंशपुराण^४ में भी कालयवन की मृत्यु के प्रसंग में कालयवन के जन्म की कथा का भी उल्लेख है।^५ विष्णुपुराण के आख्यान से यह स्पष्ट नहीं होता कि गार्ग्य मुनि ने यवनराज की पत्नी से पुत्रोत्पत्ति क्या की? वहाँ यवनराज को केवल पुत्रहीन कहकर ही छोड़ दिया गया है।^६ किंतु हरिवंशपुराण के आख्यान में यह अस्पष्टता नहीं है।^७

यहाँ कालयवन की माला मानवीरुपधारिणी अप्सरा का बताया है जो विष्णुपुराण से मिन है। कालयवन क वध का वृत्तांत भी यहाँ भागवत तथा विष्णुपुराण के सहस है किंतु यहाँ राजा मुचुकुट, देवनाग्रा में केवल निद्रा का वर माँगा है—'जो मुझे सोने से जगा दे वह मेरी दृष्टि से भरम हा जाय।' यह मुचुकुट स्वयं कहता है।^८

रुक्मिणी-हरण का वृत्तांत हरिवंशपुराण में अति विस्तार में वर्णित है।^९ यहाँ कथावाचक वशम्पायन जी हैं और आता जनमेजय। इस कथा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

- १ विष्णु० (पंचम अंश) अध्याय २३ श्लोक १५
- २ वही (पंचम अ०) अ० २३ श्लोक ६८
- ३ विष्णु पुराण पंचम अंश अध्याय २६
- ४ हरिवंशपुराण (विष्णुपर्व) अ० ४३ ५७
- ५ वहाँ, अध्याय ५७
- ६ विष्णु पुराण पंचम अंश अध्याय २३ ४
- ७ हरिवंश पुराण (विष्णुपर्व) अध्याय ५७ श्लोक १२ १५
- ८ हरिवंशपुराण (विष्णु) अ ५७ श्लोक ४५
- ९ हरिवंश पुराण (विष्णुपर्व) अध्याय ४७ ४८ ५१ ५६ तथा ६०

अतिरिक्त अय सब पराणा के सदन ह ।^१

रविमणी हरण प्रसंग ब्रह्मपुराण म अति मक्षिप्त है ।^२ केवल ग्यारह श्लोक म ही रक्मी की उहन वा विवाह गिणुपाल स करने की इच्छा वृष्ण तथा उलगम का विवाह देखने के लिए आना, रविमणी हरण तथा रक्मी की वृष्ण को जिना मारे हुए कुष्मिन्पुर म प्रवेश न करने की प्रतिज्ञा आदि घटनाएँ सम्मिलित हैं । यहाँ रविमणी द्वारा पूजा का प्रसंग नहीं है । केवल इतना ही कहा गया है—

‘श्वोभाविनि विवाहे तु ता क्या हृतवानहरि ।’^३

ब्रह्मवयतपुराण

ब्रह्मवयत पुराण म रविमणीहरण का प्रसंग अत्र तक विवचिन पुराणा से भिन्न है ।^४ इस उपाख्यान म नाटक म जो भिन्नताएँ हैं वे निम्नलिखित हैं—

- १ ब्रह्मवयत पुराण म, रविमणी के द्वारा (नाटक क ममान) वृष्ण के समीप कोई पत्र अथवा सन्देश नहीं भेजा जाता ।
- २ ब्रह्मवयत पुराण की क्या म रविमणी का विवाह विदम्भ नगरी म ही सम्पन्न हाता है । नाटक म ऐसा नहीं है ।
- ३ गौतम पुत्र सततानन्द का इस विवाह म प्रमुख हाथ रहता है किन्तु यहा के इस उपाख्यान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि नाटक क सदन यहाँ रविमणी हरण नहीं दिखाया गया, अत रविमणी द्वारा पूजा प्रसंग वृष्ण का अनामित्रित रूप से आगमन इत्यादि विवरण यहा नहीं हैं और इसीलिए ब्रह्मवयत पुराण के इस उपाख्यान का शीपक रविमणी हरण न होकर रविमणी सम्प्रदानम है ।

महाभारत

रविमणी हरण वणन का महाभारत म केवल सक्त मात्र है ।^५ किन्तु जरासन्ध वध राजसूय यज्ञ तथा गिणुपाल वध इत्यादि प्रसंग यहा अति विस्तार म वर्णित है ।^६ इन प्रसंग म भी नाटककार ने मूलकथा का आधाग मात्र लिया है । महाभारत म वर्णित अस्वाभाविक एवं अलौकिक अमगत प्रसंग यहा नहीं लिय गए हैं । अत्रर इस प्रकार हैं—

१ नाटक म जरासन्ध मृत्यु से पूर्व अपने पुत्र क राज्याभिषेक की घोषणा नहीं करता । जरासन्ध की मृत्यु क उपरात यह वाय वृष्ण ही सम्पन्न करत हैं । महाभारत म वृष्ण ही सहदेव का राज्याभिषेक करत हैं किन्तु मरने से पूर्व जरासन्ध भी घोषणा कर

१ ब्रह्मपुराण अध्याय ८८ श्लोक २२

२ वही अध्याय ६१ श्लोक १११

३ वही अध्याय ६१ श्लोक ६

४ ब्रह्मवयत पुराण अध्याय १०५ १ म

५ महाभारत (भाषित्व) अध्याय ६७ श्लोक १५६

(समापक) अध्याय ४५ श्लोक १५

६ वही समापक (जरासन्धवध) अध्याय २१ २५ (धर्मानिहरणवध) अ० ३५ ४५ ।

कथा सुनात ह । कथा का सन्निप्त रूप इस प्रकार है—

एक ब्राह्मण, भगवान् श्रीकृष्ण के परम मित्र थे । वे बड़े ब्रह्मगानी विषया से विरक्त नात चित्त और नितन्द्रिय थ । गहृह्य होने पर भी किमी प्रकार का सग्रह परिग्रह करने की उनकी वृत्ति नहीं थी । प्रारम्भ के अनुसार जो कुछ मिल जाता, उसी में वे सतुष्ट रहत थे । एक दिन दरिद्रता की प्रतिमूर्ति दु खिनी पतिव्रता सुतामा की स्त्री ने पति म कृष्ण के पास जाने का आग्रह किया । सुतामा न यह विचारकर जाना स्वीकार कर लिया कि भगवान् श्रीकृष्ण क दशन ता हा ही जाएग । चलते समय पत्नी न चार मुटठी चिउडे पडास से लाकर पति के कपडे म भेंट हतु बाध दिए ।

द्वारना म पहुचन पर वह ब्राह्मण सनिका की तीन छावनिया और तीन डयोडिया पार करक भगवान् के पास जा पहुचा । भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्राणप्रिया रुक्मिणीजी के पलग पर विराजे हुए थ । ब्राह्मण देवता का दखकर व उठ खडे हुए और समीप पहुचकर उह भुजपाश म बाध लिया । उनके कमलकामल नत्रा स ग्रथु बरसने लगे । अपने पलग पर बिठाकर पूजन की सामग्री लाकर श्रीकृष्ण ने उनकी पूजा की । ब्राह्मण देवता फटे पुराने वस्त्र पहन हुए थे । उनका शरीर अत्यन्त मन्निन और दुबल था । रुक्मिणी न उन पर पखा भला और श्रीकृष्ण मित्र के साथ वाता म तल्नीन हो गए । पश्चात् उहोंने घर से लाए हुए उपहार के सम्बन्ध म पूछा । भगवान् श्रीकृष्ण के इस प्रकार पूछन पर भी ब्राह्मण देवता न सज्जावश व चार मुटठी चिउडे नहीं दिये । भगवान् ने स्वय ही सम्पूर्ण स्थिति जान ली और निश्चय किया कि मैं अब इसे ऐसी सम्पत्ति दगा जो देवतामा क लिए भी दुलम है । उहान के चिउडे स्वय छीन लिए और एन मुटठी चिउडा खा गये दूसरी मुटठी को ज्योही रुक्मिणी न खान के लिए उचत देया तो उहोन भगवान् श्रीकृष्ण का हाथ धाम लिया और कहा विश्वात्मन ! वस वस, मनुष्य को इम लोके में तथा मरने क बाद परलाक म भी समस्त सम्पत्तिया की समृद्धि प्राप्त करने के लिए यह एन मुटठी चिउडा ही बहुत है क्याकि आपके लिए इतना ही प्रसन्नता का हेतु उन जाता है ।

ब्राह्मण देवता उम रात भगवान् श्रीकृष्ण के महल म ही रह । उहान वहा वकुण्ड के मुख का अनुभव किया । उह श्रीकृष्ण स प्रथम रूप म कुछ न मिला किन्तु दूसरे दिन जब वे घर पहुचे तो उहान मत्र कुछ परिवर्तित पाया । अतुलित बभब का दखनर वे आश्चर्यावित हा गए ।

भागवत पुराण के इम आख्यान म कृष्ण सुतामा नाटक की कथा अपने सम्पूर्ण रूप म मिल जाता है । अतएव यही पुराण मुख्य रूप स इस नाटक का आधार है ।

बिधेवन

यह नाटक नरोत्तमनाम क काव्य के सट्टा ही सरस है क्योंकि लेखन ने इसम अपने तथा अर्थ लयका के पद्य भी सम्मिलित किए हैं । नरोत्तमनाम क काव्य की कथा भी बिलकुल भागवत पुराण की कथा के सट्टा ही है अत किन्हा किन्ही स्थला पर एसा प्रतीत हाना है कि

नाटककार न मरोत्तमदास के काव्य का ही नाटकीकरण कर दिया है। लक्ष्म की रचना शली तथा अनन्त राग रागिनिया के समावेश ने नाटक का अति रोचक एवं सरम बना दिया है।

श्रीकृष्ण-सुदामा'

हरिनाथ व्यास लिखित कृष्ण सुदामा नाटक तीन अंका की एक सामान्य रचना है। श्रीकृष्ण और सुदामा के प्रेम की छान्नी-मी कथा का लेकर इस नाटक में बड़ा विस्तार दिया गया है। इसके अतिरिक्त सुदामा की कथा के साथ दो अवातर यथाएँ भी और जाड़ भी गयी हैं। कथाबस्तु का मन्थित रूप निम्नलिखित है—

श्रीकृष्ण के साथ सान्नीपति गुरु व आश्रम में पढत समय श्रीकृष्ण और सुदामा गुरु के लिए लक्ष्मी ताडत गये थे। गुरुपत्नी ने दाना के लिए थोड़े में चने दिये थे। सुदामा ने व चने कृष्ण से छिपाकर स्वयं प्या लिए और फलस्वरूप उन्हें दरिद्रता प्राप्त हुई। अनुत्पारता का परिणाम बन्नी अच्छा नहीं होता। यही प्रतिपादित करने के लिए महा नाटककार ने भक्ति दरिद्रता और माया इन तीन पात्रों की कल्पना और की है। भक्ति सुदामा की सहायता करना चाहती है पर दरिद्रता और माया उस सत्य तम करते रहते हैं। सुदामा की विकट परीक्षा होती है, पर अन्त में विजय भावना ही होती है। अविचल श्रद्धा और भक्ति निश्चित ही फलदायिनी होती है किन्तु भक्त को उड़ी उड़ी कठिनी परीक्षा में गुजरना पडता है। सुदामा स्थिरता में ही परीक्षामात्र में खरे उतरते हैं।

दूमगी और एक उस सठ की कल्पना भी की गयी है जो धनी हान हुए भी अति अनुत्पार है। उमम भक्ति और निष्ठा कुछ भी नहीं है। वह कमाता अवश्य है पर उसका उपयोग न वह स्वयं कर सकता है और न कुछ द सकता है। उसका मारा धन छिन जाता है। इस कथा की कल्पना इसलिए की गयी है कि धन रहने पर भी आस्था न रहने से वह व्यर्थ हो जाता है।

आधार

इस कथा का आधार भी भागवत पुराण ही है। भागवत पुराण के सुदामा आख्यान से निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं—

१ सुदामा श्रीकृष्ण के साथ सान्नीपति मुनि के आश्रम में पढत थे और उनके परम मित्र थे।

२ सुदामा स्वयं धन के इच्छुक नहीं थे वे सतोषी वृत्ति के थे। उनकी पत्नी प्रति साध्वी और सात्विक वृत्ति वाली थी किन्तु धनाभाव का कष्ट उस अल्पतरता था।

१ प्रभाकर ब्रजनाथप्रसाद बुक्नेकर राजा प्रवाडा बनारस द्वितीय स० १६२२ ई

२ भागवत पुराण, दशम स्कंध अध्याय ८० श्लोक ३५४०

३ सुदामा की अटूट भक्ति तथा निस्पृह भावना से प्रभावित होकर ही भगवान ने उन्हें अपने प्रसाद का अधिकारी बनाया।

प्रस्तुत नाटक की कथा में मूलरूप से ये सभी प्रसंग विद्यमान हैं। नाटक की घटना—इधर लान के लिए सुदामा कृष्ण के जानेवाला प्रसंग भी—श्रीकृष्ण भगवान के मुख से कथा में उल्लिखित है। त्रिभुक्तु गुरु पत्नी द्वारा चने दिये जाने वाली घटना यहाँ नहीं है। लोकप्रचलित किम्बदन्ती का ही सम्भवतः नाटककार ने यहाँ उद्धृत कर दिया है। सेठजी तथा भक्ति माया और दरिद्रता वाले पात्रों की कथा काल्पनिक है जिस लेखक ने विषय प्रतिपादन तथा नाटक में सौंदर्य लान के लिए रचा है।

द्वारपर की राज्य-क्रान्ति^३

विश्वीरीदास वाजपयी रचित इस कड़ी का यह तृतीय नाटक है। नाटक में चार अंश हैं। इस नाटक की कथा पूर्व वर्णित कथा से भिन्न है। कथा का रूप इस प्रकार है—

कथानक

आचार्य सात्वीपति के आश्रम में विद्याध्ययन के उपरांत स्नातक बनने पर श्रीकृष्ण सुदामा और सवास—तीनों स्नातक आपस में मानचीत करत हुए आचार्य के दीर्घ भाषण की कुछ महत्त्वपूर्ण बातों की चर्चा कर रहे हैं। सवास का यह चर्चा रचित्र प्रतीत नहीं होती। कृष्ण और सुदामा, दोनों आश्रम से चल जाते हैं। सवास विजयनगर के राजा का राजपुरोहित बन जाता है। उसमें पहले इस पद के लिए सुदामा से अनुरोध किया जाता है त्रिभुक्तु के अस्वाकार कर दते हैं।

स्वामिमानी सुदामा लामा में जाकर दरिद्रतापूर्ण जीवन बिताते हुए भी लोगों को शिक्षित बनाने और उनमें राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में तत्पर रहते हैं। उनकी पत्नी भी उनके साथ में पूरा सहयोग देती है। श्रीकृष्ण भी द्वारका में अपने कौशल से राजाधिराज बन जाते हैं। विजयनगर के राज्य जिसके ग्रामों में रहकर सुदामा लामा का शिक्षित बना रहे थे श्रीकृष्ण अपने साथ में मिलाते हैं। सुदामा और उनकी पत्नी लाना का ही इस समाचार से बड़ी प्रसन्नता होती है। श्रीकृष्ण में भिन्न की उनकी उत्सृष्टा प्रसन्नता उठती है। वे उनमें मिलने के लिए द्वारका जाते हैं। भेंट के लिए घर में और कुछ है नहीं एक पाव चादन के लिये जानते हैं। श्रीकृष्ण उनका सख्त स्वागत करते हैं। परिमणा की सहाय में मद विजित विजयनगर का राज्य सुदामा को दे दिया जाता है और साथ ही उनकी

१ भाष्यन पुराण ग्रन्थ अध्याय ४००

२ प्रकाशक विनायक एडिशन कनकन मू. वि. वि. वि. म. १९९० वि. म. १९४०

नयी राजधानी सुदामा के ग्राम में बनायी जाती है। यह वायव्य सुदामाजी के अपने गांव लौटने में पूर्व ही हो जाता है। द्वारका से लौटने पर व सुवाह रूप से राज्य की व्यवस्था करत है।

इस कथा से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

१ सुदामा सानीपति मुनि के आश्रम में श्रीकृष्ण के साथ पढ़ते हैं।

२ सुदामा एक निष्ठा किंतु स्वामिमानी ब्राह्मण हैं।

३ श्रीकृष्ण का रूप केवल भगवान का ही नहीं है अपितु व एक धीर, वीर यादवी भी हैं।

४ श्रीकृष्ण एक सच्चे और अच्छे मित्र हैं।

आधार

कथा की मूल भावना भागवत पुराण की कथा से मिलती-जुलती है अतः इस नाटक का आधार भागवत पुराण ही है।^१ नाटककार ने सम्पूर्ण कथा को अपनी कल्पना से एक नया मोड़ अवश्य दिया है किंतु कथा की आत्मा सुरक्षित रखी है—कल्पना का प्रमुख अंग इस नाटक में सुदामा के द्वारा विजयनगर का राज्य-नाम संभालना है। यह नगर उद्योग के द्वारा प्राप्त हुआ और उनके अपने ग्राम में ही इसकी राजधानी का निर्माण हुआ।

विवेचन

इस प्रकार की कल्पना से लेखक ने नाटक से अनिर्जित एवं अयथावत वाता को मिलकुल निराल फेंका है साथ ही कथा के प्रसंग की युक्तियुक्त अतिरिक्त वृत्तान्त में भी वह समय दिया है। कृष्ण की दली शक्ति से एक रात में ही सुदामा के ग्राम का वसवयुक्त बन जाता तथा सुदामा के जीण शीण भाण्ड के स्थान पर विंगल स्वर्ण अट्टालिका का लडा हो जाता आज के तकनीक मस्तिष्क को वस्तुतः विभ्रम में डाल देता है। अनएव नाटककार ने एक पौराणिक घटना को जो युग का आवरण दिया है वह स्तुय है। जिस युग में यह नाटक लिखा गया है उसकी भावना के यह सब अनुसरण हैं। एक अति पुराने आश्रम का त्रिलोक नय रूप में प्रस्तुत कर लेखक ने साहित्यिक समार का एक नूतन चीज दी है। नाटक की भाषा अति परिष्कृत तथा भाव अति प्राजल है।

उषा अनिरुद्ध

वाणामुर की पुत्री उषा के साथ श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के विवाह का प्रसंग विभिन्न स्थला पर प्राप्त होता है। पुराणा का यह एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। इस कथा में

सम्बन्धित निम्नलिखित नाटक प्राप्त हुए हैं—

- १ उपाहरण कीर्ति प्रसाद
- २ उपा नाटक बलवन्त राव सिंदे
- ३ उपा अनिरुद्ध मुन्शी आरजू साहब
- ४ उपा अनिरुद्ध राधेश्याम कथावाचक

उपाहरण^१

कीर्तिप्रसाद लिखित उपाहरण चार अंका का एक लघु नाटक है। प्रकाशन क्रम से उपयुक्त नाटकों में यह सर्वप्रथम है। इसके अंका में दृश्य नहीं गमाए हैं। दृश्य परिवर्तन का कार्य य गमाए ही करते हैं। प्रत्येक गमाक की समाप्ति पर पटाभंग होता है। इसके प्रत्येक अंक में तीन गमाए हैं। यह एक प्रेम प्रधान नाटक है। क्या इस प्रकार है—

एक बार रात्रि में राजा बाणामुर की पुत्री उपा स्वप्न में अनिरुद्ध को देखती है। जागने पर उसके सौम्य का स्मरण कर कामाधीन हो विह्वल हो जाती है पर वह उस कुमार का परिचय नहीं जानती। उस उसकी मखियाँ सात्त्वना देती हैं। उमका सखी विभ्रलता उपा के सामने दब यत्र गन्ध और मानवा व चित्र बना गगनर लिखाती है। उपा अनिरुद्ध का चित्र देखते ही लज्जा जाती है। सखियाँ यह निश्चित कर कि इसने स्वप्न में अनिरुद्ध का ही दृश्य है अनिरुद्ध को उसके पास लाने का वचन देती हैं। उसकी चारा सखियाँ आकाश माग से उसी रात द्वारकापुरी जाती हैं और प्रमत्वन में चंद्र ज्योत्स्ना में साय हुए कुमार का पलक सहित उठाकर ले आती हैं। कुमार न भी स्वप्न में उपा का दृश्य है और उमर प्रति अनुरक्त है। चारा सखियाँ कुमार का उपा व प्रमत्नानन में पहूचा देती हैं और बड़ कीर्णन से अनिरुद्ध का मेल करवा देती हैं। उपा कुमार का अपना परिचय बना लेता है।

उधर बाणामुर का पुत्री व भवन में किराी पुरुष का होना का सन्देह हात लगता है, ता वह नाना का चारो आर में भवन का घर नन का आगमन होता है। बाणामुर वहाँ स्वयं भा उपस्थित हाता है। कुमार अनिरुद्ध मन्त्र में वाहर आरर बुद्ध करता है और न्यायपात्र में बांध दिया जाता है।

द्वारकापुरी में कुमार के पत्रग सहित अदृश्य हा जाने पर सत्र चित्तित हात है। श्रीकृष्ण और बन्धराम नारद मुनि में यह ममाचार पाकर कि कुमार अनिरुद्ध बन्धी बना दिया गए हैं बाणामुर की राजधानी पाण्डितपुर पर आक्रमण कर देते हैं। शिवजी व बीच में पह जान के कारण श्रीकृष्ण और बाणामुर में मत हा जाता है और परिणामस्वरूप उपा और अनिरुद्ध का विवाह बाणामुर की सम्मति में धान द्रव्यक सम्पन हाता है।

आधार

उपा अनिरुद्ध के विवाह के मूल आधार निम्नलिखित है। विवरण जमग इस प्रकार है—

भागवत पुराण

भागवत पुराण^१ में यह कथा राजा पनीक्षित को श्रीशुकदेवजी ने सुनाई है। कथा का संक्षिप्त रूप नीचे प्रस्तुत है—

बाणासुर की कथा का नाम उपा था। यभी वह कुमारी ही थी कि एक दिन स्वप्न में उमने देखा कि परम सुंदर अनिरुद्ध के साथ उमका समागम हो रहा है। आश्चर्य की बात यह थी कि उमने अनिरुद्ध को इमसे पूर्व कभी नहीं देखा था। आख खुलने पर अपन चारा ओर सखिया को देखकर वह बहुत लज्जित हुई। तब बाणासुर के मंत्री कुम्भाण्ड की पुत्री चित्रलेखा ने पूछा कि 'तुम किसे दूढ़ रही हो और तुम्हारा मनोरथ का स्वरूप क्या है?' उपा ने बताया कि 'स्वप्न में मैं एक सुंदर नवयुवक को देखा है उसका रंग साबला है नेत्र कमलज के समान हैं और गारंग पर पीना वस्त्र पहना रहा है, वह स्त्रियों का चित्त हरने वाला है।' चित्रलेखा ने कहा, "यदि तुम अपन प्रियतम को मेरा बनाए चित्रा में स पहचान सनागी तो वह चाहें वही भी हो मैं तुम्हारा मिलन उससे अवश्य करवा दूंगी। ऐसा कहकर चित्रलेखा ने श्बना, गंध, सिद्ध, पानग दैत्य विद्याधर मनुष्य और असुर सबके चित्र उपा के सम्मुख खचित किये। उपा ने अनिरुद्ध का उपा चित्रा में पहचान लिया। चित्रलेखा को यौगिक सिद्धि प्राप्त थी। अतः वह आकाशमाग से द्वारकापुरी में पहुँच कर अपनी योगसिद्धि के प्रभाव से अनिरुद्ध का उठाकर गणितपुर ले आयी।^२

पहरेगारा ने जत्र बाणासुर को उपा के कौमार्यहरण की सूचना दी तो वह तुरन्त ही वहाँ आ पहुँचा। अपनी कथा को अनिरुद्ध के साथ पाले खेतते देख, वह अनि विस्मित हुआ। बाणासुर के साथ आए हुए सखिया के द्वारा अनिरुद्ध को पकड़ने का प्रयत्न किये जाने पर अनिरुद्ध ने एक एक को मारकर गिरा लिया तथा बाणासुर को भी अस्त किया। उसी समय बाणासुर ने अनिरुद्ध का नागपाण से बाध लिया।

नारदजी के द्वारा द्वारकापुरी में समाचार पट्टन पर यदुव्रजिया ने बाणासुर पर आक्रमण कर लिया। स्वयं श्रीकृष्ण रणभय में पधारे रणोत्तम बाणासुर ने अपन एक हजार हाथा से एक साथ ही पाँच सौ धनुष खींचकर एक एक पर दोन्नी बाण चढाए, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके सब धनुष-बाण काट दिए। चाटारा नाम की दवी जा बाणासुर की धममाता थी, बाल बिबेक और नग्न हो भगवान् श्रीकृष्ण के सामने आ खड़ी हुई। भगवान् श्रीकृष्ण ने उस पर दृष्टि पड़ने की आगका से अपना मुह फेर लिया, तभी बाणासुर धनुष बट जाने और रथहीन हो जान के कारण नगर में चला गया।

१ भागवत पुराण दशम स्कन्ध अध० ६२ ६३

२ कौ, अध्याय ६२, श्लोक २२ २३

इधर भगवान शंकर ने अपना तीन सिर और तीन पर धाला ज्वर युद्धमयन में प्रेषित किया। श्रीकृष्ण ने साम्मुख्य के लिए अपना ज्वर छोड़ा। इस प्रकार वष्णव तथा माहेश्वर ज्वरों में युद्ध हुआ। अंत में वष्णव ज्वर के तज से, माहेश्वर ज्वर भयभीत होकर चिल्लाने लगा। उसने श्रीकृष्ण की स्तुति की तथा उनसे प्राण की माचना की। श्रीकृष्ण ने उसे भ्रमदान दिया और माहेश्वर ज्वर उन्हें प्रणाम करके चला गया।

इस मध्य वाणासुर युद्ध के लिए पुनः प्रस्तुत होकर आ गया। प्रीतिविक्रम हो वह श्रीकृष्ण पर पुनः वाणा की वधा करने लगा तब श्रीकृष्ण ने उसकी मुजाबदा की वाणा को आरम्भ किया किन्तु भगवान शंकर के आग्रह के कारण चार मुजाबदे सेप रहने ली। श्रीकृष्ण से भ्रमदान प्राप्त करके वाणासुर ने उन्हें प्रणाम किया और अपनी पुत्री उषा को अनिरुद्ध का सौप दिया।

नाटक में मित्रित अधिकांश प्रसंग भागवत पुराण के इस विवरण में मिल जाते हैं अंतर केवल कुछ स्थलों पर हैं जो इस प्रकार हैं—

अंतर

१ नाटक में उषा और अनिरुद्ध दोनों एक-दूसरे को स्वप्न में देखते हैं। भागवत पुराण में केवल उषा ही स्वप्न में अनिरुद्ध के दशन करती है।

२ भागवत पुराण में अनिरुद्ध का द्वारकापुरी से लान का वाय केवल उषा की सखी चित्रलेखा सम्पादित करती है जबकि नाटक में उषा की चार सखियाँ अनिरुद्ध को पलंग सहित उठाकर लाती हैं।

३ नाटक में वर्णित अनिरुद्ध को बन्दी बना लेने का प्रसंग भागवत पुराण में उपलब्ध है किन्तु नाटक में युद्ध का विवरण नहीं है। शिवजी मध्यस्थ बनकर श्रीकृष्ण और वाणासुर में समझौता करवा देते हैं और उषा तथा अनिरुद्ध का विवाह सम्पन्न होता है। इसके विपरीत भागवतपुराण में युद्ध का विस्तार अत्यधिक है। वहाँ युद्ध तथा शिवजी की मध्यस्थता दोनों ही उषा अनिरुद्ध के विवाह का निणय करती हैं।

हरिवंश पुराण

हरिवंश पुराण^१ में प्राप्त उषा अनिरुद्ध के विवाह की कथा का स्वरूप भागवतपुराण की कथा से भिन्न है—

वशम्पायन जी यहाँ जनमेजय को कथा सुनाते हैं कि किसी समय प्रभावशाली भगवान शंकर गंगा नदी के तट पर पावती के साथ शीडा विहार के लिए गये। वहाँ सक्का अम्तराएँ तथा गन्धर्वराज भी शीडा कर रहे थे। इसी समय चित्रलेखा नाम वाली श्रेष्ठ अम्तरा देवी पावती का रूप धारण कर, महादेवजी की रिभाने लगी। यह देख दवी पावती जोर-जोर से हँसने लगी। शंकर के नाना रूपधारी दिव्य षव महावली पापद

१ भागवत पुराण दशम स्कन्ध अध्याय ६२ श्लोक ४७-५०

२ हरिवंश पुराण विष्णुपर्व अध्याय ११७-१२७

भी तब उन्हीं के समान रूप धारण कर महादेवी के समान सुन्दर धनराधा के भाव प्रीडा करने लग। इसमें वहाँ सत्र और हास्य का वातावरण बन गया।

एक भवसर पर वाणासुर की पुत्रा उषा भी वहीं थी। महादेवजी तथा पावती जी मधुर प्रीडा में रत दस, उमक हृदय में भी उमी प्रसार की प्रीडाएँ करने की इच्छा जागत हुई। पावतीजी न उषा की इच्छा जानकर कहा कि तुम्हें भी प्रीडा ही यह भवसर प्राप्त होगा।^१

उषा पावतीजी के बचन की पूणता की प्रतीका में कामविह्वल हो उठी। मगियाँ उसकी इस भवस्या से अनभिज्ञ थी। अन के उम ज्वरप्रस्त मान विविध प्रसार के उचचाराम लग गयी। उषा की माना तथा भाव म्त्रियाँ भी चिन्ता हो उठी। वद न आरर बनाया कि जनविहार के श्रम के कारण ही इसके अगा में गथिन्व या समाया है और एम तजर भी लग गयी है परन्तु मय का कारण महा है।

तदनंतर पावतीजी के मननानुसार उषा न ययानमय अनिन्द को स्वप्न में देना और स्वय का वीमायमग की भवस्या में दस राणी चित्रनेया से ममस्त्र वृत्तात कहा। (यहाँ भी चित्रलगा योगिन त्रियाघा का पूण जान रगती है तथा चित्रबला में दस है।) अन उषा की इच्छानुसार वह अनिन्द के समीप जा पहुची। उमक यत् कहने पर कि

उषायामम सग्यास्तु यावय यद्यमि तस्यत।

स्वप्ने तु या दष्टा स्त्री भाव चापि भाविता ॥^२

अनिरुद्ध ने बताया—

चित्रलेखा घच श्रुत्वा सोऽनिरुद्धोऽश्रवोदिदम।

दष्टा स्वप्न मया सा हि तमस्त अणु गोभने ॥

रूप काति मति चत्र सयोग रुदित तथा।

एव सधमहोरात्र मुह्यामि परिचितयन ॥^३

इस प्रकार दाना ही एष-दूमेरे का स्वप्न में देववर एष दूसरे के प्रति अनुरक्त हो गय थे। अनिरुद्ध न चित्रलेखा से, स्वय को उषा के पास ले चलने की प्रार्थना भी की थी। इसके अतिरिक्त यहाँ नारद मुनि के द्वारा ताममी विद्या ग्रहण करके चित्रलेखा के द्वारकापुरी में प्रवेश पाने का वचन भी है।

इसके उपरान्त की घटनाएँ भागवत पुराण के सहा हैं—द्वाररक्षकों के द्वारा अपनी पुत्री उषा के दूषित होने का समाचार पाकर बाणासुर अनिरुद्ध से युद्ध करता है। नागपाश से बांधे जाने पर अनिरुद्ध, आर्वादेवी की स्तुति करके पाश से मुक्ति पाता है। उधर श्रीवृष्ण अनिन्द की सब आर खोज करवाते हैं। अतत नारद से सत्र समाचार पाकर गहद पर आरुह होकर योगितपुर जा पहुचत हैं तथा वाणासुर के साथ उनका भयकर युद्ध होता है। युगल ज्वरा के युद्ध की घटना यहाँ भी वर्णित है। वाणासुर परास्त जाता है और तब वह

१ हरिवंश पुराण विष्णुपर्व अ ११७ श्लोक १६ १९

२ वही अ ११९ श्लोक ३८

३ वही अ० ११८ श्लोक ४८ ४९

३८८ / हिंदी के पौराणिक नाटकों के मूल-ग्रन्थ

सहस्र अपनी कथा अनिरुद्ध को प्रदान करता है।

अन्तर

नाटक तथा प्रस्तुत पुराण में वर्णित इस आख्यान की घटनाओं में अन्तर निम्न लिखित है—

१ नाटक में उषा से स्वप्न में पति के दशन तथा समागम की बात पावती द्वारा नहीं कहलायी गई है। महादेवजी तथा पावतीजी के विहार की घटना का उल्लेख भी लेखक ने नाटक में नहीं किया है।

२ हरिवंशपुराण में उषा की सखी चित्रलेखा का नाम 'रामा भी है।' उसका चित्रलेखा नाम उसके चित्रलेखा अप्सरा के अंग से उत्पन्न होने के कारण ही पड़ा था—नाटक में चित्रलेखा के सम्बन्ध में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं है।

नाटकों के ये सब प्रसंग हरिवंशपुराण के समान हैं।

विष्णुपुराण

विष्णुपुराण^३ में वर्णित आख्यान 'उषा चरित्र' में उषा का अनिरुद्ध के साथ स्वप्न में समागम पावतीजी के कथनानुसार होता है। पावतीजी को शिवजी के साथ रमण करते देख कर ही उषा के मन में पुरुष सहवास की इच्छा जागृत होती है। योग्यामिनी चित्रलेखा सात आठ दिन में चित्र प्रस्तुत कर उषा को दिखाती है और तत्पश्चात् अनिरुद्ध का द्वारकापुरी से लाती है। यहाँ भी चित्रलेखा को 'अप्सरा' ही कहा गया है।^४

ये सब सम्पूर्ण विवरण युद्ध इत्यादि उपयुक्त अंग पुराणों के समान ही हैं।

शिवपुराण

शिवपुराण^५ में यह कथा इस प्रकार है—

एक समय नदी के तट पर दया तथा देवताओं के साथ क्रीडा करते हुए सुरम्य वातावरण में, शिवजी का पावती के सम्मुख की इच्छा हुई तो उठाने नदी को भेजकर पावती का सुसज्जित रूप में कलांग स लाने के लिए भेजा। पावतीजी को (नदी की पुनः पुनः प्रार्थना पर भी) शृंगार में दर करती देख सब अप्सराओं ने शिवजी को आतुर दग्ना, तो पावताजी का वध धारण कर शिवजी से रमण करना चाहा किन्तु फिर व साहस छोड़ बठी। वाणामुर के प्रधानमन्त्री कुम्भाण की पुत्री चित्रलेखा ने भी पावतीजी का रूप बनाया किन्तु अंग अप्सराओं के रूप का देव और उनसे भाव का जान अपन वष्णव योग से उससे अपन रूप छिपा दिया। तब वाणामुर की पुत्री उषा ने पावतीजी के सुन्दर रूप को धारण

१ हरिवंश पुराण विष्णुपर्व अध्याय ११८

२ हरिवंश पुराण विष्णुपर्व अध्याय ११८ श्लोक ५२

३ विष्णुपुराण अध्याय ५ अध्याय २२ ३३

४ बही पंचम अध्याय ३३।५

५ शिवपुराण शिवाय ४८ महिमा पंचम (पञ्च शत) अध्याय ५१ २६

किया। उस कथा के रमण करने के सक्त्प को जानकर पावतीजी बोली कि 'देवताओं के द्वारा निश्चित पति के साथ तू शीघ्र ही रमण करेगी।'^१

शेष कथा अथ पुराणा के सह्य ही है, अ तर केवल निम्नलिखित रूप म है—

अनर

१ इस पुराण म युद्ध के अवसर पर शिवजी न श्रीकृष्णजी स स्वय कहा कि व उन पर जम्भणास्त्र^२ छोड, जिमम वे युद्ध से विरत हो जाएँ और श्रीकृष्ण वाणासुर स डकर युद्ध कर सकें।

२ इस कथा के अनुसार उपा अनिरुद्ध सम्बधी इस समस्त काण्ड के घटन का कारण एव यह भी था कयाकि वाणासुर कोई भयकर युद्ध चाहता था जिसमे उसकी सह्य भुजाया की खुजलाहट दूर हो सके। तभी शिवजी स प्रेरित हुए काल म उपा को स्वप्न दिखाया।^३ इसके अतिरिक्त शिवजी न श्रीकृष्णजी से युद्धात पर स्वय कहा कि वाणासुर ने अपनी भुजाया का खुजलानर अपनी गति का भूल गवित हा मुझम यह वर मागा था कि मुझे युद्ध दा, इसीलिए मन उमे यह दाप दिया था कि चाडे ही समय मे तरी भुजाया का काटन वाला काइ आएगा।^४

ब्रह्मवत पुराण

ब्रह्मवत पुराण^५ म भी उपा अनिरुद्ध आग््यान का स्वल्प पूव उल्लिखित आम्ब्याना से कई अगा म भिन है। प्रमुख अन्तर निम्नांकित हैं—

१ इस पुराण म भी उपा अनिरुद्ध एक दूसरे के प्रति आसक्त है और दाना ही एव दूसरे को स्वप्न म दखत है परतु यहा सव प्रथम अनिरुद्ध स्वप्न देखता है। स्वप्न का रूप भी पूव उल्लिखित स्थला से कुछ भिन है। इसका स्वरूप यहा ंस प्रकार है—

एक वार अनिरुद्ध न स्वप्न म एक सुमज्जित कामिनी को दखा जो केयर वलय कुण्डल कवण इत्यादि स सुशामित थी। उसके अतुलित एव अरुलित सौम्य को देखकर अनिरुद्ध ने उस युवती स उसका परिचय पूछा और उसस रमण के लिए प्राथना की।^६ कामिनी ने स्वप्न मे ही उस समभाया कि विवाह द्वारा ही हम दोनों का सयाग उचिन तथा हितकर हागा। अपना परिचय दते हुए उसने बनाया कि मैं स्वतन तही हूँ यदि तुम मुझे प्राप्त करने के लिए इच्छुक हो, तो मरे पिता स मुझ मांग ला।' और यह कर्ने के साथ ही

१ शिवपुराण अध्याय ५२ श्लोक ५६ ५६

२ वही क सह्या पचम अध्याय ५४ श्लोक ६

३ शिवपुराण संहिता पचम (यद्ध खण्ड) अध्याय ५२ श्लोक २७ २६

४ वही संहिता पचम (यद्ध खण्ड), म ५५ श्लोक ३६ ४०

५ ब्रह्मवत पुराण श्रीकृष्णजम खण्ड अ० ११४ १२०

६ वही अध्याय ११४ ११६

वह सुदरी अतधान हो गई।^१

इसके उपरान्त अनिरुद्ध ने आहार निद्रा सब-कुछ त्याग दिया और रात दिन उस युवती के चिन्तन में ही रमा रहने लगा। श्रीकृष्ण न जब अपने पौत्र की यह दशा देखी तो विचारा कि—

स्वप्न च दशयामास सानिरुद्ध च पावती ।
मम पौत्र प्रमत्त च चकार कौतुकेन च ॥
तत्पुत्रो च प्रमत्ता ता करोमि स्वप्नतोऽधुना ।
स्वच्छन्द तिष्ठतु चिर नास्ति चिन्ता मनोयथा ॥^२

परिणामस्वरूप उपा ने भी अनिरुद्ध को स्वप्न में देखा तथा वह भी अनिरुद्ध को स्मरण कर कामानुरक्त बन गयी।

२ इसके उपरान्त जो कथा चरती है वह भी अथ पुराणा से भिन्न है। अपनी सखी को यह दशा देखकर चित्रलता (उपा की सखा) ने उपा के पिता से सत्र बक्ष्यात कहा। उधर महादेव न विप्रलेखा योगिनी को चुपके से अनिरुद्ध को द्वारका से लाने का आदेश दिया जिसमें वाणामुर न जान पाये क्योंकि पावती ने ही अनिरुद्ध को स्वप्न दिखाकर वह स्थिति उत्पन्न की थी।

३ वाणामुर को राजा के द्वारा पुत्री के गमधनी होने की सूचना मिली तो वह अनिरुद्ध को मारने के लिए उद्यत हो गया। महान्व तथा पावती के समझाने पर भी वाणामुर अपने निश्चय से नहीं हटा श्रीकृष्ण द्वारा मारे जाने का भय भी उम भयभीत नहीं कर सका। उसने कहा—

नाप्राप्तकाले म्रियते विद्ध मरणांतरपि ।
तथाप्रेणापि सस्पष्ट प्राप्त काला न जीवति ॥
रणेऽनिरुद्ध हत्वा च घातयिष्यामि कथं क्वाम ।
अथवा ज्वलद्गनी च त्यक्ष्यामि च क्लेशरम ॥^३

४ युद्ध का वर्णन यहाँ अथत विस्तृत है। प्रथम अनिरुद्ध ने ही वाणामुर का युद्ध हुआ है तदुपरान्त श्रीकृष्ण सना तथा अपने साधिया सहित स्वयं पहचें। वाणामुर का दुराग्रह देखकर उन्होंने अपने चक्र का प्रहार किया जिससे वाणामुर निश्चेष्ट होकर गिर पड़ा। वाणामुर की यह दशा देखकर गिबजी उम अपने वध से लगाकर राने लगे तब विष्णु ने वाणामुर को मृत्युञ्जय नाम प्रदान किया जिसमें प्रभावित होकर उसने अपनी कथा, अपने मूल्यवाने उपहारा के साथ अनिरुद्ध को भेंट कर दी। यहाँ वाणामुर की सखी मृजाएँ करने का विवरण नहीं है।

इस प्रकार अक्षयवदन पुराण की कथा अथ पुराणा से मूलतः भिन्न न होत हुए भी

१ कदाचन पुराण (श्रीकृष्णवचन संग्रह) अध्याय ११४ श्लोक २६, ३०, ३१, ३३

२ वही म ११४ श्लोक ४०, ४१

वही अध्याय ११५ श्लोक ३६, ४२

स्वरूपतः भिन्न है।

महाभारत

उपा अनिरुद्ध की कथा अथ स्थला की अथवा महाभारत^१ में अति संक्षिप्त है। कथा मूलतः अथ पुराणा के ही सङ्ग है किंतु कुछ अन्तर भी दीख पड़ता है जो इस प्रकार हैं—

अन्तर

१ महाभारत में उपा तथा अनिरुद्ध के आर्याण म स्वप्न की घटना का उल्लेख नहीं मिलता। वहाँ कथा का आरम्भ उपा के साथ गुप्त रूप से रहने के कारण अनिरुद्ध को बन्दी बना देने की घटना से होता है।^२

२ महाभारत में, श्रीकृष्ण के द्वारा बाणामुर के मूल्यवान् रत्ना को हर ले जान का प्रसंग भी प्राप्त होता है,^३ जो पुराणा तथा नाटक की घटनाओं से बिल्कुल भिन्न है।

३ यहाँ बाणामुर तथा अनिरुद्ध के युद्ध का वर्णन नहीं है किंतु शिव और विष्णु के युद्ध का संकेत है।

मूल प्रसंगा में अथ स्थला के समान होते हुए भी, महाभारत की इस कथा का नाटक की अधिकांश घटनाओं में साम्य नहीं बैठता। नाटक के केवल दो प्रसंग, अनिरुद्ध और उपा का गुप्त सम्बन्ध तथा अनिरुद्ध को बन्दी बनाना ही यहाँ मिलते हैं।

इस प्रकार नाटक के कुछ-न-कुछ अंश सभी पुराणा एवं महाभारत में मिल जाते हैं, किंतु नाटक में चित्रित उपा अनिरुद्ध के द्वारा एक दूसरे को स्वप्न में देखे जाने वाली घटना केवल हरिवंशपुराण तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में ही प्राप्त होती है। अतएव यद्यपि पूरे उल्लिखित मसूदा अथ नाटक के आधारस्थल है तथापि हरिवंशपुराण तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण की कथा नाटक से अधिक साम्य रखती है।

विवेचन

उपाहरण नाटक में पौराणिक घटनाओं की पर्याप्त रक्षा हुई है इसमें कोई संदेह नहीं है, किंतु नाटक के कथानक को दृष्टि में रखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नाटक का गोपक कथा के अनुरूप नहीं है क्योंकि अंत में यह विवाह दोनों कुला की सम्मति से हृषीकेश सम्पन्न होता है। हरण नाम धरापूजक उठा ले जान का भाव निहित है उपा अनिरुद्ध के विवाह के समय (नाटक की कथा के अनुसार), किसी प्रकार की गोपनीयता तथा दोनों कुला में दुभावना गैर नहीं रह जाती। पुराणप्रसिद्ध यह घटना रुक्मिणी हरण की उस घटना से एतदन्तर्भूत है जहाँ श्रीकृष्ण के द्वारा रुक्मिणी, गौरी

१ महाभारत समाप्त (अर्थात् अष्टम स्कंध) अध्याय ३८

२ वही अध्याय ३८ श्लोक सख्या यहाँ नहीं है।

३ वही मोक्षविलास गोविन्द प्रादम्नि तद् भावयाम्।

वाणस्य एव रत्नानि असक्यानि जहार स ॥—अध्याय ३८

वर याचना के लिए कहा तो उसने शिव पावती का पुत्रत्व प्राप्त करने की कामना की। शिवजी ने तन्नुसार ही वर लिया तथा कार्तिकेय ने प्रमन हारकर उसे अग्नि के तुल्य तेजस्वी ध्वज तथा तेज स प्रकाशित मयूर को वाहन के रूप में प्रदान किया। महादवजी के तेज से सुरक्षित हुए वाणासुर के सामने युद्ध में न ता दवना ठहर सकते थे, न गचव, न यम और न नाग।

यहाँ शिवजी नाटक के अनुसार स्वयं नहीं अपितु अपने तेज स वाणासुर की रक्षा करते हैं।^१ वाणासुर के अतुल बल के सम्बन्ध में हरिवंश पुराण में भी प्रसंग का रूप भागवत के समान है—

ध्वजस्यास्य यदा भगस्तव तात भविष्यति ।

स्वस्थाने स्थापितस्याय तदा युद्धं भविष्यति ॥^२

शिवपुराण

वाणासुर के नगर शोणितपुर में शिवजी के निवास करने का प्रसंग शिवपुराण में भी उपलब्ध होता है। वाणासुर ने अपनी सहस्र भुजायों के बाघ तथा ताण्डवनृत्य के द्वारा यहाँ भी शिवजी को प्रमन किया है और प्रतिदान में अपने नगर में ही निवास करने का वरदान पाया है।^४

शिवपुराण में वाणासुर के द्वारा युद्ध की आकांक्षा किए जाने वाला प्रसंग भागवत पुराण के समान ही है।^५ विष्णुपुराण महाभारत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में शिवजी के द्वारा वाणासुर की अथवा उसके नगर की रक्षा के लिए जाने का कोई प्रसंग उपलब्ध नहीं है। हा मयूर चिह्न अब टूट जान पर तुझे आनन्द देनेवाला युद्ध होगा—शिवजी का वाणासुर के प्रति यह कथन विष्णुपुराण में अवश्य मिलता है।

उपाहरण नाटक के सहज इस नाटक में भी शिव तथा श्रीकृष्ण का युद्ध नहीं घटता। शंकरजी के आदेश मात्र से युद्ध समाप्त हो जाता है और इ ही के कहने से उपा और अनिरुद्ध का विवाह कर दिया जाता है।

विवेचन

अप्य पौराणिक कथायां क अनुरूप ही इस नाटक की कथा है। नाटककार के द्वारा कोई मौलिकता अथवा नूतनता लान का प्रयत्न यहाँ नहीं देख पड़ता। प्रस्तुत नाटक के आधारस्थला में से केवल शिवपुराण में ही उपा का शिव के प्रति दृष्टिक आसपण लियाया है अथवा सबत्र यह भाव पूज्य भाव के साथ मिश्रित है। अथ नाटका की अपथा यह नाटक सतिष्ठ है इसलिये घटनाया का विस्तार नहीं हुआ पाया है। यह भक्तिरस प्रधान

१ हरिवंश पुराण विष्णुवच ११६ २३

२ बहा ११७ ३१

३ शिवपुराण १ तम स्कन्धहिता पचम (पदप्रश्न) पं० ५१ ५६

४ बहा स्कन्धहिता पचम (पदप्रश्न) पं० ५१ श्लोक २५ २६

५ बही स्कन्धहिता पचम (पदप्रश्न) पं० ५२ श्लोक १ १७

नाटक है। बीच-बीच में राग रागिनिया की मरमार है। भाव परिष्कृत तथा भाषा परि-
भाषित है। पात्रों के अनुसार कहीं कहीं ब्रजभाषा का प्रयोग भी किया गया है, सामान्यत
भाषा खड़ी बोली है।

उषा-अनिरुद्ध^१

मुची आरजू साहब लिखित उषा अनिरुद्ध नाटक प्रकाशन नम से इस कड़ी का
तीसरा नाटक है।

कथानक

कथा चिरपरिचिन तथा अय नाटकों के सदृश ही है किन्तु प्रारम्भ और प्रस्तुती
रूप में नूतनता है।

नाटक का प्रारम्भ वसंत बहार से होता है। वसंत अपने सहायक मत्न की सहा
यता करता है। ममस्त वन उपवन पल्लवित पुष्पित और सुरभित हो जाता है। एक विचित्र
प्रकार की चञ्चलता एवं मादकता में परिपूर्ण वातावरण सार क्षेत्र में छा जाता है। मदन
कहता है कि राजकुमारी उषा के मन में यौवन की एक ऐसी तरंग भर देती है कि वह अपने
प्रेमी को पान के लिए आतुर हो उठे। उसका पिता जिस अपना शत्रु समझता है उसी
परिवार का युवक उषा का पति बनेगा। ऐसी भविष्यवाणी भी मदन ही करता है।

अय नाट्य से इस नाटक में यह भी अन्तर है कि वाणामुर की पुत्री उषा पिता
और पावनी का गंगा में जल विहार करत हुए देगती है और उसके मन में भी साथी पान के
लिए आकांक्षा जागत हो उठती है। शिक्षा समाप्ति के उपरान्त विदा करत समय पावनी
उमस कहती है 'तुम्हारा भावी पति तुम्हें स्वप्न में आकर मिलेगा तुम उस दुःखवा नना।'
द्वारका में भी वसंत और मत्न अपने साथ में तत्पर हैं। अनिरुद्ध सात मोन परम सुन्दरी
रमणी उषा को देखता है। प्रमोदित बन वह अनेके में बहवडाता है और कुछ योजना
मा रहता है। पिता प्रद्युम्न पुत्र की यह दगा दक्तर चिन्तित होत है और समझाने का
प्रयत्न करत है।

उषा भी स्वप्न में अनिरुद्ध का देगती है। मदन भी अपने वक्तव्य के प्रति सजग है।
यहा उषा का साथी का नाम चित्ररेखा नहीं अपितु चित्ररेखा है जो सगो के उद्भिन्न होन
पर उमे सी चित्रा की एक पुम्नव जिसमें देव गद्यव आदि सभी प्रमुख व्यक्तिया के चित्र हैं
दिखती है। उषा उन चित्रा में से अनिरुद्ध को पहचान लेती है। तत्पश्चात् चित्ररेखा स्वयं
तथा व्यभि दोना में परिचित होने के कारण विमान क्षेत्र द्वारका पहुचनी है। वद्य के

वेपथु म हान के कारण उसे काइ नहीं पहचान पाता। कुमार को सम्पूर्ण कथा मुनावर यह उसे अपने माथे तक आती है, किन्तु शाणितपुर म पहुचने पर वाणासुर उसे अपना बन्नी बना लेता है।

उषा व दीगढ़ म अनिरुद्ध से मिलन के लिए छिपकर जाती है। वाणासुर का किसी प्रकार यह ज्ञात हो जाता है। वह पुत्री का सम्भ्राता है किन्तु उषा अनिरुद्ध का त्यागन के लिए उद्यत नहीं होती। वाणासुर कुमार अनिरुद्ध को मारने के उपाय करता है किन्तु उसी समय कृष्ण सेना सहित पहुच जाते हैं। वाणासुर परास्त हो जाता है और उषा अनिरुद्ध का विवाह हो जाता है।

आधार

आर्य समाज के इस नाटक के आधार मूल रूप से पूर्व उल्लिखित सप्त पुराण हैं परन्तु कथा का यह रूप अधिकांश म केवल हरिवंशपुराण^१ और ब्रह्मवैवत पुराण^२ म ही उपलब्ध है।

नाटककार ने नाटक के सृजन म कल्पना का उपयोग भी प्रचुर मात्रा मे किया है। रमणीय हान के कारण नाटक का आरम्भ लेखक द्वारा अति आवश्यक ढंग से किया गया है। वसन्त का मादन वातावरण दशकों को प्रारम्भ म ही आरंभित कर लेता है।

विवेचन

इस नाटक की प्रमुख विशेषता यह है कि नाटककार न अस्वामाविक तथा असंगत चीजों को प्रयत्नपूर्वक हटा दिया है। साथ ही कथा का भाग विद्वत होने से उजा किया है। सम्भवत युग की प्रवृत्ति ने ही लेखक को इस दिशा म मचेत गया है। उपाहरणाथ चित्ररत्ता यत्री विष्णु प्रवार की अलौकिक मिश्रियाँ प्राप्त आयिनी के रूप म नही दीख पडती वह उडकर द्वारकापुरी पहुचने की अस्वामाविक सामर्थ्य नही रखती। एक विमान के द्वारा बद्यवप म वह अपने गतव्य स्थल पर पहुचती है और अनिरुद्ध के समक्ष वस्तुस्थिति प्रस्तुत कर उस अपने साथ ले आती है।

भागवत पुराण म^३ अनिरुद्ध के द्वारा विकट रूप से युद्ध किया जान पर वह वाणासुर के द्वारा नागपाण से बाध लिया जाता है। हरिवंश पुराण^४ म भी अनिरुद्ध को सर्पाकार वाणा द्वारा चारा और म बाधे जान की घटना है। इसी प्रकार विष्णुपुराण^५ म भी नागपाण द्वारा अनिरुद्ध बंधता है—इस प्रसंग का प्रस्तुत नाटक म नाटककार ने अनिरुद्ध को साधारण रूप से बन्नी बनाए हुए शिखर समाप्त कर दिया है जो अति स्वाभाविक और भाव हारिक है।

१ हरिवंश पुराण विष्णुपर्व पृ० ११६-१२०

२ ब्रह्मवैवतपुराण श्रीकृष्ण वसवर्ष पृ० ११६-१२०

३ भागवत पुराण दशम स्कंध (उत्तरार्ध) म पृ० ६३ श्लोक ३२

४ हरिवंश पुराण विष्णुपर्व पृ० ११६ श्लोक १०३

५ विष्णु पुराण पंचम पर्व पृ० २२ श्लोक ६

हरिवंशपुराण^१ इस नागपास से मुक्ति का प्रकरण भी अलौकिक है। आयुर्विही की विस्तृत स्तुति करने पर ही अनिरुद्ध मुक्त हो पाता है किंतु नाटक में उपा के द्वारा अनिरुद्ध से मिलन जाना, पिता के आग्रह पर भी प्रेमी को त्यागन के लिए प्रस्तुत न होना आदि से क्रुद्ध होकर पिता का उस पुत्र का मारने के लिए उद्यत हो जाना और तभी श्रीकृष्ण की ओर से सनिक महायता का पहुँचना और इस प्रकार प्रेमी प्रेमिका का मिलन सम्भव हो जाना—इत्यादि घटनाएँ कौतूहलपूर्ण होने के साथ ही माय अति स्वामाविक एव परिस्थिति के अनुकूल भी हैं। इस दृष्टि में यह नाटक अति सफल एव अभिनय है।

उपा-अनिरुद्ध^३

राधेश्याम कथावाचक लिखित चतुर्थ नाटक 'मूर विजय नाटक समाज के लिए रचा गया था। यह नाटक अभिनीत भी हो चुका है। इस प्रेमप्रधान नाटक की कथा पुराणा की कथा तथा उपाहरण और उपा नाटक के सहज ही है। उपा की सखी चित्रलेखा यहाँ भी अलौकिक शक्तियाँ से सम्पन्न है। उपा इस नाटक में भी स्वप्न नदान के कारण अनिरुद्ध के प्रति आसक्त है और उसकी प्राप्ति के लिए अधीर है।

इस नाटक के आधार भी पूर्वलिखित नाटका के आधारस्थला के समान हैं।

अय नाटका तथा पुराणा की मूल-कथाओं से इस नाटक की कथा में यही अंतर है कि यहाँ श्रीकृष्ण युद्ध में कोई भाग नहीं लेते।

विवेचन

यद्यपि इस नाटक का प्रकाशन काल उपयुक्त सम्पूर्ण नाटका के अंत में पड़ता है तथापि घटनाओं के प्रस्तुताकरण में नाटककार ने केवल एक स्वयं को छोड़कर कहीं भी कोई नूतन बौद्धिक दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं किया है।

हरिवंशपुराण^३, भागवत पुराण^४, विष्णु पुराण^५, शिवपुराण तथा ब्रह्मवदन^६ पुराण में कृष्णव ज्वर (श्रीकृष्ण द्वारा अधिष्ठित) तथा माहेश्वर ज्वर (शिवजी के द्वारा प्रेषित) के पारस्परिक युद्ध का वर्णन है। प्रस्तुत घटना को नाटककार ने इस नाटक में इन तथा कृष्णवा

१ हरिवंश पुराण विष्णुपर्व ।

२ प्रकाशक लक्ष्म स्वयं राधेश्याम पुस्तकालय बरेली १९३२ ई०

हरिवंश पुराण विष्णुपर्व पृ० १२१।७१ पृ १२३ पर्वन

४ भागवत पुराण दशम स्कंध पृ० ६।१२२ २४

५ विष्णु पुराण पंचम अक्ष पृ० ३३।१४ १८

६ शिवपुराण तृतीय स्कंधहिता (मध्य पर्व) पृ० ४४।२६ १

७ ब्रह्मवदन पुराण आष्टाणकम अष्ट पृ० १२।५ २४

के मत मतान्तर के बाद विवाद का सुन्दर रूप दे दिया है और इस प्रकार यह प्रगम नाट्य का उपरधानक जमा बन गया है। नाट्य में वाणामुर का होना व कारण ही यद्यपि अनिच्छित से पुत्री का विवाह नहीं करना चाहता। इस पौराणिक घटना का यह रूप देवर लखन ने इसे अधिक तबसगा बना दिया है। इस घटना का समावेश में इस नाट्य का विस्तार अवश्य अधिक हो गया है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार मुख्य कथानक का सौंदर्य पर्याप्त बना है।

नाट्य की गेय घटनाओं का जगमग पौराणिक रूप ही रहने दिया है। आरजू नाट्य का नाटक के सट्टे इस नाटक में युग की यौद्धिकता एवं ताकियता का नाट्यकार पूर्णरूप से पहचान नहीं पाया है।

उपयुक्त सभी नाटकों के कथानक कुछ विविध स्थानों का साझा जगमग मन्त्र एक समान हैं। अतएव इनके आधार भी समान हैं। ही आरजू साहब का नाट्य इस दृष्टि से अन्य नाटकों से भिन्न है कि अन्य नाटकों में पौराणिक कथानक एवं वातावरण दोनों ही प्रमुख हैं जबकि आरजू साहब का उपा अनिच्छित नाट्य अपने साथ ताकिय दृष्टि लेकर चला है। इसका कारण इन नाटकों का रचनाकार ही कहा जा सकता है। उपा नाटक तथा उपाहरण नाट्य १९६१ तथा १९०६ सन में हैं जबकि आरजू साहब विभिन्न उपा अनिच्छित नाटक सन १९२४ में प्रकाशित हुआ है। इस युग में दृष्टि अघबिश्वासों एवं शुद्ध धार्मिक भावना से मुक्त हो यौद्धिकता का नये गतिजा को छूने लगी थी। अत रचनाकार ने युग की प्रवृत्ति को पहचानकर नाटक की कथा का कल्पना का समावेश में एक नया रूप प्रदान किया है। यह दूसरी बात है कि राधेश्याम तयावाचक अपने नाटक (प्रकाशन काल १९३२) की कथा में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रस्तुत नहीं कर पाये। इसके लिए उनका धार्मिक दृष्टिकोण तथा पौराणिक प्रसंगा की रक्षा करना का तथ्य ही उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। या व भी एकदम युग की उपेक्षा नहीं कर पाये हैं ज्वरा के युद्धवाली घटना को मत मतान्तरा का विवाद के रूप में प्रस्तुत करना उनकी अदभुत सूक्ष्म-दूक्ष्म का परिचायक है।

कर्तव्य'

वृष्णचरित की अति विस्तृत कथा को सेठ गाविन्ददासजी ने पाच अंका का इस छोटे से नाटक में लिखने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। ऐसा करने के लिए उन्हें बड़ा कौशल से काम करना पड़ा है। वृष्णचरित का कोई भी भाग उनके द्वारा अछूता नहीं छोड़ा गया है यहाँ तक कि पात्रों का वातालाप में कथा के वे सब अंग भी आ गये हैं जिन्हें अभिनय में दिखाना सम्भव नहीं था।

कथानक तथा आधार

यह नाटक पौराणिक है, किन्तु इसकी कथा का स्रोत कोई एक ग्रन्थ नहीं है। महाभारत के अतिरिक्त हरिवंश, भागवत, विष्णु एवं ब्रह्मवैवर्त पुराणा में कृष्णचरित का पर्याप्त विस्तार मिलता है। लेखक इन पुराणा में वर्णित कृष्णचरित में परिचित है। उसका यही प्रयत्न रहा है कि कृष्णचरित की कोई प्रमुख घटना छूटने न पाय। उतना ही नहीं, गीता के उपदेश की मुख्य मुख्य बातों का सनिवग भी कुछ पात्रों व कथोपकथना द्वारा करवा दिया गया है। नाटक के आरम्भ में ही कृष्ण और राधा की बातचीत में, कृष्ण के मुख से फलानासक्ति, नष्काम्य, समत्व आदि के सिद्धान्तों की सुन्दर और सरल व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। राधा का कृष्ण का समस्त जीवन ही इन सिद्धान्तों की व्याख्या रहा है। उनका कायक्षेत्र चाहे मधुरा रहा हो द्वारका रहा हो या कुम्भेश्वर का युद्धस्थान, उतना जो कुछ भी किया लोकव्यापक की भावना से, अनासक्त होकर किया। यदि उनका कोई काय प्रचलित नीति, समाजनीति, युद्धनीति आदि की दृष्टि से कुछ अंग में विपरीत रहा भी तो लोक-मंगलकारी होने पर उतने उस अच्छा ही माना है। युद्ध में भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि की मृत्यु का दायित्व मुख्यरूप से उतही पर आता है। इस काय में उनका स्वयं का कोई स्वाय नहीं रहा। उतने अनामक रूप से काय नियंत्रण अतः व उनका दोष से निर्लिप्त रहे।

उतने कंस का वध किया, परन्तु मथुरा के सिंहासन पर उत्तरासन को ठीकाया राज्य का समस्त सवालन किया किन्तु फल के उपमात्रा व नहीं बने। द्वारका में भी राज्य की व्यवस्था की, किन्तु सम्राटपद प्राप्त नहीं किया। यदि व चाहत तो नितने ही राज्या का विचार करके, उतह हस्तगत कर सकते थे किन्तु उतने इस दृष्टि से कभी नहीं साक्षात्। अपने शत्रु का प्रति भी उनकी भावना सदा उदार और अनासक्त रही। उतान एक से अधिक विवाह किये किन्तु उन विवाहों का मूल में भी उनकी सुख लिप्ता की अपना वनव्य भावना या लोकमंगल कामना ही प्रबल रही है। इस प्रकार इस समस्त नाटक में सबत्र ही श्रीकृष्ण का जनहितकारी कर्तव्य की व्याख्या ही परिनिक्षित हानी है।

श्रीकृष्ण विषयक इस कृतव्य नाटक में भी सठ गाविन्द्याम न श्रीकृष्ण व अलौकिक चरितों की व्याख्या का भी रामविषयक कृतव्य के समान मानवीय बतान का प्रयत्न किया है। इस काय में उतह पर्याप्त गहनता भी मिली है। व अपने युग का अमामात्र मानव था, जिन्होंने सबमें स्व' का दान और स्व में सबको। उतान समाज की स्थापना की, किन्तु समाज की अनुचित मर्यादाओं के विध्वंसक को घम समझा। श्रीकृष्ण का मम्मूय अहितकारी चिरन्तन मर्यादाओं और परम्पराओं का कोई महत्त्व नहीं है। व उतें निरन्तर ताडन रहे। उनकी रक्षा की उतान चिन्ता नहीं की।

कृष्णचरित का विपरीत रामचरित के काव्य में अच्छा और सभी प्रकार की मर्यादाओं की रक्षा करना उतने अपना परम कर्तव्य माना और जान पयत अपना सबस्व दकर भी उसकी रक्षा की। तोना ही महापुराणों में—एक नम्र प्रकार की मर्यादाओं को कर्तव्य समझकर उनकी रक्षा करने का द्वारा दूसरे न अनुचित मर्यादाओं का ध्वस्त करने—स्वतंत्र बौद्धिक चिन्तन का प्रशस्त पथ दिखाया।

अजुन और श्रीकृष्ण, दा सत्ता का बेप घनाकर, मोरध्वज के दरबार म जाकर कहते हैं कि इधर को आत हुए हमारे पुत्र को बन के सिंह ने पकड लिया है। यदि तुम्हारे पुत्र का मास उस खाने के लिए मिल जाय ता वह उसे छोडने को तयार है। राजा के सामने विकट समस्या है। वह उनकी सहायता करन का वचन दे चुका है। परन्तु इस परिस्थिति म वह क्या करे ? वह अपने शरीर को प्रस्तुत करता है, रानी का प्रस्तुत करता है पर सिंह को कुमार के अतिरिक्त कोई स्वीकार नही। राजा रानी के पास जाता है पर राजा न शिवि, दिलीप, परशुराम, हरिश्चद्र, दधीचि, कण और नल इत्यादि महापुरुषा की कहानिया सुनने पर भी उनका धय नही बधता। उसी समय ताम्रध्वज आता ह। सम्पूर्ण वत्तात जान कर वह अपन को बलि दन के लिए तयार हो जाता है, शरीर की नदवरता का उपदश देकर वह अपनी माता को भी तयार कर लेता है।

अब राजा रानी का ही आरा लेकर कुमार को चीरना है और गत यह होनी है कि चीरत समय तीना मे स किसी की आख स ग्रथु न गिरे। दोना चीरत है भगवान की कृपा स कुमार का किंचित भी कष्ट नही होता। कुमार की मृत्यु हा जाती है और साथ ही दोना सत और मायिक सिंह अनधान हो जात हैं। कुमार की पनी पति की चिन्ता म सती होना चाहती है। माता पिता भी अति दुखी है, तभी भगवान श्रीकृष्ण पधारत हैं। कुमार के सिर पर अपना हाप फेरत हैं और वह जीवित हो उठता है।

आधार

प्रस्तुत कथा जमिनीय अश्वमेधपव^१ की कथा स पर्याप्त मिलती है। कुछ स्थला पर जो अतर दीख पडत हैं वे इस प्रकार हैं—

अन्तर

१ कथा का प्रारम्भ यहाँ भिन्न प्रकार मे है। अजुन और श्रीकृष्ण को अपने अपने वाणो स मूर्च्छित कर ताम्रध्वज दानो अशवा के साथ अपन पिता के नगर रत्ननगर पहुँचता है जहा वह अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ करने के लिए प्रस्तुत है। अपने प्रधान मत्री बहुलध्वज से समस्त विवरण सुन, वह पुत्र पर अति क्रुद्ध होता है क्वाकि वह उसके आराध्य देव भगवान कृष्ण को छोड धोडा को ले आता है, जा एक प्रकार स भक्त के लिए कुछ महत्व नही रखते।^२

२ श्रीकृष्ण (मूल कथा जमिनीय अश्वमेधपव म) अपने पुत्र पौत्रा सहित किसी की प्राथना पर मोरध्वज को दशन देन नही जाते जसा नाटक म दिखाया गया है वरन अचेतावस्था स मुक्त हाकर मयूरध्वज की परीक्षा लेन की दृष्टि स्वय पहुँचत हैं।^३

३ कृष्ण ब्राह्मण के और अजुन उसक शिष्य के रूप म यज्ञस्थल पर आकर उपस्थित होत हैं। सिंह की कथा भी जमिनीय अश्वमेधपव म नाटक की कथा के सट्टा ही है किन्तु

१ जमिनीय अश्वमेधपर्व पृ० ४१ ४६

२ वही पृ० ४४

३ वही पृ० ४५

मुख्य अन्तर, जो दोनों स्थलों की कथाओं में दीख पड़ता है, वह यही है कि यहाँ ब्राह्मण वेपथारी वृष्ण मयूरध्वज के पुत्र की देह सिंह के लिए नहीं माँगत, अपितु मयूरध्वज की ही देह का दक्षिणाध भाग, अपने कल्पित पुत्र को जिनाने के लिए लेना चाहत है। यहाँ पत्नी पुत्र दोनों अपने की मयूरध्वज का अर्धांग यथा अपनी अपनी देह को प्रस्तुत करना चाहत है। नाटक में माता पिता स्वयं को समर्पित करना चाहत है और किसी प्रकार पुत्र को बचाने की चेष्टा करत हैं।^१

४ नाटक में पिता पुत्र और माता किसी की आत्म में आसू नहा दिखाया जाता। वे अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जात हैं, किन्तु जमिनीय अश्वमेधपव में मयूरध्वज की बाइ आसू में स आसू चू पड़ता है। ब्राह्मण वेपथारी वृष्ण ऐसे दान का लेना स्वीकार नहीं करत जिसका देने में दाता को दुःख हो। मयूरध्वज तब कारण बतात हैं कि यह आसू उस चिता का द्योतक है कि मेरा दाया अंग तो ब्राह्मण के काय में लगने के कारण साथक हो गया पर बाय अंग का अस्तित्व निष्कल हो गया। वृष्ण सुनकर अति प्रसन्न होत हैं और तीन दिन रत्ननगर में ठहरत हैं।

शेष कथा यथावत है।

नाटककार ने मूल कथा की अतिरिक्त घटनाओं का तत्काल रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं किया है। कथा पद्यों की-तथा प्रस्तुत कर दी गयी है।

१ जमिनीयअश्वमेधपव अ० ४५ श्लोक ०

२ वही अ० ४६, श्लोक ४४ २४ प० २६६

उपसंहार

अब तक विवेचन नाटका के अतिरिक्त अथ भी वहुत से नाटक हैं जो उपयुक्त धाराओं के अन्तर्गत लिये जा सकते हैं, किन्तु स्थानानामात्र तथा अधिक महत्त्वपूर्ण न हान के कारण उनका विवेचन यहाँ नहीं किया जा सका है। प्रत्येक धारा के अन्तर्गत जिन नाटका का लिया गया है वह केवल कथा के आधार पर ही। कालगत आधार उनके मूल में नहीं है। एसा आमुख में पूर्व ही निवेदन किया जा चुका है। अतः प्रत्येक धारा के नाटक, परम्परा युग की ओर से चाहें न वधे हों, किन्तु विषय या कथ्य का आधार उन्हें एक कक्ष में समेटे हुए है। यहाँ यह स्मरणीय है कि विषयगत अथवा कथागत आधार जहाँ उनकी समानता का कारण है, वहाँ उनकी असमानता का भी है। क्योंकि भजे ही ये नाटक समान आधार वाली कथाओं को लेकर चलें हैं किन्तु समय के विनाश के साथ साथ उनकी दृष्टि भिन्न होनी चली गयी है। दृष्टि भेद न ही असमानता को जन्म दिया है। इस दृष्टिभेद के लिए नाटका की सृजनकालीन परिस्थितिया ही उत्तरदायी है। वस्तुतः कोई भी कृति सृजनकर्ता के व्यक्तिगत परिवेश अथवा भावात्मक संयुक्त पर निर्भर रहती हुई भी अपने युग की उपेक्षा नहीं कर सकती। यही कारण है कि इन चार धाराओं के अन्तर्गत जितने भी नाटक हैं वे सब पौराणिक हात हुए भी युग सापेक्ष हैं। अतः सभी विवेचन नाटका की सामान्य विशेषताओं का विश्लेषण युग के आधार पर करना ही सम्भव है। इस दृष्टि से पौराणिक नाटक तीन प्रमुख वर्गों में बाँटे जा सकते हैं १ पूर्व भारत दु युग २ भारत दु युग ३ उत्तर भारत दु युग।

पूर्व भारत दु युग

इस युग के प्रमुख पौराणिक नाटकों की तालिका इस प्रकार है—

रामायण महानाटक, हनुमन्नाटक, जानकी रामचरित, आनन्द रघुनन्दन, नट्य, प्रद्युम्न विजय इत्यादि। इस युग के नाटककारों की दृष्टि केवल पौराणिक कथ्य के प्रस्तुतीकरण की ओर ही विशेष रही है। कथा में किसी प्रकार का परिवर्तन अथवा परिवर्धन के अपक्षित नहीं समझने थे। कथा के प्रस्तुतीकरण में भी उन्होंने पुरानी संस्कृत नाट्य शैली का ही अनुसरण किया है। नाडी, सूत्रधार, संधिषा, अक योजना तथा भरतवाक्य आदि कथा

यन्तु मन्त्र की शक्ति विनाशकारी की धार उतरा धार चरित रहा है। एक हीर पद न नां म स बज्रमाया के पद का प्रयोग ही विनाश का न किया गया है। शारदाभुवने के विनाश की मायाशक्तमय मन्त्रों का प्रयोग पद ५ ही है।

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु युग के कुछ पौराणिक नाटक विनयविनय हैं—

गीताशरण जातका भगत गीताशरणपर रामानन्दके राम योशना मनुमन्त्रागिता कृष्ण गुणमा रतिमा हरण मन्थाराम कान्तुम रतिमा परिणय शीला मन्त्ररत्न मन्त्र विना प्रभाममिना मन्त्रमन्त्र कसयप प्रद्युम्नविजय मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र विना जनीय तन मन्त्राणी मन्त्राणी स्वयंवर मन्त्रामुषय गीत माविना माविना मनपना चरित धारि ।

इस युग के धार नाटकाओं में धार नाटका का मन्त्र परमगता विनय दन्विया के आधारपर ही किया है। मन्त्र युगात् का श्रमता मन्त्रका उदात्त धारणा नहीं ममभा। इनमें म अधिकांश नाटकों की मन्त्रा पूरे भारतभूत युग के पौराणिक नाटक के मन्त्र लीना वात्ति म ही की जाती उचित है। तथापि कुछ नाटकाओं में मन्त्र कथानक के अध्यायन और मन्त्र के उतरान ही मन्त्र नाटक विना है।

इस युग के जागरण लयक स्वयं का एताधिर् दायिवा म कथा हृषा माना ध धार रचना के माध्यम म, क कथा के माय माय दान तथा मन्त्रागत परिणयिनिवा का श्रमन्त्र करात हुए निम्नी धारणा की धार मी श्रिणा निम्न करात चरत ध । भारतभूत न धरम नाटक सत्य हरिश्चन्द्र के द्वारा मन्त्राश्रिता तथा कनक्यपाना की जा परनाष्टा चिन्तन की है उसका कारण, राजा तथा प्रजा म नतिरना के विन्तार का भावना ही रही है। कनीनाय मन्त्र का धनचरित नाटक, तत्कालीन कणक्यवन्त्या का समस्या को मन्त्र चना है। इस नाटक में उच्च तथा निम्न वर्ग के मध्य समायाजन की दृष्टि मी दीन पटनी है। नन दम यती नाटक नारी के पाठित समार की कहानी है। नील सावित्री नाटक नारी के सतीय त्याग उदारता और अनिर्णय पानिर्णय धम का श्रण है। धाश्रम तथा कणक्यवन्त्या का समुचित सयाजन सामाजिक एव राजनीतिक जागृति धारि उहण्या का मुधारन दृष्टिकान लेवर ही इस युग के अधिकांश नाटकों की रचना की गयी है।

कथावस्तु के प्रस्तुतीकरण में भी इस युग में पूर्वयुग की धार ना धरत मिलता है। भारतभूत युग के पूर्व पौराणिक नाटक जहाँ पूणरूपण सश्रुत नाट्य शली का ही धनुसरण करते हैं वहाँ इस युग के नाटककार जिसमें भारतभूत प्रमुख हैं मध्यम धयवा स्वन्त्र माग की अपनाकर चले। सश्रुत तथा पाश्चात्य नाट्य श्रिणिया के आधार पर इहाने धपनी स्वच्छ शली की उद्भावना की। इस नूतन शली के धनुसार नाटककार न तो सश्रुत नाट्य शली से बंधकर चले और न उहाने पाश्चात्य नाट्य श्रियमा का ही धरणा धनुसरण किया। मापा के संश्रय म भी इस युग के नाटककार खड़ी बोली की धार भुके। इस प्रकार इस युग के नाटकों में जहाँ साहित्यिक मुक्ति का परिचय मिला वहाँ धमिनयता की ओर भी नाटककारों की दृष्टि सजग हुई।

उत्तर भारतेडु युग

इस युग में सामाजिक भावनाओं का परिष्कार एवं विधान और अधिक हुआ। इस युग के पौराणिक नाटकों में भी इसका प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। प्रमुख नाटक हैं—

वत्सय शकरी अछन, सीता की माँ सुमद्रा परिणय, विद्रोहिणी अम्बा अजना, उपा वरमाला जनमेजय का नागयन्तु अभ्येन, भीमप्रतिष्ठा, नन्दमयती (डा० लक्ष्मण स्वल्प), दक्ष्यानी अनातवास, चन्द्रयूट सगर विजय, चन्द्रहाम, बचन का माल स्वर्ग भूमि का यात्री, शक्तिपूजा नारद की वीणा आदि।

इस युग के नाटक उत्तर मानवताओं के समीर चिंतन एवं मनन के परिचायक हैं। जनमेजय का नागयन्तु इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इस युग के नाटककारों में केवल पौराणिक कथ्य कहने की वृत्ति को एकदम त्याग दिया। कथा को प्रताक बना उसके माध्यम से सामाजिक और राष्ट्रीय जागृति करने का लक्ष्य भी इस युग में अप्रमुख बन गया। इस युग के सज्जनकताओं में पौराणिक कथ्य का सज्जन अर्थन ढंग से एक नूतन रूप में किया जो दशक की नित्य प्रति विकसित हो रही वनानिक तथा मनावनानिक बुद्धि को एक साथ लुप्टि तथा लुप्टि प्रदान करता चल। चमत्कारिक, ऊहापाह वाल कथानक वलती परि स्थितिया में बौद्धिक दृष्टि सम्पन्न दशका का न ता आकषक लग सकतें और न सगत। पूर्वनिश्चित कथानका पर ही लिखे गये इस युग के नाटकों में नूतन ढंग से विषय प्रतिपादन के चित्र भली प्रकार देखे जा सकतें हैं। किशोरीलास बाजपेयी द्वारा लिखित द्वापर की राज्य शान्ति' नाटक में नारायणप्रमाण वाचक कृष्ण सुतामा में तथा शिवनन्द सहाय के सुतामा में समान कथासूत्र होन हुए भी, दृष्टिवाण का महान अंतर है। बाजपेयीजी ने अपने नाटक में कृष्ण द्वारा सुतामा को वनवमम्पन अति सगत तथा स्वामाविक ढंग से वनवामा है। इसी प्रकार लक्ष्मणस्वल्पजी ने अपने नाटक नन्दमयती में पुराने कथ्य को एकदम नूतन ढंग में प्रस्तुत किया है। यहाँ हम पत्नी से दगावटक का काम नहीं करता है अपितु हंस नाम का एक व्यापारी राजा नल का सद्ग दमयती के पाम ल जाता है।

पौराणिक कथानकों को इस युग के नाटककारों ने इस प्रकार के साधे में ढालकर प्रस्तुत किया जिसमें कथ्य की मत्तयता पर आघात न पहुँचात हुए उसके माध्यम से एक नूतन अपेक्षित दृष्टिवाण उपस्थित किया जिसमें पात्र न तो किसी अपरिचित लोक के वनकर आए और न इन नाटकों के आदग पहुँच से दूर की वस्तु बन पाए। इन पात्रों के कृत्य एवं व्यवहार अनुपम होत हुए भी, मानवीय दुबलताओं एवं मवेदनाओं से मुक्त रह अत य पात्र अमाधारण होकर भी माधारण तप और दसीलिंग दगकों की रचि से विलग न हो पाय। लक्ष्मीनारायण मिश्र का यह कथन इसी तथ्य की पुष्टि करता है कि—

आज का कवि या तो उसी पुरानी लीक पर आम भूँकर चले या पौराणिकता के नम रूप पर नया प्रकाश डाले, ऐसा प्रमाण जो हमारी रचि का और हमारी भावनाओं का जिसमें पौराणिक चरित्र अपने शुद्ध मानवीय रूप में हमारे सामने खडे ह। जिनके भीतर हम अपने राग विराग मिलें, जिन्हें हम ठीक ठीक वस ही पहचान सकें जैसे हम उन लोगों का पहचान संत हैं जिनका प्रभाव किसी रूप में हमारे जीवन पर पडता है।¹

जनमजय का नागयन म प्रमाजी ने जहाँ नागा का नागजाति का मान्य सिद्ध किया, वहाँ चन्द्रयूह के रचयिता न भी अभिमन्यु तथा युधिष्ठिर का मामाथ मानवा के रूप म ही देया है। सठ गोविन्दाम न अपन नाटक कतय (पूयाथ और उत्तराथ) म राम और कृष्ण के अवतारी स्वरूप को असाधारण रूप म चित्रित करत हुए भी उस अलौकिक नही बनने दिया। भूमिजा (मवदानद) म तथा सठजी के कतय्य म गीता का भूमि म प्रवेश करने का दश्य तथा अग्निप्रवेश अलौकिक एव असागत प्रतीत नही हुना। नाटककार ने कतय म सीता का वास्तविक रूप म अग्निप्रथम आवश्यक न मानकर अग्नि म प्रवेश करन की राम की आत्मा का गिरोपाय करन मात्र को ही उनके सतीत्व का प्रमाण मान लिया है और सचमुच दयाव को क्या के नस नूतन माड पर काइ आपत्ति नही हाती प्रत्युत उसके बौद्धिक मरिदण को इससे एक विचित्र-सी क्षाति मिलती है। इस सन्दर्भ म डा० सामनाथ गुप्त की यह मायता उचित ही है कि, सठजी की विशेषता यह है कि उन्होंने वणव होते हुए भी राम के चरित को मनुष्य के दृष्टिकोण से देया है।^१

आग्नि और यथाथ का सुंदर एव भगत समावय, इस युग के पौराणिक नाटकों का प्राण है। प्रेमचंदजी के अनुसार 'आदिकाल से मनुष्य के लिए सबसे समीप मनुष्य है। हम जिसके सुख दुःख हँसने रोने का मम समझ सकते हैं उसी से हमारी आत्मा का अधिक मेल होता है।'^२

इस युग के नाटककारों ने मनुष्य का मेल मनुष्य से करवा दिया। अब तक जिन्हें हम पापाण युग के दकता समझे बैठे थे वे ससारी बनकर हमसे आ मिले। समाज के परिवर्तित मानदण्डों का ध्यान म रखते हुए इस युग के पौराणिक नाटककारों ने, नारी के विद्रोही हृदय की भाँकी तथा समाज म उसके उचित स्थान सम्मान तथा अधिकार की घोषणा भी पौराणिक नाटकों के माध्यम से की। उदयगकर मट्ट का 'विद्रोहिणी अम्बा' नाटक इस कथन की पुष्टि करता है।

इस युग के पौराणिक नाटकों म कथा के साथ साथ चरित्र म भी परिवर्तन देख पडा। यल समझे जानेवाले पात्रों के चरित्रों म भी लखना ने उनके चरित्र के घुम अशा का भाव लिया है और अस्तु म सत की प्रतिष्ठा कर डाली है। दुर्योधन रावण तथा ककयी चरित्तन काल से कलक के जिम काले आवरण को ओढ़े बैठे थे, उत्तर भारत दु काल के नाटककारों न उस आवरण को छिन करके पहली बार, उनकी ओर सद्य दृष्टि से देखा है। इसलिए लक्ष्मीनारायण मिश्र के चन्द्रयूह का दुर्योधन, सुयोधन बन गया है। देवराज दिनग के रावण म प्रथम बार सदाचार एव मानवता के दर्शन हुए ह। मिश्रजी का 'चन्द्रयूह' पौराणिक कथा का नूतन रूप देनेवाला नाटक म श्रेष्ठ है।

कथा के प्रस्तुतीकरण म भी इस युग के पौराणिक नाटककारों नितान्त स्वच्छंद होकर आग बैठे हैं। पुरातन संस्कृत नाटय गली का ता उहान नमस्कार ही कर लिया है पाश्चात्य

१ चन्द्रयूह पूवरा पृष्ठ ४५

२ हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास प २३१

३ आवन म साहित्य का स्थान प्रवचन

नाट्य पद्धति में से भी उहान दृश्य-योजना तथा मॉडिंग को ही महत्त्व दिया है। हा नाट्य की अभिनेयता पर उहानि पूरा ध्यान रखा है। उदयशरर भट्ट जभ सिद्धहस्त नाटककारो ने पौराणिक नाटका की अभिनयता क साथ उसकी पठनीयता को भी समान महत्त्व दिया है। परिणामस्वरूप इस युग म उत्तम कोटि के पौराणिक नाटका का सजन हुआ है। पौराणिक नाटका की सत्या इस युग म उतनी नही बढी, पर स्तर अरुदय उतत हुआ है। मापा परिष्कार भी इस युग के पौराणिक नाटका की विशेषता रही है।

आरम्भ से लेकर अद्यतन परिवर्तित परिस्थितिया में, पौराणिक नाटका का क्यागत स्वरूप इस प्रकार रहा है १ भारत-दु-पूव युग म कथा एव पात्रा के यथातथ्य चित्रण का महत्ता दी गई थी। २ भारत-दु युग म तत्काधीन सामाजिक एव राजनीतिक परिस्थितिया के दिग्दर्शनाय सुधारक दृष्टिकाण सभूल कथाग्राम अशत परिवर्तन किए गए। ३ उत्तर भारत-दु युग में कथा का बुद्धिग्राह्य रूप म चित्रण किया गया जिसमें दृष्टिकाण मनोव-नानिक तथा मनो विश्लेषणात्मक भी रहा है।

इस प्रकार पौराणिक नाटक साहित्य, अपने आरम्भिक काल से आज तक विकास के पथ पर ही बढ़ता चला जा रहा है। आज चलचित्रा म भी पौराणिक कथाओं को सम्मान प्राप्त है। नाटक के मूल म 'वीरपूजा का भाव भी आरम्भ से ही निहित रहा है। मानव मन चाहे कितना ही परिष्कृत एर सस्कृत हो जाये, मानव मस्तिष्क चाहे कितना भी बज्ञानिक बन जाय किंतु घोर से घोर बुद्धिवादी 'यक्ति भी, किसी मा युग म अपन पूवजा से विमुख हा उनके रूप एव कृत्या के दशनाय लालायित न हो, एसा सम्भव नही लगता डॉ० रक्षी ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है "जिन जिन कारणों से नाटकीय आत्मा का विकास हुआ जिन जिन तत्वा से उसकी रूपरेखा का निर्माण हुआ, उसम नत्य, संगीत तथा देवपूजा और वीरपूजा की भावना ही मूल रूप म प्रस्तुत थी और नाटककारा का पौराणिक बीरो की और आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था। १

नवजागरण की बेना म हिन्दी रगमच पुन लोकप्रियता प्राप्त करना चला जा रहा है। चलचित्र के पर्दे पर बिरकती निर्जीव प्रतिमाग्रा म रगमच पर अभिनीत दृश्या जसी ताजगी एव आन द उपलब्ध हो भी कसे सकता है। देश के प्रमुख नगरा म नाटक समितिया एव नाट्य गालाग्रा का निर्माण भी हो चुका है और हाता जा रहा है। कुलीन तथा निपुण कलाकार भी वहा अभिनीत होने वाले नाटका म भाग लेन म गौरव का अनुभव करते दिखाई देत है। या भी स्वदेशी-नुरागी, अध्वयनशील एव मनस्वी समुदाय, अपने देश की सस्कृति के संरक्षण एव विकास के प्रति जागरूक हैं, अतः पुराण महाभारत या रामायण के अध्वयन, भजन एव शोध क साथ साथ इन प्रयोगों के पुनमुद्रण के लिए भी अनेक सस्याएँ प्रयत्नशील हैं। निश्चित ही पुराण अथ अरु पुगनी मायताग्रा के कठघरे से निकलकर समुचित आदर एव महत्त्व प्राप्त करत जा रहे हैं जिससे पौराणिक नाटका क प्रणयन की और भी नाटककार सजग हो गय हैं। पुराण साहित्य म नाटकीय तत्वा की प्रचुरता निश्चित ही पौराणिक नाटका क क्षेत्र का अधिकाधिक समृद्ध बनाएगी और यह साहित्य, आज क भूले भटक मानव के लिए माग निर्देशन का काय बरगा।

परिशिष्ट

सहायक-ग्रन्थ-सूची

ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
अ		
अथर्ववेद संहिता		स्वाध्याय मण्डल, श्रीधर सतारा
अथशास्त्र	कौटिल्य	पण्डित पुस्तकालय, बनारस
अध्यात्म रामायण		गीताप्रेस गोग्गलपुर २०१४ वि०
अमरकोश		निणय सागर प्रेस बम्बई, १९४४ ई०
अनघ नल चरित	सुल्गताचाय गास्त्री	लक्ष्मी बैंकटेश्वर प्रेस, कल्याण, बम्बई १९६५ वि०
अजना	सुदगन	नाथूराम प्रेमी हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई १९२३ ई०
अजना सुन्दरी	कन्हैयालाल	बकटेश्वर प्रेस बम्बई १९५७ वि०
अजना सुन्दरी	उमाशंकर मेहता	एस० एस० मेहता एण्ड ब्रदर्स, काशी १९८६ वि०
आ		
आदशकुमारी	रामचन्द्र भारद्वाज	लक्ष्मी पुस्तक कार्यालय, दिल्ली, १९३२ ई०
आधुनिक हिन्दी साहित्य	लक्ष्मीसागर वाण्येय	हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद विश्व विद्यालय, १९४८ ई०
आनन्द रामायण		
आत्म राम	वा० ब्रजरत्ननाथ	हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस २०१२

ग्रन्थ लेखक प्रकाशक

आउटलाइन आफ द
रिलीजियस लिटरेचर
आफ इण्डिया एक० ई० पाजिटर

उ

उत्तररामचरित	भवभूति	चीखम्बा विद्यामवन, बनारस
उपा हरण	कौत्तिप्रसाद	हरिप्रकाश यन्त्रालय काशी, १८६१ ई०
उपा नाटक	बलवतराम सिन्हे	लक्ष्मीनारायण, जनकगञ्ज, लखनऊ, ग्वालियर
उपा अनिरुद्ध	मुशी आरजू	उपन्यास बहार आफिस, बनारस १९२४ ई०
उपा-अनिरुद्ध	राघेदयाम कथावाचक	राघेदयाम पुस्तकालय, बरेली १९३२ ई०

ऋ

ऋग्वेद संहिता स्वाध्याय मण्डल, श्रीधर, सतारा

ऐ

ऐतरेय ब्राह्मण स० मत्स्यवत मामश्रमी एसियाटिक सोसाइटी कलकत्ता
१९०६ ई०

ओ

ऑस्ट्रेलियन कांसेस रिपोट

क

कतव्य	सेठ गोविन्ददास	महाकौशल साहित्य मंदिर जबलपुर, १९६२ वि०
कसवध नाटक	रामनारायण मिश्र द्विजदत्त	मधुवती, दरभंगा १९१० ई०
कस विध्वंस	धनवारीलाल	बोस प्रेस, कलकत्ता
किराणाजुनीय	भारवि	निणय सागर प्रेम, बम्बई
कूम पुराण		वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
कूर वण	हरद्वारप्रसाद जालान	नवरंगलाल, तुलस्यान चौक भागरा, १९८१ वि०

४१० / हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्रोत

ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
ग		
गणेश जन्म गंगा का बंटो	रामचरण आत्मानन्द पाण्डेय वचन शमा उग्र	उपन्यास बहार आफिस काशी, १९३० स्वरूप ब्रह्म, सजुरी बाजार इन्दौर १९४० ई०
गौरीशंकर नाटक	रामनारायणसिंह जायसवाल	सत्य स्वयं, वीरपुर, जिला गाजीपुर १९२४
ग्रेट एपिक्स आफ इण्डिया	ई० डब्ल्यू० ह्यूपकिंस	
घ		
चण्डबौशिक	श्राय क्षेमीश्वर	आशुतोष विद्याभूषण, वाचस्पत्ययन कलकत्ता १९३१ ई०
चक्रव्यूह	लक्ष्मीनारायण मिश्र	कौशाम्बी प्रकाशन, दारागज प्रयाग, १९५७ ई०
छ		
छादोग्य उपनिषद्		आनन्द आश्रम पूना
ज		
जनक द्वाग दान	रामनारायण मिश्र	खडगविलास प्रेस, वाँकीपुर पटना १९०६ ई०
जानमजय का नागयज्ञ	जयशंकरप्रसाद	भारती मण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २०१३ वि०
जमिनीय ब्राह्मण	सम्पा० डा० रघुवीर	नागपुर १९५४ ई०
जमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण		
जमिनीय अश्वमेधपर्व		गीताप्रेस, गोरखपुर
त		
ताण्ड्य ब्राह्मण धनुषवीला नाटक दमयन्ती स्वयंवर	रामगुलाम लाल परमानन्द	बजनाथ बुक्सलेर काशी, १९६९ वि० तुलसीराम स्वामी सरस्वतीयाश्रम प्रयाग, १८९५ ई०
दमयन्ती स्वयंवर दवीभागवत पुराण	वानशृष्ण भट्ट	हिन्दी सम्मेलन, प्रयाग १९९९ वि०

ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
दक्कूनि देवयानी	राजाराम शास्त्री जमुनादास महारा	ससह्यायी प्रकाशन, पन्नी १९५५ आर० डी० वाहिनी एण्ड का०, १०४ चौरागान, कलकत्ता, १९२२ ई०
देवी देवयानी देवयानी	रामस्वरूप रूप नारा वाजपयी	उपयास बहार आफिस, कागी, १९३८ इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, १९८८ ई०
शूत वा भूत अथवा नन दमयन्ती	ब्रह्मदत्त शास्त्री	गयाप्रसाद एण्ड सन्ज आगरा, १९२७ इ०
न		
नल-दमयन्ती नाटक नन दमयन्ती नट्टुप नाटक	महाबारसिंह वर्मा दुर्गाप्रसाद गुप्त वा० गोपालदास	इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, १९०५ ई० उपयास बहार आफिस, कागी नागरी प्रचारिणी सभा कागी, २०११ वि०
नल दमयन्ती	डा० लक्ष्मणस्वरूप	एस० चाद एण्ड कम्पनी लिता, १९५१ ई०
नाटक की परब नाटयशास्त्र नारणीय महापुराण निरुक्त नीति मजरी	एम० पी० खत्री भरत मुनि यास्क, म० मुकुट भा द्या द्विवेद म० मीताराम जयराम जागी	वेंकटेश्वर प्रेम, बम्बई निणय सागर प्रेस, बम्बई १९३० ई० हरिहर मण्डल कालभरव कागी, १९३३ इ०
नपथीय चरित	श्रीहृष	निणय सागर प्रेम बम्बई
प		
पञ्च पुराण पञ्च पुराण (जन) पञ्चम चरित (अपभ्रंश) पञ्चचन्द्र कीर्ण प्रयाग रामागमन	रविपण स्वयम्भूदेव गणेशदत्त शास्त्री बन्दी नारायण प्रमथन	आनन्दायम पूना भारतीय ज्ञानपीठ कागी भारतीय ज्ञानपीठ, कागी, १९५७ ई० मेहरचन्द लक्ष्मणदास, लाहौर, १९२५ ई० आनन्दकाम्बनी यन्त्रालय, मिरजापुर, १९६८ वि०
पञ्चवटी पुराण विषयसम्बन्धमणिता	गम्भूदयाल सक्सेना गोपाल टडन	नवयुग ग्रन्थ कुटीर बीकानर विश्वेश्वरानन्द बदिन शोध सस्थान, हानियारपुर, १९६८ वि०

ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
पौराणिक आख्यान	द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी	प्रयाग
ब		
बधु भरत बलवीर कृष्ण	तुलसीराम शर्मा रघुवीरशरण मिश्र	मीरा मन्डिर, बम्बई, १९३८ ई० भारतीय साहित्य प्रकाशक, मेरठ, १९५६ ई०
ब्रह्माण्ड पुराण ब्रह्म पुराण		बैकटेश्वर प्रेम, बम्बई बैकटेश्वर प्रेम बम्बई । गुरुमण्डल ५ बनाइव रोड बलबत्ता
ब्रह्मवत पुराण वेन चरित	बद्रीनाथ भट्ट	आनन्द आश्रम, पूना रामप्रसाद एण्ड ब्रदर्स आगरा १९७९ वि०
बेणु संहार	बालकृष्ण भट्ट	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १८४७ ई०
बहदारण्यक उपनिषद् ब्रह्मसूत्र	शावर भाष्य	आनन्द आश्रम पूना निणय सागर प्रेस, बम्बई
भ		
भट्ट नाटकावली		
भारतेन्दु नाटकावली	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	रामनारायण लाल, इलाहाबाद, १९९३ वि०
भारतेन्दुवालीन नाटय साहित्य	गोपीनाथ तिवारी	हिन्दी भवन इलाहाबाद, १९५६ ई०
भारतेन्दुका नाटय साहित्य	वीरेन्द्रकुमार शुक्ल	
भागवत पुराण		गीता प्रेस गोरखपुर
भारत सावित्री	वासुदेव शरण अयबाल	सस्ता साहित्य मण्डन, नयी दिल्ली
भारतीय पाश्चात्य रगमच	सीताराम चतुर्वेदी	सूचनाविभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ १९६४ ई०
भाष्य	मुफ्त बधु	सब मुलभ साहित्य सदन, फतेहपुर, २०१५ वि०
भविष्य पुराण		निणय सागर प्रेस, बम्बई
भीष्म	विश्वम्भरनाथ गमा कौणिक	प्रताप कायालय कानपुर
भीष्मव्रत	मूलजी मनुज	गारदा भई दर दिल्ली
भूमिजा	सवदानन्द	भारतीय नानपीठ काशी, १९६० ई०

ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
म		
मत्स्य पुराण		गुप्तमण्डल ५ बनाइवरो, कलकत्ता ११
महाभारत		गीताप्रेस, गारखपुर
महाभारत हान्टजमन, भाग ४		
माकण्डेय पुराण		गुप्तमण्डल ५ बनाइवरो, कलकत्ता
माकण्डेय पुराण		बैंकटेश्वर प्रेस बम्बई
माकण्डेय पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन मोरध्वज	वामुदेवगण भद्रवाल पालिश्राम वश्य	हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद बैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई १८६० ई०
य		
यजुर्वेद संहिता		स्वाध्याय मण्डल श्रीधर, सतारा
यानवन्वय स्मृति		चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
र		
रघुवग	कानिदास	निणय सागर प्रेस बम्बई
रामचरितमानस	तुलसीदास	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
राजतिलक अथात् किराताजुन युद्ध	जगन्नारायण दव शमा	ज्याति भवन रायनगर, बनारस १६३१
रावण	देवराज दिनरा	प्रेम साहित्य निवेदन, नई सडक, दिल्ली
रामराज्य वियोग नाटक	माणिक भोगटा	हरिदास २०१ हरिसन रोड, कलकत्ता
रामलीला रामायण नाटक	द्वारका प्रसाद	बम्बई भूषण यत्रालय, मथुरा
रामचरित्राद्दीपन नाटक	रघुवर दयाल पाण्डेय	हिन्दी नाट्य पुस्तकालय कानपुर १६११
रामामिपेक नाटक	रामगोपाल विद्यान्त	नवल किशोर यत्रालय लखनऊ
रामामिपेक	गंगाप्रसाद गुप्त	हिन्दी साहित्य, बनारस १६१० ई०
रामवनयात्रा	गिरिवरधर	रणजीत प्रेस, पटना सिटी, १६१० ई०
रामचरित	जयगोविन्द मालवीय	सरस्वती यत्रालय, प्रयाग, १८६४ ई०
रामलीला विजय	वलदेव प्रसाद	काशिका यत्रालय बनारस, १६४२ वि०
रामायण	श्रीकृष्ण हसरत	उपयास बहार आफिस, बनारस
रूपक रहस्य	श्याममुन्दर दास	इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद
राजा शिवि	वलदेवप्रसाद खरे	बाहरी एण्ड को० चौखमान, कलकत्ता, १६२३ ई०

११४ / हिंदी के पौराणिक नाटकों के मूल ग्रंथ

प्रथम

लेखक

प्रकाशक

लिंग पुराण

द्वितीय

गुरुमण्डल

कलकत्ता

प्रकाशन, ५ कानाइवरी,

वरमाला

वायु पुराण

वाल्मीकि रामायण

विष्णु पुराण

बराह पुराण

वामन पुराण

विद्रोहिणी श्रम्बा

विष्णुधर्मोत्तर पुराण

वल्कि इण्डेक्स आफ नेम्स मकडानल

संस्कृत दो भाग

गाविन्द वरलम पन्त

उदयशंकर भट्ट

गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ

बैंकटेश्वर प्रेस

गीताप्रेस गोरखपुर

गीताप्रेस, गोरखपुर

बैंकटेश्वर प्रेस बम्बई

बैंकटेश्वर प्रेस बम्बई

मसिजीवी प्रकाशन नई दिल्ली

बैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली १९५८

श

तपस्य ब्राह्मण

शिवरी अछूत

शिवरी

गौरीशंकर मिश्र

सीताराम चतुर्वेदी

सेठ गोविन्ददास

वदिक यंत्रालय अजमेर

इण्डियन प्रेस इलाहाबाद १९५१

अखिल भारतीय विद्वान परिषद्

काशी २००१ वि०

भारतीय विश्वप्रकाशन फुवारा

दिल्ली १९५९

बैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता

कन्हैयालाल बुकसेलर, पटना सिटी, १९६८ वि०

आनन्द आश्रम, पूना

हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

खेमराज श्रीकृष्णदास बैंकटेश्वर प्रेस

बम्बई १८९७ ई०

गीताप्रेस गोरखपुर

राधेश्याम

पुस्तकालय, बरेली, १९२९ ई०

शारदा मिश्र

कन्हैयालाल

राधेश्याम

शिवपुराण

शिवपुराण

शिवविवाह नाटक

साह्यायन श्रौतसूत्र

शेमित्रा

शील सावित्री

श्रीमदभयवद्गीता

श्रीकृष्णावनार

ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
श्रीकृष्ण जन्म	भारतसिंह यादवाचार्य	यादव कुमार मनालान, काशी, १९३४ ई०
श्रीकृष्ण	चतुर्मुख	स्वतंत्र नवभारत प्रेस पटना
स		
स्कन्द पुराण		बेंकटेश्वर प्रेम, बम्बई
स्कन्द पुराण		गुरुमण्डल प्रकाशन, कलकत्ता
सगर विजय	उदयशंकर भट्ट	मसिजीवी प्रकाशन नई दिल्ली, १९५६
सती स्तन नाटक	रमिक बिहारीलाल	प्रह्लाद दास बुक्सलेर, चौक पटना मिटी, १९१२ ई०
सत्य हरिश्चन्द्र	भारतदु हरिश्चन्द्र	श्रीभाराम एण्ड सन्ड, दिल्ली
सत्य हरिश्चन्द्र		रामनारायणलाल इलाहाबाद
सती प्रताप	भारतदु हरिश्चन्द्र	रामनारायणलाल, इलाहाबाद
सत्याग्रही	अजयनन्दन गर्मा	दक्षिणभारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास, १९३९ ई०
संस्कृत झुमा	कीय	आकमफाड यूनीवर्सिटी प्रेम
सावित्री नाटक	ला० देवराज	पंजाब इक्नामिक्न यंत्रालय, जालंधर, १९०० ई०
सावित्री	बाके बिहारीलाल	राजनीति यंत्रालय पटना सिटी १९०८
सावित्री सत्यवान	गणप्रसाद	लक्ष्मी पुस्तकालय बनारस १९८५ वि०
सावित्री सत्यवान	वणीप्रसाद श्रीमाली	ठाकुर प्रसाद गुप्त बनारस १९८५
सुकन्या	राजाराम शास्त्री	सहयोगी प्रकाशन, जवाहरनगर
मुग्धा परिणय	संठ गाविन्ददास	आत्माराम एण्ड सन्ड, दिल्ली, १९५२
सूर और उनका साहित्य	हरवशालाल शर्मा	भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़
सीता वनवास	ज्वालाप्रसाद मिश्र	बेंकटेश्वर प्रेम, बम्बई १९६२ ई०
सीता स्वयंवर	बन्दीदीन दीक्षित	बेंकटेश्वर प्रेम बम्बई १९०० ई०
सीता हरण	बन्दीदीन दीक्षित	लखनऊ प्रिंटिंग प्रेम लखनऊ १८९५
सीता स्वयंवर	मुंशी तोताराम	ईश्वरी संस्कृत पुस्तकालय, मदर मेरठ १९०३ ई०

ह

हरिवंश पुराण

गीता प्रेस, गोरखपुर

४१६ / हिन्दी के पौराणिक नाटका के मूल स्रोत

ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
हरिवंश पुराण		
हिन्दी नाटक उदभव और विकास	दशरथ श्रोभा	नवल किशोर प्रेस लखनऊ
हिस्ट्री आफ सस्ट्रेत लिटरेचर		राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली १९६१ ई०
हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर	वीथ	आक्सफोर्ड प्रेस, १९२७ ई०
हिन्दी के पौराणिक नाटक	विष्णु रनित्स देवपि सनातन्य	कलकत्ता विश्वविद्यालय १९२७
हिन्दी नाटय साहित्य		चौखम्बा विद्यामवन, वाराणसी, १९६१ ई०
हिन्दी साहित्य का इतिहास	ब्रजरत्न दास	
हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र गुक्ल सोमनाथ गुप्त	नागरी प्रचारिणी सभा हिन्दी मवन, इलाहाबाद

